'पञ्चायतन पूजा' बृहद् विशेषांक

इस वर्ष का वेदप्रकाश का बृहद् विशेषांक होगा **'पञ्चायतन पूजा'**। यह ग्रन्थ वेदप्रकाश साइज के ११२ पृष्ठों का है। ग्रन्थ छपकर तैयार है परन्तु अगस्त के स्थान पर सितम्बर में मिलेगा।

इस ग्रन्थ का लेखन-कार्य **डॉ० ओम्प्रकाश जी वेदालंकार** ने किया है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में पञ्चायतन पूजा का विधान किया है। वे पञ्चदेव कौन-से हैं, इनका क्या महत्त्व है, इनकी पूजा का फल क्या है, इनकी पूजा कैसे करें, इत्यादि सभी पक्षों पर विचार किया गया है।

वेदप्रकाश का आर्यजगत् में विशिष्ट स्थान है। इसके अधिकांश अंक विशेषांक ही होते हैं। प्रत्येक ग्रंक छोटा होते हुए भी एक ही विषय का प्रतिपादन करता है। पाठक पढ़ने के पश्चात् भी इन अंकों को सँभालकर रखता है।

पुस्तकरूप में यह विशेषांक १५-०० का होगा, परन्तु १५-०० रुपये भेजकर 'वेदप्रकाश' के सदस्य बननेवालों को यह अंक तो मिलेगा ही साथ ही एक वर्ष तक वेदप्रकाश के साधारण अंक भी मिलते रहेंगे।

शीघ्रता कीजिए, अपना शुल्क आज ही भेजिए। अंक सीमित संख्या में छपा है। अतः अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए अपना मनीआर्डर आज ही भेजिए।

मनीआर्डर भेजने का पता—

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली का

अभूतपूर्व प्रकाशन दस खण्डों में

सम्पादक : डॉ० भवानीलाल भारतीय

उपर्युक्त ग्रन्थमाला के अन्तर्गत अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के सभी हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी ग्रन्थों का प्रामाणिक प्रकाशन—

१. **कल्याणमार्ग का पथिक** (स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा)

२. **धार्मिक उपदेशपूर्ण ग्रन्थ—**
धर्मोपदेश, संक्षिप्त मनुस्मृति, आर्यों की नित्यकर्म पद्धति, मुक्तिसोपान, पञ्च महायज्ञों की विधि आदि।

३. **महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज विषयक ग्रन्थ—**
आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त, ईसाई पक्षपात और आर्यसमाज, वेद और आर्यसमाज, उपदेशमंजरी की भूमिका, ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार की भूमिका।

४. **हिन्दू संगठन और शुद्धि-समस्या—**
वर्णव्यवस्था, आचार-अनाचार और छूत-छात, जाति के दीनों को मत त्यागो, हिन्दू संगठन, मातृभाषा का उद्धार आदि।

५. **स्वामी श्रद्धानन्द के राजनैतिक ग्रन्थ—**
'इनसाइड कांग्रेस' का प्रथम बार हिन्दी अनुवाद, स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा प्रकाशित दि लिब्रेटर में प्रकाशित २५ राजनैतिक लेखों का प्रामाणिक अनुवाद, इसके साथ ही स्वामीजी का पं० गोपाल कृष्ण गोखले आदि नेताओं के साथ हुए दुर्लभ पत्र-व्यवहार को भी दिया जा रहा है) हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद (एकता) की कहानी।

६. **पं० लेखराम का जीवनचरित और बंदीघर के विचित्र अनुभव**

७. **आर्यसमाज एण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स : ए विण्डिकेशन** का अनुवाद—आर्यसमाज और उसके शत्रु : एक प्रतिवाद के शीर्षक से यह दुर्लभ ग्रन्थ ८० वर्ष पश्चात् पुनः पाठक वर्ग को अर्पित किया जा रहा है।

८. सद्धर्म प्रचारक का अभियोग : पूर्ण और प्रामाणिक अनुवाद (गोपीनाथ काश्मीरी के अभियोग का विवरण)

९. **उर्दू ग्रन्थों का अनुवाद :** कुलियात संन्यासी तथा अन्य ग्रन्थ।

१०. **स्वामी श्रद्धानन्द की प्रामाणिक बृहत जीवनी** (सचित्र)
सम्पूर्ण स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (दस खण्डों में) सम्पूर्ण ग्रन्थावली का मूल्य ६००-००। प्रकाशन से पूर्व ग्राहक बनने पर ३६०-०० में दसों खण्ड। शीघ्र आरक्षण करायें।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक १] वार्षिक मूल्य : दस रुपये [अगस्त १९८७

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सम्पादकीय

वेदप्रकाश का नया वर्ष—

इस अंक के साथ वेदप्रकाश ३७वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। हम श्रावणी के अवसर पर 'पञ्चायतन पूजा' नामक बृहद् विशेषांक देना चाहते थे। अंक तैयार हो गया परन्तु हमारे सदस्यों ने अपना शुल्क नहीं भेजा। इस बार साधारण अंक दे रहे हैं। बृहद् विशेषांक पाठकों को सितम्बर मास में मिलेगा। इसकी पूर्ण जानकारी प्रथम पृष्ठ पर दी हुई है। कृपया अपना वार्षिक शुल्क शीघ्र भेजें।

कहाँ गये वे लोग—

जुलाई ८७ के अंक में हमने इसी शीर्षक से स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती का एक लेख छापा था। इसके सम्बन्ध में अनेक पत्र आये हैं। एक संन्यासी ने लिखा है कि और कुछ नहीं तो कुछ संन्यासी ही मिल-बैठकर विचार-विमर्श करें। मैं इस सुझाव का स्वागत करता हूँ। मिल बैठने का स्थान, निवास और भोजन का प्रबन्ध तथा द्वितीय श्रेणी के मार्गव्यय की व्यवस्था का प्रबन्ध मैं करा दूँगा। इसमें संन्यासियों के अतिरिक्त वैदिक विद्वान् भी भाग ले सकते हैं। यदि कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी उत्सुकता दिखाई तो स्थान और समय की घोषणा पत्रों के माध्यम से और व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार से दे दी जाएगी।

मेरे विचार में संन्यासी और विद्वानों का मिल बैठना आवश्यक है। यदि सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा यह कार्य करे तो और भी उत्तम है। मिल-बैठने की क्या आवश्यकता है ? पढ़िये—

आज नये-नये मत और पन्थ बढ़ते जा रहे हैं, वे बहुत आगे निकल गये हैं, हम पीछे हटे हैं। मत और पन्थवाले अनेक आकर्षक रूपों में अपना प्रचार कर

रहे हैं, हमारे प्रचार-साधनों में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

आज मूर्तिपूजा बढ़ी है। हरद्वार का सप्तसरोवर मन्दिरों और मठों से भर गया है। भोली-भाली जनता को भ्रमों की खाई में डाला जा रहा है।

अपने-आपको हिन्दु कहनेवाले लाखों लोग मुसलमानों की कब्रों पर मत्था टेक रहे हैं; कोई धन माँग रहा है, कोई पुत्र माँग रहा है, कोई और मन्नत माँग रहा है। अनासागर पर गोवध करानेवाले चिश्ती की दर्गाह पर अजमेर में हिन्दु प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपया चढ़ा देता है। आर्यसमाज के कर्णधार सो रहे हैं। हा हन्त!

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना योग-प्रचार के लिए की थी परन्तु हमने योग की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। आज योग के नाम पर नाना प्रकार के पाखण्ड पनप रहे हैं। योग के नाम पर सहस्रों दुकानें खुली हुई हैं। क्या हमने कुछ योगी तैयार किये? क्या योग-प्रचार के लिए कुछ किया?

महर्षि दयानन्द ने वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म बतलाया है। हमने इसका कितना पालन किया? कितना प्रचार किया? आज मूलमात्र चारों वेदों का मूल्य २८०-०० रुपये हैं। यदि कोई सभा या संस्था तीन सहस्र ग्रन्थ छाप ले तो ७०-८० रुपये में चारों वेद दिये जा सकते हैं। सामवेद और यजुर्वेद उत्तमकोटि के भाष्य से युक्त ४०-५० रुपये में दिया जा सकता है। ये कार्य होने ही चाहिएँ थे परन्तु नहीं हुए।

आर्यसमाज के अधिकारियों का ध्यान बैंक-बैलैंस बढ़ाने की ओर है या फिर स्कूल, वाचनालय और औषधालय खोलने की ओर है। स्कूल, वाचनालय और औषधालय तो दादूपन्थी, कबीरपन्थी, रैदासी, गरीबदासी, मलूकदासी, निरंकारी आदि अन्य मतवाले भी खोल लेंगे, वेद का कार्य कौन करेगा?

आवश्यकता है हमारे अधिकारी चेतें, जनता भी सावधान हो। संन्यासी और विद्वद्वर्ग इकट्ठा होकर बैठें। इन बिन्दुओं पर कुछ विचार करें। आर्यसमाज को आगे बढ़ाने में सब एकजुट हों।

—जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वरदान

'प्रभो ! विपत्तियों से रक्षा करो'
यह प्रार्थना लेकर मैं तेरे द्वार पर नहीं आया।
'विपत्तियों से भयभीत न होऊँ', यही वरदान दो।
अपने दुःख से व्यथित चित्त को
सान्त्वना देने की भिक्षा नहीं माँगता,
'दुःखों पर विजय पाऊँ'
यही आशीर्वाद दो, यही प्रार्थना है।
तेरी सहायता मुझे न मिल सके तो भी, यह वर दो कि
'मैं दीनता स्वीकार करके अवश न बनूँ।'
प्रभो ! संसार के अनिष्ट, अनर्थ और छलकपट भले ही
मेरे भाग्य में आएँ
तो भी मेरा अन्तर् इन प्रतारणाओं से क्षीण न हो।
'मुझे बचा लो' यह प्रार्थना लेकर
मैं तेरे दर पर नहीं आया
केवल संकट-सागर में तैरते रहने की
शक्ति माँगता हूँ नाथ !
'मेरा भार हल्का कर दो' यह याचना
पूर्ण होने की सान्त्वना नहीं चाहता,
यह भार वहन करके चलता रहूँ—यही प्रार्थना है।
सुखभरे क्षणों में नतमस्तक हो तेरे दर्शन कर सकूँ
किन्तु दुःखभरी रातों में जब
सारी दुनिया मेरा उपहास करेगी
तब मैं शंकित न होऊँ
यही वरदान चाहता हूँ प्रभो !

—**रवीन्द्रनाथ ठाकुर**

मृत्यु : जीवन की अनिवार्यता

अन्तकाय मृत्यवे नमः ।—अथर्व० ८।१।१

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः ॥

—अथर्व० ८।२।२३

सर्वान्तक मृत्यु को नमन करते हुए अथर्ववेद के उपर्युक्त मन्त्र में मृत्युपीड़ा से सन्तप्त अपने अमृतपुत्र मानव को आश्वस्त करते हुए परमकारुणिक प्रभु कहते हैं—हे मृत्युपीड़ा से उत्पीड़ित एवं सन्तप्त मानव ! मत डर, मत डर इन्द्रियों की वास्तविक स्वामिनी गोपति इस मृत्यु से। संसार में दोपाए (मनुष्य) हों या चौपाए, किसपर इसका शासन नहीं है ? किसे यह अपना ग्रास नहीं बनाती ? देख, तू मेरे पास आ ! मैं निश्चय ही इस मृत्यु से तुझे छुड़ाता हूँ। मत घबरा, मेरे वत्स ! मत डर ! !

वेदमाता के इन वचनों में कैसा अमोघ आश्वासन है ! कितनी शान्ति है ! कितनी सान्त्वना और कितनी प्रेरणा है ! कवि-हृदय के ये स्वर कितने सत्य हैं—

सुख के साथी बहुत हैं, दुःख का मीत न कोय ।
दुःख का साथी साइयाँ, काहि न सुमिरै सोय ॥
दो बातन को भूल मत, जो चाहे कल्यान ।
'नारायण' इक मौत को, दूजे श्रीभगवान ॥

मृत्यु जीवन की अनिवार्यता है। वह प्रतिपल जीवन का पीछा कर रही है, परन्तु फिर भी आश्चर्य यह है कि मानव 'मृत्यु' शब्द को ही सहन नहीं कर पाता। इस शब्द का सुनना भी अशुभ समझा जाता है। किन्तु चाहे यह शब्द कितना ही असह्य क्यों न हो, प्रत्येक जीवधारी प्रतिपल इसी ओर दौड़ रहा है। एक 'यात्रा' पर जाने का संकल्प करके 'टिकट' खरीद जेब में रख जब तुम 'रेलगाड़ी' में बैठ गये हो तो वह यात्रा तो होगी ही। चाहे तुम रेलगाड़ी में खड़े रहो या बैठ जाओ या लेट सको तो लेट जाओ, पढ़ो या चुपचाप ध्यान करते रहो, रेलगाड़ी तुम्हें गन्तव्य स्थान की ओर ले-जा रही है। इसी प्रकार प्रत्येक जीवधारी को जन्म के

समय ही मृत्यु का टिकट दे दिया जाता है। वह 'यात्रा' पर चल देता है। तुम भी चाहे जितना प्रतिरोध करो, सुरक्षा के साधन बढ़ा लो, सावधानी बरतो, तुम्हें उस स्थान पर किसी-न-किसी दिन अवश्य पहुँचना ही पड़ेगा। चाहे और सब-कुछ संदिग्ध हो, किन्तु मृत्यु तो असंदिग्ध है ही। इस कानून में परिवर्तन असम्भव है।

जीवन और मरण संसार की शाश्वत घटनाएँ हैं, चिरन्तन सत्य हैं। विश्व की प्रत्येक उत्पन्न वस्तु—चर-अचर = प्राणी-अप्राणी, सभी तो जाने-अनजाने इसी ओर बढ़ रहे हैं। क्या आप नहीं देख रहे—फूल विकसित होते ही कुम्हलाने लगता है, चाँद उदय होते ही अस्ताचल की ओर बढ़ने लगता है, वस्त्र स्वच्छ होते ही गन्दा होने लगता है, इसी प्रकार प्राणी जन्म लेते ही मृत्यु की तरफ बढ़ने लगता है। सन्त कबीर के शब्दों में—

जो ऊग्या सो आथिवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिनिया सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ।।

संसार में स्थिरता है कहाँ? नदी प्रतिक्षण प्रवाहित हो रही है। शरीर प्रतिक्षण बदल रहा है। शरीर-शास्त्रियों का मत है कि प्रतिक्षण परिवर्तित यह शरीर सात वर्षों में पूरी तरह बदल जाता है। जिस शरीर को लेकर हम यहाँ आए थे, शायद हम सोचते हों उसी को लेकर हम वापस जाएँगे। यह समझना एक भूल है। शरीर के कितने ही सैल् (घटक) इन क्षणों में बदल चुके होंगे।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण (अयोध्याकाण्ड, सर्ग १०५) में राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् सम्पूर्ण राजपरिवार शोकसन्तप्त है और वन में श्रीराम की सेवा में उपस्थित हो उनसे अयोध्या लौटने की प्रार्थना करता है। ऐसे दुःखद अवसर पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम समस्त परिजनों, विशेष रूप से भरत को समझाते हुए जिन शब्दों में संसार की निःसारता तथा मृत्यु की अनिवार्यता और वास्तविकता का वर्णन करते हैं वह इस प्रसंग में विशेष विचारणीय और बोधप्रद है—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ।।१६।।

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम्।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ।।१७।।

यथागारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति।
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः ।।१८।।

अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् ।।१९।।

अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ।।२०।।

सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सहमृत्युर्निवर्तते ।।२१।।

हे भरत ! सभी संग्रहों का अन्त विनाश है, उन्नतियों का अन्त पतन है, संयोगों का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण है। जैसे पके फल का गिरना निश्चित है, वैसे ही उत्पन्न हुए मनुष्य का मरना भी निश्चित है। जैसे सुदृढ़ भवन भी पुराना होकर एक दिन धराशायी हो जाता है, वैसे ही बुढ़ापे और मृत्यु के वश में होकर मनुष्य भी एक दिन नष्ट हो जाता है। जो रात्रि एक बार व्यतीत हो जाती है वह दुबारा नहीं लौटती; यमुना भी जलपूर्ण समुद्र में जाकर सदा के लिए विलीन हो जाती है। सब प्राणियों के दिन-रात एक-एक कर बीतते जाते हैं और इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में जलबिन्दुओं की भाँति शीघ्र उनकी आयु क्षीण होती जाती है। मृत्यु हमारे साथ-साथ चलती-फिरती है, उठती-बैठती है और दीर्घ मार्ग तक चलकर हमारे साथ ही लौट आती है।

वस्तुतः जरा विचारिए, हमारा यह जीवन क्या है ? जल से भरा एक कुम्भ जो क्षण-क्षण में रीता होता जाता है और हम इसे जान भी नहीं पाते। वेद के शब्दों में--

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
—अथर्व० १९।५३।३

सन्त (बुद्धिमान्) मनुष्य भरे घड़े के समान काल के स्वरूप का सदा अनुभव करते हैं।

किन्तु यह भोला मानव काल की ओर निरन्तर बढ़ता हुआ भी प्रसन्न होता है। कितनी-कितनी खुशियाँ मनाता है एक-एक वर्षगाँठ पर ! किसी उर्दू कवि ने ऐसे ही मनुष्य को चेतावनी देते हुए कितना सुन्दर कहा है—

ज़ेरे-गर्दूं उम्र अपनी दिन-ब-दिन घटती गई।
जिस कदर बढ़ते गये हम ज़िन्दगी घटती गई ।।
ग़ाफिल तुझे घड़ियाल यह देता है मुनादी।
गर्दूं ने घड़ी उम्र की इक और घटा दी ।।

शोकसन्तप्त अर्जुन को गीता (२।२७) में भगवान् कृष्ण ने इसी सत्य पर मोहर लगाते हुए आश्वासन दिया था—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

उत्पन्न वस्तु की मृत्यु निश्चित है। मृत वस्तु का जन्म भी उतना ही निश्चित है। इस अनिवार्य सत्य का अनुभव करते हुए हे अर्जुन ! तू क्यों शोक कर रहा है ? जो वस्तु नष्ट होनी ही थी, जिसका अन्तिम परिणाम था ही मृत्यु, उसके लिए कैसा शोक ! कैसा सन्ताप ! !

महात्मा कबीर के शब्दों में—

और मुये क्या रोइये, जो आपा थिर न रहाइ।
जो उपजै सो बिनसिहै, दुख करि रोय बलाइ॥

महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध काव्य 'रघुवंश' के अमर पात्र सम्राट् अज अपनी पत्नी इन्दुमती के निधन पर अपने व्यथित मानस को स्वयं समझाते हुए कहते हैं—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ॥

देहधारियों के लिए मरना तो स्वाभाविक है और जीवन को ज्ञानी पुरुष विकार मानते हैं। यदि प्राणी क्षण-भर भी जीवित रह सके तो उसे सन्तोष करना चाहिए।

मृत्यु के सम्बन्ध में ज्ञानी बनकर दूसरे को उपदेश देना जितना सरल है उतना ही कठिन है मृत्यु-क्षणों का अनुभव। मृत्यु क्या है, कितनी कष्टप्रद है, यह यदि कोई जानना चाहता है तो पूछे उस अबला से जिसका सुहाग मिट चुका है, पूछे उस माँ के दुःखी हृदय से जिसका लाल उसकी गोदी को सूना कर सदा के लिए चला गया है। वह बहिन बताएगी मृत्युदुःख जिसका भाई सदा-सदा के लिए उससे नाता तोड़ चुका है। वह बेटा कहेगा मृत्युपीड़ा जिसके माता-पिता उसे अनाथ, निराश्रित बनाकर हमेशा के लिए चले गये हैं। इनके दुःख-पारावार का कहीं कोई अन्त नहीं, कहीं कोई ओर-छोर नहीं। कहाँ जाएँ वे? किससे कहें? कौन सहारा देगा? किसको दुःखड़ा सुनाएँ?

श्रावस्ती की जन-सभा में महात्मा बुद्ध संसार की असारता, वस्तुओं की क्षणिकता एवं प्राणियों की पीड़ा का बखान करते हुए कह रहे थे—

सर्वं क्षणिकं क्षणिकं
सर्वं दुःखं दुःखम्।

तभी सभा के एक कोने से एक आर्तनाद सुनाई पड़ा। लोगों की दृष्टि उधर गई। देखा—एक क्षीणकाया, दुःखी ब्राह्मणी एक बच्चे को गोद में उठाए पागल-सी महात्मा बुद्ध की तरफ बढ़ रही है। सभा में आगे आकर अपने प्राण-शून्य लाल को उसने बुद्ध के चरणों में रखकर कहा—"महात्मन्! मुझ विधवा ब्राह्मणी के हृदय से पूछो कि दुःख (मृत्युदुःख) क्या होता है जिसका बड़े-बड़े यत्नों से पालित एकमात्र यह शिशु आज काल-कवलित हो गया है।" महात्मा बुद्ध की आँखें अश्रुपूरित हो गईं। बहुत धीरे-से वे अपने स्थान से उठे और उस बच्चे को अपनी गोदी में उठाकर स्नेहसिक्त नयनों से निहारने लगे। बोले—

"कितना सुन्दर है यह बालक! कितना प्यारा!! उससे भी सुन्दरहृदया

है वह माँ जिसने इसे जन्म दिया है। किन्तु माँ! यदि मैं तुम्हारे इस पुत्र को जीवित कर दूं तो?"

पुत्र के जीवन के शब्द कानों में पड़ने थे कि कृशा गौतमी ब्राह्मणी ने महात्मा बुद्ध के चरण पकड़ लिये और कहा—

"मैं अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकती हूँ महात्मन्! यदि मेरे लाल को जीवित कर आप मुझे लौटा सकें।"

महात्मा बुद्ध ने उसी धीर गम्भीर शान्त वाणी में उत्तर दिया—

"माँ! मत घबरा। मैं असत्य भाषण कभी नहीं करता। जो कुछ मैंने कहा है वह अवश्य पूरा करूँगा, किन्तु तुम्हें एक काम करना होगा।"

ब्राह्मणी ने कहा—

"पूज्यवर! शीघ्र आज्ञा दीजिए। मुझे पलों का विलम्ब भी बहुत अधिक मालूम हो रहा है।"

महात्मा बुद्ध ने कहा—

"बात बहुत बड़ी नहीं है। केवल मुट्ठी-भर पीली सरसों के दाने चाहिएँ जो तुम किसी भी घर से माँगकर ला सकती हो। कौन तुम्हारी इस याचना को अस्वीकार करेगा?"

ब्राह्मणी सरसों के दाने शीघ्र लाने के लिए चलने लगी तो बुद्ध ने कहा—

"देखना माँ! दाने ऐसे घर से लाना जिसमें कभी किसी की मृत्यु न हुई हो।"

बात की गहराई को ठीक-ठीक न समझती हुई ब्राह्मणी ने नगर के एक दरवाजे पर आवाज लगाई—

"मुझ दुखिया विधवा ब्राह्मणी को क्या भीख मिलेगी?"

गृहपति ने बड़ी विनम्रता से अन्दर से बाहर आकर पूछा—

"क्या चाहिए मातृवर?"

"केवल मुट्ठी-भर पीली सरसों के दानों का सवाल है। घर में हों तो उत्तर दो।"

गृहपति ने उत्तर दिया—

"अभी उपस्थित करता हूँ मातुश्री!"

उसके भीतर जाने के लिए समुद्यत होते ही कृशा गौतमी को महात्मा बुद्ध की वह चेतावनी याद आ गई जिसमें उन्होंने ऐसे घर से सरसों के दाने लाने के लिए कहा था जिसमें कभी किसी की मृत्यु न हुई हो! अतः गृहस्वामी को रोककर ब्राह्मणी ने पूछा—

"आर्य! सरसों के दाने लाने से पूर्व यह बताएँ कि आज या आज से वर्षों

पूर्व कभी किसी की मृत्यु तो आपके परिवार में नहीं हुई ?"

गृहपति ने कहा—

"देवी ! यह क्या पूछती हो ? यह सत्य है कि मेरे पिता तथा पितामह अभी जीवित हैं, किन्तु उनके पिता तथा उनके भी पिता अब कहाँ हैं ? कौन-सा ऐसा घर तुम्हें मिलेगा जिसमें मृत्यु का कभी प्रवेश न हुआ हो ?"

ब्राह्मणी की आँखें खुल चुकी थीं। सत्य उसके सामने प्रकट था। जब सबको काल का ग्रास बनना है तो क्या हुआ यदि कोई आज भगवान् को प्यारा हुआ और कोई कुछ वर्ष बाद ! मृत्यु सर्वत्र है, सर्वव्यापक है, शाश्वत है, चिरन्तन और अनिवार्य है। बड़े-बड़े ऋषि, महात्मा, ज्ञानी, सम्राट् भी इससे नहीं बच सके हैं। महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं—

नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित् प्राणिनो भुवि।

पृथिवी पर किसी भी प्राणी को कभी अमरता नहीं मिली।

जगन्नियन्ता के इस विधान को, परमेश प्रभु की इस इच्छा को उन्मुक्त हृदय से हम स्वीकारें तथा संकट के समय धैर्य और शान्ति धारण करें—इसी में हमारा कल्याण है। मृत्यु की अनिवार्यता अनुभव करना ही ज्ञानमार्ग की पहली सीढ़ी है।

(शेषांश पृष्ठ १६ का)

३. चेतावनी प्रकाश—इसमें वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन और पौराणिक मत का खण्डन किया गया है।

४. पौराणिक दम्भ पर वैदिक बम्ब—इसमें पौराणिकों के आक्षेपों का मुँहतोड़ उत्तर है।

शिवपुराण आलोचना, भविष्यपुराण आलोचना आदि और भी अनेक ग्रन्थ पण्डितजी ने लिखे थे।

आज दुर्भाग्य से वे सभी अप्राप्य हैं।

जून सन् १९४१ में पण्डितजी परलोक सिधार गये। उस समय वे बड़लाढा मण्डी, ज़िला हिसार में अपने भांजों के पास थे। उन्हें कारबंकल फोड़ा निकल आया और यही उनकी मृत्यु का कारण बना।

पण्डितजी का पार्थिव शरीर नहीं रहा, परन्तु उनका यशरूपी शरीर अजर और अमर है। अपने विशिष्ट गुणों और साहित्य के रूप में वे सदा अमर रहेंगे।

शास्त्रार्थ महारथः—पं० मनसारामजी 'वैदिक तोप'

—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

स्वनामधन्य पं० मनसारामजी 'वैदिक तोप' आर्यजगत् की उन गिनी-चुनी विभूतियों में से हैं जिन्होंने अपना जीवन और सर्वस्व लगाकर वेद और वैदिक ज्योति के आलोक से लाखों व्यक्तियों के हृदय, मन और मस्तिष्क को आलोकित किया है।

पण्डितजी का जन्म १८६० में हड्डाँवाला नंगल [जाखल के निकट] हरियाणा प्रान्त में हुआ। आपके पिता लाला शंकरदासजी अन्न-धन से सम्पन्न, सुखी सद्गृहस्थ और अच्छे व्यापारी थे। वे कट्टर पौराणिक और मूर्तिपूजक थे। पुत्र भी उन्हीं के रंग में रंग गया।

श्री मनसारामजी की प्राइमरी [चतुर्थ श्रेणी] तक की शिक्षा वामनवाला ग्राम में हुई। तत्पश्चात् टोहाना के मिडल स्कूल में प्रविष्ट हो गये। १६०७ में पण्डितजी आठवीं श्रेणी में प्रविष्ट हुए। इसी वर्ष में पिताजी का देहान्त हो गया। पण्डितजी को स्कूल छोड़कर घर सँभालना पड़ा।

लाला शंकरदासजी के गृह पर एक पटवारी श्री रामप्रसादजी रहा करते थे। ये बड़े सदाचारी, मधुरभाषी और निष्ठावान् आर्यसमाजी थे। जब मनसारामजी घर पर रहने लगे तो वे इन्हें वैदिकधर्म के सिद्धान्तों और तत्त्वज्ञान का परिचय कराया करते थे। मनसारामजी बाल्यकाल से ही अति तार्किक और मेधावी थे। युक्ति और तर्क से समझाने पर सत्य बात को तुरन्त स्वीकार कर लेते थे। महाशय रामप्रसादजी के सत्सङ्ग से आप शीघ्र ही आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो गये।

१६०८ में टोहाना में आर्यों और पौराणिकों के मध्य एक शास्त्रार्थ हुआ। आर्यसमाज का पक्ष प्रस्तुत करनेवाले पं० राजारामजी शास्त्री और पौराणिकों की ओर से पं० लक्ष्मीनारायण जी थे। श्री उदमीरामजी पटवारी शास्त्रार्थ के प्रधान नियुक्त हुए।

पं० राजारामजी ने पूछा—'शास्त्रार्थ किस विषय पर होगा ?'

'आर्यसमाज के नियमों पर'—पं० लक्ष्मीनारायणजी ने उत्तर दिया।

पं० राजारामजी बोले—'आर्यसमाज के नियम तो आप भी मानते हैं। शास्त्रार्थ तो ऐसे विषय पर हो सकता है जिसपर आपका हमसे मतभेद हो।' पौराणिक पण्डितजी छूटते ही बोले—'हम आपका एक भी नियम नहीं मानते।' पण्डितजी ने शास्त्रार्थ के प्रधान उदमीरामजी से पूछा—'क्योंजी! क्या आप हमारा कोई भी नियम नहीं मानते?' पटवारीजी भी तैश में आकर बोले—'हम आर्यसमाज का एक भी सिद्धान्त नहीं मानते।' पं० राजारामजी ने कहा—'लिखकर दो।' उदमीरामजी ने लिख दिया—'हम आर्यसमाज का एक भी सिद्धान्त नहीं मानते।' अब पण्डितजी ने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा—'आर्यसमाज का सिद्धान्त है—वेद को पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। पौराणिक मत यह हुआ कि न वेद को पढ़ना, न पढ़ाना, न सुनना और न सुनाना। आर्यसमाज का नियम है कि—'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' पौराणिक मत का नियम बना—असत्य को स्वीकार करने और सत्य के परित्याग में सदैव तत्पर रहना चाहिए।'

श्रोताओं के मस्तिष्क पर पं० राजाराम की युक्तियों की धाक बैठ गई। श्री उदमीरामजी आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये। इस शास्त्रार्थ का मनसारामजी पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। वे आर्यसमाज के दीवाने हो गये और जी-जान से वैदिक धर्म के सेवक बन गये।

अब श्री मनसारामजी के मन में संस्कृत अध्ययन की धुन सवार हुई। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र की सनातनधर्म संस्कृत पाठशाला में प्रविष्ट हुए। यहाँ से कंखल (हरिद्वार) पहुँचे। तीन-चार वर्ष यहाँ भी पढ़ते रहे परन्तु तृप्ति नहीं हुई। संस्कृत अध्ययन की लगन में आपने गुरुकुल कांगड़ी में चपड़ासी की नौकरी कर ली। उनका विचार था कि गुरुकुल में रहकर जहाँ एक ओर संस्कृत का अध्ययन कर लूँगा तो दूसरी ओर आर्यसमाज की सेवा भी कर सकूँगा, परन्तु यहाँ भी इनकी मनःकामना पूर्ण नहीं हुई। यहाँ से निराश होकर यह ज्ञानपिपासु विद्या-नगरी काशी में पहुँच गया।

काशी में संस्कृत अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिए अनेक क्षेत्र खुले हुए थे, परन्तु इन क्षेत्रों में जन्म के ब्राह्मणों को ही भोजन मिलता था। संस्कृतज्ञान के इस पिपासु ने कितने दिन भूखे रहकर काटे, इसे कौन जानता है! श्री मनसा-रामजी जंगल से बेर तोड़ लाते थे। उन्हें ही खाकर जीवन-निर्वाह कर लेते थे। एक दिन वे बेर तोड़ रहे थे। एक सेठ उधर आ निकले। उन्हें संस्कृत का विद्यार्थी भाँपकर सेठ ने पूछा—'क्या कर रहे हो?' मनसारामजी ने उत्तर दिया—'संस्कृत पढ़ने के लिए यहाँ आया हूँ। भूखा रहता हूँ। पढ़ने की इच्छा है। इन

बेरों को भिगोकर रख दूँगा। जब भूख लगेगी तो खा लूँगा।'

सेठ ने पूछा---'क्षेत्रों में भोजन क्यों नहीं करते?' मनसाराम ने उत्तर दिया—'वहाँ तो केवल ब्राह्मणों को भोजन मिलता है, मैं जन्म से अग्रवाल हूँ!'

सेठ की ग़ैरत [स्वाभिमान] जागी। वह स्वयं भी ऐसे कई क्षेत्रों को दान देता था। उसने मनसाराम से कहा—'तुम अमुक क्षेत्र में जाकर भोजन किया करो, वहाँ कोई तुम्हारी जाति नहीं पूछेगा।'

भोजन-व्यवस्था से निश्चिन्त होने पर मनसारामजी विद्याध्ययन में जुट गये। विद्या समाप्त करके मनसारामजी काशी के पण्डितों की मण्डली में गये और उनके समक्ष एक प्रश्न रखा कि—'मैं जन्म से अग्रवाल हूँ, मुझे अब पण्डित कहलाने का अधिकार प्राप्त है या नहीं? इसपर बड़ा वाद-विवाद हुआ। मनसारामजी की विजय हुई। उन्हें पण्डित की पदवी प्रदान की गई।

विद्या-प्राप्ति के पश्चात् आप कार्यक्षेत्र में उतरे। आपके गहन स्वाध्याय, तीव्रबुद्धि, अकाट्य तर्कों के कारण आपकी कीर्ति-चन्द्रिका छिटकने लगी। आर्यसमाज के क्षितिज पर एक नया नक्षत्र अपनी प्रभा विकीर्ण करने लगा। पण्डितजी सिरसा में धर्मप्रचार कर रहे थे। उन्हीं दिनों स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी सिरसा पधारे। उनकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर वे उन्हें आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की सेवा में ले आए। पण्डितजी ने सारे पंजाब को वैदिक नाद से गुँजा दिया। शास्त्रार्थों में उनकी विशेष रुचि थी। शास्त्रार्थ-संग्राम के वे विजयी योद्धा थे। रोपड़ में शास्त्रार्थ हो रहा था। कई दिन हो गये शास्त्रार्थ समाप्त होने में नहीं आ रहा था। अन्त में पं० मनसारामजी को बुलाया गया। आपने अपनी योग्यता, तर्कशीलता और युक्तियों से पाखण्ड का खण्डन कर पौराणिकों के छक्के छुड़ा दिए। एक आर्यनेता ने आपको शत-प्रतिशत अङ्क दिए।

एक बार भिवानी में पौराणिकों के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। पौराणिकों ने पण्डितजी को उनका पूरा समय नहीं दिया। शास्त्रार्थ के नियमानुसार पण्डितजी ने पूरे २५ मिनट माँगे। उत्तर में पण्डितजी पर लाठियों से आक्रमण हुआ। शास्त्रार्थ के पश्चात् पण्डितजी ने एक ट्रैक्ट लिखा—'मेरे पच्चीस मिनट।' इस शास्त्रार्थ का टेकचन्दजी पंसारी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने प्रतिमाएँ फेंक दीं और आस्तिक बन गया।

आर्यों से भिन्न लोगों पर पण्डितजी की कैसी धाक थी, इस विषय में निम्न घटना अति महत्त्वपूर्ण है। एक बार रामाँमण्डी में एक जैन विद्वान् आए। उनके प्रवचन होने लगे। एक दिन सभा-समाप्ति पर एक किसान-वेशधारी ग्रामीण ने जैनियों के अहिंसा-सम्बन्धी सिद्धान्त पर कुछ प्रश्न कर दिए। प्रश्न सुनते ही जैन विद्वान् ने कहा—'आप पं० मनसाराम तो नहीं हैं? ऐसे प्रश्न वे ही कर सकते हैं। साधारण व्यक्ति इतनी बारीकी से सोच ही नहीं सकता।' सचमुच वह ग्रामीण

व्यक्ति पं० मनसारामजी ही थे।

पण्डितजी ने हिसार ज़िला में स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थों का आयोजन करके पौराणिकों में खलबली मचा दी। पण्डितजी का नाम सुनते ही पौराणिकों के होश उड़ जाते और शास्त्रार्थ-स्थल से खिसक जाने में ही अपनी वीरता समझते थे। अपनी नाक बचाने के लिए पौराणिकों ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि आर्यों के पास पं० मनसाराम के अतिरिक्त और कोई विद्वान् है ही नहीं।

उधर २-३ मई १९३१ को आर्यसमाज जाखल के वार्षिकोत्सव पर शास्त्रार्थ रक्खा गया। इसके अध्यक्ष थे स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी और शास्त्रार्थकर्ता थे पं० लोकनाथजी 'तर्कवाचस्पति'। पण्डितजी ने 'शास्त्रार्थ जाखल' नाम से उर्दू में एक पुस्तक लिखी। पौराणिक बौखला उठे। भारी धन व्यय करके उन्होंने 'सनातनधर्म विजय' नामक पुस्तक लिखवाई। पुस्तक क्या थी गाली-गलौज का पुलन्दा था। पण्डितजी ने बड़ी सभ्य भाषा में युक्ति और प्रमाणों से सुभूषित लगभग पाँच गुणा बड़ा १२२४ पृष्ठों का ग्रन्थ लिखा जिसका नाम था—'पौराणिक पोप पर वैदिक तोप'। यह पुस्तक केवल तीन रुपये में गुप्ता एण्ड कम्पनी, टोहाना ने प्रचारार्थ छापी थी। इस ग्रन्थ का प्रकाशन होते ही पण्डित मनसारामजी के नाम की धूम मच गई और उनका नाम ही 'वैदिक तोप' प्रसिद्ध हो गया।

पण्डितजी के तर्क कितने तीखे होते थे इसका आभास भटिण्डा-शास्त्रार्थ से होता है। पण्डितजी ने चार प्रश्न रक्खे—

१. सनातनधर्म में पशुवध आदिकाल से ही है या बाद की मिलावट है?

२. नाविक की पुत्री सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न व्यासजी का वर्ण पौराणिक मत के अनुसार क्या है?

३. पौराणिक मत के अनुसार सिख, जाट, स्वर्णकार और कायस्थ किस वर्ण में हैं?

४. पौराणिक मत के अनुसार दलित भाई ईसाई-मुसलमानों से अच्छे हैं वा नहीं? अच्छे हैं तो उनके साथ अच्छा व्यवहार क्यों नहीं किया जाता?

पं० मनसारामजी के प्रश्नों को सुनकर पौराणिक अधिकारी ने कहा—'मनसाराम को कान से पकड़कर बाहर निकालो!'

निर्भीक मनसारामजी तनिक भी नहीं घबराए और वहीं डटे रहे।

संगरूर-शास्त्रार्थ में मृतकश्राद्ध पर बोलते हुए पण्डितजी ने कहा—'मैं भी तो इस जन्म में कहीं से आया हूँ। यदि मृतकों को श्राद्ध का माल पहुँचता है तो मुझे क्यों नहीं मिलता? यदि श्राद्धों का माल मृतक पितरों तक पहुँचना सम्भव है तो मेरा पार्सल कहाँ जाता है?'

चोटी-सम्बन्धी विवाद छेड़कर पौराणिक आर्यसमाज पर आक्षेप करते रहे हैं। पं० मनसारामजी ने कहा—'यदि चोटी रखने से ही कोई हिन्दू बनता है तो बिना शिखा के सिख व स्त्रियाँ हिन्दू कैसे हो सकती हैं ?' पौराणिकों ने कहा कि सिर पर जटाजूट रखने के कारण वे बिना शिखा के ही हिन्दू समझे जाएँगे। इस पर पण्डितजी ने कहा—'फिर तो सनातनधर्म की लुटिया ही समुद्र में डूबेगी। इस प्रकार तो ईसाई और मुसलमानों की सारी स्त्रियाँ हिन्दुओं में सम्मिलित हो जाएँगी।'

पण्डितजी विद्या के सागर थे। एक आर्यसमाज की वेदी पर वे बोलने के लिए बैठे तो श्रोताओं से पूछा—'बोलो किस विषय पर बोलूं ?' श्रोता बोले—'जिस पर आप चाहें !' पण्डितजी ने कहा—'जिस भी वैदिक सिद्धान्त पर आप चाहेंगे मैं उसी पर बोलूँगा।'

पण्डितजी राजनैतिक चटपटी बातों पर अखबारी व्याख्यान नहीं देते थे। उनके व्याख्यान सैद्धान्तिक होते थे। व्याख्यानों में प्रमाणों की बहुलता होती थी और रोचकता अन्त तक बनी रहती थी।

पण्डित मनसारामजी स्वतन्त्रता-आन्दोलन में कई बार जेल में भी गये। १९२२ ई० में गांधीजी ने पहला सत्याग्रह चलाया तो पं० मनसारामजी भी जेल गये। उन्हें हिसार जेल में रक्खा गया। अभियोग के दिनों में स्वतन्त्रता के युद्ध में आपने एक ऐसी साहसिक बात कही जो किसी भी क्रान्तिकारी के मुख से न निकली होगी। पण्डितजी को हिसार में मजिस्ट्रेट के सामने वक्तव्य के लिए लाया गया। आपने अपने मुख पर कपड़ा डाल लिया। मजिस्ट्रेट के कारण पूछने पर आपने कहा—**"जिस व्यक्ति ने चाँदी के चन्द ठीकरों के लिए अपने-आपको बेच दिया हो मैं उसकी शक्ल देखना नहीं चाहता।"** यह न्यायालय का अपमान था। सत्याग्रह के साथ एक और अभियोग Contempt of Court भी चला। यह अभियोग बहुत लम्बा चला।

पण्डितजी ने साहित्य भी बहुत लिखा है। उनका सारा साहित्य खोजपूर्ण है। पौराणिकों के खण्डन में इस साहित्य से उत्तम साहित्य नहीं लिखा गया। उनके कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ ये हैं—

१. पौराणिक पोलप्रकाश—इसी जून में भगवती प्रकाशन द्वारा छप गया है।

२. पौराणिक पोप पर वैदिक तोप। उर्दू में लिखा हुआ १२२४ पृष्ठ का बेजोड़ ग्रन्थ है।

(शेषांश पृष्ठ ११ पर)

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

धरती पर स्वर्ग—पंचायतन पूजा

धरती पर स्वर्ग बनाना है जो अपना घर संसार हमें।
तो करना है माँ बाप गुरु अतिथि पति पत्नी से प्यार हमें ॥

जो अपना ज्ञान प्रेम सुख देकर हमको सुखी बनाते हैं,
माँ बाप गुरु अतिथि पति पत्नी ही पाँच देव कहलाते हैं,
देकर सेवा-सन्मान उन्हें हम निज कर्त्तव्य निभाते हैं,
फिर हम भी तो अपने जीवन में उनसे यह सब पाते हैं,
यह पंचायतन पूजा की विधि करनी होगी स्वीकार हमें।
धरती पर स्वर्ग बनाना है० ॥

जिन माता और पिता ने हमको सदा हृदय का प्यार दिया,
और हमारे ऊपर अपना तन मन धन सब वार दिया,
कर्त्तव्य हमारा भी है हम सब तरह उनको सुख पहुँचावें,
हम वृद्धावस्था में उनके सेवक व सहारे बन जावें,
यों श्रद्धापूर्वक उनका ऋण देना चाहिए उतार हमें।
धरती पर स्वर्ग बनाना है० ॥

जिन गुरुओं ने बाल्यावस्था में देकर विद्यादान हमें,
जिन उपदेशक विद्वान अतिथियों ने दे सच्चा ज्ञान हमें,
अज्ञान दूर कर, बना दिया है मनुज और विद्वान हमें,
जिससे अच्छे की और बुरे की हुई सभी पहचान हमें,
मानना चाहिए जीवन में उन गुरुओं का आभार हमें।
धरती पर स्वर्ग बनाना है० ॥

जो नारी छोड़ सभी स्वजनों को पत्नी बन पति घर आती,
अपना सर्वस्व समर्पण कर सुख दुःख की साथी बन जाती,
पति ने पत्नी का रक्षण और भरण पोषण का भार लिया,
अर्द्धांगिनी बना करके अपनी जीवन का सच्चा प्यार दिया,
पति देव है पत्नी देवी है हो ऐसा उच्च विचार हमें।
धरती पर स्वर्ग बनना है० ॥

ले०—कुंवर जोरावरसिंह (आर्योपदेशक)
बरसाना—मथुरा

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

।। ओ३म् ।।

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक २]   वार्षिक मूल्य : दस रुपये   [सितम्बर १९८७

सम्पा० : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

१. अम्बिका—माता—
मूर्त्तिमती पूजनीया देवता

डॉ० ओम्प्रकाश वेदालंकार, एम० ए०

अम्बिका : विवेचन

'अम्बिका' वैदिक शब्द है। इससे मिलते-जुलते अन्य वैदिक शब्द 'अम्बा' और 'अम्बालिका' हैं। इन सभी शब्दों का प्रसिद्ध धात्वर्थ 'माँ' है—

अम्बा माता

अथर्ववेद (१.४.१) में जलों को मातृरूपा होने से अम्बा कहा है।

—अमरकोश ७.१४

यजुर्वेद में इन शब्दों का उल्लेख निम्न मन्त्रों में हुआ है—

१. देवता रुद्र

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा।
एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ।।—यजुर्वेद ३-५७

२. देवता गणपति

अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।—यजुर्वेद २३-१८

ऋषि दयानन्द ने अपने यजुर्भाष्य में उपर्युक्त प्रथम मन्त्र में अम्बिका का अर्थ वाणी वा वेदवाणी किया है तथा दूसरे मन्त्र में अम्बा—माता, अम्बिका—दादी तथा अम्बालिका—परदादी अर्थ कर इन्हें माँ के अर्थ में घटित किया है। प्रसिद्ध संस्कृत कोश—अमरकोश में अम्बिका पार्वती और दुर्गा माता है—

शिवा भवानी रुद्राणी शर्वाणी सर्वमंगला।
अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाऽम्बिका ।।

—अमरकोश १-३९

पौराणिक कल्पना में अम्बिका दुर्गा है। पंचदेव-पूजा में वे उसकी मूर्ति बनाकर पूजते हैं। मूर्तियाँ क्या हैं? ये प्रतीकात्मक सत्य हैं अथवा किसी सत्य को प्रतिपादित करने के लिए व्यंग्यचित्र हैं। उनके पीछे अन्तर्निहित सत्य का विस्मरण हो गया और सम्मुख केवल जड़ पाषाणमूर्ति रह गई। अम्बिका, विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य—इन पंच देवों के प्रतीकार्थ समझकर उनमें निहित सत्य के स्वरूप—चेतन तत्त्व—को हृदयंगम किया जा सके तो वह ही उस देवता की सच्ची पूजा कही जाएगी।

अम्बिका शब्द के प्रतीकार्थ अनेक हैं। ऋषि दयानन्द ने उसके दो अर्थ किये हैं। प्रथम—'अम् शब्दे' धातु से 'अम्बति शब्दयति या सा वेदवाणी अम्बिका' इस निर्वचन द्वारा वेदवाणी को अम्बिका कहा है। द्वितीय—यजुर्वेद २३.१८ में उन्होंने अम्बा का अर्थ माँ तथा अम्बिका का अर्थ दादी माँ किया है। पौराणिक कल्पना के अनुसार अष्टभुजधारी, सिंहवाहिनी, असुरनिष्कन्दनी, शक्तिरूपा, देवी दुर्गा ही अम्बिका है जो अपने भक्तों की सर्वदा सर्वकाला रक्षिका है, मातृरूपा है। उसकी मूर्ति भी इसी रूप में निर्मित की गई है। ऋषि दयानन्द का मन्तव्य सच्ची वेदानुकूल चेतन मूर्तिपूजा का प्रतिपादन करना है। अतः इस अम्बिका के प्रतीकार्थ को समझकर हमें सच्ची चेतन अम्बिका-पूजा की ओर अग्रसर होना है।

अम्बिका शक्तिरूपा है। कुछ विचारकों की दृष्टि में यह राष्ट्रशक्ति की प्रतीक है। राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था में उसके चार अंग हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन सबकी व्यवस्था कर्मानुसार है, जन्मना नहीं। अध्ययन-अध्यापन कार्यवाले ब्राह्मण, रक्षा का उत्तरदायित्व सँभालनेवाले क्षत्रिय, खेती-व्यापार द्वारा देश की आर्थिक समृद्धि बढ़ानेवाले वैश्य तथा सेवाकर्मी शूद्र कहे जाते हैं। यह सामान्य व्यवस्था है। किन्तु राष्ट्र पर जब विदेशी शत्रु का संकट उत्पन्न हो जाए तो उस समय ये चारों वर्ण एककर्मा तथा सम्मिलित रूप से देश को संकट से बचानेवाले हो जाते हैं। इस रूप में इस 'दुर्गा' (राष्ट्रशक्ति) की क्षत्रिय-रूप में रक्षक दो भुजाएँ न होकर चारों वर्णों की सम्मिलित अष्टभुजाएँ हो जाती हैं। ये आठ भुजाएँ साम, दाम, दण्ड, भेद चारों उपायों का आश्रय लेने से अलग-अलग शस्त्र-अस्त्र-युक्त प्रतिपादित की गई हैं। यह 'सिंहवाहिनी' है। 'वाहिनी' शब्द संस्कृत में सेना के लिए भी प्रयुक्त होता है अर्थात् दुर्गा या अम्बिकारूप इस राष्ट्रशक्ति की सेना 'सिंहों'—सिंह-सदृश वीरों की होती है, कायर और दुर्बल जनों की नहीं। दुर्गों (किले) में निवास करने से यह 'दुर्गा' है। युद्ध में शत्रुओं को ललकारने से यह 'अम्बिका' (अम् शब्दे) है। प्रचण्डरूपा होने से वह 'चण्डिका', कल्याणकारिणी होने से 'शिवा' या 'शर्वाणी', पर्वत जैसी बाधाओं से पार करानेवाली होने से 'पार्वती', रुद्ररूपा होने से 'रुद्राणी' और सर्वकल्याणी होने से 'सर्वमंगला' है।

प्रस्तुत पंचदेवोपासना में 'अम्बिका' साक्षात् जननी और मातृस्वरूपा है। देवी के जितने भी रूप कल्पित हैं उन सबमें उसके मातृ-रूप को ही प्रमुखता प्राप्त है। दुर्गा, पार्वती, भवानी, चण्डिका, अम्बिका, भैरवी, रुद्राणी, सर्वमंगला, सन्तोषी, कालिका सभी मातृस्वरूपा हैं। इस विशाल कल्पनाजाल में हमें अपने ही घर और परिवार में विद्यमान सच्ची अम्बिका, महर्षि दयानन्द के शब्दों में "प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीया देवता" का स्मरण नहीं रहा। 'सन्तानों को तन-मन-धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना'—यही सच्ची वेदोक्त मूर्तिपूजा—अम्बिका-पूजा है। इस अम्बिका (माँ) की यदि मूर्ति कल्पित और निर्मित की जाए तो वह उस अम्बिका की मूर्तितुल्य ही बनेगी। यजुर्वेद (२३-१८) के मन्त्र तथा ऋषि दयानन्द के भाष्य के अनुसार इस अम्बा के तीन रूप हैं—

अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका।

अम्बा उसका प्रथम रूप है जब वह विवाहित होकर पति-गृह पहुँचती है—इस समय वह गृहस्वामिनी है, किन्तु उसकी सार्थकता तभी पूर्ण होती है जब वह माँ बन जाती है; उसका यह संभावित मातृरूप अम्बा है। इससे पूर्व उसका कन्या-रूप था; वह रूप भी आदर के योग्य था किन्तु उस समय उसकी शक्ति सीमित होने से वह द्विहस्ता थी, पर अब दुगुनी कार्यशक्ति होने से मानो उसके हाथ दो के स्थान पर चार हो गये हैं। अम्बिका उसका परिपूर्ण मातृरूप है। ऋषि ने इसका अर्थ 'दादी माँ' किया है। अब वह केवल अपने सन्तानों की ही माँ नहीं है अपितु सास के रूप में पुत्रवधू तथा दामाद सभी की माँ है। उसके मातृरूप का परिपूर्ण विस्तार होने से वह 'अष्टभुजा'—पूर्वरूप अम्बा से भी दुगुनी शक्ति और स्वरूपवाली हो जाती है—यही अम्बिका है। इस रूप में उसकी कार्यशक्ति ही नहीं, त्याग भी महिमामय हो जाता है। २५ वर्ष तक पाले-पोसे अपने पुत्र को आनेवाली बहू को सौंपकर वह निश्चिन्त हो जाती है। यह उसका 'सर्वमंगला', 'शिवा' या 'शर्वाणी' रूप है। पुत्र और बहू सभी द्वारा इसकी तन-मन-धन से सेवा करना अम्बिका-पूजा है जो सबसे पुनीत कर्त्तव्य है। इस रूप में वह अपने को असहाया, दुर्बला, उपेक्षिता, नगण्या, अवहेलनायोग्या या तिरस्कृता अनुभव नहीं करती अपितु शक्तिरूपा, असुर-(अमंगल)-विनाशिनी, सर्वमंगला हो जाती है। उसका गौरव, साहस, धैर्य इतना उन्नत हो जाता है कि शहीद भगतसिंह, छत्रपति वीर शिवाजी सदृश पुत्रों को जन्म देकर वह 'सिंहवाहिनी' हो जाती है। ऐसी माताएँ धन्य हैं! उन्हीं के लिए आचार्य मनु ने लिखा है—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

—मनु० २-१४५

दस उपाध्यायों (अध्यापकों) की अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता और हजार पिताओं की अपेक्षा माता गौरव में अधिक है।

ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास में माता का अर्थ करते हुए लिखते हैं—

या मानयति सा माता

जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान्य करे वह माता। अम्बालिका उनकी दृष्टि में अम्बिका से भी अगली पीढ़ी की परदादी माँ है। इन सभी माताओं की पूजा अर्थात् सत्कार होना चाहिए।

मातृदेवो भव !—तैत्तिरीयोपनिषद् १-११-१

माता को देवता मानकर उसकी पूजा करो !

अम्बिका (माँ) की महानता

'माँ' शब्द ही अपने में सर्वाधिक महान् है। संभवतः संसार के शब्दकोश में इससे अधिक प्यारा, गौरवशाली, महिमामय अन्य कोई शब्द नहीं है। यह शब्द इतना महान् है कि जिसके साथ इसे जोड़ दें वह व्यक्ति या वस्तु भी महान् हो जाती है। अथवा, जिसकी सर्वोच्च महानता प्रदर्शित करनी हो उसके लिए 'माँ' से बढ़कर हमारे पास अन्य कोई शब्द नहीं है।

बेद में—

ईश्वर—त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।

वेदवाणी—स्तुता मया वरदा वेदमाता।

भूमि—माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

तथा जननी और गौ सभी को 'माँ' कहा गया है। ईश्वर जगत् में अप्रत्यक्ष, अरूप और अगोचर है—इन आँखों से उसके रूप का प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। पर यदि देखना ही चाहें तो माँ के रूप में उसकी झाँकी प्राप्त की जा सकती है—

उसको नहीं देखा हमने कभी, पर इसकी जरूरत क्या होगी ?
ओ माँ ! तेरी सूरत से भी अलग, भगवान् की सूरत क्या होगी ?
इन्सान तो क्या देवता भी, आँचल में पले तेरे हैं।
स्वर्ग इसी दुनिया में, कदमों के तले तेरे हैं।
ममता ही लुटाएँ जिसके नयन, ऐसी कोई मूरत क्या होगी ?
हमने तो जाना तुझसे बड़ी, संसार की दौलत क्या होगी ?

ऐसी ही भावना वेद के निम्न मन्त्र में प्रकट हुई है—

वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे॥

—ऋ० ८-१-६, सामवेद २९२

भक्त कहता है—हे प्रभो ! मैं आपको अपने पिता से श्रेष्ठ मानता हूँ। जमीन-जायदाद का हिस्सा देते समय जो इधर-उधर देखता है उस भाई से भी मैं आपको उत्तम मानता हूँ। किन्तु प्रभो ! मैं आपको माता से बड़ा स्थान देने को उद्यत नहीं हूँ, उसके बराबर ही आपको मानता हूँ।

हिन्दू विश्वास के अनुसार गंगा, गायत्री, गीता, गौ सभी की महिमा माँ-तुल्य होने से अनुपम है। यहाँ तक कि एक अति सामान्य नारी—भिखारिन—भी माँ सम्बोधन से कितनी महिमामयी बन जाती है इसका उदाहरण हिन्दी के महाकवि महाप्राण 'निराला' के जीवन में प्राप्त होता है। 'निराला' इलाहाबाद में भ्रमण के लिए सड़क पर जा रहे थे कि रास्ते में एक दीन-दुखिया भिखारिन मिली। भिखारिन ने बड़े आर्त्त स्वर में 'निराला'जी की ओर देखकर कहा—

"अपनी इस गरीब दुखिया माँ को खाने के लिए कुछ देता जा बेटा !"

'निराला' के आगे बढ़ते चरण रुक गये। उन्होंने प्रश्न पूछा—

"माँ ! यदि मैं तुम्हें एक रुपया दे दूँ तो तुम कितने दिन भीख नहीं माँगोगी ?"

"बेटा ! आज का काम चल जाएगा। किन्तु इस पापी पेट के लिए कल तो माँगना ही पड़ेगा।"

"और यदि दस रुपये दे दूँ तो ?"

"दस दिन भीख बिना माँगे चल जाएगा बेटा !"

"और यदि सौ रुपये दे दूँ तो ?"

"बेटा ! भिखारिन से क्यों हँसी करता है ? जो कुछ देना हो देता जा।"

'निराला' पुत्र बनकर अपनी इस भिखारिन माँ की उपेक्षा न कर सके। केवल सौ रुपये का एक नोट उनके घर और जेब में था। उसे उस 'माँ' को देकर घर लौट आये क्योंकि माँ को देने के लिए इससे अधिक उनके पास न था।

माँ की ममता संसार में सबसे अनोखी है—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

पुत्र कुपुत्र हो सकता है किन्तु माँ कभी बुरी नहीं होती।

केवल मानव ही नहीं, संसार के अन्य जीव-जन्तुओं में भी सन्तान-स्नेह के अद्‌भुत उदाहरण प्राप्त होते हैं। वेद में 'वत्सं जातमिवाघ्न्या' कहकर गाय और सद्यःजात बछड़े के प्रेम को आदर्श कहा है। दृष्टान्त है कि एक बार वन में एक शिकारी ने एक मृगी को पकड़ लिया। मृगी का नन्हा शावक घर में उसकी राह देख रहा था। शिकारी के हाथ में पड़कर माँ मृगी को अपने बच्चे का ध्यान हो आया। वह उस व्याध से संस्कृत कवि की भाषा में कहने लगी—

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमङ्गात्
मां मुञ्च वागुरिक याहि कुरु प्रसादम् ।
अद्यापि शासकवलग्रसनानभिज्ञः
सन्मार्ग - वीक्षणपरस्तनयोर्मदीयः ।।

हे व्याध ! मांस की इच्छा से तूने मुझे पकड़ा है, अतः इन स्तनों को छोड़कर भले ही तू मेरे शरीर का सम्पूर्ण मांस ले ले, क्योंकि मेरे शावक पुत्र ने अभी घास के तिनके खाना नहीं सीखा है, अतः वह स्तनपान-निमित्त मेरी प्रतीक्षा कर रहा है ।

बन्दरिया का अपने बच्चे के प्रति स्नेह प्रसिद्ध है । लोकसिद्ध है कि बन्दरिया मरे हुए बच्चे को भी छाती से चिपकाये घूमती रहती है । उसी सम्बन्ध में श्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में एक संस्मरण लिखा है । जब वे नैनी जेल में बन्द थे तो एक दिन वहाँ उन्होंने वात्सल्य का अद्‌भुत उदाहरण देखा ।

कुछ बन्दर-बन्दरियाँ जेल की ऊँची दीवारों पर अपने बच्चों के साथ खेल रही थीं । अचानक एक छोटा-सा बन्दर का बच्चा ऊँची दीवार से नीचे जा गिरा । जेल के प्रहरी उस बच्चे को पकड़ने दौड़े, उससे पूर्व ही ऊँची दीवार से उस बच्चे की माँ ने नीचे छलाँग लगाई और बिजली जैसी फुर्ती से उस बच्चे को लेकर पुनः दीवार पर चढ़ गई । नेहरू जी कहते हैं कि जानवरों में भी इस अद्‌भुत वात्सल्य को देखकर मैं दंग रह गया ।

महाभारत के यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद में यक्ष युधिष्ठिर से पूछते हैं—

का स्विद् गुरुतरा भूमेः ?

भूमि से भारी क्या है ?

युधिष्ठिर उत्तर देते हैं—

माता गुरुतरा भूमेः ।

माँ पृथिवी से भी अधिक गुरु (भारी) है ।

मनु के शब्दों में—

माता पृथिव्या मूर्तिः । (मनुः २-२२६)—माता सहनशीलता के कारण पृथिवी की मूर्ति है ।

संस्कृत कवि के शब्दों में—

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।।

माँ जिसके घर में नहीं है और पत्नी कटुभाषिणी है, उसे तो घर छोड़कर जंगल में चले जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए जैसा वन है वैसा ही घर है ।

माँ वह शक्ति है जो अपने पुत्र के लिए क्या-कुछ नहीं कर सकती ! 'माता निर्माता भवति'—सन्तानों को जन्म देना ही नहीं, उनका सच्चे अर्थों में निर्माण

करना उसके ही हाथ में है। माता मदालसा अपनी लोरियों द्वारा प्रथम तीन पुत्रों को संन्यासी तथा पति की इच्छा पर चौथे पुत्र को प्रतापी राजा बना सकती है। छत्रपति शिवाजी की निर्मात्री माता जीजाबाई थी। महाबली हनूमान् की वीरता के पीछे अंजना का हाथ था। इसी प्रकार वीर अभिमन्यु, सरदार भगत-सिंह की महानता का कारण उनकी माँ में ढूंढना पड़ेगा। इतिहास में कितने ही ऐसे उदाहरण हैं जिनमें उन महापुरुषों की माताओं ने अपने पुत्रों के कल्याण के लिए सर्वस्व त्याग करके दि   ा कि वास्तव में माँ का हृदय कितना विशाल होता है !

घटना महाभारत-युद्ध की समाप्ति के बाद की है। दुर्योधन के सम्मुख की गई प्रतिज्ञा का पालन करते हुए द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने एक रात में चोरी-छिपे जाकर द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को जीवित जला दिया। सवेरे पाण्डवों को जब इस दुष्काण्ड का पता चला, तो उनके क्रोध का पारावार न रहा। युधिष्ठिर द्रौपदी को धैर्य देने के लिये डेरे में गये और चारों पाण्डव बन्धु अश्वत्थामा को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े।

दोपहर होते-होते र्जुन अश्वत्थामा को बन्दी बनाकर द्रौपदी के सामने ले आया। इसी बीच शेष पाण्डव भी आ गये। सबने एकस्वर से हुंकार भरी—'इस पापी का सिर धड़ से अलग कर दो !' सहदेव ने म्यान से तलवार बाहर खींच ली। किन्तु द्रौपदी पाषाणवत् अश्वत्थामा को अपलक देख रही थी। श्रीकृष्ण स्तब्ध, पाँचों पाण्डव आश्चर्यजड़ित कभी अश्वत्थामा को तो कभी द्रौपदी को किंकर्त्तव्यविमूढ़ देखते और अपने में डूब जाते।

कुछ क्षण बाद द्रौपदी की पाषाणमुद्रा मानो पिघली। उसके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। गीले गले से सिसकते-सिसकते उसने कहा—"आर्यपुत्र ! अश्वत्थामा को छोड़ दो। वह आपके आचार्य-गुरु का पुत्र है। इसे मारने पर क्या इसकी माँ का हृदय भी ऐसा ही विदीर्ण नहीं हो जाएगा जैसा कि आज मेरा है ? मेरे प्राणप्यारे बेटों की इसने हत्या की है। इसे मारने से क्या मेरे बेटे वापस मुझे मिल जाएँगे ? नहीं, मैं माँ होकर किसी दूसरी माँ की गोद सूनी करने का पाप नहीं करूँगी।"

द्रौपदी फूट-फूटकर बिलखने लगी। श्रीकृष्ण ने अपने पीताम्बर से उसके आँसू पोंछे और पाण्डवों से बोले—"बन्धुओ ! द्रौपदी आज अपने अपमान एवं शोक का बदला लेनेवाली क्षत्राणी नहीं है। आज उसकी हिंसा-प्रतिहिंसा मातृत्व की गंगा के उद्गम से धुलकर साफ हो गई है। आज व मातृत्व के सनातन वात्सल्य की पावन विभूति है। आओ ! हम सब प्रणाम करें द्रौपदी को। देखते नहीं हो द्रौपदी की देह में आज माँ ने अपना सम्पूर्ण स्नेह-वैभव बिखेर दिया है। माँ से बड़ी क्षमा भला और कहाँ मिलेगी ? माँ जब अपने को पहचान जाती है

ा नारी अपनी सर्वोच्च कृतार्थता में फलित हो उठती है ।"

देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे। उनकी अद्भुत कर्त्तव्यनिष्ठा और देशभक्ति प्रसिद्ध है जिसकी दीक्षा उन्हें अपनी मातृ-तुल्या ज्येष्ठा भगिनी भगवती देवी से प्राप्त हुई थी जिसकी परीक्षाघड़ी एक दिन आ पहुँची। २५ जनवरी १९६०, रात्रि ११·३० बजे श्रीमती भगवती देवी काल के करों से जूझती हुई दम तोड़ चुकी थी। भगवती देवी राजेन्द्रप्रसादजी से १६ वर्ष बड़ी थीं। बचपन में राजेन्द्रप्रसादजी का पालन-पोषण माँ की भाँति इन्होंने ही किया था। उस रात तत्कालीन रूसी राष्ट्रपति वेशिश्लोव विशिष्ट अतिथि के रूप में राष्ट्रपति भवन में ठहरे थे। राजेन्द्रप्रसादजी ने इस भीषण दुःखद घटना की सूचना किसी को नहीं दी और अगले दिन प्रातः तीन घण्टे तक खड़े रहकर सलामी परेड में उन्होंने सलामी ली। रूसी राष्ट्रपति के आतिथ्य में कोई कमी नहीं होने दी। १२ बजे लौटकर भारी हृदय से निगमबोध घाट पर जाने के लिए अर्थी उठाने की तैयारी की गई। इस घटना की उस समय सूचना केवल नेहरूजी को ही दी गई, रूसी राष्ट्रपति को भी नहीं। अन्य लोगों को उस समय पता चला जब राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी शाम ६ बजे दाह संस्कार करने के पश्चात् निगमबोध घाट से वापस लौटे। अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा पर उन्होंने अपने भारी दुःख को भी कुछ नहीं समझा। रूसी राष्ट्रपति उनके इस कार्य को देखकर दंग रह गये। अपनी बहन की मृत्यु का उन्हें उस दिन कितना दुःख था इसका पता उस पत्र से लगता है जो उन्होंने तीन दिन बाद २९ जनवरी १९६० को अपनी पुत्री के नाम लिखा। उसमें उन्होंने लिखा था—

"उस दिन सलामी के लिए तीन घण्टे लगातार खड़े रहना हमारे लिए बहुत कठिन था, फिर भी हम नहीं चाहते थे कि हमारे कारण राष्ट्रीय पर्व में किसी प्रकार की बेरौनकी का व्याघात आये।"

यह सब बहन भगवती देवी द्वारा दी गई शिक्षाओं का ही परिणाम था।

माँ के अनुपम त्याग की एक अन्य घटना भी कम प्रेरणाप्रद नहीं है। घटना उन दिनों की है जब सुभाष बाबू ने विदेश जाकर आजाद हिन्द फौज का गठन किया था। उन दिनों नेताजी बर्मा में थे। उन्होंने आजाद हिन्द फौज के एक कमाण्डर कैप्टन ढिल्लों को देशभक्त युवकों को फौज में भर्ती करने का काम सौंपा था और विशेष रूप से हिदायत दी थी कि जो युवक अपनी माँ का इकलौता पुत्र हो उसे फौज में न लिया जाए।

उस दिन आजाद हिन्द फौज में भरती होने के लिए सैकड़ों युवक पंक्तिबद्ध खड़े थे। कैप्टन ढिल्लों उनकी शारीरिक नाप-जोख करते और सब-कुछ ठीक पाने पर अन्त में एक प्रश्न पूछते—

"क्या तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो ?"

उपयुक्त उत्तर मिलने पर भरती कर लिया जाता। उस दिन उन्होंने अन्य युवकों की भाँति एक युवक की छाती मापी, तोल लेनेवाली मशीन पर उसका वजन लिया और सब-कुछ ठीक पाया। वह युवक फौज में ले लिये जाने की आशा से खुश होकर मुस्कुरा रहा था। अन्त में कैप्टन ढिल्लों ने उससे भी पूछा—

"तुम्हारे और कितने भाई हैं ?"

"बस मैं अकेला हूँ। मेरे पिता भी इस समय जीवित नहीं हैं। सिर्फ माँ है।"

"क्या करते हो तुम ?"

"गाय-भैंसें पालता हूँ। दूध बेचता हूँ।"

"हिन्दुस्तान में कहाँ के रहनेवाले हो ?"

"हरियाणा का।"

"तुम्हारा नाम ?"

"अर्जुन सिंह।"

कैप्टन ढिल्लों ने कुछ उदास होकर कहा—

"अर्जुनसिंह ! मुझे बहुत अफसोस है कि तुम्हें फौज में नहीं लिया जा सकता, क्योंकि तुम अपनी माँ के अकेले बेटे हो। वैसे तुम्हारा देश-प्रेम देखकर मैं बेहद खुश हूँ। जाओ, अपना कारोबार सम्भालो और माँ की सेवा करो।"

अर्जुन की खुशी उदासी में बदल गई। वह घर लौटा तो माँ ने पूछा—

"क्यों अर्जुन ! तुम फौज में ले लिये गये और मुझसे मिलने आये हो ?"

अर्जुनसिंह ने अपनी बूढ़ी माँ को सब-कुछ बतला दिया। सुनकर माँ बोली—

"घबराओ नहीं। एक-दो रोज बाद जरूर आजाद हिन्द फौज में तुम ले लिये जाओगे और मुल्क के सच्चे सपूत साबित होओगे। बैठो, दिल छोटा न करो।"

तीसरे दिन अर्जुनसिंह फौज में भरती होनेवालों की पंक्ति में पुनः खड़ा था। सामने आते ही कैप्टन ढिल्लों ने उसे टोका—

"अर्जुनसिंह ! तुम फिर यहाँ कैसे आकर खड़े हो गये ? क्या तुम्हें याद नहीं कि मैंने तुम्हें क्या कहा था ?"

अर्जुनसिंह ने भरे दिल से कहा—

"कैप्टन साहब ! आपकी बात मुझे खूब याद है। किन्तु मेरी बूढ़ी माँ ने कुँए में कूदकर अपनी जान दे दी है। कुँए में कूदने की रात उसने मुझसे कहा था कि यह मेरे लिए बड़ी लज्जा की बात है कि तुम मेरे कारण आजाद हिन्द फौज में नहीं लिये जा सकते।"

इतना सुनते ही कैप्टन ढिल्लों की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने अर्जुनसिंह को उसी समय भरती कर लिया और दूसरे दिन उसे सुभाष बाबू से मिलाया। सुभाष बाबू ने जब उसे आशीर्वाद दिया तब उसने कहा—

"नेताजी ! मैं आपसे वादा करता हूँ कि मुल्क को आजाद कराने के लिए

मैं अन्तिम दम तक लड़ता रहूँगा।"

इतिहास साक्षी है कि युद्ध में अर्जुनसिंह गोली खाकर भी अन्तिम समय तक लड़ता रहा। कुछ दिनों बाद नेताजी ने ऐसे वीर सैनिक की याद में वहाँ एक छोटा-सा मन्दिर बनवाया।

ऋषिभक्त पं० सोमनाथ की माँ का त्याग उनकी कर्त्तव्यपूर्ति में किस प्रकार सम्बल बना, इसकी भी एक अनोखी कहानी है। पं० सोमनाथ पंजाब में रोपड़ के निवासी थे। ऋषि की प्रेरणा पर अछूतोद्धार के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। उस समय यह कार्य एक महान् अपराध माना जाता था, अतः समाज द्वारा उनका बहिष्कार कर दिया गया। शहर के कुँओं का स्वच्छ पानी भी उनके लिए निषिद्ध हो गया। अपने व्रत में अविचल रहकर पं० जी जोहड़ और पोखर का गन्दला पानी पीकर ही अपना निर्वाह करते रहे। गन्दे पानी के प्रयोग से वृद्धा माँ गम्भीर रूप से बीमार हो गई। डाक्टरों ने कहा कि कुँए का निर्मल जल माँ के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। बिरादरी ने कहा कि सोमनाथ अछूतोद्धार के लिए क्षमा माँगे तथा भविष्य में यह कार्य न करने की प्रतिज्ञा करे, तभी स्वच्छ पानी की व्यवस्था की जा सकती है। पं० जी माँ की अस्वस्थता से चिन्तित थे। माँ ने उनके मन की दुविधा जानकर कहा—"बेटा! मुझे तो एक दिन मरना ही है किन्तु मैं यह नहीं चाहती कि तुम मेरे लिए अपने धर्मपथ का परित्याग करो।" यह कहते-कहते माँ ने अपने प्राण त्याग दिये, किन्तु पुत्र सोमनाथ को उनका प्रण नहीं त्यागने दिया।

माता द्वारा प्रदेय शिक्षा के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"माता गर्भाधान से लेकर जब तक विद्या पूरी न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे। बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें।" —सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास

शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण देते हुए षि दयानन्द यहाँ लिखते हैं—

"मातृमान्—जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता। इसीलिए मातृमान् अर्थात् प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्।"

अम्बिका-(मातृ)-पूजाविधि और उसके लाभ

ऐसी अम्बिका-पूजा का अर्थ क्या है? ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"पूजा शब्द का अर्थ सत्कार है और दिन-रात जब-जब प्रथम मिलें व पृथक् ' प्रीतिपूर्वक 'नमस्ते' एक-दूसरे से करें।"

—सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

मातृपूजा के लिए वे लिखते हैं, दो कर्त्तव्य विधेय हैं—

१. तन-मन-धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना।

२. हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना।

अथर्ववेद (३।३०।२) के अनुसार—

मात्रा भवतु संमनाः

पुत्र माता के साथ समान मनवाला—अनुकूल चलनेवाला हो।

रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहते हैं—

न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।।

—वा० रा० अयो० १६-२२

संसार में इससे बड़ा कोई धर्म नहीं कि माता-पिता की सेवा करें तथा उनकी आज्ञा का पालन करें।

मातृसेवा से जीवन में क्या लाभ प्राप्त होते हैं—

१. "पितृयज्ञ से जब माता-पिता और ज्ञानी महात्माओं की सेवा करेगा तब उसका ज्ञान बढ़ेगा।"

२. "सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कर सुखी रहेगा।"

३. "कृतज्ञता—जैसी सेवा माता-पिता और आचार्य ने सन्तान की की है उसका बदला देना उचित है।"

—ऋषि दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

मातृसेवा अर्थात् तन-मन-धन से माँ की सेवा कर उसका हृदय जीतना। माँ के हृदय से निकला सच्चा आशीर्वाद सन्तानों के लिए जीवन की सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति है। सीता को आशीर्वाद देती हुई कौसल्या आदि माताएँ कहती हैं—

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जलधारा।।

—रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड

जब तक गंगा-यमुना में जल की धाराएँ बह रही हैं तब तक हे सीता! तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

ऋग्वेद के मन्त्र (१०।६१।२०) में सुयोग्य सन्तान का एक विशेषण 'शेवृधं' है अर्थात् उत्तम सन्तान वह है जो अपने माता-पिता की सेवा द्वारा उनके सुखों को बढ़ानेवाली हो। 'पूजा' और 'भक्ति' दोनों शब्द सेवार्थक पूज् तथा भज् धातु (पूज् सेवायां तथा भज् सेवायाम्) से निष्पन्न होते हैं अर्थात् सेवा ही पूजा और भक्ति है। सेवा से सेवक द्वारा सेव्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इसके दो फल हैं—(१) सेव्य की शक्ति-वृद्धि, और (२) सेवक को सेवा के बदले में आशीर्वाद की प्राप्ति। दोनों फलों से सेवक का बहुत लाभ है। सेव्य माता-

पिता की तन-मन-धन से सेवा अर्थात् उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति से उनकी शारीरिक व अन्य शक्तियों में वृद्धि हो जाएगी, वे अधिकाधिक स्वाश्रित होने लगेंगे। अतः सेवक को उनका वृद्धावस्थाजन्य भार भी बहुत कम रह जाएगा। दूसरा, उनके आशीर्वादों से जीवन में ज्ञान, सुख, आयु, विद्या, यश और बल की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा उठाये गये कष्टों से कृतज्ञता की अनुभूति का विकास और कृतघ्नता का विनाश होता है। कृतघ्नता अर्थात् किसी के किये उपकारों को स्मरण न करना जीवन का सबसे बड़ा दोष है, शास्त्रकारों के मत से जिसका प्रायश्चित्त भी नहीं है—'कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः।' माता-पिता और उसमें भी विशेष रूप से माँ अपने पुत्र-पुत्रियों के लिए जो कष्ट उठाती है, उनका बदला किसी भी प्रकार चुकाया नहीं जा सकता। माँ स्वयं भूखी, नंगी, अभावग्रस्त रहकर अपनी सन्तानों को यथासम्भव सब प्रकार का सुख पहुँचाती है। अतः मनु की दृष्टि में—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२७॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२२८॥

—मनु० २.२२७-२२८

माता-पिता बचपन में अपनी सन्तानों के लिए जिन-जिन क्लेशों को सहन करते हैं, उनका बदला सैकड़ों वर्षों में भी चुकाया नहीं जा सकता। अतः माता-पिता एवं विशेष रूप से आचार्य का सदा प्रिय-आचरण करते रहना चाहिए। इन तीन के सन्तुष्ट होने पर जीवन का सम्पूर्ण तप पूर्ण हो जाता है, अर्थात् अन्य कोई तप करने की आवश्यकता नहीं रहती।

ऋषि दयानन्द पितृयज्ञ का तीसरा लाभ यही बताते हैं—

"कृतज्ञता—जैसी सेवा माता-पिता और आचार्य ने सन्तान की की है उसका बदला देना उचित है।"

वाल्मीकि रामायण में माता-पिता की सेवा से प्राप्त फलों का उपदेश देते हुए राम सीता से कहते हैं—

देवगन्धर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकांस्तथापरान्।
प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः॥

—वा० रा० अयो० ३०

माता-पिता-सेवापरायण महात्मा जन भी देव, गन्धर्व, गो, ब्रह्म तथा अन्य सभी लोकों को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं।

माता-पिता की सेवा में सास-ससुर-पूजा भी सम्मिलित है। वनगमन के समय

राम सीता से कहते हैं—

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा,
सादर सासु ससुर पद पूजा।

—रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड

आदरपूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा-सेवा से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है।

प्राचीन काल में प्रत्येक अमावास्या प्रत्येक परिवार में विशेष रूप से पितृ-पूजा का पर्व समझा जाता था, इसी कारण अमावास्या का सम्बन्ध 'पितरों' से मान लिया गया है। अमावास्या अर्थात् चन्द्रकिरणों का पूर्णतः अभाव। हमारे ये पितर भी धीरे-धीरे उसी अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं। उनका जीवन-चन्द्र कब प्रभावविहीन हो जाए, कुछ नहीं कहा जा सकता, अतः इस दिन अग्नि में विशेष आहुतियाँ देकर पितरों (जीवित माता-पिता और आचार्य) का विशेष सम्मान और सत्कार करना प्रत्येक सद्परिवार में गृहस्थ के सभी व्यक्ति अपना कर्त्तव्य समझते थे और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने को धन्य समझते थे। यही पितृपूजा की सामान्य विधि थी।

जीवन की विशिष्ट उपलब्धियाँ माँ के आशीर्वादों का परिणाम होती हैं, यह जीवन-अनुभूत सत्य रहा है। आधुनिक युग में सर्वश्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी, लाल-बहादुर शास्त्री तथा चिन्तामणि देशमुख जैसे महापुरुषों ने इस सत्य का अपने जीवनों में अनुभव किया है। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के भूतपूर्व गवर्नर तथा नेहरू-मन्त्रिमण्डल में केन्द्रीय वित्तमन्त्री रहे श्री देशमुख ने अपने जीवन के इस अनुभव को लेखनीबद्ध किया है। श्री देशमुख लिखते हैं कि बचपन में पारिवारिक संस्कारों के कारण मेरा यह स्वभाव बन गया था कि प्रातःकाल उठते ही सर्वप्रथम घर में सब बड़े व्यक्तियों के चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया करता था। घर में सबसे बूढ़ी दादी माँ थी। जब मैं उनके चरण-स्पर्श करता तब वह प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती—"बेटा चिन्तामणि! जीवन में तू इतना बड़ा हो जाए, इतना बड़ा हो जाए कि गाँव का पटवारी बन जाए।" बुढ़िया दादी माँ की भावना में गाँव का पटवारी ही सबसे बड़ा व्यक्ति था। मैं दादी माँ की इस बात को सुन-कर मन ही मन हँसा करता था। जीवन में यह आशीर्वाद उस समय फला जब मैं एक दिन देश के सबसे बड़े बैंक—रिजर्व बैंक का गवर्नर बन गया और मेरे हस्ताक्षर प्रत्येक करैंसी नोट पर अंकित होने लगे। उसके बाद नेहरू जी की दृष्टि मुझपर पड़ी और मैं केन्द्रीय वित्तमंत्री बन गया। उस समय मुझे स्मरण हो आया कि दादी माँ के हृदय से निकला यह आशीर्वाद ही था कि मैं गाँव का नहीं पूरे भारत देश का वास्तव में 'पटवारी' (कर-संग्राहक वित्तमन्त्री) बन गया हूँ। जीवन में जिसने भी महानता अर्जित की है वह माता-पिता के आशीर्वाद से ही प्राप्त की है चाहे वे आदि

शंकराचार्य, राम, कृष्ण, श्रवणकुमार, ज्ञानी व्याध या देवों में गणेश ही क्यों न हों। शंकराचार्य माता की आज्ञा प्राप्त करने के बाद ही संन्यासी बने। माता ने इस अनुमति के साथ-साथ उन्हें यह प्रतिज्ञा कराई कि पुत्र शंकर अपने हाथों से उन्हें चिताग्नि देगा। शंकर ने संन्यासी धर्म का भंग करके भी अपनी माँ की इस इच्छा को पूरा किया।

अम्बिका-पूजन का जीवन में स्मरण

अम्बिका (माँ) की पूजा (सेवा) का जीवन में जब विस्मरण होने लगे तो क्या करें? उसका एक ही उपाय है—अपने बचपन को स्मरण करना। जब माँ की सेवा जीवन में 'भार' प्रतीत होने लगे तो अपने बचपन को याद करो—बचपन में माँ द्वारा हमारे लिए उठाये गये कष्टों को स्मरण करो। बचपन की यह स्मृति हमें पुनः अपने कर्त्तव्य का बोध करा देगी। हरिसिंह नलवा पंजाब के एक वीर प्रतापी राजा हुए हैं जिन्होंने अपनी वीरता की ऐसी धाक जमाई कि शत्रु-नारियाँ रोते हुए बच्चों को 'नलवा आ गया' ऐसा भय दिखाकर चुप कराया करती थीं। उसी नलवा को अपनी उपलब्धियों पर घमण्ड हो गया और एक दिन माँ से बोला—

"देखती हो माँ! तुम्हारा नलवा कितना बड़ा राजा हो गया है!" पुत्र की इस अभिमानपूर्ण बात को सुनकर माँ ने कहा—

"बेटा! मेरे लिए तो तुम अब भी वैसे ही छोटे हो जैसे बचपन में हुआ करते थे।"

माँ की यह बात नलवा को अच्छी नहीं लगी। माँ ने उसके मन की बात भाँप ली। एक दिन वह बोली—

"नलवा! तू तो बहुत बड़ा हो गया है न? एक इच्छा थी यदि तू उसे पूरा कर सके।"

"माँ! तेरे लिए नलवा आसमान के तारे भी तोड़कर ला सकता है। एक बार आज्ञा देकर तो देख!" नलवा ने गर्व से कहा। माँ ने कहा—

"कुछ और नहीं। बहुत दिन हो गये बचपन में तू मेरे साथ सोया करता था। आज फिर इच्छा हुई है कि हम दोनों माँ-पुत्र एकसाथ एक बिस्तर पर रात में फिर सो सकें।"

"यह तो बड़ी बात नहीं है। आज ही रात मैं तेरे साथ सोऊँगा"—नलवा ने उत्तर दिया।

रात्रि में एक ही बिस्तर पर नलवा और उसकी माँ लेटी। नलवा की आँखों में तो जल्दी ही गहरी नींद भर गई किन्तु माँ की आँखों में नींद नहीं थी। वह धीरे से उठी। एक लोटा पानी का लिया और जिधर नलवा सो रहा था बिस्तर

के उस भाग में डाल दिया। नलवा हड़बड़ाकर उठा और कहा—"यह क्या माँ ! पानी कैसे गिर गया ?"

"पानी पीने उठी थी। बूढ़ी हूँ न, हाथ से लोटा छूट गया।" माँ ने कहा।

"कोई बात नहीं। आगे से ध्यान रखना !"

कहकर नलवा ने दूसरा बिस्तर बिछवाया और फिर सो गया। वृद्धा माँ इस बार फिर उठी। पहले की तरह पानी का लोटा उधर ही उँडेल दिया जिधर नलवा सो रहा था। इस बार नलवा कुछ क्रोध में उठा और माँ को डाँटकर तथा अधिक सावधानी बरतने के लिए कहकर पुनः नये तीसरे बिस्तर पर सो गया। माँ ने जान-बूझकर तीसरी बार और चौथी बार उसी 'गलती' को दोहराया। अन्त में नलवा ने खीझकर कहा—

"माँ ! अब तुम्हारे साथ सोना मेरे लिए सम्भव नहीं है। बार-बार तुम पानी गिरा देती हो। अतः तुम्हारा बिस्तर अलग और मेरा बिस्तर अलग।"

माँ ने मुस्कराकर कहा—

"बेटा नलवा ! इतने पर ही खीज गया ? जरा अपना बचपन याद कर ! जब तू इतना छोटा-सा था तो रात्रि में बिस्तर गीला कर दिया करता था। तब मैं तुझे सूखे में सुलाकर स्वयं गीले में सोया करती थी। ऐसा तू एक रात में एक बार नहीं आठ-आठ दस-दस बार तक करता था। किन्तु मैंने तो कभी नहीं कहा कि तू अलग सो और मैं अलग सोती हूँ। और फिर यह तो पानी ही था। तू इतने से ही नाराज हो गया ?"

माँ की इन बातों से नलवा की आँखें खुल गईं। उसका सारा अभिमान जाता रहा। माँ के चरण स्पर्श कर उसने क्षमा माँगी। उसने उस दिन अनुमान किया कि वास्तव में माँ कितनी महान् होती है।

मातृभूमि के विषय में हिन्दी कवि ने जो लिखा है वह माँ के विषय में भी उतना ही सच है—

जिसकी रज में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं
घुटनों के बल सरक-सरककर खड़े हुए हैं।
परमहंस सम बाल्यकाल में सब सुख पाये
जिसके कारण धूलभरे हीरे कहलाये।
हम खेले-कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में
हे मातृभूमि ! तुमको निरख मग्न क्यों न हों मोद में।
पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा ?
तेरी ही यह देह तुझी से बनी हुई है
बस तेरे ही सुयश-सार से सजी हुई है।

हा ! अन्त समय तू ही इसे अमल देख अपनाएगी
हे मातृभूमि ! यह अन्त में तुझमें ही मिल जाएगी।

उत्तम सन्तान अपने माता-पिता के प्रति सदा यही कामना रखती हैं—

मा नो वधीः पितरम्मोत मातरम् ।—यजु० १६.१५

—हे प्रभो ! हमारे माता-पिता को कोई कष्ट न होने पाए।

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु ।—अथर्व० १.३१.४

—हमारी माता तथा पिता का सदा कल्याण हो, सदा कल्याण हो !

२. विष्णु—पिता सत्कर्त्तव्यदेव

विष्णु शब्द पर विचार

पंचदेवों में दूसरा देवता विष्णु है। यह वैदिक देवता है। महर्षि दयानन्द के अनुसार—

"विष्लृ व्याप्तौ धातु से नु प्रत्यय होकर विष्णु शब्द सिद्ध हुआ है। 'वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः परमात्मा'—चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है।" —सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समुल्लास

अध्यात्म में विष्णु परमात्मा है तो यास्क के अनुसार विष्णु द्युस्थानीय देवता है और मध्याह्नकालीन आदित्य का पर्यायवाची है—

"अथ यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति ।
विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा ।।

—निरुक्त १२.१८

—'विष्लृ व्याप्तौ' 'विश् प्रवेशने' या वि-पूर्वक 'अशूङ् व्याप्तौ' से 'णु' प्रत्यय और उणादि किद् भाव करने से विष्णु शब्द सिद्ध है। जो सर्वत्र व्याप्त है और सबके अन्दर प्रविष्ट है ऐसा आदित्य विष्णु है।

संस्कृत कोश अमरकोश (२.२) में विष्णु आकाशवाची पदों में अथवा (अमरकोश १.१८ में) नारायण के ४६ पर्यायवाची शब्दों में से एक है। वह पुरुषोत्तम, पुराणपुरुष, विश्वरूप और यज्ञपुरुष भी है।

पारिवारिक देवों में 'सत्कर्त्तव्यदेव पिता' विष्णु है। परमात्मारूप विष्णु यदि चराचर जगत् में व्याप्त है तो यह पिता विष्णु परिवार में प्रमुख होने से व्याप्त है। नियन्ता होने से परिवार के प्रत्येक व्यक्ति में वह प्रविष्ट है। महाभारत के यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद में यक्ष युधिष्ठिर से प्रश्न करते हैं कि 'आकाश से भी ऊँचा

क्या है ?' युधिष्ठिर उत्तर देते हैं—'पिता आकाश से भी ऊँचा है।' विष्णु अमर-कोश के अनुसार यदि आकाश है तो परिवार का यह विष्णु (पिता) उस आकाश (विष्णु) से भी अधिक महिमाशाली होने से उससे भी अधिक ऊँचा है। विष्णु अमरकोश में पौराणिक त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—में अन्यतम है। पौराणिक कल्पना के अनुसार जो विशेषताएँ विष्णु में निहित हैं वे सभी विशेषताएँ परिवार के इस विष्णु पिता में भी विद्यमान हैं। विष्णु जगत् का पालनपोषणकर्ता तथा व्यवस्थापक है। परिवार में ये सभी कार्य पिता को करने होते हैं इसीलिए वह 'पिता'—पालनकर्ता—कहा जाता है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"यः पाति स पिता"—जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक या जनक हो वह पिता है। —सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

मनु कहते हैं—

पिता मूर्तिः प्रजापतेः।—मनु० २.२२६

—पालन करने से पिता प्रजापति की मूर्ति है।

वेदों में भी परमात्मा के स्वरूप की कल्पना पिता के रूप में की गई है, क्योंकि वह सर्वत्र रक्षक तथा पालक है—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।—ऋ १.१.९

—पुत्र के लिए पिता के समान वह अग्निरूप परमात्मा सुगमता से प्राप्त होने योग्य हो।

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः।—अथर्व० १२.३.१२

—पुत्रों के लिए पिता के समान वह हमें प्राप्त हो।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुः।—अथर्व० २.१.३

—वह ही हमारा पिता, जनिता और बन्धु है।

पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम्।—अथर्व० २.१३.१

—पिता द्वारा पुत्र की रक्षा के समान वह हमारी रक्षा करे।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे।।

—अथर्व० २०.१०८.२

—तू ही हमारा ऐश्वर्यशाली पिता और शतकर्मा माता है, हम तेरी प्रसन्नता व अनुकूलता चाहते हैं।

पौराणिक विष्णु की अन्य कल्पनाएँ भी इस पिता में चरितार्थ होती हैं। विष्णु चतुर्भुजधारी हैं। परिवार के अन्य व्यक्ति एक शक्तिपुंज होने से द्विभुज-धारी हैं, किन्तु यह पिता उनसे दुगुनी शक्ति रखने से चतुर्भुजधारी हैं। केवल माता पिता से भी अधिक महिमामयी होने के कारण अष्टभुजधारी (दुर्गा) है। हाथों में विद्यमान शस्त्रों में से चक्र—सृष्टिचक्र का प्रतीक है। अशोकचक्र में भी यह

चक्र शान्तिचक्र के रूप में प्रतीकात्मक है। गदा शक्ति का तथा शंख उद्‌बोधन का रूप है। चौथा हाथ अभय की मुद्रा में है। ये सभी गुण पारिवारिक विष्णु (पिता) में अनिवार्य रूप से अपेक्षित हैं। वह लक्ष्मीपति हैं। बिना लक्ष्मी के परिवार की व्यवस्था असम्भव है; किन्तु लक्ष्मी उसकी स्वामिनी नहीं है, उसकी चरणदासी है, वह स्वयं उसका पति है। परिवार में दूध-घी भी उतना ही आवश्यक है, अतः विष्णु क्षीरसागर-शायी हैं। विपत्तिरूप सर्पों से रक्षा करने से सर्पराज शेषनाग ही उसकी शय्या बने हुए हैं। ऐसी कौन-सी विशेषता है जो उस पौराणिक विष्णु की इस विष्णु में घटित नहीं होती? इसलिए व्यंग्यचित्रकार ने पिता के स्वरूप और कार्य को प्रतीकात्मक रूप देने के लिए विष्णु की इस जड़मूर्ति या व्यंग्यचित्र का निर्माण किया होगा। अबोध पुरुषों ने इस व्यंग्यचित्र को ही वास्तविक चित्र समझ लिया और वास्तविक चेतन विष्णु (पिता) के स्थान पर इसकी जड़मूर्ति की ही पूजा करने लगे।

विष्णु-पूजा : पितृ-पूजा

महर्षि दयानन्द ने इस युग में सर्वप्रथम वेदानुकूलोक्त, सच्चे, चेतन विष्णु—सत्कर्त्तव्यदेव पिता—की पूजा करने की प्रेरणा दी, क्योंकि परिवार-यज्ञ का यही 'यज्ञपुरुष', 'पुरुषोत्तम', 'विश्वरूप' और 'पुराणपुरुष' है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"उसकी भी माता के समान सेवा करनी।"

अर्थात् तन-मन-धन से सेवा करनी और हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना।

जीवित माता-पिता की सेवा करना ही उनकी दृष्टि में यज्ञ ही नहीं अपितु महायज्ञ है जिसको पूर्ण करने से जीवन में सर्वलाभ प्राप्त होता है। इस यज्ञ के दो प्रमुख अंग हैं—

१. श्राद्ध—श्रद्धापूर्वक किया गया कार्य;

२. तर्पण—वे कार्य जिनसे विद्यमान माता-पिता आदि पितर प्रसन्न हों या प्रसन्न किये जाएँ।

महर्षि दयानन्द ने कहा है—

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

"जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।" (ऋषि दयानन्द)

स्नातक शिष्य को आचार्य अन्तिम उपदेश करते हुए कहता है—

पितृदेवो भव।—तैत्तिरीयोपनिषद् १-११-१

पिता को देवता मानकर पूजा करो।

मनु० (२-१४५) के अनुसार—'पिता गौरव में उपाध्याय (अध्यापक) और आचार्य की अपेक्षा सहस्रगुणा है।' सन्तानों का निर्माण यदि प्रथम पाँच वर्ष तक माता विशेष रूप से करती है तो ६ से ८ वर्ष की अवस्था तक पिता का विशेष उत्तरदायित्व होता है।

पिता-पुत्र : एक अनोखा सम्बन्ध

(१) पिता-पुत्र-सम्बन्ध संसार का अनोखा सम्बन्ध है। यह केवल बाह्य शारीरिक सम्बन्धमात्र नहीं है अपितु आत्मिक सम्बन्ध है। इसलिए जब-जब वह पिता बनता है तब-तब बालक के जातकर्म संस्कार में अथवा ऋषि दयानन्द के शब्दों में---"जब परदेश से आवे या जावे तब-तब भी प्रेमवृद्धि के निमित्त बालक के सिर को सूँघते हुए निम्न मन्त्रों से उसे आशीर्वाद दे"—

अंगादंगात्संभवसि हृदयादधि जायसे।
वेदो वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्॥
अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम्॥

—साम० मन्त्र ब्रा० १।५।१७-१८

हे पुत्र ! तू मेरे अंग-अंग से—हृदय से उत्पन्न हुआ है।

तू 'वेद' रूप है, सौ वर्ष की न्यूनतम आयु धारण कर।

तू पत्थर के समान कठोर तनु, परशु के समान प्रखरबुद्धि तथा हिरण्य के समान सुनहला बन। तू मेरी आत्मा ही है अतः सौ वर्ष की आयु अवश्य प्राप्त कर।

महाभारत में सन्तान को परमधर्म कहा है—

सन्तानं हि परो धर्म एवमाह पितामह।—महाभारत ४५.१५

सन्तान ही परमधर्म है ऐसा पितामह का कथन है।

(२) पिता-पुत्र-सम्बन्ध आत्मिक के अतिरिक्त स्वाभाविक भी है। महाभारत में बड़े-बड़े ज्ञानी और महात्मा भी पुत्र-प्रेम में आसक्त दिखाई देते हैं। द्रोण को अश्वत्थामा के प्रति ऐसा ही प्रेम था। श्रवण के अभाव में श्रवण के माता-पिता ने अपने प्राण त्याग दिये। अर्जुन को अभिमन्यु के प्रति भी ऐसा ही प्रेम था। रामायण में दशरथ का श्री राम के प्रति ऐसा ही अनुराग था—राम के वनगमन के बाद वे और अधिक जीवित न रह सके। सामान्य पशु-पक्षियों को भी अपनी सन्तति के प्रति ऐसा ही स्वभाविक प्रेम होता है। महाभारत में कहा है—

पुत्रस्पर्शात् सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते।

—महा० आदि० ७४.५७

पुत्र-स्पर्श से बढ़कर सुखदायक अन्य कोई स्पर्श नहीं है।
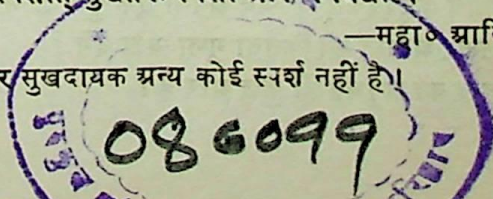
(३) पुत्र पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति के ऋण और उत्तरदायित्वों का स्वाभाविक उत्तराधिकारी है। बड़े श्रम अथवा बेईमानी से भी दिन-रात एक कर अर्जित की गई सम्पत्ति को सहसा कोई व्यक्ति छोड़ना नहीं चाहता जब तक उससे वह छुड़ाई ही न जाए, किन्तु एक दिन तो छोड़कर जाना ही होता है। उस समय उसे कितना कष्ट तथा मानसिक सन्ताप अनुभव होता है यदि सुयोग्य पुत्र उसे सँभालनेवाला न हो ! सुयोग्य और गुणशाली पुत्र को अपना सब-कुछ सौंपकर जाते हुए उसे जैसे एक मानसिक सन्तोष अनुभव होता है। उसे यह भी विश्वास होता है कि उसके द्वारा छोड़े उत्तरदायित्वों को भी उसका यह सुपुत्र अवश्य पूरा करेगा। प्रकृति में चन्द्रमा सूर्य का पुत्र कहा गया है। अस्ताचल के समय जब सूर्य अस्त होने लगे तो उन्हें चिन्ता हुई कि मेरे बाद संसार को कौन प्रकाशित करेगा ? सूर्य-पुत्र चन्द्रमा ने कहा—"पिता ! आश्वस्त रहिए ! आपके अस्त होने के बाद इस उत्तरदायित्व की पूर्ति मैं करूँगा।" चन्द्रमा आजतक उस कर्त्तव्य का निर्वाह करता आ रहा है।

(४) पुत्र पिता के लिए लौकिक ही नहीं पारलौकिक उन्नति का भी आधार है। मनु कहते हैं—

गृहस्थस्तु यदा पश्येत् वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ।। —मनु० ६·२

'जब गृहस्थ के सिर के केश श्वेत और त्वचा ढीली हो जाए और लड़के का लड़का भी हो गया हो तब वन में जाकर बसे।' (ऋषि दयानन्द)

इस प्रकार पुत्र पिता के स्वाभाविक वैराग्य और पारलौकिक उन्नति का आधार और प्रेरक है। प्राचीन काल में यह मर्यादा इसी प्रकार सुरक्षित थी। इस कारण आज-जैसे पिता-पुत्र-कलह के अवसर ही वहाँ उपस्थित नहीं होते थे। आज स्वार्थ और मोहवश बड़े-बूढ़े पिता घरों को छोड़ना ही नहीं चाहते। वे पुत्र को बुढ़ापे की लकड़ी समझते हैं। अतः आशाएँ पूरी न होने से निराशा और चिड़चिड़ापन उनके मनों में घर बनाये हुए है। यह दो पीढ़ियों का अन्तराल दोनों को परेशान किये हुए है। पश्चिम में इसकी प्रतिक्रिया अन्य रूप में दिखाई दी। वहाँ नई पीढ़ी ने कहा कि यदि तुम नहीं छोड़ सकते तो हम ही तुम्हें छोड़कर चले जाते हैं, अतः पश्चिम में समर्थ होते ही पुत्र पिता को छोड़कर दूसरा घर बसा लेता है। प्राचीन ऋषियों ने व्यवस्था दी थी कि ५०-५५ वर्ष की अवस्था के बाद अपने अनुभवों से संसार के अन्य प्राणियों को लाभ पहुँचाने के लिए घरों का त्याग कर वानप्रस्थी और संन्यासी बनकर विचरो, धरतीभर के बेटे अपने बेटे हो जाएँगे—'वसुधैव कुटुम्बकम्'। जब अपना एक पुत्र इतना आनन्द देता है तो वे सभी पुत्र मिलकर आनन्द को कितना गुणा बढ़ा देंगे ?

इस आनन्द का अनुभव ही कुछ और है।

वेदप्रकाश

एक बात और—जिनके जीवनों का लक्ष्य केवल भौतिक इन्द्रियसुख रहेगा वे वृद्धावस्था में जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाएँगी और ऐन्द्रिय सुख प्राप्त कर सकने में वे असमर्थ हो जाएँगे तब जीवन में कितनी निराशा तथा दुःख अनुभव करेंगे ! पर जिन्होंने वैदिक वर्णाश्रम-मर्यादा का पालन कर इस अवस्था में अपना जीवन परोपकार और आध्यात्मिक आनन्द के लिए समर्पित कर दिया है, वे उस समय भी उतने ही आनन्दित और सुखी अपने को अनुभव कर सकेंगे।

(५) पिता-पुत्र-सम्बन्ध की एक अन्य विलक्षणता यह है कि संसार में भाई भाई को, बहिन बहिन को तथा भाई और बहन दूसरे को उन्नति करते देख हृदय से परस्पर उतने प्रसन्न नहीं होते; हृदय के किसी-न-किसी कोने में ईर्ष्या या द्वेष के बीज उग ही जाते हैं—यह एक स्वाभाविक बात है। किन्तु पिता-पुत्र-सम्बन्ध एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें पिता पुत्र को अपने से अधिक योग्य, सम्पन्न, सुखी और महिमाशाली देखकर हृदय से प्रसन्नता तथा हर्ष अनुभव करता है। वेद में जहाँ किसी को अन्य से बढ़कर बताना हो तो उसके लिए यह प्रयोग किया जाता है कि 'उसका पुत्र'। जैसे "सहसः सुनूः" का अर्थ है बल का पुत्र अर्थात् अधिक बलशाली। वेद की इस शैली से भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

प्रसिद्ध है—

सर्वतो जयमिच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराभवम्।

मनुष्य सबसे विजय चाहे किन्तु पुत्र से पराभव की इच्छा करे।

काव्यमीमांसा में कहा है—

पुत्रात् पराजयो द्वितीयं पुत्रजन्म।

पुत्र से पराजय होना द्वितीय पुत्रजन्म के समान सुखदायक है।

इतिहास और लोकजीवन में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह सत्य प्रमाणित होता है। रामायण में राम और उनके पुत्र लव-कुश का उदाहरण प्रसिद्ध है। रुस्तम और सोहराब की कथा भी ऐसी ही है। राम के उत्तरकालीन जीवन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि सीता को श्रीराम ने उसकी वन-विहार की इच्छा से वाल्मीकि के आश्रम में भिजवा दिया। वहीं उसकी कोख से लव और कुश नामक दो बालकों का जन्म हुआ। कुछ वर्षों बाद राम ने अश्वमेध यज्ञ किया और अपने छोटे भाइयों के संरक्षण में अपनी वीर सेना के साथ अश्व छोड़ दिया। स्वतन्त्र अश्व विचरण करते-करते वाल्मीकि आश्रम के निकट पहुँच गया जहाँ लव और कुश भी घूम रहे थे। लव और कुश ने इससे पूर्व इस प्रकार का प्राणी देखा नहीं था, अतः वे कुतूहलवश उस घोड़े को पकड़कर आश्रम ले आये और वहाँ एक वृक्ष से उसे बाँध दिया। 'उत्तररामचरित' के रचयिता भवभूति ने इस घटना का बड़ा रोचक वर्णन किया है। अश्व न छोड़ने के कारण अन्त में राम का अपने ही अज्ञात पुत्र लव और कुश के साथ तुमुल युद्ध हुआ

जिसमें लव-कुश के बाणों से राम मूर्च्छित हो गये। इतने में भगवती सीता अपने पुत्रों को ढूँढती हुई उस क्षेत्र में पहुँची तो आर्यपुत्र राम को मूर्च्छित देखकर आश्चर्य और दुःख से हतप्रभ रह गई। उसने लव-कुश को बताया कि आर्यपुत्र राम ही तुम्हारे पूज्य पिता हैं। मूर्च्छा से जागकर राम को ज्ञात हुआ कि युद्ध में उन्हें पराजित करनेवाले लव-कुश उन्हीं के पुत्र हैं तो उन्हें मन में अत्यन्त हर्ष और गर्व अनुभव हुआ। कवि भवभूति के शब्दों में वे लव-कुश को देखकर कहते हैं—

अहो! प्रश्रययोगेऽपि गतिस्थित्यासनादयः।
साम्राज्यशंसिनो भावाः कुशस्य च लवस्य च॥

ये लव-कुश अत्यन्त विनम्र हैं। इनका आचरण भी ऐसा ही प्रशंसनीय है। तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि ये किसी विशेष साम्राज्य के उत्तराधिकारी हैं।

एक सामान्य कुली की भी भावना होती है कि उसका पुत्र उससे बहुत बड़ा बने। पुत्र को अपने से बड़ा देखने की लालसा प्रत्येक पिता अपने मन में सँजोये रहता है।

पिता की अपेक्षाएँ

प्रत्येक पिता की अपने सुपुत्रों से कुछ आशाएँ और अपेक्षाएँ होती हैं। सर्व-प्रथम यह है कि वह उसके कुल और वंश का नाम उज्ज्वल करेगा—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातः येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्॥

परिवर्त्तनशील संसार में मरकर कौन जन्म नहीं लेता! किन्तु उसी का जन्म लेना सार्थक है जिसके आचरण और कर्मों से वंश का गौरव बढ़े।

महाकवि कालिदास की भी यही भावना है—

संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे।—रघुवंश १।६९

निर्मल वंश की सन्तान इस लोक और परलोक में भी माता-पिता को सुख देनेवाली होती है।

वाल्मीकि रामायण में राम कहते हैं—

प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रः।

सुचरितों से जो पिता को प्रसन्न करता है, वही पुत्र है।

पुत्र को माता-पिता और आचार्य की ताड़ना से कभी म्लान-चित्त नहीं होना चाहिए। क्योंकि—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

—व्याकरण महाभाष्य ८.१.१८

'जो माता-पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे अमृत पिलाते हैं, और जो लाड़न करते हैं वे विष पिलाकर नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं।' (स्वामी दयानन्द)

द्वितीय यह कि पिता की इच्छा होती है कि उसका पुत्र उसके जीवन-व्रत का अनुव्रती हो।

अथर्ववेद के अनुसार—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

—अथर्व० ३.३०.२

पुत्र पिता का अनुव्रती हो तथा माता के अनुकूल मनवाला हो।

प्रत्येक पिता अपने जीवन में कोई व्रत या संकल्प लेकर चलता है। कोई ज्ञान द्वारा अज्ञान को, कोई न्याय द्वारा अन्याय को, कोई भाव द्वारा अभावों को जगत् से मिटाना चाहता है। किन्तु यह जीवन इतना अल्प है कि उसके सब स्वप्न अधूरे रह जाते हैं। ऐसी अवस्था में प्रत्येक पिता अपने पुत्र से अथवा आचार्य पुत्रवत् अपने शिष्य से उस व्रत की प्रतिपूर्ति की आशा रखता है। पुत्र का आश्वासन ही उसे सुखद प्रतीत होता है और वह शान्ति से अपने प्राणों का त्याग कर देता है।

इतिहास साक्षी है कि महाराणा प्रताप जब संसार से विदा होने लगे तो मेवाड़ की अप्राप्त स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए उनकी आँखें अपने पुत्र अमरसिंह की ओर गईं। चन्द वरदाई हिन्दी के आदिकवि कहे जाते हैं। वे अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' को जीवन में पूरा न कर सके। अतः

पुस्तक जल्हण हत्थ दै चलि गज्जन नृपकाज।

अपने पुत्र जल्हण पर उस महाकाव्य की पूर्ति का भार सौंपकर वे पृथ्वीराज के साथ गजनी चले गये। महाकवि बाण अपने संस्कृत के महाग्रन्थ 'कादम्बरी' को अपने जीवन में पूरा न कर सके। अतः प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने पुत्रों से न केवल उसकी पूर्ति की अपेक्षा की अपितु उन्हें बुलाकर उनकी योग्यता की परीक्षा भी ली। परीक्षा में छोटे पुत्र से वे अधिक सन्तुष्ट हुए जिसे वे यह उत्तरदायित्व सौंपकर सुख से विदा हो गये। काव्यमर्मज्ञ जानते हैं कि योग्य पुत्र ने ऐसा जोड़ मिलाया कि शैली, भाषा, भाव कहीं भी किसी प्रकार का कोई अन्तर प्रतीत ही नहीं होता।

विष्णु पिता के कर्त्तव्य

विष्णु पिता के रूप में 'सत्कर्त्तव्य देव' है। पुत्र के प्रति पिता के कुछ कर्त्तव्य हैं जिनकी पूर्ति उसे करनी होती है। ऋषि दयानन्द ने (सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास में) विस्तारपूर्वक ऐसे कुछ कर्त्तव्यों का निर्देश किया है। पुत्र का निर्माण

माता-पिता का प्रथम कर्तव्य है, अतः पुत्र के प्रत्येक आचरण पर उन्हें अपनी सतर्क दृष्टि रखनी होती है—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥

—हितोपदेश, प्रस्ताविका

ऋषि दयानन्द इस श्लोक की व्याख्या में लिखते हैं कि—"यह किसी कवि का वचन है। वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई। वे विद्वानों की सभा में वसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में वगुला। यही माता-पिता का कर्त्तव्य कर्म, परमधर्म और कीर्ति का काम है कि अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।"

इसके अतिरिक्त विशेष रूप से पिता को—
"जैसी अन्य (विषयों की) शिक्षा की वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्या भाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें।"

साथ ही

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।

—तैत्तिरीयोपनिषद् १. ११

"माता-पिता-आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो-जो हमारे धर्म-युक्त कर्म हैं उन-उनका ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। जो-जो सत्य जाने उन-उनका प्रकाश और प्रचार करें। --सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास

रामायण में सुसन्तान का आधार माता-पिता का आचरण कहा है। माता-पिता जीवन में जैसा आचरण करते हैं सन्तान उसी का प्रायः अनुसरण करती है। शराबी और धूम्रपान करनेवाले की सन्तान भी प्रायः ऐसा ही आचरण करने-वाली होती हैं। धन्य हैं वे माता-पिता जो संयमी जीवन व्यतीत करते हुए अपनी सन्तानों के लिए स्वयं अपने जीवनों का आदर्श उपस्थित करते हैं। कवि के अनुसार,

पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा दृष्ट्वा योषितयौवनम्।
त्रीणि रत्नानि दृष्ट्वैव कस्य नो चलते मनः ॥

सुन्दर पुष्प, सुमधुर फल और नवयुवती के प्रगलभ यौवनरूप त्रिरत्नों को देखकर किसका मन चंचल नहीं होता ?

इसका उत्तर देते हुए कहा गया है—

पिता यस्य शुचिर्दक्षो माता यस्य पतिव्रता।
ताभ्यां यः सुनूरुत्पन्नस्तस्य नो चलते मनः ॥

जिसका पिता पवित्र आचरण वाला और दक्ष है, जिसकी माता पतिव्रता है ऐसे माता-पिता से उत्पन्न पुत्र का मन कभी चंचल नहीं होता।

आचार्य मनु ने इसीलिए कहा है—

पिता आचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्डयो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।

—मनुस्मृति ८.३३५

पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित ही चाहे क्यों न हों, यदि वे अपने धर्म और कर्त्तव्य का पालन न करें तो अदण्ड्य नहीं हैं अर्थात् राजा उन्हें अवश्य दण्डित करे।

'विष्णु पूजा' से लाभ

विष्णुरूप सत्कर्त्तव्यदेव पिता की पूजा के लिए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"उसकी भी माता के समान सेवा करनी।"

अर्थात् जैसे माता की तन-मन-धन से सेवा कर उसे प्रसन्न रखना सन्तानों का कर्त्तव्य है और माता की हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी नहीं करनी होती है, उसी प्रकार पिता के प्रति भी सन्तानों का व्यवहार होना चाहिए। इस सम्बन्ध में आचार्य मनु का कथन है—

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः।।—मनु० २.२२५,

हमें तथा विशेष रूप से ब्राह्मण को स्वयं दुःख उठाकर भी आचार्य, पिता-माता तथा अग्रज भाई का कभी अपमान नहीं करना चाहिए।

माँ की सेवा की भाँति पिता की सेवा से भी प्रमुख रूप से तीन लाभ प्राप्त होते हैं—

१. ज्ञानवृद्धि,

२. सत्यासत्य के निर्णय से सत्य का ग्रहण और असत्य के त्यागपूर्वक सुखी जीवन,

३. कृतज्ञता—सेवा का बदला सेवा से देना।

मनु का कथन है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

—मनुस्मृति २.१२१

"जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चारों सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करता उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते।" (ऋषि दयानन्द)

अभिवादन से आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि केवल कथनमात्र नहीं है अपितु महापुरुषों का यह जीवनानुभव है। महाभारत में भीष्म पितामह का जीवन इसका प्रत्यक्ष ज्वलंत उदाहरण है। माता-पिता के प्रसन्न हृदयों से सन्तानों के प्रति जो आशीर्वाद या शुभकामनाएँ सहज रूप से निकलती हैं वे जीवन में अवश्य फलती हैं। महाभारत के युद्ध में भीष्म पितामह अर्जुन के बाणों से छलनी हो गये। शरीर का सब रक्त बूंद-बूंद कर रिस गया। एक तो वृद्ध और उसपर शरीर में रक्त न रहे, फिर जीवन की आशा क्या रह सकती थी! किन्तु शरशय्या पर लेटे भीष्म पितामह पूछ रहे हैं कि कौन-सी तिथि है? जब उन्हें बताया गया कि दक्षिणायन सूर्य है तो उत्तर दिया—'ठहरो मृत्यु! अभी हम तुम्हारे साथ नहीं जाएँगे। सूर्य को उत्तरायण होने दो, तभी तुम्हारे साथ चलेंगे।' हिन्दी के राष्ट्रीय कवि श्री रामधारीसिंह दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य में इस घटना का बड़े ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया है—

आई हुई मृत्यु से कहा अजेय भीष्म ने
'योग नहीं जाने का है इसे अभी जानकर
रुको कहीं आसपास' और स्वयं लेट गये
बाणों का शयन और बाणों का उपधान कर।
व्यास कहते हैं यों ही पड़े रहे वे विमुक्त
काल के करों से छीन मुष्टिगत प्राण को
और पंथ जोहती विनीत कहीं आसपास
हाथ जोड़ मृत्यु खड़ी रही शास्ति मानकर॥

बात क्या थी जो भीष्म मृत्यु को धकेल रहे हैं और वह भी इतने विश्वासपूर्वक? एक ही कारण था—उनके पिता शान्तनु का आशीर्वाद। देवव्रत (भीष्म) अभी बालक ही थे कि उनकी माँ गंगा स्वर्ग सिधार गई। पिता को बड़ी कठिनाई अनुभव हुई। इसीलिए माँ का गौरव पिता से हज़ार गुणा अधिक कहा गया है। यदि बालक की माँ न रहे तो पिता एक भी सन्तान का पालन-पोषण नहीं कर पाता। किन्तु यदि पिता न रहे तो माँ सब प्रकार से कष्ट उठाकर भी छह-छह बच्चों का पालन-पोषण कर उन्हें योग्य बना देती है और उनका विवाह भी कर देती है। इसीलिए पंचमहायज्ञ 'दारयज्ञ' कहे गये हैं अर्थात् उनकी परिपूर्णता पत्नी के सहयोग पर निर्भर होती है—पत्नी के अभाव में उनकी पूर्णता नहीं हो सकती। वैसे भी जीवन में पत्नी की आवश्यकता मनुष्य को यौवन से बुढ़ापे में अधिक अनुभव होती है।

महाराज शान्तनु ने एक धीवर-कन्या सत्यवती से विवाह करना चाहा। सत्यवती के पिता ने शर्त रक्खी कि शान्तनु के बाद सत्यवती का पुत्र ही सिंहासन का स्वामी होगा। पुत्र देवव्रत के इस अधिकार को शान्तनु छीनना नहीं चाहते थे,

अतः उदास घर लौट आये। देवव्रत ने उदासी का कारण पता किया और धीवर के सम्मुख भीष्म प्रतिज्ञाएँ कीं—

१. मेरा सौतेला भाई ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा।

२. मैं आजन्म अखण्ड ब्रह्मचारी रहूँगा जिससे मेरी सन्तान से भी राज्य छिनने का भय न रहे।

विवाह हो गया। पिता को जब पता चला तो उन्होंने सर्वप्रथम देवव्रत को उसकी भीष्म प्रतिज्ञा के कारण उन्हें 'भीष्म' नाम से सम्बोधित किया। फिर अपना आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा—

अपि ते भरतश्रेष्ठ वेदधर्माश्च शाश्वताः।
कृता प्रमाणं प्रीतिश्च मम निर्वर्तितातुला॥
न च ते प्रभवति मृत्युर्यावत् जीवितुमिच्छसि।
त्वत्तोऽभ्यनुज्ञां सम्प्राप्य मृत्युर्प्रभविता तव॥

—हरिवंशपुराण

हे भरतश्रेष्ठ! तुमने शाश्वत वेदधर्मों का पालन कर मेरी प्रीति अर्जित की है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम जब तक जीना चाहोगे मृत्यु तुम्हारे जीवन में नहीं आएगी। तुझसे आज्ञा प्राप्त करके ही मृत्यु तुम्हें प्रभावित करेगी।

पिता का यह आशीर्वाद ही था कि भीष्म लम्बी आयु प्राप्त कर सके और आई हुई मृत्यु को भी ठहरने की आज्ञा दे सके।

अभिवादन के अतिरिक्त पितृ-पूजा के दो अंग और हैं। आर्य राम के शब्दों में—

न ह्यतो धर्माचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥

—वा० रा० अयो० १९.२२

पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चित् तात रिष्यति।

—वा० रा० अयो० २१.३६

इससे बड़ा कोई धर्माचरण नहीं है कि पिता की सेवा की जाए तथा उनकी आज्ञा का पालन किया जाए।

पिता की आज्ञा पालन करने से संसार में कोई व्यक्ति कष्ट अनुभव नहीं करता।

सीता को उपदेश देते हुए राम अन्यत्र कहते हैं—

न सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणः।
तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता॥

—वा० रा० अयो० ३०.३५

हे सीते! न सत्य, न दान, न यज्ञ और न आप्त-दक्षिणा ही इतनी बलवती

है जितनी पिता की सेवा है।

राम का अपना जीवन इसका उदाहरण है। पिता की आज्ञा मानकर वे १४ वर्ष तक वनवासी रहे। श्रवणकुमार के जीवन का तो व्रत ही माता-पिता की सेवा बना रहा। अन्धे माता-पिता को काँवरी में बैठाकर तीर्थस्नान कराना ही उसका जीवन-व्रत था और इसी व्रत में उसने अपने प्राणों को भी न्योछावर कर दिया। उसके ऐसे सेवा-भाव के कारण ही प्रत्येक माता-पितासेवी को 'श्रवणकुमार' कहा जाने लगा है। गणेश बड़े देवता तभी कहलाये जब पौराणिक कल्पना के अनुसार पृथिवी की सम्पूर्ण परिक्रमा का फल उन्हें माता-पिता की परिक्रमा अर्थात् सेवा से प्राप्त हुआ। जमदग्नि परशुराम पितृभक्ति के कारण यशस्वी बने। कठोपनिषद् में पिता ने अप्रसन्न होकर पुत्र नचिकेता को यमराज के पास भेज दिया। आचार्य यम को प्रसन्न करने से नचिकेता को तीन वर प्राप्त हुए। प्रथम वर द्वारा नचिकेता ने पिता की प्रसन्नता की याचना की—

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्या-
द्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवेदत्प्रतीत
एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।।

—कठोपनिषद् १-१०

हे मृत्यु! जिससे मेरे पिता वाजश्रवस मेरे प्रति शान्तसंकल्प, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जाएँ तथा आपके भेजने पर मुझे पहचानकर बातचीत करें यह मैं तीन वरों में से पहला वर माँगता हूँ। तात्पर्य यह है कि पितृपरितोष ही उसके लिए सर्वप्रथम ग्राह्य और काम्य हुआ।

महाभारत (वन पर्व अध्याय २१३) में ब्राह्मण-व्याध की कथा प्रसिद्ध है। पतिव्रता नारी ने क्रोधी तपस्वी ब्राह्मण ऋषि को अधिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए ऐसे व्यक्ति के पास भेजा जो जाति से व्याध था किन्तु माता-पिता का अत्यन्त भक्त होने से विशेष ज्ञानी था। उस व्याध ने ब्राह्मण ऋषि को विशेष उपदेश दिया जो 'व्याधगीता' के नाम से प्रसिद्ध है।

पितृसेवा का महत्त्व-ज्ञान

पिता का महत्त्व मनुष्य को दो अवसरों पर विशेष रूप से अनुभव होता है—

१. स्वयं पिता बनने पर,

२. अपना बचपन स्मरण करने पर।

बिम्बसार मगध के प्रतापी सम्राट् थे। उनका नवयुवा पुत्र अजातशत्रु बड़े उद्धत और उग्र स्वभाव का था। उसने राज्याधिकार की लिप्सा से अपने पिता बिम्बसार को स्वयं कारावास में बन्द कर राज्य प्राप्त कर लिया। समय आने

पर अजातशत्रु भी एक दिन पिता बना। अपने पुत्र को गोद में लिये जब उसने प्रथम बार पुत्र-स्पर्श का सुख अनुभव किया, तब उसे ज्ञात हुआ कि पिता की गरिमा क्या होती है। तुरन्त कारावास गया। अपने पिता को मुक्त किया। उनके पाँव पकड़ लिये। क्षमा माँगते हुए उनसे कहा—"पिता! आज मुझे अनुभव हुआ है कि पिता की गोद कैसी होती है! उसका हृदय क्या होता है! मैंने पुत्र होकर पिता को कारावास में बन्द कर दिया, इससे बड़ा अपराध और क्या हो सकता है?"

भवननिर्माण-कुशल एक मिस्त्री ऊँचे भवन की तीसरी मंजिल पर चिनाई के कार्य में व्यस्त था। प्रचण्ड गर्मी का मौसम, दोपहर का समय, किन्तु ऐसी कड़ी धूप में भी वह अपने काम में डूबा था। उसका बूढ़ा पिता नीचे खड़ा हो अपने पुत्र के इस श्रम को बड़े ध्यान से देख रहा था। वह कड़ी धूप पुत्र की अपेक्षा पिता को अधिक पीड़ा पहुँचा रही थी। पिता से अधिक देर तक चुप न रहा गया। उसने पुत्र से बार-बार आग्रह किया कि वह थोड़ी देर के लिए ही नीचे छाया में आकर तनिक विश्राम कर ले! किन्तु पुत्र ऐसा था कि पिता के व्यथित हृदय की पुकार सुन ही नहीं रहा था। पिता से अब अधिक देर तक नहीं रहा गया। वह पास में ही स्थित अपनी झोंपड़ी में गया और उस पुत्र के पुत्र (पोते) को गोदी में उठाकर ले आया और ऐसे स्थान पर खड़ा हो गया जहाँ भरपूर धूप थी और जोर से पुकारकर अपने पुत्र से कहा—"अब मुझे चिन्ता नहीं, तुम कितनी ही देर तक धूप में काम करते रहो।" मिस्त्री पुत्र ने यह आवाज सुनकर जब ऊपर से नीचे देखा तो वहीं से चिल्लाया—"बापू! यह क्या कर रहे हो? उसे धूप से छाया में ले जाओ, अन्यथा उसे धूप लग जाएगी और वह बीमार पड़ जाएगा!" बूढ़े ने नीचे से ही उत्तर दिया—"नहीं हटूँगा, नहीं हटूँगा धूप से, तब तक तेरे पुत्र को भी नहीं हटाऊँगा जब तक मेरा पुत्र धूप से नहीं हटेगा।" पिता की यह बात सुनकर पुत्र चुपचाप नीचे उतर आया। उसे पिता की वेदना का अनुभव हो चुका था।

पिता का महत्त्व-ज्ञान दूसरे अवसर पर तब होता है जब मनुष्य अपने बचपन को याद करता है। अतः ज्ञानियों का कथन है कि जब पिता की महत्त्व-भावना मन से लुप्त होने लगे, तब अपने बचपन की घटनाओं को स्मरण कर लिया करो। बचपन में रात-रातभर जागकर उन्होंने हमें सुलाया, स्वयं भूखे रहकर हमें खिलाया, खुद नंगे रहे किन्तु हमें भरसक अच्छा ही पहनाया। क्या-क्या सुख नहीं दिये उन्होंने स्वयं कष्ट और अभावों को सहन कर! बचपन की उनकी त्याग-पूर्ण घटनाओं का स्मरण कर यह अभिमानी मस्तक उनके चरणों में स्वतः झुकने लगता है।

लोक में 'त्रियाहठ' के समान 'बालहठ' भी प्रसिद्ध है। "मैं तो चँद खिलौना

लैहौं"—सूरदास की इस पंक्ति में बालक कृष्ण द्वारा चन्द्रमारूपी खिलौने की माँग इसी बालहठ का प्रसिद्ध उदाहरण है। इस 'बालहठ' की पूर्ति में हमारे पिता को भी कितनी बार कितनी कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ी होंगी, फिर भी उन्होंने कभी कोई शिकवा-शिकायत किसी से नहीं की। वह बात भूली नहीं है जब ग्राधी रात के समय एक बालक हठ करने लगा—'भूख लगी है बापू ! मैं तो रसगुल्ले खाऊँगा।' ग्राधी रात में रसगुल्ले कहाँ ? किन्तु पप्पूजी तो इन्हीं की जिद किये जा रहे हैं ! ये पिताजी ही तो थे जो उस समय भी गये ग्रौर हलवाई को जगाकर रसगुल्ले लेकर आये। उनके द्वारा हमारे लिए उठाए गये कष्टों ग्रौर उपकारों की गणना कहाँ तक की जाए ? वे अनन्त ग्रौर ग्रनगिनत हैं। उन-के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना ही एकमात्र उपाय है।

मुगल सम्राट् हुमायूँ के पिता का नाम बाबर था। बाबर ग्रौर हुमायूँ की घटना भी इतिहासप्रसिद्ध है। हुमायूँ ग्रभी बालक ही था कि वह ऐसा बीमार पड़ा कि उसके बच सकने की सभी ग्राशाएँ धूमिल हो गईं। हकीमों ने कहा कि 'ग्रब दवा से नहीं दुग्रा से ही काम चल सकता है।' उनकी इन बातों से पिता बाबर की ग्राँखों में ग्राँसू ग्रा गये। उसने हृदय के अन्तर्तम से ग्रपने पुत्र हुमायूँ के शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की प्रार्थना की। तीन बार हुमायूँ की परिक्रमा की ग्रौर दोनों हाथ जोड़कर ग्रपने खुदा से कहा—

"या खुदा ! मेरे बच्चे को ठीक कर दे। इसके स्थान पर बीमार मैं हो जाऊँ, किन्तु यह पूरी तरह ठीक हो जाए।" पिता के सच्चे हृदय से निकली यह प्रार्थना सच हुई। हुमायूँ दिन-प्रतिदिन ठीक होने लगा और बाबर उसके स्थान पर खाट पकड़ने लगा। एक दिन हुमायूँ पूर्ण स्वस्थ था ग्रौर बाबर इतना बीमार कि वह जीवित न रह सका। हुमायूँ ने उस दिन पिता के हृदय की विशालता का प्रथम बार ग्रनुभव किया।

एक ग्रन्य घटना ग्रौर भी रोचक और प्रेरक है। एक वृद्ध व्यक्ति सेवानिवृत्ति के पश्चात् ग्रपने युवक ग्रफसर पुत्र के पास रहने लगा। उसके पुत्र के पास प्रतिदिन ग्रनेक व्यक्ति मिलने ग्राया करते थे। एक दिन जब एक व्यक्ति उसके पुत्र से मिलने ग्राया तो उसके चले जाने पर पिता ने पुत्र से सहज स्वाभाविक रूप से पूछा—"बेटेजी ! यह ग्रानेवाला व्यक्ति कौन था ?" पुत्र ने सहज भाव से परिचय देते हुए कहा कि "ये इस नगर के एक बड़े व्यापारी हैं।" थोड़ी देर में दूसरा व्यक्ति मिलने ग्राया। उसके जाने के बाद भी पिता ने पुत्र से वही प्रश्न किया—"ग्रब यह ग्रानेवाला कौन था ?" पुत्र ने पुनः उत्तर दिया कि "ये इस नगर के एक बड़े वकील हैं।" तीसरे ग्रौर चौथे व्यक्ति भी जब इसी प्रकार मिलने आये तो पिता द्वारा परिचय पूछने पर पुत्र ने ऐसे ही उत्तर दिये। आने-

वाले पाँचवें व्यक्ति के सम्बन्ध में भी पिता ने जब वही प्रश्न किया तब पुत्र ने खीजकर कहा—

"मेरे यहाँ प्रतिदिन कितने ही व्यक्ति मिलने आते हैं और चले जाते हैं। उन सबके विषय में कहाँ तक परिचय देता रहूँगा? फिर आपको इनसे मतलब ही क्या है? आपसे उधर अपने कमरे में शान्ति से बैठा भी नहीं जाता?"

वृद्ध पिता ने हँसकर कहा—

"बेटेजी! जरा अपना बचपन याद करो। बचपन में जब तुम छोटे थे तो एक दिन मेरी गोद में बैठे हुए थे। तब उसी समय एक कौआ रोटी ले सामने दीवार पर आकर बैठ गया। तुमने उसे देखकर तुरन्त मुझसे पूछा—

'बापू! यह क्या है?' मैंने उत्तर दिया—'बेटे! यह कौआ है।' तुमने उसे देख-सुन पुनः वही प्रश्न किया—'बापू! यह क्या है?' मैंने शान्त भाव से वही उत्तर दिया—'बेटे! यह कौआ है।' तुम इसी प्रकार एक-दो बार नहीं, बीस और तीस बार यही प्रश्न पूछते रहे और मैं उसी प्रकार बिना खीजे उत्तर देता रहा। यहाँ तो आनेवाले व्यक्ति अलग-अलग थे और उनका परिचय भी अलग-अलग था। किन्तु तुम तो एक ही कौवे के विषय में जानकर भी बार-बार वही प्रश्न पूछते रहे। मैं तो नाराज नहीं हुआ था। तुम अभी से परेशान हो गये?"

पिता की यह बात सुनकर पुत्र की आँखें खु[illegible] अपना बचपन याद आया और उसी के साथ पिता की महानता का भी अनुभव हुआ।

विष्णु-(पितृ)-पूजा का स्वरूप

ऐसे पितृदेव की पूजा को महर्षि दयानन्द ने 'पितृमहायज्ञ' नाम दिया है। उसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यजुर्वेद (अध्याय १९) के मन्त्रों द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश (चतुर्थ समुल्लास) में ऋषि लिखते हैं—" 'पितृयज्ञ' अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि, पढ़ने-पढ़ानेहारे, पितर जो माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं—एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है। 'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्'—जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाए उसको श्रद्धा और श्रद्धा से जो कर्म किया जाए उसका नाम श्राद्ध है। और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत् तर्पणम्'—जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जाएँ उसका नाम तर्पण है। परन्तु यह जीवितों के लिए हैं, मृतकों के लिए नहीं।

"कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस-जिस कार्य से उनकी आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ्य रहे उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी

सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहलाता है।"

पितृ-पूजा की विधि के सम्बन्ध में स्वामी समर्पणानन्द जी (पं० बुद्धदेव विद्यालंकार) ने अपनी पुस्तक 'पंचयज्ञ प्रकाश' में संक्षिप्त और सुन्दर विचार किया है। पाठकों के लाभार्थ उसे अविकल रूप से यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"अब पितृयज्ञ की व्याख्या करते हैं। जो लोग हमारा उपकार करते-करते क्षीण हो गये हैं वे पितर कहलाते हैं। इसीलिए उनको जो अन्न दिया जाता है वह स्व+धा=स्वधा कहलाता है। जिन्होंने वर्षों तक हमपर उपकार किया है वे अब हमें कुछ दें या न दें फिर भी वे सेवा के पात्र हैं क्योंकि वे 'स्व' अर्थात् हमारे अपने हो चुके हैं। अब जो हम उनकी सेवा करते हैं वह उनके कृत उपकारों का स्मरण करते हैं, न कि क्रियमाण और करिष्यमाण उपकारों के विचार से। इसीलिए यह अन्न 'स्वधा' अर्थात् अपनों को धारण करनेवाला अन्न कहलाता है। इस यज्ञ के तीन काल हैं—

(१) अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः—

कुर्य्यादहरहः श्राद्धं पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।
पयोमूलफलैर्वाऽपि मुन्यन्नैश्चापि सर्व्वशः॥

प्रतिदिन प्रीतिपूर्वक पितरों के लिए श्रद्धा से दुग्ध, मूल, फलों तथा अन्नों से उनका सत्कार करे।

(२) अमावास्या में पितृयज्ञ।

(३) वार्षिक पितृयज्ञ।

इसका अभिप्राय यह है कि नित्य पितरों को भोजन दे।

मासिक अमावास्या पितृयज्ञ—"प्रतिमास जब वेतन मिले तो उसमें से पितरों के पालनार्थ भाग वानप्रस्थाश्रम में पहुँचा दे अथवा जहाँ वे हों वहाँ पहुँचा दे—इसे 'कव्यान्न' कहते हैं। अथवा घर बुलाकर सत्कारपूर्वक दे।

वार्षिक पितृयज्ञ—"जो ऐसा भी न कर सके तो वर्ष में एक बार बुलाकर सत्कार करे और वर्षभर के निर्वाहार्थ अन्नादि सामग्री उन्हें देकर विदा करे जिससे यदि वे वानप्रस्थ में भिक्षा करें तो अभिमान दूर करने के लिए करें, जीवन-निर्वाह के लिए मजबूर होकर नहीं।

"इसी अन्नदान का नाम पिण्डदान है, क्योंकि जो माता-पिता जीवनकाल में ही सारा वैभव त्यागकर वानप्रस्थ में चले जाते हैं उनके लिए सन्तान के हृदय में एक विशेष श्रद्धा उत्पन्न होती है। इसलिए उन्हें बुलाकर जो सेवा की जाती है उसका नाम श्राद्ध है।"

दैनिक पितृयज्ञ—"इस यज्ञ के लिए अपराह्ण काल इसलिए रक्खा कि उस समय स्त्रियाँ तथा के घर भृत्यादि सब भोजन से निवृत्त हो लेते हैं, इसलिए वृद्ध-

जनों से ज्ञानचर्या सुनने का वही उचित काल है। पुरुष लोग तो अन्यत्र भी तथा अन्य समयों में भी ज्ञानचर्चा सुन लेते हैं, किन्तु कुलवधुओं को यही ज्ञानचर्चा सुनने का समय है और विद्यावयोवृद्ध लोगों को ही उनके बीच बैठकर उपदेश देना शोभा देता है, क्योंकि उन्होंने न केवल विद्या पढ़ी है किन्तु संसार का अनुभव भी पाया है।

"रहा स्वधा का अन्न। सो उससे तो विद्याहीन पितरों का भी सत्कार उचित है। कोई समय था जब अपने देश में घर के नौकर, यहाँ तक कि भंगी भी गाँव में चाचा, ताऊ, नाना आदि शब्दों से पुकारे जाते थे और पितरों में गिने जाते थे। आज यह सुन्दर प्रेमभरी व्यवस्था लोप हो रही है। यदि पितृयज्ञ के पढ़ने से इस व्यवस्था का पुनरुद्धार हो जाए तो हम अपना यत्न सफल समझेंगे।"

३. गणेश—आचार्य विद्याप्रदाता

पंचदेवों में तृतीय देवता हैं—गणेश, और चेतन देवों में आचार्य। ऐसा प्रतीत होता है कि कालक्रम से चेतन आचार्यदेव ही प्रतीकरूप में गणेश हो गये हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में इन्हीं आचार्य को देवता मानकर पूजा करने के लिए कहा गया है—

आचार्यदेवो भव।—तैत्तिरीयोपनिषद् १-११-१

आचार्य को देवता मानो।

छान्दोग्योपनिषद् का वचन है—

आचार्यवान् पुरुषो वेद

ऋषि दयानन्द इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

"वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।" (सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास)

पंचदेवोपासना प्रकरण में वे कहते हैं—

"तीसरा आचार्य जो विद्या को देनेवाला है उसकी तन-मन-धन से सेवा करनी।" (सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)

गणेश आचार्य के रूप में

गणेशदेव की विद्याप्रदाता आचार्यदेव के साथ संगति मिलाने से प्रतीत होता है कि आचार्य का अपर रूप ही 'गणेश' है। संस्कृत कोश अमरकोश में पौराणिक देव गणेश के ये पर्याय कहे गये हैं—

विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपाः ।
अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदरगजाननाः ।।

—अमरकोश, स्वर्गवर्ग ३८

विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, गजानन ये आठ नाम गणेशजी के हैं।

इन नामों से सूचित होनेवाली प्रमुख विशेषताएँ आचार्य में घटती हैं जिसके कारण दोनों एक कहे जा सकते हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने 'विनयपत्रिका' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के प्रथम पद में गणेशस्तुति करते हुए गणेशजी की परम्परागत विशेषताओं और स्वरूप की चर्चा की है—

गाइये गनपति जगबन्दन, संकर-सुवन भवानी-नन्दन।
सिद्धि-सदन, गजवदन, विनायक, कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक।
मोदक-प्रिय मुदमंगलदाता, विद्या-वारिधि बुद्धिविधाता।।

पौराणिक गणेश गणाधिप हैं। वे गजानन अर्थात् उनका सिर हाथी का तथा शेष शरीर मानवाकृति है। वे विनायक और विघ्नराज हैं अर्थात् उनकी प्रसन्नता विघ्न-विनाशक और मंगलदायक तथा उनकी अप्रसन्नता विघ्नोत्पादक है। वे कृपासागर और समस्त सिद्धियों-सफलताओं के प्रदाता हैं। वे 'द्वैमातुर' तथा 'लम्बोदर हैं—विशाल उदरवाले हैं। भोजन में भी उन्हें 'मोदक' सर्वाधिक प्रिय है। वे गजमुख होते हुए भी सामान्य हाथी नहीं हैं। अन्य हाथियों के दो दाँत होते हैं जबकि वे 'एकदन्त' हैं। वे विद्या के समुद्र तथा बुद्धिप्रदाता हैं।

गणेश महाराष्ट्र के सर्वाधिक पूज्य और उपास्य देव हैं। गणेश-उत्सव वहाँ का राष्ट्रीय और सामाजिक पर्व है। 'गणेशचतुर्थी' उनका विशिष्ट पर्व है। गणेश की मूर्तियाँ बनाकर वे बड़ी धूमधाम से उनका जुलूस निकालते हैं और अंत में जल में उनका विसर्जन कर देते हैं। विचार करें कि ये गणेश आचार्य के रूप में कैसे सार्थक हैं?

सर्वप्रथम 'गणेश' या 'गणाधिप' नाम को ही लें। इस शब्द का अर्थ है 'गण का स्वामी'। 'गण' क्या है? अमरकोश तथा हिन्दीशब्दसागर के अनुसार 'गण' शब्द के निम्न अर्थ हैं—

समूह, समान मनुष्यों का समुदाय, जाति, सेना का विशिष्ट भाग, छन्दशास्त्र में तीन वर्णों का समूह, व्याकरण में धातुओं और शब्दों के समूह, शिव की परिषद्, दूत तथा परिचारक।

'गणेश' या 'गणाधिप' शब्द में इनमें से कोई भी अर्थ सार्थक नहीं है। पौराणिक विचारवाले व्यक्ति 'शिव की परिषद्' गण शब्द का अर्थ लेकर गणेश-जी को शिव-परिषद् का स्वामी कहना चाहते हैं। परन्तु 'गणेश' शब्द में प्रयुक्त

'गण' शब्द वैदिक है लौकिक नहीं। उसके वास्तविक अर्थ की गवेषणा वैदिक कोश में ही करनी होगी। वैदिक कोश निघण्टु (१-११) में 'गण' शब्द वाणी-वाचक शब्दों में पठित है, अतः 'गणेश' का अर्थ हुआ—वाणी का ईश या वाचस्पति। गणेश वाणी के स्वामी होने से गणेश हैं और आचार्य भी वाणी के स्वामी या वाचस्पति हैं, अतः आचार्य ही गणेश हैं। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद दोनों में 'गणपति' शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद के मन्त्र में देवता 'बृहस्पति' है तथा यजुर्वेद के मन्त्र का देवता 'गणपति' है। दोनों का एक ही अर्थ है—वाणी के स्वामी। मन्त्र निम्न हैं—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।।—ऋग्वेद २-२३-१
गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे
प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे।।—यजुर्वेद २३-१९

इस प्रकार 'गणेश' शब्द द्वारा आचार्य की सर्वप्रमुख विशेषता—वाणी का स्वामी प्रकट की गई है।

तुलसी की गणेश-स्तुति में गणेशजी को 'विद्या-वारिधि बुद्धि-विधाता' कहा गया है। ये दोनों विशेषण आचार्य के लिए उपयुक्त हैं। महाराष्ट्र में बालक जब प्रथम बार पाठशाला पढ़ने जाता है तब उसकी स्लेट या पाटी पर गणेशजी का चिह्न अंकित करते हैं जिसका अभिप्राय गणेश के रूप में आचार्य की वन्दना करना है। आज तो किसी भी शुभ कार्य का प्रारम्भ करना ही 'श्रीगणेश' कहा जाने लगा है। गणेशरूप आचार्य विद्या के समुद्र हैं और सर्वाधिक बुद्धिमान् हैं जो महाभारत-लेखन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध उस किंवदन्ती से स्पष्ट है जिसके अनुसार व्यास मुनि को महाभारत जैसे ग्रन्थ के लेखनकार्य के लिए अपने युग के सर्वाधिक बुद्धिमान्, शीघ्रलिपि और निपुण व्यक्ति की आवश्यकता हुई जिसके लिए गणेश से अधिक इन गुणोंवाला अन्य व्यक्ति नहीं प्राप्त हो सका, अतः महाभारत (पंचम वेद) के रचयिता व्यास तथा लेखक गणेश माने जाते हैं। गणेश केवल लेखक ही नहीं हैं अपितु महाभारत के प्रत्येक अन्तर्निहित गूढ़ अर्थ को समझने-समझानेवाले भी हैं। इस कथा में उनका आचार्यरूप ही मुखर हुआ है।

गणेश सम्पूर्ण रूप से गज नहीं हैं, केवल उनका सिर ही हाथी का है। यह कल्पना आचार्यरूप में ही अधिक युक्तिसंगत है। वन्य प्राणियों में सर्वाधिक बुद्धिमान् प्राणी हाथी मान्य है और मनुष्यों में आचार्य। इसलिए आचार्य को नमस्कार करते हुए कहा है—'ज्ञानांजनशलाकया चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।' हाथी के सिर की एक अन्य विशेषता और भी विलक्षण है। उसकी सूंड ही उसका कर—हाथ—है। इसीलिए वह 'हाथी' या 'करी' है। इस हाथरूप सूंड का सीधा सम्बन्ध उसके मस्तिष्क—ज्ञानशक्ति—से है। इस रूप में केवल हाथी

ही ऐसा प्राणी है जिसमें ज्ञानशक्ति और कार्यशक्ति दोनों का एकत्र संगम है। यही विशेषता आचार्य में भी है। यास्क के अनुसार—

आचार्यः कस्मात् आचिनोति अर्थम्,
आचारं ग्राहयतीति सतः। (निरुक्त)

आचार्य वह है जो अर्थों का संग्रह करता है और अपने शिष्यों को आचार की शिक्षा देता है। आचार की शिक्षा वही दे सकता है जिसका जीवन में अपना आचरण श्रेष्ठ, अनुकरणीय व ग्राह्य हो, जिसने उन व्रतों का जीवन में उपदेश ही नहीं दिया हो अपितु उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ भी कर दिखाया हो, अर्थात् ज्ञान और कर्मशक्ति दोनों का समन्वय जिसके जीवन में हो। बहुश्रुत होने से वे हाथी के तुल्य बृहत् मन और बुद्धिमान् होने से छोटी आँखोंवाले (सूक्ष्मदर्शी) हैं। अतः गजवदन आचार्य का सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीक है।

गणेशजी की अन्य विशेषताएँ भी आचार्य में यथावत् हैं। वे 'लम्बोदर' अर्थात् विशाल उदरवाले हैं। आचार्य भी विशाल उदरवाला है क्योंकि उसके कुल में निवास करनेवाले जितने भी अन्तेवासी हैं उन सब की भूख-प्यास उसकी भूख-प्यास है। वह भिक्षान्न या राज्यान्न किसी भी साधन से उनकी व्यवस्था करता है, अतः उसका पेट केवल अपना ही पेट नहीं है अपितु सभी का पेट, उसका पेट होने से वह 'लम्बोदर' है।

गणेश 'मोदकप्रिय' है तो आचार्य भी 'मोदकप्रिय' होता है। मोदक का अर्थ है—मोदं करोति इति, जो प्रसन्नता देनेवाला हो। लड्डू खाने में सबको प्रसन्नता देता है, अतः लड्डू मोदक कहा जाता है। आचार्य का प्रिय आहार भी ज्ञान द्वारा शिष्यों को प्रसन्नता देना है। अपने शिष्यों को विशेष प्रसन्न और उन्नत देखकर उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। संसार में केवल दो ही ऐसे विलक्षण सम्बन्ध हैं जो अपने से अधिक उन्नत व्यक्ति को देखकर प्रसन्न होते हैं। एक पिता अपने पुत्र से और दूसरा आचार्य अपने शिष्य से। शिष्य यदि अपने गुरु से विद्या में, बल में, मेधा में या अन्य किसी भी रूप में उन्नति करता है तो आचार्य की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। यह प्रसन्नता ही उसकी मोदकप्रियता है।

गणेश 'एकदन्त' हैं। कोई भी हाथी एकदन्त नहीं होता। उसके दो दन्त सदा बाहर निकले दिखाई देते हैं। यह विशेषता केवल आचार्य में ही घटित होती है। बाहर निकले दो दाँतों से हाथी खाने का काम नहीं लेता। वे दाँत या तो उसके सौन्दर्य की वृद्धि करनेवाले हैं अथवा उनका उपयोग वह केवल प्रहार करने या दण्डित करने के काम में लेता है। आचार्य भी 'एकदन्त' है। वह अपराध होने पर शिष्यों की ताड़ना करता है। महाराष्ट्र में ताड़ना को 'शिक्षा' कहा जाता है। ऐसी 'शिक्षा' आचार्य के प्रधान कर्त्तव्यों में से एक है।

'महाभाष्य' में कहा है—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः ।।

—महाभाष्य ८-१-१८

गुरु या आचार्य अमृतपूर्ण हाथों से ताड़ना करते हैं, विषपूर्ण हाथों से नहीं। अधिक लाडप्यार दोषकारक तथा ताड़ना गुणविधायक होती है।

आचार्य अपने इस कर्त्तव्य का पालन (ताड़न) दोनों हाथों से नहीं करता। वह एक हाथ से ताड़ना करता है तो दूसरे हाथ से अमृत की वर्षा करता है। यह ताड़न ही उसकी प्रहारक शक्ति है जो एकरूपा होने से 'एकदन्त' कही गई है। सच्चा आचार्य वही है जो ताड़ना भी शिष्यों की कल्याणभावना से करता है, किसी द्वेषबुद्धि से नहीं। आचार्य मनु कहते हैं—

अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु यौ ।।

—मनु० ४-१६४

पुत्र और शिष्य को केवल शिक्षा देने के लिए ही ताड़ना करे।

ऋषि दयानन्द का कथन है--

"परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या-द्वेष से ताड़न न करें किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रखें।"

—सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास

गणेश 'मूषक वाहन' हैं अर्थात् उनकी सवारी मूषक है। इस अर्थ की संगति भी आचार्य में विशेष रूप से संगत है। 'मूषक' शब्द 'मुष् स्तेये' धातु से बना है, जो (वस्तुओं अथवा ज्ञानराशि को) इधर-उधर से चुराकर या श्रमपूर्वक इकट्ठा करे वह 'मूषक' है। ये कार्य या तो चूहा करता है या अन्वेषी छात्र। सामान्य भाषा में 'मूषक' चूहा है, क्योंकि उसके बिल में इधर-उधर से लाई गई कितनी ही वस्तुओं का संग्रह होता है। गणेशजी के पौराणिक भक्तों ने इस सामान्य चूहे को ही गणेश जी का वाहन कल्पित कर लिया। पर विचारणीय बात यह है कि कहाँ विशालकाय गणेश और कहाँ लघुकाय चूहा! दोनों की कुछ भी संगति लगती प्रतीत नहीं होती। गणेशरूप आचार्य में मूषक अर्थात् इधर-उधर से खोजकर विचार-सामग्री संचित करनेवाला अनुसंधानप्रिय शिष्य ही 'मूषक' है जो उनके ज्ञान का वाहक होने से आचार्य का वाहन कहा जाता है। एक बात और, 'मूषक' का संस्कृत में पर्यायवाची शब्द 'आखु' है, क्योंकि 'आ समन्तात् खनति इति आखुः'—जो एक अन्वेषक की भाँति चारों ओर खोदता रहता है वह 'आखु' है। चूहे में भी यह विशेषता होने से चूहे को भी 'आखु' कहा जाने लगा। 'मूषक' और 'आखु' ये दोनों शब्द गणेशरूप आचार्य के प्रसंग में खोजी शिष्यों के लिए प्रयुक्त हैं। आचार्य का ज्ञान-रथ इन शिष्यों द्वारा निरन्तर ज्ञानवृद्धि करते रहने से आगे बढ़ता रहता है। 'मूषक' और 'आखु' ये दोनों विशेषण ऐसे सद्शिष्यों पर पूर्ण रूप

से घटित होते हैं। ये शिष्य विविध ग्रन्थों का अध्ययन-मनन कर ज्ञानराशि का निरन्तर संचय करते रहते हैं, अतः वे 'मूषक' हैं और जिज्ञासा तथा अनुसंधान-वृत्ति होने से—खोद-खोदकर ज्ञानतल के गहन तल तक पहुँचने के प्रयास से—वे 'आखु' (अन्वेषक) हैं। यजुर्वेद के निम्न मन्त्र में 'आखु' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है—

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा।
एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ।।—यजुर्वेद ३-५७

ऋषि दयानन्द ने अपने यजुर्भाष्य में इस मन्त्र में आये 'आखु' शब्द का अर्थ विद्वान् पुरुष का "खोदने योग्य शस्त्र" अथवा "खोदनेवाला पदार्थ" किया है और कहा है—"इनके बिना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान व सुखभोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता।" वास्तव में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में इस अनुसंधान-वृत्ति का सर्वाधिक महत्त्व है।

गणेश "द्वैमातुरः" हैं। शास्त्रीय वर्णन के अनुसार आचार्य 'द्वैमातुर' हैं। इस शब्द में समाहार द्विगु समास है। विग्रह करने पर अर्थ होगा—द्वयोः मात्रयोः समाहारः द्विमातुरः, द्विमात्रयोः भावः द्वैमातुरः' अर्थात् दो मातृभाव। पाणिनि ने 'षण्मातुरः' शब्द की सिद्धि इसी प्रकार की है। शिष्य की प्रथम माता उसकी जन्मदात्री जननी होती है। आचार्यकुल में जाकर वेदारम्भ-संस्कार द्वारा आचार्य-उदर से उसका दूसरा जन्म होता है। इसलिए आचार्य में द्विमातृभाव शास्त्रीय मर्यादा से स्वतः सिद्ध है। आचार्य की शरण में विद्यानिमित्त जब ब्रह्मचारी आचार्यकुल में जाता है तब वेदारम्भ-संस्कार के बाद वह आचार्य के आदेश पर तीन दिन तक कठोर व्रत करता है। इस काल में वह भूमि पर शयन, समिधाहोम, स्थाली-पाक आहुति तथा क्षार-लवणरहित भोजन करता है। यह तीन दिन की साधना ही आचार्य-उदर से उसका पुनर्जन्म है। इस समय आचार्य और शिष्य दोनों विद्याभ्यास प्रारम्भ करने की प्रतिज्ञा भी करते हैं—

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।

—अथर्ववेद ११-५-३

इस मन्त्र में आचार्य द्वारा ब्रह्मचारी को तीन रात्रि पर्यन्त अपने उदर में धारण करने की बात कही गई है। संस्कारविधि में ऋषि दयानन्द इस मन्त्र का भावार्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

"जो आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञापूर्वक समीप रखके तीन रात्रि पर्यन्त सन्ध्योपासनादि सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर उसके आत्मा के भीतर गर्भरूप विद्यास्थापना करने के लिए उसको धारण कर और उसको पूर्ण विद्वान् कर देता है और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को जाता है तब

उसको देखने के लिए सब विद्वान् लोग सन्मुख आकर बड़ा मान्य करते हैं।"

ऐसे गणेशरूप आचार्य को देवता मानकर उनकी पूजा अर्थात् तन-मन-धन से सेवा करनी ही चेतन मूर्तिमान गणेश की पूजा है।

गणेश आचार्य : स्वरूप और कर्त्तव्य

आचार्य का लक्षण करते हुए मनु कहते हैं—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥—मनु० २.१४०

—जो यज्ञोपवीत कराकर कल्पसूत्र और वेदान्त-सहित शिष्य को वेद पढ़ावे उसे आचार्य कहते हैं।

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में महर्षि दयानन्द ने भी आचार्य, शिष्य और शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी धारणाओं को स्पष्ट किया है—

"जो सांगोपांग वेद-विद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह **आचार्य** कहाता है।"

"**शिष्य** उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य, धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करनेवाला है।"

"**शिक्षा**—जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं।"

आचार्य विद्या को देनेवाला तथा सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करानेवाला है। 'विद्या' अक्षरज्ञान का नाम नहीं है अपितु—

सा विद्या या विमुक्तये

जो सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर निर्वाण की ओर ले जाए वह 'विद्या' है।

ऐसी विद्या को देनेवाले आचार्य आज कितने हैं? इसी कारण शिक्षाजगत् में आज सर्वत्र अव्यवस्था, असन्तोष, अनुशासनहीनता आदि दोष दिखाई दे रहे हैं। आचार्य के मन में शिष्यों के प्रति न वे वात्सल्यपूर्ण कल्याणकारी भाव हैं और न शिष्यों के मनों में आचार्य के प्रति वैसी निष्ठा, आदर और सत्कार की भावना ही शेष रह गई है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में अध्ययन-अध्यापन तथा पठन-पाठनविधि का विशेष रूप से वर्णन किया है। यहाँ आचार्य के दो प्रकार के कर्त्तव्य बताये हैं—

१. आचार-सम्बन्धी।

२. शिक्षण-सम्बन्धी।

शिक्षण-सम्बन्धीकर्त्तव्य भी दो प्रकार के हैं—

(क) शिक्षण-संस्थान (गुरुकुल) के स्थान, व्यवस्था व विद्याप्राप्ति की आयु के सम्बन्ध में।

(ख) पाठ्यक्रम-सम्बन्धी।

जहाँ तक पाठ्यक्रम का सम्बन्ध है ऋषि ने वेद-वेदांग, उपवेद, शिक्षा, व्याकरण, दर्शन आदि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के पाठ्यक्रम, पाठ्यविधि तथा पठनीय ग्रन्थों की चर्चा की है। इसमें भी उनकी दृष्टि नैतिकता और धार्मिकता की ओर अधिक रही है। वे आर्ष ग्रन्थों के प्रबल समर्थक थे, अत: उन्होंने लिखा—

"ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे बड़े विद्वान्, सर्व-शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपात-सहित है उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।"

—सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास

यह एक चिन्तनीय विषय है कि आर्यसमाज के गुरुकुलों में भी ऋषि की इस बात को स्वीकार नहीं किया गया और आर्ष-अनार्ष, ग्राह्य-त्याज्य सभी प्रकार के ग्रन्थों को वहाँ के पाठ्यक्रमों में स्थान दिया गया है। अन्य विशिष्ट पाठ्य-क्रमों—तकनीकी, चिकित्सा, प्रशासन आदि का आधुनिक प्रशिक्षण तो शिक्षा का एक विशेष अंग रहेगा ही। इसके लिए पृथक्-पृथक् शिक्षण-संस्थान खोलने में ऋषि का कोई विरोध नहीं है।

आचार्य का प्रधान कर्त्तव्य सदाचार-शिक्षण है जिसका आधुनिक शिक्षण-विधि में विरोध तो नहीं पर उपेक्षाभाव तो अवश्य है। 'आचारं ग्राहयतीति आचार्य:'—आचार्य शब्द की इस व्युत्पत्ति के अनुसार आचार-प्रशिक्षण आचार्य का प्रथम कर्त्तव्य है। इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलावें। किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त, धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं।"

—सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास

सदाचार की शिक्षा उसी की सफल हो सकती है जिसका स्वयं का आचरण तदनुकूल हो। मद्य, मांस, सिगरेट, भाँग आदि नशा, असत्य, छल-कपट आदि अवगुणों से युक्त किसी भी अध्यापक का अपने शिष्यों पर क्या सद्-प्रभाव हो सकता है! अध्यापक यदि विद्यावान् है तो उसकी विद्या से वे अवश्य प्रभावित व लाभान्वित हो जाएँगे, किन्तु उसका असद्-आचरण तो उन्हें विपरीत दिशा की ओर ले-जानेवाला ही सिद्ध होगा।

आचार में ही व्यवहार तथा शारीरिक स्वास्थ्य-शिक्षा भी सम्मिलित है, अत: आचार्य को चाहिए कि वह 'गायत्री मंत्र का उपदेश करके सन्ध्योपासन की जो स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि क्रिया हैं, सिखलावे, क्योंकि इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।' और 'प्राण अपने वश में

होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं। बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र, सूक्ष्मरूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य-शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे। भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने-चालने, बड़े-छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करे।' 'न्यून-से-न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे।' आधुनिक शिक्षण में योगाभ्यास का यह रूप विशेष रूप से ग्राह्य और लोकप्रिय हो रहा है, यह सन्तोष का विषय है।

तैत्तिरीयोपनिषद् (१.९) में पठन-पाठन के कुछ नियम संकेतित हैं। ये नियम भी ध्यान देने योग्य हैं। स्वाध्याय (पठन) प्रवचन (पाठन) के लिए आवश्यक है—

यथार्थ आचरण (ऋत), सत्याचार (सत्य), तपस्वी अर्थात् धार्मिक जीवन (तप), बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोकना (दम), मानसिक वृत्ति को दोषों से परे हटाना (शम), आहवनीय अग्नि तथा विद्युत् का ज्ञान, अग्निहोत्र, अतिथिसेवा, मानवीय व्यवहार, कर्त्तव्यपालन, वीर्यरक्षा व वृद्धि तथा सन्तान और शिष्यों का पालन।

विद्या-प्राप्ति में कुछ विघ्न भी होते हैं जो आचार्य और शिष्य दोनों के लिए ही ध्यान देने योग्य हैं—

कुसंग, मद्यपानादि दुर्व्यसन, बालविवाह, पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन न करना, राजा व माता-पिता तथा विद्वानों की विद्या के प्रति अरुचि, अतिभोजन, अति जागरण, परीक्षा लेने-देने में आलस्य व कपट, विद्या-ब्रह्मचर्य-आरोग्य आदि की अवमानना, ईश्वर का ध्यान न कर मूर्तिपूजा में व्यर्थ कालयापन, माता-पिता-आचार्य-विद्वान् को सत्यमूर्ति न मानकर सेवा-सत्संग न करना, पाखण्ड में आस्था, विद्या में अश्रद्धा, धनादि के प्रति अत्यधिक प्रवृत्ति से विद्या में रुचि न होना, इधर-उधर व्यर्थ घूमते रहना आदि।

तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली (१.११) में आचार्य द्वारा शिष्यों को दी जाने-वाली शिक्षा का एक रूप प्रस्तुत किया है—

सदा सत्य बोला करो। धर्माचरण करो। प्रमाद-रहित होकर पढ़ो-पढ़ाओ। पूर्ण ब्रह्मचर्यपूर्वक समस्त विद्याओं का ग्रहण, आचार्य के लिए प्रिय धन-प्रदान, विवाह कर सन्तानोत्पत्ति, सत्य-धर्म, आरोग्य, उत्तम ऐश्वर्य, पठन-पाठन का प्रमाद के कारण कभी त्याग न करना, विद्वान्, माता-पिता, आचार्य, अतिथि की सेवा में अप्रमाद, अनिन्दित, धर्मयुक्त कार्य—सत्यभाषणादि का अत्याग, आचार्य के

सुचरित्र का ग्रहण और अन्याचरणों का अग्रहण, उत्तम विद्वान् धार्मिक पुरुषों का सत्संग, श्रद्धा-अश्रद्धा, शोभा-लज्जा-भय या प्रतिज्ञा से भी दान देना, संशय उत्पन्न होने पर समदर्शी पक्षपातरहित योगी व आर्द्रचित्त धर्मात्माजनों के कार्यों का अनुसरण—आचार्य का यही आदेश, आज्ञा और उपदेश है। यही वेद तथा उपनिषद् की शिक्षा है।

शिक्षण-सम्बन्धी कुछ अन्य नियम भी आचार्य के लिए ध्यान देने योग्य हैं। यथा—

१. विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए।
२. लड़के-लड़कियों की पाठशालाएँ एक-दूसरे से न्यूनतम दो कोस दूर होनी चाहिएँ।
३. कन्याओं की पाठशाला में स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष ही अध्यापक, नौकर-चाकर आदि रहने चाहिएँ।
४. स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी नहीं जानी चाहिए।
५. पाठशाला से ग्राम या नगर एक योजन अर्थात् चार कोस दूर रहना चाहिए।
६. सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जाएँ चाहे वे राजकुमार या राजकुमारी हों अथवा दरिद्र की सन्तान हों।
७. सबको तपस्वी होना चाहिए।
८. माता-पिता अपनी सन्तानों से व सन्तान अपने माता-पिताओं से शिक्षा-काल में न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक-दूसरे से कर सकें जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रख सकें।

व्यवस्था-सम्बन्धी उपर्युक्त नियम, विशेषरूप से अन्तिम नियम कठोर अवश्य हैं तथापि सभी शिक्षाशास्त्रियों ने इनकी उपयोगिता और उपादेयता स्वीकार की है।

गणेश-(आचार्य)-पूजा

आज गणेश की जड़ पाषाण-मूर्ति की सर्वत्र पूजा है, किन्तु चेतन गणेश—आचार्य—उपेक्षित हो गये हैं। ऋषि दयानन्द ने जड़पूजा के स्थान पर वैदिक पंच-देवोपासना में चेतन मूर्तिमान् देवों की उपासना की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। विद्या-प्रदाता विद्यादेव आचार्य (गणेश) भी ऐसा ही देवता है। आचार्य मनु ने विद्या तथा स्त्री-रत्न एवं अन्य उत्तम वस्तुओं को अपने से हीन व्यक्ति अथवा स्थान से भी ग्रहण करने के लिए कहा है—

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥—मनुस्मृति २.२३८

उत्तम विद्या-प्राप्ति की श्रद्धा करता हुआ पुरुष अपने से न्यून से भी विद्या, नीच जाति से भी उत्तम धर्म और निंद्य कुल से भी स्त्रियों में उत्तम स्त्री का ग्रहण करे—यह नीति है।

आचार्य की तन, मन, धन से सेवा तथा सत्कार करना ही उनकी पूजा है। आचार्य को अपने शिष्य से विद्या के बदले में किसी वस्तु की इच्छा नहीं होती, तथापि ऐसे उत्तम आचार्य के प्रति अपनी कृतज्ञताज्ञापन करना तथा हृदय से उनका सम्मान करना योग्य शिष्य का प्रथम कर्त्तव्य है। मनु कहते हैं—

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ।
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥—मनुस्मृति २.१३०

मामा, चाचा, श्वसुर, ऋत्विज तथा आचार्यों का यदि वे आयु या पद में छोटे भी हों तो भी उठकर 'मैं अमुक नामवाला हूँ' इस प्रकार उच्चारण कर सदा अभिवादन करना चाहिए।

गणेश-(आचार्य)-पूजा के लाभ

आचार्य की पूजा से शिष्यों को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। सबसे बड़ा लाभ शिष्य को यह प्राप्त होता है कि उसकी विद्या फलवती होती है। मनु के शब्दों में—

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥—मनुस्मृति २.२१८

जैसे फावड़े से खोदता हुआ मनुष्य जल को प्राप्त करता है वैसे ही गुरु की सेवा करनेवाला पुरुष गुरु से पाई हुई विद्या को प्राप्त होता है अर्थात् उसकी विद्या अधिकाधिक फलवती होती जाती है।

आचार्य की सेवा और आज्ञापालन परमतप और श्रेष्ठ धर्म है, अतः शिष्य के लिए वह सदा विधेय है—

अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ।—मनु० २.२४१

शिष्य जब तक पढ़े तब तक गुरु की आज्ञा का पालन और सेवा अवश्य करे।

युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ।—मनु० २.२४३

शरीर छूटने पर्यन्त आचार्य की प्रयत्नपूर्वक सेवा करे।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते ।
न तैरनभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥

—मनु० २.२२८-२२९

उन दोनों (माता-पिता) और आचार्य का प्रतिदिन हर समय प्रिय कार्य करता रहे। इन तीनों के सन्तुष्ट होने में ही सब तप पूर्ण हो जाता है।

आचार्य, माता और पिता इन तीनों की सेवा करना ही श्रेष्ठ तप कहा गया है। इनकी अनुमति के बिना अन्य किसी धर्म का आचरण न करे।

आचार्य-सेवा न केवल परम तप और परम धर्म ही है अपितु यह शिष्य को मोक्ष-प्रापक भी है—

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते॥२३३॥
त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥२३७॥

—मनुस्मृति २.२३३, २३७

इस पृथिवीलोक को माता की सेवा करने से, मध्यम आकाशलोक को पिता की सेवा करने से और गुरु की सेवा करने से मोक्ष को प्राप्त करता है।

इन तीनों की सेवा करने से ही पुरुष के सब कर्त्तव्य पूर्ण हो जाते हैं। यही पुरुष का साक्षात् सर्वश्रेष्ठ धर्म है। अन्य सभी धार्मिक कार्य इसकी अपेक्षा गौण धर्म हैं।

गुरुदक्षिणा : कृतज्ञता व सम्मान

समावर्त्तन अर्थात् शिक्षा-समाप्ति के अवसर पर गुरु के प्रति कृतज्ञता और सम्मान प्रकट करने के लिए 'गुरु-दक्षिणा' का प्राचीन विधान था। महाकवि कालिदास विरचित 'रघुवंश' काव्य में आचार्य वरतन्तु के शिष्य कौत्स ने राजा से माँगकर भी गुरुदक्षिणाव्रत पूर्ण किया। ऋषि दयानन्द ने भी अपने गुरु आचार्य विरजानन्द सरस्वती को गुरुदक्षिणा में लौंग से भरा थाल भेंट किया। इस विषय में भगवान् मनु की व्यवस्था है—

न पूर्वं गुरवे किंचिदुपकुर्वीत धर्मवित्।
स्नास्यंस्तु गुरुणाऽऽज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत्॥२४५॥
क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम्।
धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत्॥२४६॥

—मनुस्मृति २.२४५-२४६

विधि का ज्ञाता शिष्य स्नातक बनने की इच्छा होने पर गुरु से आज्ञा प्राप्त कर शक्ति के अनुसार गुरु के लिए दक्षिणा प्रदान करे, समावर्त्तन से पूर्व नहीं।

शिष्य यथाशक्ति भूमि, सोना, गाय, घोड़ा, छाता, जूता, आसन, अन्न, वस्त्र, अथवा शाक गुरु के लिए प्रीतिपूर्वक दक्षिणा में दे।

स्नातक होने पर गुरुकुल से विदा होने का संस्कार समावर्त्तन-संस्कार है।

ऐसे स्नातक का भी आचार्यकुल में तथा घर पहुँचने पर अर्घ्य, पाद्य, आसन तथा मधुपर्क से ज्येष्ठ लोगों द्वारा सम्मान प्रकट करने की व्यवस्था आश्वलायन गृह्य-सूत्र में दी गई है। आचार्य मनु (मनुस्मृति ३.३ में) आचार्य को भी 'उत्तम आसन पर बैठा, पुष्पमाला पहनाकर प्रथम गोदान देने तथा तत्पश्चात् यथाशक्ति वस्त्र, धन आदि देकर' सत्कार करने का आदेश देते हैं। इन दोनों व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि, समावर्त्तन-प्रकरण में अपनी सम्मति निम्न प्रकार प्रकट की है—

"तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के माता-पिता आदि जब वह आचार्य-कुल से अपना पुत्र घर को आये उसको बड़े मान-प्रतिष्ठा, उत्साह, उत्सव से अपने घर पर ले आवें। घर पर लाके उनके माता-पिता, सम्बन्धी, बन्धु आदि ब्रह्मचारी का सत्कार करने के लिए पाद्य अर्थात् पग धोने और अर्घ्य अर्थात् आचमन करने के लिए जल देकर शुभ आसन पर बैठावें। दही, मधु और घी इन तीनों को मिला-कर एक सुन्दर पात्र में ब्रह्मचारी के आगे धरें। उसका आघ्राण ब्रह्मचारी करे।

"पुन: उस संस्कार में आये हुए आचार्य आदि को उत्तम अन्न-पानादि से सत्कारपूर्वक भोजन कराके और वह ब्रह्मचारी और उसके माता-पितादि आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा पूर्वोक्त प्रकार मधुपर्क कर सुन्दर पुष्पमाला, वस्त्र, गोदान, धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति देके सबके सामने आचार्य के जो उत्तम गुण हों उनकी प्रशंसा कर और विद्यादान की कृतज्ञता सबको सुनावे—

'सुनो भद्रजनो ! इन महाशय आचार्य ने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। जिसने मुझको पशुता से छुड़ा उत्तम विद्वान् बनाया है। उसका प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इसके बदले मैं अपने आचार्य को अनेक धन्यवाद दे नमस्कार कर प्रार्थना करता हूँ कि जैसे आपने मुझको उत्तम शिक्षा और विद्यादान देके कृतकृत्य किया, उसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों को भी कृतकृत्य करेंगे और जैसे आपने मुझको उत्तम विद्या देके आनन्दित किया है वैसे मैं भी अन्य विद्यार्थियों को कृतकृत्य और आनन्दित करता रहूँगा और आपके किये उपकार को कभी न भूलूंगा।'

धन्य हैं वे परिवार जहाँ आचार्यदेव (गणेश) के प्रति इस प्रकार कृतज्ञता और सम्मान प्रकट किया जाता है और उनका हृदय से पूजन-सत्कार किया जाता है।

४. शिव–अतिथि, विद्वान् धार्मिक सत्योपदेष्टा

पंचदेवों में चतुर्थ देवता हैं शिव और चेतन देवों में हैं अतिथि। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा है—

अतिथिदेवो भव।—तैत्तिरीयोपनिषद् १·११·१·५

अतिथि को देवता मानकर उसकी पूजा (सेवा) करो।

अतिथि : स्वरूप व विशेषताएँ

शिव ही अतिथि हैं इसकी मीमांसा करने से पूर्व 'अतिथि' के स्वरूप व गुणों की स्पष्टता आवश्यक है।

भारत में 'अतिथि-सत्कार' सदा से प्रत्येक गृहस्थ का आवश्यक और पुनीत कर्त्तव्य रहा है। अतिथि को देवता या भगवान् का रूप मानने का विश्वास भारत में गाँव-गाँव के जनमानस में आज भी सुरक्षित है। किन्तु इस आस्था के कारण जहाँ एक ओर ढोंगी, पाखण्डी, छली साधु अतिथि-पूजा का अनुचित लाभ उठा रहे हैं वहाँ सत्यकर्मी, परोपकारी, विद्वान् अतिथि उपेक्षा के पात्र भी बन रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने इस कारण अतिथि-पूजा या अतिथि-यज्ञ का विधान करने से पूर्व सच्चे अतिथि का स्वरूप स्पष्ट किया है। पंचायतन पूजा के प्रसंग में वे लिखते हैं—

"चौथा अतिथि—जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहनेवाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सबको सुखी करता है उसकी सेवा करें।"

'संस्कार-विधि' में गृहाश्रम-प्रकरण के अन्तर्गत अतिथियज्ञ के सम्बन्ध में अतिथि के लिए वे कहते हैं—

"जो धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपात-रहित, शान्त, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त होना 'अतिथि यज्ञ' कहलाता है, उसको नित्य किया करें।"

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पंचमहायज्ञान्तर्गत भी अतिथियज्ञ-विधान में ऋषि के ऐसे ही विचार हैं।

सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास में भी ऋषि दयानन्द ने पाँच महायज्ञों का वर्णन किया है। वहाँ वे अतिथिसेवा के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"अतिथि उसको कहते हैं कि जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सबके उपकारार्थ सर्वत्र घूमनेवाला पूर्ण विद्वान्,

परमयोगी, संन्यासी गृहस्थ के यहाँ आवे तो उसको प्रथम पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तीन प्रकार का जल देकर पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बिठलाकर खान-पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा-शुश्रूषा कर उनको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्संग कर उनसे ज्ञान-विज्ञान आदि जिनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे-ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और अपना चाल-चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रक्खे। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं।"

स्वामी समर्पणानन्दजी (पं० बुद्धदेव विद्यालंकार) ने 'पंचयज्ञ प्रकाश' में केवल संन्यासी को ही अतिथि कहा है, अन्य तो अतिथिवत् पूज्य हैं—

"अतिथि शब्द का वास्तविक अर्थ परिव्राजक अथवा संन्यासी है—अतति सततं गच्छति।"

भगवान् मनु ने अतिथि का लक्षण निम्न किया है—

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥—मनुस्मृति ३.१०२

विद्वान् व्यक्ति जो एक ही रात्रि तक पराये घर में रहता है उसे अतिथि कहते हैं। क्योंकि जिस कारण से वह नित्य नहीं ठहरता है अथवा जिसका आना अनिश्चित होता है इसी कारण उसे अतिथि कहा जाता है।

पूना-प्रवचन (१४३) में ऋषि दयानन्द ने मनु की उपर्युक्त परिभाषा का समर्थन किया है—

"जिसके आगमन की कोई नियत तिथि न हो और स्थिति भी जिसकी अनियत हो वह अतिथि कहलाता है। अतिथि-यज्ञ का अधिकारी वही है जो विद्वान् हो एवं जिसका आना-जाना और ठहरना अनियत हो। वह चाहे किसी वर्ण का हो उसकी सेवा करना यह एक श्रेष्ठ कर्म है।"

सारांश रूप में अतिथि की विशेषताएँ निम्न हैं—

१. जिसके आगमन और घर में रहने की स्थिति अर्थात् समय अनियत हो।
२. परमयोगी
३. पूर्ण विद्वान्
४. धार्मिक
५. सत्योपदेशक
६. निष्कपटी
७. सबकी उन्नति चाहनेवाला
८. उपकारार्थ सर्वत्र भ्रमणशील
९. संन्यासी-परिव्राजक।

इनमें से प्रथम विशेषता उसके 'अतिथि' नाम में निहित है अर्थात् उसे कहीं भी एक स्थान पर घर बनाकर अधिक दिनों तक नहीं रहना चाहिए। ऐसा

करने से उस स्थान-विशेष या व्यक्ति-विशेष में उसे आसक्ति न होगी और निरन्तर भ्रमण करते रहने से अन्य देश व स्थानों के व्यक्ति भी उससे लाभ प्राप्त कर सकेंगे। इसीलिए 'संन्यासी' को अतिथि-सत्कार प्राप्त करने का अधिकारी माना गया है।

शिव (अतिथि) के प्रतीक

अतिथि के स्वरूप की जो विशेषताएँ प्रतिपादित की गई हैं वे सब शिव में सहज रूप से प्राप्त हैं। अतः शिव वास्तव में अतिथि के प्रतीक हैं और अतिथि-पूजा ही शिव-पूजा है।

पौराणिक शिव की जो भी प्रतिमूर्ति कल्पित की गई है वह इस सर्वहितकारी, निष्कपटी, पूर्ण विद्वान्, धार्मिक, परमयोगी अतिथि के रूप में पूर्णरूप से घटित होती है। पौराणिक कल्पना के अनुसार शिव कैलास पर रहते हैं। हिमालय की पुत्री उमा से उनका विवाह हुआ है। दायें हाथ में त्रिशूल तथा बायें में डमरू धारण किये हैं। सिर पर गंगा है। मस्तक पर अर्धचन्द्र है। नेत्र तीन हैं। सवारी नान्दिया अर्थात् वृषभ है। गले में मुण्डमाल है। वे बाघाम्बर धारण करते हैं। सर्पों का यत्र-तत्र बन्धन है। देवों के कष्ट दूर करने के लिए उन्होंने स्वयं विषपान कर नीलकण्ठ का नाम पाया है, आदि-आदि।

यह परमयोगी सर्वहितकारी अतिथि ही वास्तव में सच्चा शिव है।

शिव कैलासवासी हैं। यह कैलास क्या है? अमरकोश-व्याख्या (रामाश्रमी-टीका पृष्ठ ३५) के अनुसार—

के+लस्=कैलास। 'क' से 'लस् श्लेषण-क्रीडनयोः धातु से इसकी सिद्धि होती है।' 'कम् इति जलम् ब्रह्म वा तस्मिन् के जले ब्रह्मणि लासः लसनमस्य इति कैलासः'। यहाँ पाणिनि के सूत्र 'हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' (६.३.९) से सप्तमी का अलुक् तथा 'तद्धितेष्वचामादेः' से 'के' के आदि 'ए' की वृद्धि होकर 'ऐ' और तस्यायं भावः भावार्थक 'लस्' में उपधा वृद्धि से 'कैलास' शब्द निष्पन्न किया गया है। इस व्याख्या के अनुसार इस शब्द का अर्थ हुआ--'क' अर्थात् ब्रह्म में क्रीड़ा करने का जिसका स्वभाव हो। यहाँ 'क' से तात्पर्य ब्रह्म या ब्रह्मजल से है, क्योंकि 'क' नाम ब्रह्म का है। परमयोगी उस ब्रह्मजल में सदा अनुरक्त रहता है, उसी में उसकी क्रीड़ा है। यह ब्रह्म-क्रीड़ा ही उसका स्वभाव बन गया है। परम आनन्द की प्राप्ति होने से वह कैलास में सदा निवास किये रहता है। यही शिवरूप परमयोगी अतिथि का कैलास-वास है। पर्वत दृढ़ता का प्रतीक है अर्थात् अपने इस व्रत में वह दृढ़ रहता है।

शिव त्रिनेत्र हैं। यह तीसरा नेत्र उनके मस्तक पर स्थित है जो ज्ञाननेत्र है। इसी नेत्र से वे कामरूप महाशत्रु का दमन करते रहते हैं। सामान्य व्यक्तियों

का यह नेत्र या तो होता ही नहीं अथवा होता है तो बन्द रहता है। किन्तु परम-योगी शिव इस ज्ञाननेत्र को खोलकर कामवासना को भस्मशेष कर देते हैं अर्थात् उनका मस्तिष्क विशुद्ध विचारों से परिपूर्ण रहता है। वे कभी कामासक्त होकर अनाचार नहीं करते। इसलिए वे परम धार्मिक भी हैं।

शिव त्रिशूलधारी हैं। त्रिशूल=तीन शूल अर्थात् तीन कष्ट। ये तीन प्रकार के दु:ख—आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक—के प्रतीक हैं। ये तीनों कष्ट शूल के समान कष्टदायक होने से त्रिशूल हैं। परमयोगी अतिथि शिव योगसाधना से इन तीनों दु:खों के त्रिशूल को अपनी दायीं मुट्ठी में कर लेता है अर्थात् तीनों उसके वश में हो जाते हैं, अतः वह घूम-घूमकर अन्य सांसारिक जनों के इन कष्टों को दूर भी करता रहता है।

शिव के दूसरे हाथ में 'डमरू' है। यह 'डमरू' शब्द संस्कृत दमरू का अपभ्रंश है जो दो शब्दों से बना है—दम (दमन)+रुः (ध्वनि) अर्थात् दमन—संयम-रूप ध्वनि। शिवरूप अतिथि के प्रत्येक कार्य में दमन-(संयम)-रूप ध्वनि व्यक्त होती रहती है—उसका जीवन महान् संयमी होता है।

शिव के मस्तक पर गंगा का निवास है। मस्तकवर्ती यह गंगा ज्ञानगंगा है। किसी कवि ने कहा भी है—

जब ज्ञान की गंगा में नहाया,
तब मन में क्लेश जरा न रहा।

इस अतिथि को पूर्ण विद्वान् और ज्ञानवान् कहा गया है, क्योंकि उसके मस्तिष्क में ज्ञान-गंगा हिलोरें मारती है। इस ज्ञानगंगा को अपने तक सीमित न रखकर वह संसार के भले के लिए प्रवाहित करता रहता है। इसलिए वह परोप-कारी भी है। वह भेदभाव भूलकर सबका भला करता है। वह अतिथि ही क्या जो निष्कपटी और परोपकारी न हो!

शिव के सिर पर दूज का चन्द्रमा निवास करता है। यह द्वितीय का चन्द्रमा जितना प्यारा, आशा का प्रतीक व सौम्य होता है उतना पूर्णिमा का चन्द्रमा भी नहीं होता। योगी अतिथि इन सभी विशेषताओं को शिरोधार्य किये रहता है।

शिवरूप योगी अतिथि के चारों ओर भयंकर विषधर लिपटे रहते हैं। ये विषधर—काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, पक्षपात आदि हैं जिन्हें वह अन्तःकरण से बाहर निकाल फेंकता है। ये भयंकर विषधर अथवा इनसे पूर्ण यह संसार उसके चारों ओर उसे लपेटे रखता है, पर निरासक्त होने से उसकी इनसे कोई हानि नहीं हो पाती।

शिव भयंकर हलाहल पान करने से नीलकण्ठ हैं। ये योगी अतिथि भी संसार के कष्टों का स्वयं पान करने से विषपायी नीलकण्ठ हैं। ये मनुष्यों पर आनेवाली बड़ी-से-बड़ी कठिनाई को स्वयं झेल जाते हैं और उन्हें अभय बना देते हैं।

योगी का वास (वेषभूषा) बाघाम्बर है और शिव का भी। शिव गले में मुण्डमाल धारण किये रहते हैं और योगी भी। 'मुण्डमाल' उसके अतीत जन्मों का प्रतीक है जिनको वह जानता गया है अपने गले में उनकी माला बनाकर धारण किये रहता है। किसी भी व्यक्ति की पहचान उसके सिर से होती है, क्योंकि योगी ने अनेक जन्म धारण किये हैं, अतः उसके ये जन्म मुण्ड न होकर मुण्डमाल हैं। अतीत जन्मों को योग द्वारा जानना ही मुण्डमाल धारण करना है। गीता में योगेश्वर कृष्ण कहते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥—गीता ४.५

हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत जन्म व्यतीत हो चुके हैं जिन्हें मैं तो जानता हूँ किन्तु तू नहीं जानता।

शिव शरीर पर भस्म लपेटे रहते हैं। योगी अतिथि का भी शरीर पर भस्म-लेपन से सम्बन्ध है। प्रत्येक योगी शरीर की चरम परिणति भली-भाँति अनुभव करता है—

भस्मान्तँ शरीरम्।—यजुर्वेद ४०.१५

यह शरीर अन्त में भस्म हो जानेवाला है, अतः वह शरीर को आत्मा पर लिपटी भस्म ही समझता है, उससे आसक्त नहीं होता। यही उसका भस्म-लेपन है।

शिव की सवारी नादिया या वृषभ है। इस योगी अतिथि की सवारी भी यही है। 'नादिया' नाद का अपभ्रंश है। नाद ध्वनि को कहते हैं और सर्वश्रेष्ठ ध्वनि प्रणव (ओंकार) है। यह उसके लिए 'वृषभ'—वृषभो वर्षणात् अर्थात् सुखों की वर्षा करनेवाला है। परमयोगी अतिथि का स्वयं का जीवन उस प्रणवध्वनि में सदा लीन रहता है—यही उसकी नादिया वृषभ की सवारी है।

शिव ने 'उमा' से विवाह किया है। इस उमा का स्वरूप-ज्ञान केनोपनिषद् से प्राप्त होता है—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम
बहु शोभमानामुमां हैमवतीम्।—केनोपनिषद् ३.१२

उस आकाश में उसे एक स्त्री दिखाई पड़ी जिसका नाम 'उमा' था, जो हैमवती और बहुत शोभमाना थी।

शोभमाना हैमवती उमा ही हिमालय-पुत्री पार्वती है। वह उमा इसलिए है—'उ ब्रह्म मीयते ज्ञायते यया सा ब्रह्मविद्या उमा।'—जिससे ब्रह्म जाना जाए वह ब्रह्मविद्या 'उमा' है। प्रकाशवती होने से वह 'हैमवती' और 'बहुशोभमाना' है। योगी अतिथि इसी हैमवती उमा से पाणिग्रहण करता है अर्थात् वह ब्रह्मविद्या को प्राप्त कर ब्रह्म तक पहुँचने या ब्रह्मप्राप्ति में सफल होता है।

शिव कल्याणरूप है। अतिथि भी कल्याणव्रती होता है। वेद में उसे 'मयोभव' और 'मयस्कर' (कल्याणकारी) नाम दिया गया है—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः
शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।

—यजुर्वेद १६.४१

दूसरों का कल्याण करना और उन्हें सुख पहुँचाना यह शिव अतिथि का परम स्वभाव है। ऋषि दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समुल्लास में) 'शिव' शब्द का निर्वचन करते हुए लिखते हैं—"'शिवु कल्याणे' इस धातु से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है।"

निरुक्त में महर्षि यास्क ने 'शेव' और 'शिव' दोनों शब्दों को एक मानकर उनकी निरुक्ति निम्न प्रकार से दी है—

"शेव इति सुखनाम। शिष्यतेर्वकारो नामकरणोऽन्तस्थान्तरोपलिंगी विभाषितगुणः शिवमित्यप्यस्य भवति।।—निरुक्त दैवतकाण्ड १०.१७

शेव, शिव=सुख। 'शेषति हिनस्ति दुःखमिति शेवः शिवो वा। हिंसार्थक भ्वादिगणी 'शिव' धातु से 'व' प्रत्यय और षकार का लोप होने से वकार षकार के स्थान पर आ जाता है। यहाँ गुणभाव विकल्प से है। गुण होने पर 'शेव' और गुणाभाव में 'शिव' रूप होता है। तात्पर्य यह है कि 'शेव' और 'शिव' दोनों शब्दों का अर्थ सुख है। सबको सत्संग और सत्योपदेश द्वारा सुख पहुँचाना इस शिवरूपी अतिथि का प्रथम कर्त्तव्य है। आचार्य मनु और दयानन्द दोनों ने ही अतिथि का प्रधान कर्त्तव्य गृहस्थों को अपने सदुपदेश द्वारा उनका कल्याण करना और उन्हें सुख पहुँचाना बताया है जो उसके 'शिव' नाम की सार्थकता को प्रतिपादित करता है।

शिव का अपर नाम 'रुद्र' भी है। रुद्रदेवतात्मक एक मंत्र में 'अम्बिका' को उसकी 'स्वसा' कहा है—

एष ते रुद्र भागः
सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा।—यजु० ३.५७

इस मंत्र के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने 'अम्बिका' पद का अर्थ वाणी या वेदवाणी और 'स्वसा' का अर्थ उत्तम विद्या वा क्रिया किया है। तात्पर्य यह है कि रुद्र या शिव वाणी तथा विद्या के अधिपति हैं। पौराणिक शिव के सम्बन्ध में भी मान्यता यह है कि वे शब्दशास्त्र के आदि-आचार्य हैं। पाणिनि व्याकरण के आधारभूत १४ सूत्र 'माहेश्वर (शिव) सूत्र' कहे जाते हैं। यह शिवरूप अतिथि भी पूर्ण विद्वान् होने से वाणी का स्वामी है—यह भी दोनों में अविशेषता है। ऐसे शिव परमयोगी अतिथि का साक्षात् उदाहरण महर्षि परमयोगी दयानन्द स्वयं हैं।

शिव-(अतिथि)-पूजा : महिमा और लाभ

इस शिव-पूजा या अतिथि-सत्कार की महिमा और लाभों का विस्तार से वर्णन भी वेद, मनुस्मृति, सत्यार्थप्रकाश जैसे ग्रन्थों में किया गया है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तब तक उन्नति भी नहीं होती। उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। बिना अतिथियों के सन्देह-निवृत्ति नहीं होती। सन्देह-निवृत्ति के बिना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चय के बिना सुख कहाँ ? —सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

मनुस्मृति में अतिथि-पूजन के चार लाभ बताये गये हैं—

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम् ॥

—मनुस्मृति ३.१०६

जिस पदार्थ को अतिथि को नहीं खिलावे उसे गृहस्थ स्वयं भी न खावे अर्थात् जैसा स्वयं भोजन करे वैसा ही अतिथि को भी दे। अतिथि का सत्कार करना सौभाग्य, यश, आयु और सुख को देने और बढ़ानेवाला है।

अथर्ववेद में कहा है—

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥

—अथर्ववेद ९.६.२५

वह व्यक्ति निष्पाप हो जाता है जिसका अन्न अतिथि भक्षण करते हैं।

अथर्ववेद में ही अन्यत्र भी अतिथि-सत्कार की महिमा वर्णित है—

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥१॥
ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥२॥—अथर्ववेद १५.१३.१-२

ऐसा विद्वान् व्रात्य (व्रती अतिथि) जिसके घर में एक रात्रि निवास करता है वह पृथिवीस्थित समस्त लोकों को प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार अगले मंत्रों में कहा है कि विद्वान् व्रात्य अतिथि के दूसरी रात निवास करने पर अन्तरिक्षवर्ती, तृतीय रात्रि निवास करने पर द्युलोकवर्ती, चतुर्थ रात्रि रहने पर पुण्यों के भी पुण्यलोकों को गृहस्थ प्राप्त कर लेता है और जिस गृहस्थ को अपने घर में अपरिमित रात्रियों तक विद्वान् अतिथियों के निवास का सौभाग्य प्राप्त होता है वह गृहस्थ अपरिमित पुण्यलोकों को सहज प्राप्त कर लेता है।

संक्षिप्त रूप में अतिथि-सत्कार के निम्न लाभ हैं—

१. पाखण्ड-विनाश

२. सहज ज्ञान की प्राप्ति
३. सन्देह-निवृत्ति द्वारा दृढ़ निश्चयपूर्वक सुख-लाभ
४. सौभाग्य-वृद्धि
५. यश-विस्तार
६. दीर्घ-आयु
७. पुण्य-प्राप्ति

प्रसिद्ध सन्त दादु के एक शिष्य हुए हैं—सन्त रज्जब जी। उन्होंने अतिथि-सत्कार से क्या प्राप्त होता है इस सम्बन्ध में कहा है—

साधू सदनि पधारते सकल होंहि कल्यान।
रज्जब अघ उडुगन दुरहिं पुनि प्रगटै ज्यों भान।।

साधुजन जब अतिथि बनकर घर पधारते हैं तब गृहस्थों का सम्पूर्ण कल्याण होता है। पाप-नक्षत्र छिप जाते हैं और पुण्यों का भानु उदय हो जाता है।

आचार्य (गणेश) और अतिथि (शिव) में अन्तर और सम्बन्ध क्या है? पौराणिक कल्पना में ये दोनों पुत्र-पिता हैं, क्योंकि दोनों समानव्रती हैं। अथर्ववेद (३-३०-२) के अनुसार पुत्र पिता का अनुव्रती होता है। दोनों का समान व्रत क्या है? आचार्य और अतिथि दोनों का ज्ञान-विस्तार तथा विद्यावृद्धिरूपव्रत एक-समान है। आचार्यपूजा से शिष्य को अपने जीवन में जिस प्रकार सहज ज्ञान की प्राप्ति, सन्देह-निवृत्ति, दृढ़-निश्चय, सौभाग्य, यश, दीर्घायु की प्राप्ति तथा पुण्य-लाभ होते हैं उसी प्रकार गृहस्थ को भी विद्वान् अतिथि की सेवा से यही लाभ प्राप्त होते हैं। अन्तर केवल एक है। आचार्य-पूजा का लाभ प्राप्त करने के लिए शिष्यों को आचार्य-कुल में जा आचार्य से दीक्षा प्राप्त करनी होती है और वह चौदह या अधिक वर्षों तक आचार्य की सेवा कर उनसे ज्ञान और सच्चरित्र का अर्जन करता है। गृहस्थ के पास इतना समय नहीं कि वह ज्ञान-निमित्त आचार्य-चरणों में उपस्थित हो सके, क्योंकि उसे अपना ही नहीं अपितु ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी का भरण-पोषण भी अपनी आजीविका द्वारा करना होता है। ऐसे सद्व्रती गृहस्थ को समय-समय पर शिव=अतिथि के रूप में उपस्थित इन ज्ञानी, महात्मा, परमयोगी संन्यासियों से मार्ग-दर्शन प्राप्त होता है। गृहस्थ उनके पास नहीं अपितु वे अतिथि उस गृहस्थ की कल्याण-कामना से यथावसर उसके पास उपस्थित होते हैं, अतः उनकी सेवा का अवसर प्राप्त न कर यदि वह इन लाभों से वंचित ही रहा तो उसे सुख, सौभाग्य, यश, आयु, पुण्य-प्राप्ति, धर्मलाभ, मार्ग-दर्शन कैसे प्राप्त हो सकेगा? इस कारण वह अतिथि-सेवा को अपने जीवन का परम सौभाग्य समझता है, अतः जो अतिथि गृहस्थ के यहाँ भोजन व सत्कार तो प्राप्त करते हैं किन्तु अपने सदुपदेश तथा सत्संग द्वारा उस परिवार को लाभान्वित नहीं करते, वे अतिथि भी सच्चे अतिथि नहीं हैं। वे अपने कर्त्तव्य से

पराङ्मुख हो अश्रद्धा के पात्र भी बनते हैं।

अतिथि-सत्कार की परम्परा भारत में बहुत प्राचीन है। राम स्वयं भक्त भीलनी तथा भरद्वाज ऋषि के तपोवन में अतिथि के रूप में पधारे थे। अतिथि सुदामा का जो सत्कार योगिराज कृष्ण ने किया था वह इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ बन गया है जिस घटना को नरोत्तमदास जैसे कवियों ने 'सुदामा चरित' के रूप में उपस्थित कर हिन्दी के महाकवि का पद प्राप्त किया। स्वयं कृष्ण ने भी विदुर के यहाँ अतिथिरूप में शाक-पात तथा कदली फल खाकर परम सन्तोष का अनुभव किया था। राजा अश्वपति के यहाँ उद्दालक आदि ऋषि अतिथि बनकर ही उपस्थित हुए थे। कठोपनिषद् में बालक नचिकेता अतिथि बनकर आचार्य यम के घर उपस्थित हुए। यम के घर पर उपस्थित न होने से नचिकेता तीन रात्रि-पर्यन्त भूखे-प्यासे द्वार पर ही बैठे रहे। लौटने पर यम को बड़ा पश्चात्ताप अनुभव हुआ। यम की पत्नी तथा मंत्रियों ने उन्हें परामर्श देते हुए कहा—

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥

—कठोपनिषद् १.१.७

ब्राह्मण अतिथि होकर अग्निरूप ही घरों में प्रवेश करता है। साधु पुरुष उस अतिथि की अर्घ्य, पाद्य, दानरूपा शान्ति किया करते हैं, अतः हे वैवस्वत! इस ब्राह्मण अतिथि की शान्ति के लिए जल ले आइए।

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे॥

—कठोपनिषद् १.१.८

जिसके घर में ब्राह्मण अतिथि विना भोजन किये रहता है उस मन्दबुद्धि की ज्ञात और अज्ञात वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छाएँ, उनके संयोग से प्राप्त होनेवाले फल, प्रिय वाणी से होनेवाले फल, यागादि इष्ट एवं उद्यानादि पूर्तकर्मों के फल तथा समस्त पुत्र और पशु आदि को वह नष्ट कर देता है।

कठोपनिषद् के अनुसार अतिथि नचिकेता को तीन रात्रियों के बदले तीन वरों से यम ने सन्तुष्ट किया।

प्रवंचक अतिथि : एक सावधानी

आधुनिक युग में ठग, वंचक, धूर्त, ढोंगी, अतिथिवेषधारी साधु-संन्यासियों से आये दिन जो हानि हो रही है वह किसी से छुपी नहीं है। विशेष रूप से घर की देवियाँ सोने के आभूषण दुगुने होने तथा अन्य प्रलोभनों में शीघ्र आ जाती हैं। ये साधु घरों में प्रायः उस समय आते हैं जब गृहस्वामी किसी कार्य अथवा आजीविका से घर से बाहर गये हुए होते हैं। जगज्जननी भगवती सीता

जैसी देवियाँ भी जब अतिथिरूप में आये 'साधु' रावण के छल में आ सकती हैं तो अन्यों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। प्रत्येक युग और काल में ऐसे प्रवंचक सदा से रहे हैं। संस्कृत कवि गुणाढ्य ने अपनी 'बृहत्कथा' में ऐसी ही एक मनोरंजक कथा का उल्लेख किया है—

किसी नगर के समीप एक बाबा कुटिया बनाकर अपने शिष्यों सहित रहा करते थे। वे 'मौनी बाबा' नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध थे। यहाँ तक कि नगर में भिक्षाटन भी वे मौन रहकर ही किया करते थे। प्रतिदिन की भाँति उस दिन भी वे नगरसेठ के यहाँ भिक्षार्थ गये। उस समय सेठ-सेठानी किसी आवश्यक कार्य में संलग्न थे, अतः उन्होंने अपनी युवती पुत्री को भिक्षा प्रदान करने द्वार पर भेजा। मौनी बाबा का मन उस कन्या के रूप को देखकर विचलित हो गया। उनके मुख से उस समय सहसा निकला—"यह 'विपत्ति' कहाँ से आ गई ?"

सेठजी को जब यह पता चला कि मौनी बाबा ने अपना मौन व्रत तोड़कर किसी भावी विपत्ति की भविष्यवाणी की है तो वे बहुत घबराये। बाबा के पास जाकर निवेदन किया—

"बाबा ! आप सिद्धपुरुष हैं। भविष्यद्रष्टा हैं। संसार की कल्याण-कामना से सबको आगामी आपत्ति से सावधान करनेवाले हैं, अतः मेरी विपत्ति भी आप दूर करें।"

बाबा ने बात बदलते हुए कहा—

"विपत्ति तुम्हारे कारण नहीं, तुम्हारी कन्या के कारण है। जब इसका विवाह होगा तब घर के सब लोग तड़प-तड़पकर मर जाएँगे।"

"इसका कोई उपाय तो होगा महाराज !" सेठजी ने बड़ी विनम्रता दिखाते हुए प्रश्न किया।

" उपाय सबका है।" बाबा ने तनिक गम्भीर होकर कहा—

"इसे लकड़ी के एक सन्दूक में बन्द कर रात में नदी में प्रवाहित कर दो। उस सन्दूक में दो-तीन छिद्र रख देना जिससे इसे साँस आता रहे तथा एक दीपक भी प्रज्वलित कर उस सन्दूक पर रख देना। न यह लड़की तुम्हारे पास रहेगी और न तुम्हें कोई मुसीबत ही आएगी।"

सेठजी ने उसी रात ऐसा ही किया। कन्या बहुत रोई, अनुनय-विनय की, किन्तु कोई प्रभाव नहीं हुआ। उधर नदी-विहार के लिए उस देश का राजकुमार नदी-किनारे वहीं आ निकला जहाँ वह सन्दूक नदी में बहा जा रहा था। सन्दूक को देखकर राजकुमार ने अपने सेवकों से उसे नदी से बाहर निकलवाया। खोलने पर उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि उसमें एक नवयुवती कन्या बन्द थी। कन्या ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर राजकुमार ने उस कन्या से गान्धर्व विवाह कर लिया और उसे अपनी राजधानी भिजवा दिया। किन्तु उस सन्दूक में

सेवकों द्वारा एक मोटा बन्दर जंगल से पकड़वा बन्द कर दिया तथा उस सन्दूक को पुनः उसी प्रकार प्रज्वलित दीपसहित नदी में प्रवाहित कर दिया। उधर मौनी बाबा ने अपने शिष्यों को भेजकर उस सन्दूक को नदी से निकलवाया और अपनी कुटिया में रखवा दिया। सब शिष्यों को बाबा ने यह आदेश दिया कि 'आज रात मैं अपनी कुटिया में एक तांत्रिक प्रयोग करूँगा, अतः रात में कोई मेरी कुटिया के पास न रहे।'

रात्रि को एकान्त में बाबा ने उस सन्दूक को खोला। सन्दूक खुलते ही कई घण्टों से बन्द रहने से परेशान और क्रोधित बन्दर ने बाहर निकल उस बाबा को नोच-नोच लहूलुहान कर दिया और पुनः जंगल में भाग गया। वह ढोंगी प्रवंचक बाबा बदनामी के डर से वहाँ से अन्यत्र कहीं चला गया।

गुणाढ्य की कथा तो यहाँ समाप्त हो गई, किन्तु यह कथा वास्तव में यहीं समाप्त नहीं हुई है। आज भी ऐसे ढोंगी बाबा घूम-घूमकर आतिथ्य-सत्कार की आड़ में कितने ही घरों को बरबाद कर रहे हैं जिनसे सदा सावधान और सजग रहने की आवश्यकता है।

आचार्य मनु ने ऐसे दुष्ट, पाखण्डी, वैडाल-वृत्ति साधुओं का वाणिमात्र से भी सत्कार न करने के लिए कहा है—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥

—मनुस्मृति ४.३०

सत्यार्थप्रकाश (चतुर्थ समुल्लास) तथा संस्कारविधि (गृहाश्रम प्रकरण) में ऋषि दयानन्द ने उपर्युक्त मनु के श्लोक की विस्तार से व्याख्या की है—

"पाखण्डी, वेदनिन्दक, नास्तिक जो ईश्वर, वेद और धर्म को न मानें, अधर्माचरण करनेहारे, हिंसक, शठ, मिथ्याभिमानी, कुतर्की और बकवृत्ति अर्थात् पराये पदार्थ हरने वा बहकाने में बगुले के समान अतिथिवेषधारी बनके आवें उनका वचनमात्र से भी सत्कार गृहस्थ कभी न करे।"

—संस्कार-विधि (गृहाश्रमप्रकरण)

शिव-(अतिथि)-पूजा : विधि

अतिथि-यज्ञ या अतिथि-सत्कार की विधि अत्यन्त सरल और सीधी है जिसका वर्णन अथर्ववेद, मनुस्मृति तथा सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में हुआ है।

सत्यार्थप्रकाश (चतुर्थ समुल्लास) के अनुसार—

१. प्रथम पाद्य (पदप्रक्षालनार्थ जल), अर्घ्य (मुख धोने का जल) और आचमनीय (आचमन जल) तीन प्रकार का जल देना चाहिए।

२. पश्चात् सत्कारपूर्वक आसन पर बैठाना चाहिए।

३. खान-पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा-शुश्रूषा कर उनको प्रसन्न करना चाहिए।

४. सत्संग द्वारा उनसे प्रश्नोत्तर कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षप्रापक ज्ञान-विज्ञानपूर्ण उपदेशों का श्रवण करना चाहिए तथा उपदेशानुसार चाल-चलन भी रखना योग्य है।

मनु महाराज कहते हैं—

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम्।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम्॥

—मनुस्मृति ३.१०७

जब गृहस्थ के समीप अतिथि आवें तब आसन, निवास, शय्या, पश्चात्-गमन और समीप में बैठना आदि सत्कार जैसा का वैसा अर्थात् उत्तम का उत्तम, मध्यम का मध्यम और निकृष्ट का निकृष्ट करे।

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥

—मनुस्मृति ३.९९

आये हुए अतिथि के लिए व्यवहारोचित विधि के अनुसार सत्कार करें। शक्ति के अनुसार आसन, जल तथा अन्न भी प्रदान करें।

अथर्ववेद के ९वें तथा १५वें काण्डों में विद्वान् व्रात्य अतिथि के सेवा-सत्कार का विस्तार से वर्णन है। यहाँ अतिथि-भोजन से पूर्व भोजन करने का प्रत्येक गृहस्थ के लिए निषेध किया गया है—

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो
नाश्नीयात्। अशितावत्यतिथावश्नीयाद्
यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम्॥

—अथर्ववेद ९.६.३७-३८

श्रोत्रिय अतिथि से पूर्व भोजन न करें।

अतिथि के भोजन करने के बाद भोजन करें।

यज्ञ की अविच्छिन्नता तथा स्वात्मकता के लिए यही व्रत है।

उस विद्वान् व्रात्य अतिथि का सत्कार कैसे करें इस विषय में भी अथर्ववेद का आदेश है—

तद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं
व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु
व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति॥

—अथर्ववेद १५.११.१-२

जिस गृहस्थ के घर में ऐसा विद्वान् व्रात्य अतिथि बनकर आये तब स्वयं उठकर उसका सत्कार करे और सादर निवेदन करे—'हे व्रात्य ! यह जल ग्रहण करें। व्रात्य ! आपने अबतक कहाँ निवास किया ? व्रात्य ! आप तृप्त हों। आपको जो प्रिय हो वैसा करें। आपकी जो कामना या इच्छा हो वह पूर्ण हो।'

एक विचारणीय स्थल

अथर्ववेद में इसी अतिथि-सत्कार के प्रसंग में एक मन्त्र आया है जिसमें 'मांस' शब्द का निर्देश है। इस सम्बन्ध में विद्वानों में 'मांस' शब्द के अर्थ के विषय में बड़ा मतभेद है। इस शब्द का सुन्दर अर्थ-विवेचन प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य विश्वश्रवा जी ने 'वेदवाणी' (अंक नवम्बर १६८६) में किया है। अथर्ववेद का मन्त्र निम्न है—

एतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं
क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात्।

—अथर्ववेद ६.६.३६

यह जो स्वादिष्ट गौ से प्राप्त होनेवाला दूध या अन्य 'मांस' पदार्थ हैं उन पदार्थों को भी अतिथि से पूर्व कोई न खाये।

इस मन्त्र में आचार्य विश्वश्रवा 'मांस' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहते हैं—'मांसो मनोऽस्मिन् सीदति'—मन को प्रिय लगनेवाला पदार्थ। उपर्युक्त मन्त्र में 'मांस' शब्द का प्रसिद्ध लौकिक अर्थ मांस नहीं है अपितु गोदुग्ध से बना कोई भी प्रिय लगनेवाला पदार्थ है। इसी कारण गोदुग्ध के साथ उसकी गणना की गई है। अतः उपर्युक्त मन्त्र का अर्थ होगा —

"स्वादुतर पदार्थ गोदुग्ध और मन को प्रिय लगनेवाला गोदुग्ध से बना स्वादिष्ट पदार्थ (पेड़ा आदि) अतिथि से पूर्व नहीं खाना चाहिए।

अतिथिपूजा : पूजक की मनोवृत्ति

अतिथि-सत्कार के विषय में अथर्ववेद के अनुसार एक विशेष सावधानी की भी आवश्यकता है। अतिथि को भोजन करते समय यह ध्यान भी रखना चाहिए—

स य एवं विद्वान्न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न
मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य।—अथर्ववेद ६.६.२४

जिसका अन्न खाये, द्वेष करता हुआ न खाये। जो द्वेष से अन्न खिलाता हो उसका अन्न भी न खाये। जिसके विषय में मन में सन्देह हो कि वह भला आदमी है अथवा नहीं, उसका अन्न न खाये। जो तुम्हारे विषय में उलझन में पड़ा है कि खिलाऊँ या न खिलाऊं, उसका भी न खाये।

भोजन के विषय में ऐसी सावधानी विशेष आवश्यक है क्योंकि भोजन में

केवल भोजन ही नहीं अपितु खाने-खिलानेवाले की भावना का भी मन पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

प्रेम का भोजन और प्रेमपूर्ण अतिथि-सत्कार शिवरूप अतिथि की पूजा का मुख्य आधार है। प्रसिद्ध नीतिग्रन्थ 'पंचतन्त्र' में कितना सुन्दर कहा है—

एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं, कस्मात् चिरात् दृश्यसे ?
का वार्ता ह्यतिदुर्बलोऽसि, कुशलं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ।।

अतिथि के घर पधारने पर बड़े प्रेम से निवेदन करना चाहिए—

"आइए अतिथि महोदय! इस आसन पर विराजिए। क्या कारण है कि आज इतने दिनों पश्चात् आपके दर्शन सुलभ हो सके हैं? क्या बात है (देर से दर्शनों के कारण) आप अति दुर्बल-से प्रतीत हो रहे हैं? सब प्रकार से कुशल तो है? आपके शुभ दर्शनों से मन बाग-बाग (अति प्रसन्न) हो रहा है।'

ऐसा आदर और प्रेमपूर्ण अतिथि-सत्कार वास्तव में पूजा का स्थान प्राप्त कर लेता है और 'महायज्ञ' पद-प्राप्ति का अधिकारी होता है।

५. सूर्य : पति-पत्नी-पूजा

सूर्यदेव : पतिदेव

पंचदेवों में पाँचवाँ और अन्तिम देवता सूर्य है। कोणार्क (उड़ीसा) में सूर्य-मन्दिर के अतिरिक्त भारत में कहीं इसका मन्दिर नहीं है और न ही इसकी विग्रहवान् मूर्ति स्थापित की गई है। सूर्य वैदिक देवता है। पूर्ण ब्रह्मचारी की संज्ञा 'आदित्य' है। आदित्य सूर्य का पर्यायवाची है। छान्दोग्योपनिषद् का वचन है—

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदं सर्वमाददते। —छान्दोग्य ३.१६.५

ऋषि दयानन्द इस कारिका का अर्थ करते हुए लिखते हैं—

"अब ४८ वर्ष पर्यन्त जैसा कि ४८ अक्षर का जगती छन्द होता है वैसे इस उत्तम ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या, पूर्णबल, पूर्णप्रज्ञा, पूर्ण शुभगुण-कर्म-स्वभावयुक्त सूर्यवत् प्रकाशमान होकर ब्रह्मचारी सब विद्याओं को ग्रहण करता है।"

—संस्कारविधि, वेदारम्भप्रकरण

इस आधार से सूर्य पूर्ण ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेशेच्छु वर का रूप है। सूर्यवत् ही वह प्रकाशक, जीवनदाता, अविद्यान्धकार का विनाशक, दर्शनीय, सुन्दर, धैर्यवान्, मर्यादाशील, गतियुक्त और तेजस्वी होता है।

यास्क मुनि निरुक्तशास्त्र में 'सूर्य' का निर्वचन निम्न प्रकार करते हैं—

सूर्यः सर्तेर्वा सुवतेर्वा स्वीर्य्यतेर्वा ।

—निरुक्त दैवतकाण्ड १२.१४

'सूर्य' शब्द सृ गतौ, षू प्रेरणे अथवा सु-उपसर्गपूर्वक ईर् प्रेरणे धातु से क्यप् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। जो गतिशील तथा प्रेरक है वह 'सूर्य' है।

विवाह-संस्कार में ऋषि दयानन्द ने एक मन्त्र प्रस्तुत किया है जिसे बोलकर वर प्रतिज्ञा करता है—

द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।—पार० १.६.३

हे वधू! तू पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करनेहारी है और मैं वर्षा करनेहारा 'सूर्य' हूँ। हम दोनों प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें। इस मन्त्र के प्रमाण से भी 'सूर्य' पति का पर्याय और प्रतीक है।

मनु कहते हैं 'ऐसे सूर्य पतिदेव की पूजा करना प्रत्येक साध्वी स्त्री का कर्त्तव्य है'—

उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ।—मनु० ५.१५४

वाल्मीकि रामायण में तपस्विनी ऋषिपत्नी अनसूया सीता से कहती है—

स्त्रीणामार्यस्वभावनां परमं दैवतं पतिः ।

—वा० रामायण, अयोध्याकाण्ड ११७.२४

आर्य्य स्वभाववाली स्त्रियों के लिए उनका पति ही परम देवता है।

सूर्य्या : पत्नी देवी

यदि पति 'सूर्य' है तो उस सूर्य की किरणों से उद्भासित ज्योतिरूपा पत्नी सूर्या है। आचार्य यास्क के अनुसार—

सूर्या सूर्यस्य पत्नी ।—निरुक्त दैवतकाण्ड १२.७

—सूर्य की पत्नी सूर्या है।

अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड में ६४ और ७५ मन्त्रोंवाले विवाह-विषयक दो सुदीर्घ सूक्त हैं जिनका देवता 'सूर्यासावित्री' है। उन्हें 'सूर्यासूक्त' भी कहा जाता है। इन सूक्तों के सभी मन्त्रों में सूर्यारूप में पत्नी की विशेषताओं और कर्त्तव्यों को कहा गया है। इस आधार पर भी 'सूर्या' पत्नी है और 'सूर्य' इस सूर्या का पति है। जिस प्रकार पत्नी के लिए पति देववत् पूज्य है, उसी प्रकार पति के लिए भी स्वपत्नी पूजनीया है। ऋषि दयानन्द ने परस्पर पति-पत्नी-पूजा को ही सच्ची वेदोक्त देवपूजा (पंचायतन पूजा, सूर्यपूजा) कहा है। 'पूजा' शब्द को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—"यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि 'पूजा' शब्द का अर्थ सत्कार है और दिन-रात में जब-जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब-तब प्रीतिपूर्वक 'नमस्ते' एक-दूसरे से करें।" —सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

सूर्य-सूर्या-सम्बन्ध

'सूर्य' और 'सूर्या' का सम्बन्ध वैदिक गृहस्थ का आधार है। इस आश्रम में रहकर जब दोनों एक-दूसरे का सम्मान और सत्कार करते हैं तब वही सूर्य-सूर्या-पूजा है। यह सम्बन्ध विवाह द्वारा स्थापित होता है। विवाह का अर्थ है—वि+वाह (वहन) अर्थात् विविध कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए किया जानेवाला सम्बन्ध। यह दो जीवनों और आत्माओं का अभिन्न मिलन है। 'संस्कारविधि' में विवाह संस्कार के प्रारम्भ में 'विवाह' का अर्थ स्पष्ट करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

" 'विवाह' उसको कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत, विद्या, बल को प्राप्त होके सब प्रकार से शुभ गुण, कर्म, स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त होके निम्न लिखित प्रमाणे सन्तानोत्पत्ति और अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिए स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध सन्तानोत्पत्ति के अर्थ होता है।"

सूर्य और सूर्या का यह सम्बन्ध स्थापित तो इसलिए किया गया था कि लम्बी जीवन-यात्रा में एकाकी मानव थक न जाए, उकता न जाए। लम्बी यात्रा में साथी साथ हों तो यात्रा सुगम बन जाती है। पुरुष और स्त्री इसी प्रकार के साथी हैं। किन्तु मध्यकाल में गृहस्थ के विषय में धारणा ही बदल गई। शंकर, कबीर, तुलसी आदि की धारणाएँ इसका प्रमाण हैं। तुलसी इस सम्बन्ध को एक बन्धन कहते हैं—

तुलसी गाय बजाय कै देत काठ में पाँव।

वेद की दृष्टि इस धारणा से सर्वथा विपरीत है। अथर्ववेद (१४.२.६) में इसे 'सुगं तीर्थं' तथा अन्यत्र (अथर्व० ४.३४.३ में) 'विष्टारी ओदन' विशेषण देकर इसे स्वर्गतुल्य कहा है। यजुर्वेद में भी इस गृहस्थ को भय का नहीं, आनन्द का क्षेत्र कहा गया है—

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥

—यजुर्वेद ३-४१

इस मन्त्र के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है—हे गृहस्थ लोगो! तुम विधिपूर्वक गृहाश्रम में प्रवेश करने से मत डरो, मत कम्पायमान होओ। अन्न, पराक्रम तथा विद्यादि शुभ गुणों से युक्त होकर गृहाश्रम को धारण करते हुए तुम लोगों को हम सत्योपदेशक विद्वान् लोग प्राप्त होते और सत्योपदेश करते हैं और अन्न-पानासन-स्थान से तुम्हीं हमारा निर्वाह करते हो। इसलिए तुम्हारा गृहाश्रम व्यवहार में निवास सर्वोत्कृष्ट है।"

विवाह-संस्कार में वर-वधू ऋग्वेद के इस मन्त्र का सम्मिलित पाठ करते

हैं जिसमें यह सम्बन्ध दो मिलाये गये जलों के समान अभिन्न बताया है—

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ।।

—ऋग्वेद १०-८५-४७

मनुस्मृति में इस आश्रम को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहा है—

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः सत्रीनेतान् बिभर्त्ति हि ।।

—मनुस्मृति ६-८९

वेद और स्मृति के प्रमाण से सब आश्रमों में गृहाश्रम श्रेष्ठ है, क्योंकि यही आश्रम ब्रह्मचारी आदि तीनों आश्रमों का धारण और पालन करता है।

पद्मपुराण की दृष्टि में—

गृहाश्रमः पुण्यतमः सर्वदा तीर्थवत् गृहम्।

यह आश्रम पुण्यतम और तीर्थवत् है।

संस्कृत कवि के विचार से—

संयोगः श्रेष्ठदम्पत्योर्महापुण्यैरवाप्यते।
यत्रान्योन्यसुखासक्तौ द्वावेकहृदयौ स्थितौ।।

वैवाहिक जीवन में श्रेष्ठ पति-पत्नी का संयोग महापुण्य का फल है। उसमें पति-पत्नी एकहृदय होकर परस्पर सुख-सम्पादन में ही रत रहते हैं। दोनों का हृदय एक होता है।

पक्षी यथा स्वपक्षाभ्यां विपदुल्लंघने क्षमः।
अन्योन्यपक्षायती दम्पती सुखमाप्नुतः।।

जैसे पक्षी अपने दोनों पंखों से आकाश पार करने में समर्थ होते हैं वैसे ही पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे का आश्रय लेकर जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

धन्योऽसौ आश्रमो यत्र दम्पती परहेतवे।
परस्पर सुखायापि स्यातामात्मसमर्पकौ।।

वह गृहस्थाश्रम धन्य है जिसमें पति-पत्नी परस्पर सुख और हित के लिए एक-दूसरे के प्रति आत्म-समर्पण कर देते हैं और घर में आये लोगों के सुख और हित के प्रति सतत तत्पर रहते हैं।

चक्रे द्वे रथ एकः स्यात्, नेत्रे द्वे लक्ष्यमेककम्।
कपाटौ द्वौ द्वारमेकं, द्वौ देहौ हृदयैकता।।

जैसे रथ के चक्र दो किन्तु रथ एक है, नेत्र दो किन्तु दृष्टि तथा लक्ष्य एक है, किवाड़ दो किन्तु द्वार एक ही रहता है, वैसे ही पति-पत्नी देह में दो किन्तु हृदय से एक होते हैं।

विधत्तारौ शक्तिमन्तौ पृथक् चेन्निष्क्रियावुभौ।
यत्रापि स्यायोत्तर्योगः स क्रियावान् भवेद् ध्रुवम् ॥

बिजली के दोनों तार जब एक-साथ रहते हैं तभी उनमें शक्ति का संचार होता रहता है; यदि वे पृथक्-पृथक् कर दिये जाएँ तो निष्क्रिय हो जाते हैं। उसी प्रकार गृहस्थ पति-पत्नी जब एकचित्त होकर रहते हैं तभी सब कार्यों को सफलतापूर्वक निष्पादन करने की क्षमता उनमें रहती है।

वीणातन्त्र्यौ यत्र युते, मधुरं तत्र गीयते।
दम्पत्योरपि हृत्तन्त्र्यौ संगते मधुगायतः ॥

वीणा के तार यदि मिलकर बजें तो गीत मधुर होता है। ऐसे ही यदि दम्पती के हृदय की वीणा के तार मिलकर बजें तो गृहस्थ जीवन मधुर गीत का रूप ले लेता है।

आचार्य चाणक्य का परामर्श है—

साधोः संगमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।

वह गृहस्थाश्रम धन्य है जहाँ निरन्तर साधु-संगम के रूप में सतसंग प्राप्त होता रहता है।

महर्षि दयानन्द स्वयं ब्रह्मचारी और साधु-संन्यासी रहे। फिर भी अपने ग्रन्थों में उन्होंने गृहस्थाश्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की है—

"जितना कुछ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहस्थाश्रम है। जो यह गृहस्थाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से होते? जो कोई गृहस्थाश्रम की निन्दा करता है वह ही निन्दनीय और जो प्रशंसा करता है वह ही प्रशंसनीय है।"

—सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

"गृहस्थाश्रम संस्कार उसको कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुख-प्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना।"

—संस्कारविधि, गृहाश्रम संस्कार

"गृहस्थाश्रम=सत्य+संयम+सेवा।" —विनोबा भावे

"विवाह आत्म-विकास की परिपूर्णता के लिए होता है।" —महात्मा गांधी

वैदिक काल से लेकर भारत में सदा गृहस्थ की महिमा रही है। पौराणिक त्रिदेवों ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राजाओं में अश्वपति, समस्त रघुवंशी नरेश, राम और कृष्ण, विदेह जनक, योगियों और सन्तों में महर्षि याज्ञवल्क्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, कबीर, गुरु नानक, माताओं में मन्दालसा, मैत्रेयी, सीता, सावित्री, द्रौपदी, रुक्मणी आदि सभी गृहस्थी रहे हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस से एक उपन्यायाधीश ने पूछा—

"क्या गृहस्थी को तत्त्वज्ञान हो सकता है ?"

रामकृष्ण ने उत्तर दिया—

"गृहस्थी को प्रभुदर्शन और तत्त्वज्ञान दोनों हो सकते हैं। जब भगवान् के नाममात्र से रोमांच हो जाए और प्रेम के आँसू बहने लगें, तब समझो वह ईश्वर से दूर नहीं है।"

गृहस्थ के इस सुख की प्राप्ति का साधन सूर्य और सूर्या-पूजा अर्थात् सत्कार है। वह कैसे सम्भव है, इसके लिए दोनों का अलग-अलग विवेचन व विचार करना होगा।

(१) सूर्य-पूजा : पति-पूजा

स्त्री के लिए अपने पति का सदा सम्मान और सत्कार करना ही उसकी पूजा है। यह सुखी गृहस्थ का प्रथम आधार है। मनु कहते हैं—

पिता रक्षति कौमारे पति रक्षति यौवने।—मनुस्मृति ९.३

कुमारावस्था में स्त्री की रक्षा पिता करता है और युवावस्था में पति करता है। रक्षक होने से ही वह 'पति' है। ऐसे पति का महत्त्व नारी-जीवन में अनेक-विध है।

पति का महत्त्व

स्त्री के लिए पति का प्रथम महत्त्व यह है कि पति से ही वह सधवा, सौभाग्यवती और सौभाग्यशीला कही जाती है और पति के अभाव में उसकी संज्ञा 'विधवा' है। 'धव' शब्द का अर्थ है—पति। पतिसहिता सधवा तथा पति-विहीना विधवा होती है। विवाह-संस्कार में पाणिग्रहण की छह प्रतिज्ञाएँ हैं। प्रथम प्रतिज्ञा में वह कहता है—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।—ऋग्वेद १०.८५.३६

मैं ऐश्वर्य, सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। मुझ पति के साथ जरावस्था को तू सुखपूर्वक प्राप्त हो।

पति-विहीना विधवा समाज की सबसे अधिक दुःखी और अपमानित प्राणी है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने उसी भारतीय विधवा का एक करुण चित्र उपस्थित किया है—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीपशिखा-सी शांत भाव में लीन
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृतिरेखा-सी
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

वाल्मीकि रामायण तथा रामचरितमानस दोनों अमर महाकाव्य हैं। इन दोनों तथा अन्य ग्रन्थों में विविध प्रसंगों पर पति का महत्त्व प्रतिपादित है। वनगमन का दुःखद अवसर है। ऐसे शोक-अवसर पर पति का महत्त्व प्रतिपादित करती हुई सीता कहती है--

नातन्त्री विद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा।।

जिस प्रकार बिना तार की वीणा और बिना पहिये का रथ व्यर्थ है, उसी प्रकार पतिविहीना स्त्री व्यर्थ है। वह कोई सुख प्राप्त नहीं करती, चाहे वह सौ पुत्रों की माँ ही क्यों न हो।

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत्।।

—शुक्रनीति ४.६७-६८

पिता, भ्राता और पुत्र का दान अर्थात् उपकार एक सीमा में होता है किन्तु पति का दान और उपकार असीम है। इसलिए कौन समझदार नारी होगी जो अपने पति का आदर न करेगी!

पतिर्हि देवता नार्य्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियस्तस्मात् भर्तुः कार्यं विशेषतः।।

नारी का पति ही उसका देवता, बन्धु और गुरु है। इसलिए प्राणों से भी प्रिय स्वामी की विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए।

वनगमन से पूर्व राम अपनी माता कौसल्या को समझाते हुए कहते हैं—

भर्तुः पुनः परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः।
स भवत्या न कर्त्तव्यो मनसापि विगर्हितः।।

—वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड २४.१२

स्त्री के लिए पति-परित्याग सबसे नृशंस कार्य है। हे माता! आप मन से भी ऐसा अधम कार्य न करें।

जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च।

—वा० रा० अयो० २४.२१

स्त्री के जीते जी उसका पति ही स्वामी तथा देवता है।

वनगमन के समय भगवती सीता श्रीराम से कहती हैं—

शुद्धात्मन्प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा।
भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि परदैवतम्।।

—वा० रा० अयो० २९.१६

हे शुद्धात्मन्! आपके प्रेम व अनुसरण से मैं निष्पाप हो जाऊँगी, क्योंकि

नारी के लिए उसका पति ही परम देवता है।

न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा।।

—वा० रा० अयो० २७.६

इस लोक में या परलोक में न तो पिता, न पुत्र, न माता और न ही सखियाँ सहायक होती हैं। नारियों के लिए केवल उनका पति ही एकमात्र गति है।

प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते।।

—वा० रा० अयो० २७.९

चाहे महल हों या आकाशचारी विमान, सब अवस्थाओं में स्त्री के लिए पति-चरणों की छाया ही एकमात्र शरण है।

पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम्।
काममेवंविधं राम त्वया मम निदर्शितम्।।

—वा० रा० अयो० २९.७

पतिहीना नारी जीवित रहना ही नहीं चाहती। इसी प्रकार आर्य राम! मेरा जीवन भी तुम्हारे अभाव में इसी का एक उदाहरण होगा।

यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना।

—वा० रा० अयो० ३०.१८

आप (राम) के साथ रहना ही स्वर्ग है और आपका अभाव ही नरक है।

लंकावासिनी सीता के सम्बन्ध में हनूमान् कहते हैं—

भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते।।

—वा० रा० सुन्दरकाण्ड १६.२६

नारी के लिए पति उसका सर्वोच्च अलंकार है। यह सीता अपने उस पति से रहित है, अतः शोभायोग्य होते हुए भी शोभनीय प्रतीत नहीं होती।

वनवास के समय आर्य्या अनसूया भगवती सीता से पतिव्रत धर्म का उपदेश देते हुए कहती है—

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः।।२३।।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।।२४।।

—वा० रा० अयो० ११७.२३-२४

पति चाहे नगर में हो या वन में, शुभ अवस्था में हो या अशुभ, जिन स्त्रियों को अपना पति प्रिय है उनके सभी लोक महिमाशाली होते हैं।

आर्यस्वभावा स्त्रियों के लिए पति ही परम देवता है।

सीता उत्तर देते हुए कहती है—

विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः ॥२॥
किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः ॥४॥

—वा० रा० अयो० ११८.२, ४

मुझे भी यह ज्ञात है कि नारी का गुरु पति ही होता है।

यदि वह पति गुणी, विनम्र, जितेन्द्रिय, अनुरागी, धर्मात्मा हो तब तो माता-पिता के समान विशेष रूप से प्रिय है।

शुक्रनीति में कहा है—

न विद्यते पृथक् स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम्।—शुक्रनीति ४.४४

पति के अतिरिक्त स्त्रियों के लिए धमार्थकामरूप त्रिवर्ग की पूर्ति का अन्य साधन नहीं है।

पति-सम्मान का एक सुन्दर उदाहरण रामायण में बाली के मरने पर तारा का है। बाली के मृत शरीर को गोद में रख तारा विलाप कर रही है। उस समय उसे सान्त्वना देने के लिए हनूमान् जी कहने लगे—

"माता! तेरे पास अंगद जैसा गुणी और वीर पुत्र विद्यमान है, अतः अब अपने पुत्र के गुणों का विचार कर पति-वियोग के क्लेश का त्याग करें और धैर्य को धारण करें।

इसपर तारा ने उत्तर दिया—

अंगदप्रतिरूपाणां पुत्राणामेकतः शतम्।
हतस्याप्यस्य वीरस्य गात्रसंश्लेषणं वरम् ॥

—वा० रा० किष्किन्धाकाण्ड २१.१३

प्यारे हनूमन्! मेरे तो अंगद अकेला बेटा है। यदि अंगद जैसे सौ पुत्र भी हों तो भी पत्नी को पति का जो सहारा होता है और उससे जो आनन्द की अनुभूति होती है वह सैकड़ों पुत्रों से भी प्राप्त नहीं हो सकती।

गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' हिन्दुओं का प्राणप्रिय ग्रन्थ है। उसके अरण्यकाण्ड में अत्रि-पत्नी अनसूया सीताजी से पतिमहत्त्व तथा सेवा का बखान करती हुई कहती है—

मातु पिता भ्राता हितकारी, मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमितदानि भर्ता बयदेही, अधम सो नारि जो सेव न ताहि ॥

हे राजकुमारी! माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं किन्तु ये सब एक सीमा तक ही सुख देते हैं, परन्तु हे जानकी! पति तो असीम सुख देनेवाला है, अतः वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती।

इसी ग्रन्थ के अयोध्याकाण्ड में वनगमन के समय जब राम सीता से अयोध्या

में रहकर सास-ससुर की सेवा करने के लिए कहते हैं, तब सीता पति-वियोग की बात सुनकर ही व्याकुल होकर निवेदन करती है—

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं।
पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥

मैंने मन में यह अच्छी प्रकार समझकर देख लिया है कि पति के वियोग के समान जगत् में कोई दुःख नहीं है।

क्योंकि—

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई, प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई।
सासु ससुर गुर सजन सहाई, सुत सुन्दर सुसील सुखदाई।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते, पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू, पतिबिहीन सबु सोक समाजू।
भोग रोगसम भूषन भारू, जमजातना सरिस संसारू।
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं, मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी, तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

हे नाथ! माता, पिता, बहिन, प्यारा भाई, परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, बन्धु-बान्धव, सहायक सुन्दर सुशील और सुख देनेवाला पुत्र जहाँ तक स्नेह और नाते हैं पति के बिना स्त्री के लिए वे सभी सूर्य से बढ़कर तपानेवाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथिवी, नगर और राज्य पति के बिना स्त्री के लिए ये सब शोक का समाज है; भोग रोग के समान हैं; गहने भाररूप हैं और संसार नरक की पीड़ा के समान है। हे प्राणनाथ! आपके बिना जगत् में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है। जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी व्यर्थ है, वैसे ही बिना पुरुष के स्त्री का जीवन भी व्यर्थ है।

राम जैसे वीर पति को प्राप्त कर सीता का यह गर्व सर्वथा उचित है—

को प्रभुसंग मोहि चितवनिहारा?

पति के साथ रहते मेरी ओर आँख उठाकर देखनेवाला कौन है?

महाभारत में पांचाली और गान्धारी महान् पतिव्रता नारियाँ हुई हैं। पतिव्रता नारियों की प्रशंसा में गान्धारी कहती है—

योगेन शक्तिः प्रभवेन्नराणाम्
पातिव्रतेनापि कुलाङ्गनानाम्।

मनुष्य योग द्वारा जो शक्ति अर्जित करते हैं पतिव्रता कुलाङ्गनाओं को वह शक्ति पतिसेवा से प्राप्त हो जाती है।

महाभारत में इस सत्य का समर्थन एक कथा द्वारा किया गया है। जाजलि नामक एक महात्मा ने वन में एक वृक्ष के नीचे घोर तपस्या की। दीर्घ समय पश्चात् जब उन्होंने आँखें खोलीं तो वृक्ष की शाखाओं पर बैठे एक पक्षी-जोड़े

पर उनकी दृष्टि गई। दृष्टि-निक्षेपमात्र से पक्षियों का वह जोड़ा जलकर राख हो गया। महात्मा को मन में गर्वानुभूति हुई कि उन्हें योगसिद्धि हो गई है। भिक्षा के लिए नगर में एक सद्गृहस्थ के द्वार पर अलख जगाई। गृहस्वामिनी पति की सेवा में व्यस्त थी, अतः भिक्षार्थ द्वार पर उपस्थित होने में कुछ विलम्ब हुआ। महात्मा ने अपनी सिद्धि के अभिमान में आकर देवी को कुछ अपशब्द कहे। गृहदेवी ने सरल भाव से उत्तर दिया—"महात्मन्! पतिसेवा में संलग्न होने से आने में कुछ विलम्ब हुआ—क्षमा चाहती हूँ। किन्तु आप क्रोध कर हमें पक्षियों का जोड़ा समझने की भूल न करें।" महात्मा स्तब्ध थे कि इस देवी को पक्षी-युगल के भस्म होने की सूचना कैसे प्राप्त हुई? जिज्ञासावश बड़ी नम्रता से पूछा—"देवी! तुम्हारी सिद्धि निस्सन्देह महान् है। किन्तु गृहस्थ में रहते हुए ही तुमने यह सिद्धि कैसे प्राप्त की?" देवी ने उसी नम्रता से उत्तर दिया—"योगिराज! मेरे निकट मेरे पति ही परमेश्वर हैं। उनकी पूजा-सेवा ही मेरे लिए सबसे बड़ी प्रभु-पूजा है। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानती। यदि अधिक जानने की इच्छा हो तो अमुक स्थान पर तुलाधार वैश्य से जाकर पूछें।"

समाज में यह सुविदित है कि पति की प्रतिष्ठा में ही पत्नी की प्रतिष्ठा है। सीता की प्रतिष्ठा राम से, रुक्मणी की महानता कृष्ण से, सावित्री की प्रतिष्ठा सत्यवान से तथा गान्धारी का गौरव धृतराष्ट्र की सेवा से ही प्रतिष्ठित हुआ है। पति यदि महान्, उच्चपदासीन, गौरवशाली, गुणी, वीर, विद्वान्, साधक, जपी, तपी, नायक है तो पत्नी भी स्वतः वैसी ही महान् कही और समझी जाती है, यहाँ तक कि लोकव्यवहार में प्रयोग भी वैसा ही होने लगता है। डॉक्टर की पत्नी डॉक्टरनी है चाहे उसने डाक्टरी पढ़ी भी न हो। मास्टर की पत्नी मास्टरनी है चाहे उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर ही क्यों न हो। इसी प्रकार वकील की पत्नी वकीलनी, दर्जी की पत्नी दर्जन, कलेक्टर की पत्नी कलेक्टरनी, यहाँ तक कि आचार्य की पत्नी आचार्याणी कही जाती है। इसी कारण पाणिनि को संस्कृत-व्याकरण में 'आचार्या' और 'आचार्याणी' दोनों शब्दों में अन्तर करना पड़ा। जो स्वयं आचार्य-पद पर स्थित हो वह आचार्या है और जो आचार्य का काम न कर केवल आचार्य-पत्नी हो वह पाणिनि के अनुसार 'आचार्याणी' कही जाती है।

•

सूर्यपूजा : पतिसेवा

किसी विचारक ने ठीक ही कहा है—

"संसार में तीन वस्तुएँ बड़ी दुर्लभ हैं—(१) विश्वासी मित्र, (२) आज्ञाकारी पुत्र, तथा (३) सेवाभावी पत्नी।"

लोकप्रसिद्धि के अनुसार मनुष्य के लिए प्राप्तव्य चार सुख हैं—

पहला सुख नीरोगी काया, दूजा सुख घर में हो माया।
तीजा सुख सतवन्ती नारी, चौथा सुख सुत आज्ञाकारी॥

उस पति का जीवन धन्य है जिसे पतिव्रता सेवाभावी पत्नी प्राप्त हो। नारी-जीवन की सार्थकता भी पति के सेवा-सत्कार, अभिवादन तथा आज्ञापालन में निहित है। यही 'सूर्यपूजा' है।

प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्य को देखकर उसे भगवत्-तेज का प्रतीक मानकर प्रत्येक ईश्वर-भक्त उसके प्रति नमन करता है—

पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।—ऋग्वेद ६.५२.५

हम उदय होते हुए सूर्य के सदा दर्शन करते रहें।

उदय होता सूर्य नव आभा, नव सौन्दर्य, नव चेतना, नव समारम्भ और नवजीवन प्रदान करता है। यह ज्योतियों में उत्तम ज्योति है—

सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।—यजुर्वेद ३५.१४

यह स्थावर-जंगम सबकी आत्मा है—

सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।—यजुर्वेद १३.४६

यह सर्वचक्षु है—

तच्चक्षुर्देवहितम्।—यजुर्वेद ३६.२४

विवाह के पश्चात् नारी जब पत्नी बनती है तब यह पति-सूर्य उसके गृहस्थ जीवन में उदय होता है—वही सन्देश, वही आशा, वही प्रभा, वही सौन्दर्य, वही चेतना, वही समारम्भ, वही आदान और वही तेज धारण करके, अतः वह उसे बारम्बार नमस्कार करती है।

ऋषि दयानन्द ने दिन और रात में जब-जब प्रथम मिलें या पृथक् हों, पति-पत्नी को एक-दूसरे के प्रति प्रीतिपूर्वक अभिवादन तथा नमस्ते करने के लिए कहा है। आचार्य मनु (मनुस्मृति ५.१५४) ने भी पत्नी द्वारा पति की देववत् पूजा (सेवा-सत्कार) करने की प्रेरणा दी है। यही नारी का पतिव्रत धर्म है। सीता, सावित्री, गान्धारी, अहल्या, अनसूया, द्रौपदी, शारदा, भामती आदि जिन नारियों ने भी इस धर्म का निर्वाह किया, वे संसार में यश की अधिकारिणी बनीं। मनु कहते हैं—

यस्मैदद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमतेः पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत्॥

—मनुस्मृति ५.१५१

पिता अपनी पुत्री का जिसके साथ विवाह करे अथवा पिता की सहमति से भाई जिससे विवाह कर दे उसकी जीते जी खूब सेवा करे और पत्नीरूप में कभी पति के अनादर आदि से अपने पतिव्रत धर्म का उल्लंघन न करे।

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥१५५॥

पा ाहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
: म भीप्सन्ती नाचरेत् किंचिदप्रियम् ।।१५

—मनुस्मृति ५.१५५,१५६

स्त्रियों के लिए पति से भिन्न न कोई यज्ञ है न कोई व्रत है और न किसी उपवास ही का विधान है। पति की सेवा से ही पत्नी स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करती है।

पतिलोक की चाहना कर वाली पतिव्रता स्त्री जीवित या मृत पति के प्रति कुछ भी अप्रिय आचरण न करे।

प ि या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ।।

—मनुस्मृति ५.१६५

जो स्त्री मन, वाणी और शरीर को संयम में रखकर पति के विरुद्ध आचरण नहीं करती वह पतिलोक अर्थात् पति के हृदय में आदर का स्थान प्राप्त करती है और श्रेष्ठ लोग उसे पतिव्रता कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में पति-सेवा पत्नी का सबसे बड़ा धर्म कहा है। अपनी माता कौसल्या से राम कहते हैं—

भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत्।
भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ।।

—वा० रा०, अयो० २४.२६

जो स्त्री अपने पति के अनुकूल आचरण नहीं करती वह पापगति प्राप्त करती है; और पति की सेवा में रत नारी को उत्तम स्वर्ग (सुख) प्राप्त होता है।

सीता-अनसूया-संवाद में भी ऋषि-पत्नी अनसूया सीता से कहती है—

पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते।

—वा० रा०, अयो० ११८.९

हे आर्य्या! पति-सेवा से बढ़कर स्त्री के लिए अन्य कोई तप नहीं है।

भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी
यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि।।

—वा० रा०, अयो० ११७.२९

अपने स्वामी की सहधर्मचारिणी बनकर हे सीते! तू यश और धर्म को अवश्य प्राप्त करेगी।

रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में भी अनसूया-सीता-संवाद के अन्तर्गत सीता से अनसूया ने स्त्रीधर्म का वर्णन किया है—

"धैर्य, धर्म, मित्र अर पत्नी इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। पति के अत्यन्त दीन-हीन होने पर भी उसका अपमान करने से स्त्री नरक के भाँति-भाँति के दुःख अनुभव करती है। शरीर, वचन और मन से पति के

चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिए बस यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है"—

एकहि धर्म एक व्रत नेमा।
कार्य बचन मन पति-पद प्रेमा।।

"जगत् में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में यह भाव बसा रहता है कि जगत् में मेरे पति के अतिरिक्त दूसरा पुरुष मेरे स्वप्न में भी नहीं है। मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को ऐसे देखती है जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो। निम्न श्रेणी की स्त्री वह है जो धर्म का विचार कर अपने कुल की मर्यादा में अपने को रखती है। चौथी और अधम स्त्री वह है जो मौका न मिलने या भयवश पतिव्रता बनी रहती है।" अतः—

बिनु श्रम नारि परम गति लहई।
पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई।।

जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत धर्म को ग्रहण करती है वह बिना परिश्रम परमगति को प्राप्त करती है।

सूर्य पति : योग्यता, गुण व विशेषताएँ

वेद तथा अन्य शास्त्रों में सूर्य पति की योग्यता, वरणीयता, व्यवहार तथा गुणों का विस्तृत वर्णन है, क्योंकि वरणीय (वरेण्य) सविता (सूर्य) ही सूर्या (पत्नी) का उपास्य बन सकता है।

सूर्य पति की पहली विशेषता है—पूर्ण ब्रह्मचर्य द्वारा परिपुष्ट शरीर, बुद्धि की गम्भीरता, बल और शक्ति, सूर्य के समान ओज और तेज का धनी। अथर्ववेद के मन्त्र में गृहस्थ-अधिकारी ब्रह्मचारी की इसी विशेषता का वर्णन है—

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम्।।

—अथर्ववेद ४.३४.२

गृहस्थ का अधिकारी वह है जो शरीर से बलशाली (मन्त्र की शब्दावली में—शरीर में जिसकी हड्डियाँ-ही-हड्डियाँ न दिखाई दें) हो, पवित्र मन और प्राणायाम से विशुद्धगात्र हो ऐसा व्यक्ति शुचिलोकों को प्राप्त होता है जहाँ उसे कामवासना पीड़ित नहीं करती।

ऐसे ओजस्वी वर का मन से वरण करती हुई कन्या कहती है—

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्।

—ऋग्वेद १०.१८३.१

मैंने तुझे मन से जान लिया है कि तू तप (पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत) से उत्पन्न हुआ है और तपरूप ही है।

यजुर्वेद में भगवान् उपदेश देते हैं—

ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा।

गृहानैमि मनसा मोदमानः॥—यजुर्वेद ३.४१

मनस्वी, मेधावी और ओजस्वी बनकर प्रसन्न मन से इस गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो।

अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र में भी वर की इन्हीं विशेषताओं का विशेष रूप से वर्णन है—

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।

गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत्॥

—अथर्ववेद ७.६०.१

ऊर्ज अर्थात् बल और प्राणशक्ति को धारण करता हुआ, धन-सम्पत्ति को सम्यक् बाँटनेवाला, मेधावी, प्रसन्नमन, अक्रोधी और स्नेहसिक्त नेत्रयुक्त मैं गृहस्वामी यथोचित विधि से छोटे-बड़ों का सत्कार तथा मान करता हुआ गृहवासियों को प्राप्त होता हूँ। हे गृहवासियो! मेरे साथ तुम सब आनन्द-प्रसन्न रहो, मुझसे डरो मत!

यजुर्वेद में गृहस्वामी कहता है—

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते।—यजुर्वेद २.२७

मैं सूर्य के आवृत (धुरी) का अनुवर्तन करता हूँ, अर्थात् जैसे सूर्य अपनी धुरी पर घूमता हुआ सर्वत्र प्रकाश विकीर्ण करता है, वैसे ही इस आश्रम में सूर्य बनकर मैं तेज तथा प्रकाशयुक्त हो सर्वत्र प्रकाश का प्रसार करता हूँ।

आचार्य मनु ने गृहाश्रम-प्रकरण में प्रत्येक प्रवेशार्थी गृहस्थ की कुछ विशेषताओं का वर्णन किया है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।

अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥—मनुस्मृति ३.२

ऋषि दयानन्द इस श्लोक का अर्थ करते हुए लिखते हैं—

"जब यथावत् ब्रह्मचर्य आचार्यानुकूल वर्तकर धर्म से चारों, तीन व दो अथवा एक वेद को सांगोपांग पढ़के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो वह पुरुष व स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे।" —सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

प्राचीनकाल में सांगोपांग वेदाध्ययन ही पूर्ण विद्याध्ययन समझा जाता था। आज भी विभिन्न ज्ञान-विज्ञान का अर्जन और सम्पादन प्रथम आयु का प्रधान कर्त्तव्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त इहलौकिक और पारलौकिक अथवा सांसारिक सुख और मुक्ति का आनन्द गृहस्थ में वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जो शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से सर्वतः हृष्टपुष्ट, सक्षम और कुशल हो। ऐसे कितने ही उदाहरण हैं जिन्होंने ब्रह्मचर्यकाल में यह योग्यता प्राप्त नहीं की,

अतः गृहस्थ में जाकर उन्हें निराश हो आत्महत्या तक के लिए विवश होना पड़ा। मनु कहते हैं—

सः संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥

—मनुस्मृति ३.७९

"हे स्त्री-पुरुषो ! जो तुम अक्षय मुक्तिसुख और इस संसार के सुख की इच्छा रखते हो तो दुर्बलेन्द्रिय और निर्बुद्धि पुरुषों के धारण करने योग्य जो नहीं है उस गृहाश्रम को नित्य प्रयत्न से धारण करो।"

—संस्कारविधि, गृहाश्रमप्रकरण

ऋषि दयानन्द 'विवाह' के अर्थ की स्पष्टता में कहते हैं—

"विवाह उसको कहते हैं जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत, विद्या, बल को प्राप्त होके........।"

सूर्यपति की **दूसरी प्रमुख विशेषता** है--धनार्जन की क्षमता। यदि गृहस्थ में समुचित धन की व्यवस्था समुचित साधनों से पति नहीं कर पाता तो उसका घर दुःख का स्थान हो जाता है। यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

यस्य पार्श्वे टका नास्ति हा टका हा टकायते।

गृहस्थ के सभी कार्य, यहाँ तक कि यज्ञयागादि धार्मिक अनुष्ठानों के लिए भी धन नितान्त आवश्यक होता है। इसीलिए विवाह-सम्बन्ध निश्चित करने में इस बात का विशेष विचार किया जाता है कि वर में धनार्जन की इतनी क्षमता है या नहीं कि वह अपनी गृहस्थी को सुचारु रूप से चला सके।

विवाह-संस्कार में पाणिग्रहण के समय वर छह प्रतिज्ञाएँ करता है। उसमें उसकी तीसरी प्रतिज्ञा है—

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।—अथर्ववेद १४.१.५२

सब जगत् का पालन करनेहारे परमात्मा ने जिस तुझको मुझे दिया है यही तू जगत् में मेरी पोषण करने योग्य पत्नी बने।

पत्नी और परिवार का सम्यक् पालन-पोषण तभी सम्भव है जब घर में धन की पर्याप्त व्यवस्था हो। 'सप्तपदी' में पति-पत्नी दोनों 'रायस्पोषाय'—ऐश्वर्यजन्य पुष्टि के लिए ही मिलकर तीसरा चरण रखते हैं। धनार्जन पति का कार्य है तो उसकी व्यवस्था पत्नी के अधीन है, अतः पति का कर्त्तव्य है कि वह जो भी कमाये उसे घर में माँ हो तो माँ, अन्यथा पत्नी के हाथ पर लाकर रख दे। माँ अपने बेटे की उस कमाई पर प्रसन्नता तथा गर्व अनुभव करती है। 'यह निरन्तर बढ़ती रहे' अपनी इस भावना के साथ वह अपनी बहू को सौंप देती है। यह छोटा-सा एक सूत्र है जिससे घरों में कितना सुख और आनन्द बढ़ सकता है—यह सत्य केवल अनुभवगम्य है, कथनमात्र नहीं।

अथर्ववेद के निम्न मन्त्रों में भी गृहस्थ में न्यायोचित धन की उपयोगिता तथा आवश्यकता का वर्णन है—

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तऋते श्रिता।

—अथर्ववेद १२.५.१

'हे स्त्री-पुरुषो ! मैं ईश्वर तुमको आज्ञा देता हूँ कि तुम सब गृहस्थ मनुष्य लोग परिश्रम तथा तप (प्राणायाम) से संयुक्त, वेदविद्या, परमात्मा और धनादि से भोगने योग्य धनादि के प्रयत्न में और यथार्थ पक्षपातरहित न्यायरूप धर्म में चलनेहारे सदा बने रहो।' (ऋषि दयानन्द)

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध॥

—अथर्ववेद ३.१५.५

हे दिव्य शक्तियो ! धन के द्वारा धन की वृद्धि चाहता हुआ मैं जिस धन से व्यापार करता हूँ वह मेरा धन बढ़ता चला जाए, कभी कम मत हो। हे प्रकाश-स्वरूप ! लाभ की नाशक प्रवृत्तियों को हवि से परे हटा।

धन की गृहस्थ में आवश्यकता के सम्बन्ध में महात्मा आनन्द स्वामी जी ने अपनी पुस्तक 'सुखी गृहस्थ' में लिखा है—

"धन कमाना और उसका उचित व्यय करना गृहस्थ के सुख को बढ़ा देता है। गृहस्थी के लिए तो धन की बड़ी भारी आवश्यकता है। किन्तु धनलोभ में अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाते न चले जाओ। जितनी कम जरूरतें होंगी उतना ही सुखी परिवार होगा।"

धनार्जन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह न्यायोचित साधनों से अर्जित हो। आधुनिक युग में यह केवल कोरा आदर्श ही कहा जाता है जिससे सिवाय दुःख के और कुछ प्राप्त नहीं होता। आज दृष्टिकोण ही बदल गया है। आवश्यकता-वृद्धि के साथ-साथ धन-वृद्धि की कामना भी बढ़ती जाती है। पहले का मनुष्य पाप की कमाई से दूर रहता था क्योंकि 'उसके भी बालबच्चे हैं' अर्थात् अपने बालबच्चों को ऐसी कमाई से वह दूर रखता था जिससे जीवन में किसी भी प्रकार से उनका अहित न हो। आज का मनुष्य पाप का धन इसलिए चाहता है कि 'उसके भी बच्चे हैं' अर्थात् इन बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे कैसा भी धन चाहिए। नारा वही है किन्तु भावना बदल गई है।

अच्छे धन की जीवन में चार पहचान बताई गई हैं—

१. सदाचार—सुधन वह है जिससे अपना या अपने परिवार का आचरण न बिगड़े। ऐसे कितने ही उदाहरण देखने को मिल जाएँगे कि अनुचित कमाई आते ही शराब, धूम्रपान, जुआ आदि कितने ही व्यसन जीवन में प्रवेश करने लगते हैं। ऐसे लोगों की सन्तानें भी सदाचारी नहीं रह पातीं।

२. स्वास्थ्य –बुरी कमाई और तज्जन्य व्यसनों से अपना या अपने पारिवारिक जनों का स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगता है तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की भी हानि होने लगती है।

३. सुखप्राप्ति—स्वास्थ्य और सामाजिक प्रतिष्ठा की हानि होने से मनुष्य सच्चा सुख और सन्तोष अनुभव नहीं कर पाता। उसे अपना जीवन भार-रूप प्रतीत होने लगता है।

४. शान्ति—अनुचित धन-प्राप्ति से मन सदा अशान्त तथा अस्थिर रहता है। काली कमाई को छुपाने का सदा प्रयत्न करते रहना पड़ता है और पकड़े जाने का डर भी बना रहता है।

आचार्य चाणक्य लिखते हैं—

अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि स्थिरं भवेत्।
प्राप्ते तु एकादशे वर्षे समूलमेव शुष्यति॥
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीः।

अन्याय से अर्जित धन प्रारम्भ में दस वर्ष (कुछ समय) तक स्थिर प्रतीत होता है किन्तु उसके बाद जड़सहित—सूद-ब्याजसहित—समस्त सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। क्रूर उपायों से अर्जित लक्ष्मी विनाशक ही होती है।

महाभारत के अनुसार ऐसे धन से किया गया पुण्य-कार्य भी फल नहीं देता—

अन्यायात् समुपात्तेन दानधर्मो धनेन यः।
क्रियते न स कर्मात्त्रायते महतो भयात्॥

अन्याय से प्राप्त धन से किया दानधर्म भी महान् संसार-भय से रक्षा नहीं करता।

आन्तरिक गुण—शारीरिक व आर्थिक विशेषताओं के अतिरिक्त सूर्यपति के कुछ आन्तरिक गुण भी अपेक्षित हैं। इन गुणों में सबसे प्रथम है—**प्रेम**।

किसी कवि ने ठीक कहा है—

मैं औरों की नहीं आपबीती कहता हूँ तुम्हें
प्रेम इन्सान को भगवान् बना देता है।

सचमुच पति-पत्नी में यदि परस्पर सच्चा और एकनिष्ठ प्रेम नहीं है तो सब-कुछ होते हुए भी उनका जीवन व्यर्थ है। एकनिष्ठ प्रेम का आदर्श चकवा-युगल है। अथर्ववेद (१४.२.६४) में 'चक्रवाकेव दम्पती' कहकर दम्पती को चकवे-चकवी के समान अभिन्न प्रेमयुक्त होने के लिए कहा है। उज्ज्वल प्रेम का दूसरा सुन्दर उदाहरण वेद में गौ और नवजात बछड़े के प्रेम का दिया है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥—अथर्ववेद ३.३०.१

भगवान् कहते हैं—मैं तुम्हारे लिए समान-हृदय, समान-मन होने तथा द्वेष से सर्वथा अलग होने की मर्यादा बनाता हूँ। तुम एक-दूसरे को ऐसा प्यार करो जैसे गौ अपने सद्यःजात बछड़े को प्यार करती है।

विवाह-संस्कार में स्वागतविधि के पश्चात् वर द्वारा एक मन्त्र बोलने का विधान है जिसमें दो जलों के समान वर-वधू दोनों के हृदयों की प्रेममयी एकता की बात कही गई है—

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।—ऋग्वेद १०.८५.४७

ऋग्वेद और अथर्ववेद के निम्न मन्त्र में भी दोनों को एकसाथ मिलकर रहने की प्रेरणा है—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।

—ऋग्वेद १०.८५.४२; अथर्ववेद १४.१.२२

पति-पत्नी दोनों यहाँ इस गृह में पूर्ण आयु-पर्यन्त एकसाथ प्रेमपूर्वक रहें, कभी वियुक्त मत होवें।

दोनों दम्पती इस मधुर प्रेम-भावना को एक-दूसरे के प्रति कभी-कभी अभिव्यक्त भी करते हैं—

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति॥

—अथर्ववेद ७.३६.१

हम दोनों पति-पत्नी की आँखें ऐसी हों कि उनमें माधुर्य का प्रकाश होता रहे, मुख एक-दूसरे को देखकर इकट्ठे खिल उठें। हम दोनों एक-दूसरे से कहें कि 'मुझे तू अपने हृदय के अन्दर धारण कर।' हम दोनों का मन एक हो जाए।

पति का व्यवहार पत्नी के प्रति ऐसा होना चाहिए कि उसका मन सदा उसी की ओर खिंचा रहे—

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्टयामिव।—अथर्ववेद ६.१०२.२

हे पत्नी! मैं पति तेरे मन को अपनी ओर ऐसे खींचता हूँ जैसे श्रेष्ठ घोड़ा गाड़ी को अपनी ओर खींचता है।

पाणिग्रहण-प्रतिज्ञामन्त्रों में अन्तिम मन्त्र में पति ने बहुत सुन्दर बात कही है—

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसः कुलायम्।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्॥

—अथर्ववेद १४.१.५७

मैं कुल की उन्नति को ध्यान में रखते हुए अपने मन के घोंसले में तेरे रूप का ही वास करता हूँ। मैं मन से भी कभी तुझसे चोरी न करूँगा और न किसी उत्तम पदार्थ का भोग तुझसे छिपाकर करूँगा।

प्रेम में एकाधिकार—पत्नी सदा यह चाहती है कि उसके पतिप्रेम पर केवल उसका ही एकाधिकार बना रहे। यह पत्नीव्रत पति के प्रति उसके प्रेम, चरित्र तथा महानता का आधार है।

वाल्मीकि रामायण में राम के वनगमन पर अयोध्या लौटकर माता कैकेयी से भरत राम का अपराध पूछते हैं—

'क्या राम चरित्रदोषी थे ?' इसपर कैकेयी उत्तर देती है—

न रामः परदारांश्च चक्षुर्भ्यामपि पश्यति ।

—वा० रा० अयो० ७२.४८

राम पराई स्त्रियों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते।

युद्ध में रावण के वीरगति प्राप्त करने पर जब मन्दोदरी राम के सम्मुख आई तो राम की दृष्टि उससे बात करते हुए ऊपर न उठी। राम की इस मर्यादा को देखकर मन्दोदरी कहने लगी—

धन्या राम त्वयी माता धन्यो राम त्वया पिता ।
धन्यो राम त्वया वंशः परदारान्न पश्यसि ।।

हे राम ! तुम्हारी माता धन्य है, तुम्हारे पिता धन्य हैं। जिस वंश में तुम उत्पन्न हुए वह वंश धन्य है, क्योंकि पराई स्त्री की ओर तुम आँख उठाकर भी नहीं देखते।

अथर्ववेद के निम्न दो मन्त्रों में वैदिक नारी अपने पर एकाधिकार की कितने प्रबल शब्दों में कामना करती है—

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ।।—अथर्ववेद ७.३७.१
अहं वदामि नेत्त्वं सभायामह त्वं वद ।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ।।—अथर्ववेद ७.३८.४

हे मननशील पुरुष ! मैं तुझे अपने प्रेम-वस्त्र से बाँधती हूँ जिससे तू केवल मेरा ही रहे और दूसरी स्त्रियों की चर्चा भी न करे।

मैं कहती हूँ कि हे पतिदेव ! भरी सभा में सबके सामने यह आश्वासन घोषणापूर्णक आप मुझे दें कि मैं 'तेरा ही हूँ' जिससे तू केवल मेरा ही होकर रहे और अन्य स्त्रियों की चर्चा तक न करे।

एक सन्तुष्टहृदया नारी अपने पति के पवित्र आचरण को जब सुनती है तब वह पुलकित हो जाती है। अपने इस गर्व को अपनी एक अन्य सहेली से वह प्रकट करती हुई कहती है—

अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकन्नोज्ज्वलं
नो वक्रा गतिरुद्धतं न हसितं नैवास्ति कश्चिन्मदः ।
किन्त्वन्येऽपि जना वदन्ति सुभगोप्यस्याः प्रियो नान्यतो
दृष्टि निक्षिपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःस्थितम् ।।

हे सखि! मेरे पास न तो सुन्दर और आकर्षक वस्त्र हैं, न चमचमाते आभूषण। न नाज-नखरे से चलना-फिरना और हँसना ही मुझे आता है। अन्य भी मुझमें कोई आकर्षण की वस्तु नहीं है। किन्तु अन्य सब लोगों को जब मैं यह चर्चा करते सुनती हूँ कि सब प्रकार से सुन्दर और योग्य मेरा पति किसी सुन्दरी की ओर आँख तक उठाकर नहीं देखता तो बस इतने से ही अपने को धन्य समझती हूँ।

विवाह के प्रारम्भ में पति अपनी पत्नी से प्रगाढ़ प्रेम करता है, परन्तु उसमें वासना का अंश अधिक होता है। सच्चा प्रेम वह है जो समय के साथ-साथ कम न हो अपितु अधिकाधिक बढ़ता चला जाए। महाकवि भवभूति ने प्रेम के इसी रूप को सराहा है। सीता का चित्र देख राम कहते हैं—

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितम्
भद्रं प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥

—उत्तररामचरित १.३९

ऐसा कल्याणकारी दम्पती-प्रेम बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है जो सुख-दुःख दोनों स्थितियों में एकजैसा बना रहे, जो जीवन की ऊँची-नीची सभी अवस्थाओं में स्थित रहे, जिसमें हृदय को विश्राम अनुभव हो, जिसका आनन्द वृद्धावस्था द्वारा भी दूर न किया जा सके तथा विवाह से लेकर मृत्यु-पर्यन्त समय के साथ-साथ जो अधिकाधिक घनीभूत होता जाए।

अन्य गुण—प्रेम की दृढ़ता के लिए पति में अन्य गुण भी आवश्यक हैं, जैसे—परस्पर आदर-मान, मधुरवाणी, एक-दूसरे की मानसिक प्रसन्नता, सम्बन्धियों का सत्कार, सब प्रकार के परस्पर सन्देहों का निवारण आदि। अथर्ववेद के एक मन्त्र में वेदवेत्ता से यह प्रार्थना है कि वह पति को पत्नी के प्रति रुचिकर बनाये जिससे वह उत्तम वार्त्तालाप करनेवाला तथा पत्नी से उत्तम वाणी बोलनेवाला बने—

ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम्।

—अथर्ववेद १४.१.३१

पति की ओर से अथर्ववेद के निम्न मन्त्रों में कैसी मधुवर्षा हो रही है—

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि॥२॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः॥३॥

—अथर्ववेद १.३४.२-३

मेरी जीभ का अग्रभाग व मूल मधु हो। मेरा आना-जाना, वाणी मधुमती हो। मैं स्वयं ही मधु जैसा बन जाऊँ। मधु की तीन विशेषताएँ होती हैं—मधुरता, सुगन्धि और साररूपता। पति की वाणी में भी मधुरता अर्थात् मिठास, प्रभावशीलता और साररूपता होनी चाहिए, यही 'मधु' से यहाँ अभिप्राय है।

परिवार में यह मधुर व्यवहार जितना अधिक होगा वहाँ उतना ही अधिक सुख और शान्ति रहेगी। ऐसे व्यवहार का प्रारम्भ पति को अपनी ओर से करना होता है। सहिष्णु पति शीघ्र ही अपने परिवार का वातावरण परिवर्तित कर लेता है। ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं जहाँ कुशल पतियों ने अपने जीवनों में इसे सत्य कर दिखाया। महात्मा सुकरात की पत्नी ने एक बार कीचड़ का बर्तन पति के सिर पर पटक दिया, किन्तु सुकरात की सहनशीलता तथा प्यार ने पत्नी के जीवन को बदल डाला। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति लिंकन की पत्नी ने एक बार अतिथियों के सामने गर्म-गर्म चाय का प्याला अपने पति पर उँडेल दिया। महात्मा गांधी का अपनी पत्नी बा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही अनुभव था कि वे बहुत हठीली थीं। किन्तु गांधी जी के व्यवहार ने उन्हें अपने अनुकूल तथा सहयोगिनी बना लिया। मुसलमानों में मौलाना रूम बड़े विख्यात सन्त और महात्मा हुए हैं जिनके दर्शनों के लिए दूर-दूर से लोग उनके घर आया करते थे। किन्तु मौलाना की पत्नी बड़ी कर्कशा और क्रोधी स्वभाव की थी जो आगन्तुकों के साथ भी बड़ा कठोर व्यवहार करती थी। ऐसे ही व्यवहार से परेशान हो एक बार मौलाना के दर्शनार्थी भक्त ने उनसे पूछा—"आपने यह क्या मुसीबत अपने गले में डाल ली है!" मौलाना ने हँसकर उत्तर दिया—"भाई! यह अपरिचित नये व्यक्तियों की दृष्टि में अवश्य मुसीबत हो सकती है, पर मेरे लिए साक्षात् देवी है। यदि यह मेरे घर में न होती तो आज मैं इतना प्रसिद्ध न होता। विवाह के समय मैं इससे भी अधिक कठोर स्वभाव का था। जब यह देवी घर में आई और इसने मेरी बातों के उत्तर में नहले पर दहला लगाया, तब मुझे अनुभव हुआ कि कठोर वचन और क्रोध कितने बुरे हैं! कितने कष्टदायक हैं!! धीरे-धीरे मैंने अपने स्वभाव में परिवर्तन कर इनपर विजय प्राप्त की और इसमें भी तब से बहुत परिवर्तन हुए हैं। आज हम दोनों की अच्छी निभ रही है और परस्पर प्रेम की भी कमी नहीं है।"

कुशल और सफल पति वह है जिसका हृदय विशाल हो। परिवार के दुःखों और कष्टों में भी जो न केवल स्वयं हँसता रहे वरन् परिवार में पहुँचते ही मीठे, विनोदपूर्ण चुटकुलों आदि द्वारा प्रसन्नता तथा हँसी-खुशी का वातावरण उपस्थित कर दे। अथर्ववेद (७.६२.६) के शब्दों में 'हसामुदाः' अर्थात् हँसने-खेलने के स्वभाववाला तथा प्रसन्न रहनेवाला हो। वह परिवार के कष्टों के निराकरण की विधि जानता हो जिससे पत्नी कभी टूटती नहीं है—

प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति।

—अथर्ववेद १४.१.३०

पति-पत्नी जड़ देवता नहीं हैं, अपितु ऐसे चेतन सहयोगी हैं जिनकी अपनी विचारधारा, अपना दृष्टिकोण तथा अपनी कार्यपद्धति एवं मान्यताएँ हो सकती हैं। आधुनिक युग में तो यह और भी सम्भव है। ऐसे लड़ाकू पति-पत्नी अपने-अपने विचारों को उचित बताते हुए परस्पर कलह कर अपने घरेलू वातावरण को दूषित बना लेते हैं। समझदार पति वे हैं जो पत्नी के दृष्टिकोण को समझ उसे भी यथोचित मान्यता देते हैं और अपने व्यवहार को तदनुसार परिवर्तन कर लेते हैं। प्रसिद्ध समाजवादी नेता लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण और उनकी पत्नी प्रभावती जी के जीवन से सम्बद्ध यह घटना इसी प्रकार की है। एक बार जयप्रकाशजी तथा प्रभावतीजी दोनों रेल में एकसाथ यात्रा कर रहे थे। स्टेशन आने पर रेल का एक हरिजन सेवक गाड़ी की सफाई करने उनके डिब्बे में भी आया। वहाँ पीने के पानी की एक सुराही सीट के नीचे रक्खी हुई थी। सफाई-कर्मचारी के आने पर प्रभावती जी के मन में आया कि कहीं यह हरिजन सेवक उसे छूकर उस पात्र को अपवित्र न कर दे, किन्तु जयप्रकाश जी के समाजवादी विचारों से परिचित होने के कारण प्रकट रूप से वह कुछ कह न सकी। उधर जयप्रकाशजी से प्रभावतीजी के मन की यह बात छिपी न रह सकीं। अतः स्वयं वैसा विश्वास न होने पर भी पत्नी की मान्यता और सन्तोष के लिए वे स्वयं उस जलपात्र को अपने दोनों हाथों में लेकर तब तक खड़े रहे जब तक वह कर्मचारी सफाई करके वहाँ से चला न गया। जयप्रकाशजी के इस व्यवहार से बिना किसी विवाद के प्रभावतीजी का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया और भविष्य में उन्होंने भी छुआछूत में विश्वास न करने का संकल्प लिया।

पति के प्रति पत्नी की उपर्युक्त भावना तथा उस भावना के अनुरूप बनने के लिए स्वकर्त्तव्यों का स्मरण ही चेतन 'सूर्यपूजा' है। इससे सद्परिवार का निर्माण होता है। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को सुख-समृद्धि तथा शान्ति का वैसा ही अनुभव होता है जैसे प्रातःकालीन सूर्य के दर्शन करते ही नवीन चेतना और जागृति अनुभव होती है। किन्तु इस सिक्के का एक दूसरा पहलू भी है—'सूर्य' के साथ सूर्यपत्नी 'सूर्या' की पूंजा व सत्कार, जिसके अभाव में सूर्यपूजा भी अपूर्ण रहेगी। ऋषि दयानन्द कहते हैं—"पुरुष के लिए स्वपत्नी पूजनीय है।"

(२) सूर्य्या-पूजा : पत्नी-पूजा

सूर्य्या (पत्नी) का सूर्य (पति) से विशेष सम्बन्ध है। वह पति के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए रखती है। सूर्य की प्रभा या प्रकाश सूर्या है, उसी का प्रारम्भिक रूप 'उषा' है। सूर्य का अस्तित्व प्रातःकाल उसके इसी प्रकाश से जाना

जाता है। इस काल में सूर्य की आभा जब पूर्वाकाश को अपनी लाली से रक्तिम-वर्ण कर देती है तो यह निश्चित हो जाता है कि भगवान् भास्कर अब शीघ्र उदय होनेवाले हैं। यदि यह सूर्या न हो तो सूर्य का प्रत्यभिज्ञान—पहचान—कौन कैसे कर सकेगा? इसलिए सूर्या का सूर्य के साथ अविच्छिन्न या अविनाभाव सम्बन्ध है। ठीक यही पत्नी का पति के जीवन में स्थान है, अतः शास्त्रों में कहीं उन्हें रथ के दो पहिये अथवा कहीं सिक्के के दो पार्श्व कहकर उनकी पारस्परिक अभिन्नता व्यंजित की गई है। धर्म-मर्यादा, परिवार-पालन, लोक-व्यवहार सभी का वह आधार है।

पत्नी : धर्म का आधार

'पत्नी' शब्द ही व्याकरणिक प्रक्रिया में धर्म का आधार लिये हुए है। आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' कहकर यज्ञसंयोग में 'पति' शब्द से 'ना' प्रत्यय संयुक्त कर 'पत्नी' शब्द की सिद्धि की है। पत्नी वही है जिसकी प्राप्ति धर्मपूर्वक हो—धर्म से जिसका सम्बन्ध हो। वेद ने विशेष रूप से धर्म शब्द जोड़कर 'धर्मपत्नी' के रूप में उसकी स्थिति और अधिक स्पष्ट कर दी है। पाणिग्रहण के छह प्रतिज्ञात मन्त्रों में द्वितीय मन्त्र है—

पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव।—अथर्ववेद १४.१.५१

हे पत्नी! तू धर्म से मेरी पत्नी है और मैं तेरा गृहपति हूँ।

पत्नी का विशेष महत्त्व धर्म के कारण है। 'कुमारसम्भव' में महाकवि कालिदास कहते हैं—

क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्।

—कुमारसम्भव ६.१३

धार्मिक अनुष्ठानों की सत्पत्नी ही मूल कारण है।

महाभारत के अनुसार—

पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः।

—महाभारत, आदिपर्व ७४.४

पत्नी धर्मकार्य की प्रेरणा के लिए पिता के समान और दुःखी को सान्त्वना देने में माता के समान है।

नास्ति भार्या समो लोके सहायो धर्मसंग्रहे।

—महाभारत, शान्तिपर्व १४५.१३

पत्नी के समान धर्म-सम्पादन में अन्य कोई सहायक नहीं है।

मनु कहते हैं—

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह॥

—मनुस्मृति ९.२८

सन्तानोत्पादन, धार्मिक क्रियाएँ, उत्तम सेवा, रति तथा अपने और बड़े-बूढ़ों का सुख पत्नी के ही अधीन होता है। इसी कारण—

तस्मात् साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः।

—मनुस्मृति ९.९६

साधारण-से-साधारण धर्मकार्य का अनुष्ठान भी पत्नी के साथ करने का विधान है।

बिना सत्पत्नी के सभी धार्मिक क्रियाएँ अपूर्ण रहती हैं। आज भी हिन्दू समाज में प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती है चाहे वह याज्ञिक कार्य हो, दान-पुण्य हो, विवाह में कन्यादान या अन्य कोई व्रत-उपवास, तीर्थ-स्नान आदि ही क्यों न हो। वह समस्त क्रियमाण धार्मिक कार्यों में केवल सहायिका नहीं है अपितु अनिवार्य अंग है।

प्रत्येक गृहस्थाश्रमी के लिए अनिवार्य रूप से विहित पंचमहायज्ञ भी 'दारयज्ञ' कहे गये हैं, क्योंकि दारा (पत्नी) द्वारा ही इनकी परिपूर्णता है। पति को अधार्मिक या असामाजिक कार्यों—रिश्वत, चोरी, बेईमानी, छल-कपट, मद्य-मांस-भक्षण या अन्य अनाचारों से रोकने में जितना योगदान उसकी पत्नी कर सकती है उतना अन्य कोई नहीं। स्त्रियों में धर्म के प्रति स्वाभाविक रुचि, श्रद्धा और आस्था भगवान् ने निर्मित की है। आज के जीवन में धर्म के प्रति आस्था या रक्षा-भाव यदि कहीं किसी रूप में शेष है तो उसका मुख्य श्रेय नारियों को ही देना होगा। वे धर्म का आधार ही नहीं उसकी रक्षिका भी हैं।

पत्नी के साथ धर्म का अविनाभाव-सम्बन्ध एक अन्य प्रकार से भी सिद्ध है। शब्दशास्त्र के अनुसार विवाहित पत्नी ही 'धर्मपत्नी' पद की अधिकारिणी है। उसे पत्नी कहें या पूरे नाम से 'धर्मपत्नी' कहें, एक ही बात है। किन्तु यदि यही धर्म शब्द अन्य किसी सम्बन्धसूचक पद के साथ संयुक्त कर दिया जाए तो उसका अभिप्राय उस वास्तविक सम्बन्ध से न होकर कृत्रिम या धारक सम्बन्ध से हो जाता है। जैसे 'धर्म-बन्धु' या 'धर्म-भाई' से अभिप्राय है वह बन्धु या भाई जो सगा तो न हो किन्तु जिसे किसी उद्देश्यविशेष से बन्धु या भाई बना लिया गया हो। यही स्थिति धर्म-बहिन, धर्म-पिता, धर्म-माता आदि शब्दों के साथ है। इन शब्दों में 'धर्म' से अभिप्राय है—कल्पित या अवास्तविक। किन्तु 'पत्नी' शब्द से 'धर्म' शब्द संयुक्त कर 'धर्म-पत्नी' के अर्थ में कल्पित या अवास्तविकता का भाव न होकर इसके विपरीत वास्तविकता का भाव अन्तर्निहित रहता है। इससे ज्ञात होता है कि धर्म का वास्तविक सम्बन्ध या अधिकार पत्नी को ही प्राप्त है।

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

पत्नी धर्मार्थकामानां कारणं भवति नृणाम्।

पत्नी मनुष्यों के धर्म, अर्थ और काम का कारण होती है।

पत्नी : यज्ञ का आधार

पत्नी धर्म की ही नहीं, यज्ञ की भी पूर्ण आधार है। पत्नी के अभाव में प्रत्येक यज्ञ (जीवनयज्ञ भी) अपूर्ण समझा जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे बिना दक्षिणा के यज्ञ की परिपूर्णता नहीं मानी जाती। महाकवि कालिदास के अमरकाव्य रघुवंश में कवि ने महाराज दिलीप और उनकी पत्नी सुदक्षिणा का वर्णन किया है। सुदक्षिणा के सम्बन्ध में कवि कहते हैं—

पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्यैव दक्षिणा।

अध्वर (यज्ञ) की दक्षिणा के समान सुदक्षिणा नाम की राजा दिलीप की पत्नी थी।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के विषय में प्रसिद्ध है कि वे जब अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे तब भगवती सीता महर्षि वाल्मीकि के तपोवन में अवस्थित थी, अतः बिना पत्नी के यज्ञ की पूर्णता कैसे हो ? अमात्यों ने सलाह दी कि प्रतीकात्मक स्वर्णमयी सीता की प्रतिमा स्थापित कर समस्त याज्ञिक विधि-विधान सम्पन्न किया जाए। श्री राम को ऐसा ही करना पड़ा। यज्ञ में पत्नी का पति के दक्षिण भाग में स्थान उसकी इसी महत्ता का परिचायक है।

पत्नी : गृहस्थ का आधार

गृहस्थ का प्रारम्भ ही पति को पत्नी और पत्नी को पति की प्राप्ति से होता है, अतः पत्नी गृहस्थ का आधार है। कवि की भावना में—

न गृहं गृहमित्याहुः पत्नी हि गृहमुच्यते।

घर 'घर' नहीं है, पत्नी ही घर कही जाती है।

'बिन घरनी घर भूत का डेरा' जैसी लोकोक्तियों के पीछे भी यही भावना है। वृहत् पाराशर-संहिता का वचन है—

न गृहेण गृहस्थः स्याद् भार्यया कथ्यते गृही।
यत्र भार्या गृहं तत्र भार्याहीनं गृहं वनम्॥

घर से मनुष्य गृहस्थ नहीं होता, पत्नी से वह गृहस्थ होता है। जहाँ पत्नी है वहीं घर है और जहाँ पत्नी नहीं है वह घर भी वन है।

वेद की भावना भी ऐसी ही रही है। ऋग्वेद का वचन है—

जायेदस्तम्
सेदु योनिः—ऋग्वेद ३.५३.४

जाया ही घर है।

जाया ही गृह और परिवार का आश्रय है।

यह सच है कि पत्नी से ही घर, घर होता है। बिना पत्नी के घर वैसा ही सूना है जैसे राजा के बिना राज्य अथवा सेनापति के बिना सेना। पत्नी ही घर का आश्रय और आधार है। अथर्ववेद (१४.१.३५) में पत्नी को 'वर्चो अक्षेषु'—रथ की धुरा में तेज के समान कहा है। धुरा का तेज है—आधारता-रूपी गुण। पत्नी भी गृहस्थ-रथ की धुरा अर्थात् आधार है।

मनु भी पत्नी के इस महत्त्व को स्वीकार करते हैं—

स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।

—मनुस्मृति ९.२६

घरों में जो भी स्त्रियाँ हैं वे लक्ष्मी-स्वरूपा होती हैं, क्योंकि लक्ष्मी, शोभा, धन और स्त्रियों में कुछ भेद नहीं है।

प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्।

—मनुस्मृति ९.२७

लोक-व्यवहार में नित्यप्रति जो भी गृहाश्रम का कार्य होता है उसका निबन्ध करनेवाली प्रत्यक्ष स्त्री होती है। शतपथ ब्राह्मण में भी स्त्रियों को घर की लक्ष्मी कहा है—

गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा।—शतपथ ब्राह्मण ३.३.१.१०

घर पत्नी से प्रतिष्ठित होते हैं।

श्रियै वा एत द्रूपं यत्पत्न्यः।—शतपथ ब्राह्मण १३.२.६.७

घर में पत्नी ही श्रीरूपा है।

पत्नी : सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार

समाज में यदि पत्नी की प्रतिष्ठा उसके पति से है तो पति की प्रतिष्ठा भी उसकी पत्नी से होती है। जिनकी पत्नियाँ प्रतिष्ठित, विदुषी व सम्मानजनक पद पर होती हैं, ऐसे पुरुषों का समाज में सम्मान वहुत बढ़ जाता है। पौराणिक त्रिदेव में सरस्वती के कारण ब्रह्मा, लक्ष्मी के कारण विष्णु तथा पार्वती के कारण शिव पूज्य एवं प्रतिष्ठित हैं। अन्य भी सीता, द्रौपदी, रुक्मणी, मदालसा, गार्गी, मैत्रेयी, सावित्री, अनसूया, भामती, कस्तूरबा आदि देवियाँ अपने पतियों के यशोवर्धन, सामाजिक प्रतिष्ठा व सम्मान की मूल रही हैं। वर्तमान समाज में भी विवाहित व्यक्ति अविवाहित से सामान्यतः अधिक विश्वस्त और नैतिक दृष्टि से अधिक भरोसेमन्द समझा जाता है। यहाँ तक कि लोग उस व्यक्ति को किराये पर अपना मकान देना अधिक पसन्द करते हैं जिसकी पत्नी तथा बच्चे उसके साथ हों। महाभारत में कहा है—

कान्तारेष्वपि विश्रामो जनस्याध्वनिकस्य वै।
यः सदारः सः विश्वास्यस्तस्माद् दाराः परागतिः ।।

—महाभारत, आदिपर्व ७४.४५

पत्नी यदि साथ हो तो मुसाफिर को जंगल में भी विश्राम प्राप्त होता है। जो सपत्नीक हैं वही विश्वास के योग्य हैं। इसलिए पत्नी पुरुष के लिए बहुत बड़ा आश्रय है।

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

अपत्नीको नरो भूप कर्मयोग्यो न जायते।

हे राजा! पत्नीविहीन मनुष्य संसार में किसी काम के योग्य नहीं हैं।

पत्नी : जीवन की परिपूर्णता व आधार

पत्नी का अपर नाम 'अर्धांगिनी' है, क्योंकि वह पुरुष का अर्धभाग है अर्थात् पुरुष की परिपूर्णता उसकी पत्नी से और पत्नी की परिपूर्णता उसके पति से होती है। पौराणिक कल्पना में शिव 'अर्धनारीश्वर' हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्येक पुरुष में कतिपय स्त्रियोचित और प्रत्येक स्त्री में पुरुषोचित गुण होते हैं। अंग्रेजी में पत्नी को 'बैटर हाफ' (Better Half) कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है—

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया
तस्मात् यावज्जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजायते।
असर्वो हि तावत् भवति।—शतपथ ब्राह्मण ५.२.१.१०

जाया आत्मा का अर्धभाग है, अतः जबतक जाया प्राप्त नहीं होती मनुष्य प्रजावान् नहीं होता, वह अपूर्ण रहता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के ऋषि का कथन है—

अथो अर्धो वा एष आत्मन यत्पत्नी।—तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.५

पत्नी आत्मा का अर्धभाग है।

महाभारत 'शकुन्तलोपाख्यान' में पत्नी के इस स्वरूप को स्पष्ट किया गया है—

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्यामूलं तरिष्यतः ।।

—महाभारत, आदिपर्व ७४.४२

पत्नी पुरुष का आधा भाग है। वह उसकी सबसे उत्तम मित्र है; धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्ग की साधिका है। संसार-संतरण में वह ही उसका आधार है।

भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः ।।

—महाभारत, आदि पर्व ७४.४३

सपत्नीक व्यक्ति क्रियाशील होते हैं, वे ही घर चलाने में समर्थ होते हैं, सदा प्रसन्न रहते हैं और शोभा तथा लक्ष्मी से युक्त होते हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् के ऋषि ने भी ऐसी ही कल्पना की है—

यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्
ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव
स्व इति ह स्माऽऽह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत।

—बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.३

जिस प्रकार परस्पर आलिंगित स्त्री और पुरुष होते हैं वह (प्रजापति) वैसे ही परिमाणवाला हुआ। उसने इस अपने देह को ही दो भागों में विभक्त कर डाला। उससे पति और पत्नी हुए। इसलिए यह शरीर अन्न के एक दल के समान है—ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा है, अतः यह अर्धपुरुष आकाश स्त्री से पूर्ण होता है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में पत्नी इन्दुमती की मृत्यु के पश्चात् महाराज अज के मुख से जो कुछ कहलवाया है उससे पत्नी का अनेकमुखी महत्त्व स्पष्ट हुआ है। पत्नी के इस महत्त्व का ज्ञान उसके अभाव में ही पति कर पाता है। महाराज अज कहते हैं—

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वं वद किन्न मे हृतम्॥

मेरे घर की व्यवस्था इन्दुमती सँभालती थी, अतः इन्दुमती नहीं गृहिणी मर गई। सब प्रकार के कार्यों के संचालन में वह ही मुझे परामर्श देती थी, अतः मेरा सचिव भी अब नहीं रहा। मनोरंजन, विचार-विनिमय में वह मेरी योग्य मित्र थी, उसके न रहने से मित्र भी नहीं रहा। अनेक ललित कलाओं को वह मुझसे सीखा करती थी, अतः वह मेरी शिष्या थी, जिसका जीवन में अब अभाव हो गया है। अतः मेरी दृष्टि में अकरुण मृत्यु ने मेरा क्या-क्या नष्ट नहीं कर दिया!

अथर्ववेद (१४.२.२६) की दृष्टि में पत्नी 'प्रतरणी'—तरानेवाली है। विवाह-वेदी पर 'सखे सप्तपदी भव' पति के इस आदेश को मानकर वह पति के जीवन की अनन्य सहायिका और मित्र भी है।

सूर्य्या-सत्कार : पति-सत्कार

पूजा शब्द का अर्थ है—सत्कार। सूर्यापत्नी की पूजा का अभिप्राय उसका चित्र या प्रतिमा स्थापित कर धूप-दीप-नैवेद्य-आदि द्वारा उसकी अर्चना करना नहीं है। 'पूज् सेवायां' धातु से सम्पन्न इस शब्द का अर्थ है—आदर, सत्कार, सम्मान, उचित इच्छाओं की पूर्ति द्वारा सदा प्रसन्न रखना। अभिवादन उसी का एक अंग है। पति को अभिवादन की अनेक स्थानों पर चर्चा है किन्तु वैदिक दृष्टि

पत्नी के अभिवादन और सम्मान को उतना ही महत्त्व देती है। ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से लिखते हैं—

"यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि 'पूजा' शब्द का अर्थ सत्कार है और रात-दिन में जब-जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब-तब प्रीतिपूर्वक नमस्ते एक-दूसरे से करें।"

प्रस्तुत पंचायतन-पूजा के सम्बन्ध में भी वे कहते हैं—

"पुरुष के लिए स्वपत्नी पूजनीय है।"

भारत में पत्नी के प्रति जब से इस दृष्टि का लोप हुआ, तभी से गृहस्थ और परिवार उजड़ते चले गये। पत्नी को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा। वही कबीर जो स्वयं आजीवन गृहस्थ धर्म का पालन करते रहे, पत्नी को भक्ति, मुक्ति और ज्ञान में बाधक कहते रहे—

नारि नसावै तीनि सुख, जो नर पासै होय।
भगति मुकति निज ग्यान में, बैसि सकै न कोय।।

पत्नी-पूजा के अभाव में नारी को 'पैर की जूती' और 'नरक का द्वार' समझा गया तथा प्रतिदिन उसे जलाने और मारने की घटनाएँ होने लगीं अथवा उसे आत्महत्या के लिए विवश होना पड़ा। इस सम्बन्ध में वैदिक दृष्टिकोण जानने और उसके परिपालन की आधुनिक युग में विशेष आवश्यकता है।

सूर्य्या-सत्कार : वैदिक दृष्टि

वेद ने पत्नी (नारी) के अनेक विशेषणों द्वारा उसका गौरव अक्षुण्ण रक्खा है। वह अघ्न्या (ताड़ना न देने योग्य), अदिति (विनाश को प्राप्त न होनेवाली), ज्योतिरूपा (प्रकाशमान), इडा (प्रशंसनीय गुणयुक्ता), हव्या (स्वीकार करने योग्य), काम्या (मनोहर स्वरूपवाली), चन्द्रा (अत्यन्त आनन्दमयी), विश्रुति (वेदज्ञा), महि (प्रशंसनीया), सरस्वती (प्रशंसित विज्ञानवाली), सिनीवाली (अन्नपूर्णा), देवस्वसा (दिव्य गुण प्रकाशिका), सहस्रस्तुका (हजारों द्वारा स्तवनीया), शिवा (कल्याणरूपा), पूषा (पुष्टिप्रदात्री), पुण्यगन्धा (उत्तम यश वाली), सुमंगली (मंगलयुक्ता), प्रतरणी गृहाणाम् (गृहस्थ नाव की पतवार), सुशेवा (कल्याणप्रदा), स्वोपशा (स्वादिष्ट उत्तम भोजन बनानेवाली) आदि गुणोंवाली है। ऐसी नारी का सम्मान प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रथम कर्त्तव्य है। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति उसे सम्मान दे तथापि पति द्वारा पत्नी का सत्कार और भी अधिक अभीष्ट है—

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्।।

—अथर्ववेद २०.१०७.१५

चमकती हुई और दिव्यगुणोंवाली उषा के पीछे-पीछे सूर्य वैसे ही आता है जैसे कि पुरुष (पति) अपनी पत्नी के पीछे-पीछे आता है। इस मंत्र से यह स्पष्ट है कि गृहस्थ में पति को चाहिए कि वह अपनी पत्नी का सदा सत्कार करे। मार्ग में, घर से बाहर जाने या घर में आने पर पति को पत्नी के पीछे-पीछे चलना चाहिए। इससे पत्नी के प्रति सत्कार की भावना अभिव्यक्त होती है। प्रकृति में भी सूर्य पति अपनी सूर्य्या (उषा) पत्नी के पीछे-पीछे चलता है। प्रातःकाल पहले उषा का आगमन होता है और उसके पीछे-पीछे सूर्य का।

आचार्य मनु ने मनुस्मृति में नारी-(पत्नी)-सत्कार का विशेष विस्तार किया है। उन्हीं के शब्दों में—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥५५॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥५६॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥५७॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥५८॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥५९॥
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०॥
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥६२॥

—मनुस्मृति ३, ५५–६०, ६२

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि दोनों ग्रन्थों में इन श्लोकों को उद्धृत किया है। उनकी दृष्टि में इन श्लोकों का भाव निम्न है—

पिता, भ्राता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहन, स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न रक्खें। जिनको कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को कभी क्लेश न देवें।

जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देव संज्ञा धराके आनन्द की क्रीड़ा करते हैं, और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहाँ सब क्रिया निष्फल हैं।

जिस घर वा कुल में स्त्रियाँ शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल

शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, और जिस घर व कुल में स्त्रियाँ आनन्द, उत्साह और प्रसन्नता में भरी हुई रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है।

जो विवाहित स्त्रियाँ पति, माता, पिता, बन्धु और देवर आदि से दुःखित होके जिन घरवालों को शाप देती हैं वे, जैसे किसी कुटुम्बभर को विष देके मारने से एक बार सब-के-सब मर जाते हैं, वैसे उनके पति आदि सब ओर से नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

इसलिए ऐश्वर्य की कामना करनेहारे मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार और उत्सव में भूषण, वस्त्र और भोजन आदि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें।

जिस कुल में भार्या से भर्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं।

स्त्री की प्रसन्नता में सब कुल प्रसन्न होता है; उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक हो जाता है।—सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

पत्नी-सम्मान में संक्षेप से प्रमुख विचारबिन्दु निम्न हैं—

१. मधुर भाषण।
२. उत्सव और विशेष रूप से सत्कार के अवसरों पर आभूषण, वस्त्र और उत्तम भोजन से प्रसन्न रखना।
३. पितृगृह (पीहर) के सम्बन्धी माता-पिता, भाई-बहिन आदि के प्रति सदा सम्मान की भावना।
४. सखीजनों या अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में उन्हें किसी प्रकार के तिरस्कारयुक्त वचन न कहना।

ये सभी बातें मनोवैज्ञानिक रूप से विशेष प्रभावशाली हैं। विदेशों में विशिष्ट अवसरों पर उपहार देने की प्रथा है जिससे विशेष रूप से स्त्रियों के प्रति आदर-सम्मान की भावना प्रकट होती है। अथर्ववेद में पति से प्राप्त उपहारों से प्रसन्न पत्नी अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्त करते हुए कहती है—

तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्‌भरे।—अथर्ववेद ६.१०२.३

—मैं उद्योगी तथा भाग्यवान् पति के हाथों से विविध उपहारों को स्वीकार करती हूँ।

इसी प्रकार मधुर भाषण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। विशेष प्रसंगों और विशिष्ट व्यक्तियों की उपस्थिति में यह वाक्संयम और मधुर भाषण और भी अधिक प्रभावशाली और प्रेमवर्धक प्रमाणित होता है। कोई भी नारी हृदय से यह नहीं चाहती कि उसके पीहर की कहीं किसी रूप में निन्दा या अप्रशंसा हो, चाहे उसका पीहर कैसा ही क्यों न हो। पीहर के सम्मान में उसे अपना सम्मान अनुभव होता है। अनेक अविवेकी और अनुभवशून्य व्यक्ति दहेज या अन्य छोटी-छोटी

बातों के लिए पत्नी को बार-बार उलाहना देते रहते हैं। परिणामस्वरूप वे अपनी पत्नी से अपनी मानसिक दूरी इतनी बढ़ा लेते हैं कि बार-बार लड़ाई-झगड़ों से भी आगे बढ़कर तलाक तक की नौबत आ जाती है।

सूर्यापत्नी : शक्तिस्रोत

सूर्या अपने पूर्व (विवाह-पूर्व) और अपर (विवाह-पश्चात्) दोनों रूपों में शक्ति की विशाल पुंज है। यदि उसमें निहित इन शक्तियों को समझा और उद्-बुद्ध किया जा सके तो परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण में कोई सन्देह नहीं रहता। इसीलिए वह सदा सम्माननीया और पूज्या है। किन्तु इसके लिए सूर्या का संस्कारी होना अत्यन्त आवश्यक है। संस्कारी कन्या विवाह-पश्चात् जिस घर में जाती है उस घर को ही स्वर्गवत् सुख का स्थान बना लेती है। इसके विपरीत कुसंस्कारी कन्या घर को नरक बना लेती है। इसीलिए प्राचीनकाल से ही विवाह-सम्बन्धों में कुलीन और संस्कारी कन्या और परिवार पर विशेष ध्यान रक्खा जाता था। नारी की इस महत्तासूचक कुछ दिन पूर्व की किसी गाँव की यह घटना कम मनोरंजक और शिक्षापूर्ण नहीं है।

उस दिन उस गाँव की पंचायत के सामने एक बड़ा विचित्र मुकद्दमा उपस्थित हुआ जिसका निर्णय करने के लिए बिरादरी पंचायतघर के सामने आकर बैठ गई। पंचायत का फैसला सुनने के लिए गाँव के बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी खैरातीलाल के दरवाजे पर जमा थे।

सरपंच ने मूँछों पर ताव दिया और खड़े होकर कहा—"खैरातीलाल! आज पंचायत को किसलिए याद किया है? तुम तो इस गाँव के सबसे बुद्धिमान् व्यक्तियों में गिने जाते हो। खैर, कोई बात नहीं। जो भी कठिनाई है पंचायत के सामने बताई जाए।"

खैरातीलाल हाथ जोड़कर बोला—"सरपंच साहब! एक व्यक्ति को रात बिताने के लिए अपने घर जगह दी थी। सुबह होते ही उस व्यक्ति ने कहा—'आपके पास लड़का है और मेरे पास लड़की। इन दोनों का रिश्ता तय कर लो। मैंने सोच-विचारकर कहा—'श्रीमन्! आपके पास भी लड़का है और मेरे पास भी लड़की है। आप इन दोनों का रिश्ता तय क्यों नहीं कर लेते?' सुबह से शाम हो गई पर वह आदमी अपनी जिद पर अड़ा हुआ है। जब फैसला नहीं हो पाया तो मैंने बिरादरी की पंचायत बुलाई। जो फैसला होगा मान लिया जाएगा। इसलिए आपको कष्ट दिया है।" इतना कहकर खैरातीलाल बैठ गया।

सरपंच ने कहा कि 'वह आदमी जो खैरातीलाल के लड़के से अपनी बेटी का विवाह करना चाहता है अपने नाम और गाँव का पंचायत को स्पष्टीकरण दे और बताये कि वह अपनी बेटी का ही खैरातीलाल के लड़के से विवाह क्यों करना

चाहता है ? खैराती की लड़की से अपने बेटे की शादी क्यों नहीं करना चाहता ?'

वह सज्जन खड़े हुए और बोले—"श्रीमन् ! मेरा नाम दुखियालाल है और दुखिया बस्ती मेरा गाँव है। मैं भी अपने गाँव का एक बड़ा जमींदार हूँ। मुझे इस गाँव से अगले गाँव में जाना था। किसी ने बताया कि वहाँ पर तुम्हारी लड़की के अनुरूप एक लड़का है। बात करके देख लो, हो सकता है सम्बन्ध निश्चित हो जाए। जब इस गाँव तक पहुँचा तो शाम हो चली थी। पैदल चलते-चलते मैं थक गया था। मैंने सोचा आज रात इस गाँव में किसी के पास ठहरकर सुबह होते ही उस गाँव की ओर चल पड़ूंगा। जैसे ही मैं गाँव पहुँचा, मुझे पहला मकान इन महाशय का मिला। ये अपने घर के सामने चबूतरे पर बैठे थे। मैंने दुआ-सलाम की और रातभर विश्राम करने के लिए प्रार्थना की। इन्होंने मेरी बात मान ली। विशेष अतिथि की तरह ही इन्होंने मेरी आवभगत की। मैंने सोचा कि जो व्यक्ति अपरिचित आदमी को इतना सम्मान दे सकता है वह साधारण आदमी नहीं है। क्यों न मैं अपनी लड़की का भाग्य इस दरवाजे पर बाँध दूं ! मेरी लड़की सुखी रहेगी। इसलिए मैं अपनी बेटी का विवाह इन सज्जन के लड़के से करना चाहता हूँ।"

सरपंच ने खैरातीलाल से कहा—"भैया खैरातीलाल ! बेटी के पिता को रिश्ता करने के लिए जगह-जगह खाक छाननी पड़ती है। फिर इसमें बुरा क्या है ? दुखियालाल अपनी लड़की के लिए लड़के की तलाश में निकला है। तुम्हारा घर पसन्द आ गया। वह तुम्हें कन्यादान कर रहा है। तुम्हें ले लेना चाहिए।"

सरपंच को बीच में टोकते हुए पंच कहने लगे—"महाशय खैरातीलाल से यह पूछें कि वह अपनी लड़की का विवाह दुखियालाल के लड़के से क्यों करना चाहते हैं ?"

सरपंच ने कहा—"बताओ खैरातीलाल ! जैसा इन पंचों ने तुमसे पूछा है।"

खैरातीलाल हाथ जोड़कर कहने लगा—"सरपंच साहब ! आज से १५ वर्ष पूर्व की घटना है। मैं किसी आवश्यक कार्य से किसी गाँव जा रहा था। गर्मी के दिन थे। चलते-चलते थक गया। भूख-प्यास ने और भी तंग कर दिया। चारों तरफ जंगल ही जंगल, न आदमी न आदमी की जात। मरता क्या न करता ! मैंने उलटा रास्ता पकड़ लिया। काफी देर चलने पर एक खेत नजर आया। खेत की हरियाली देख मुझे विश्वास हो चला कि खेतवाला या पानी का कुआँ दोनों में से कोई तो अवश्य मिलेगा। जब खेत के पास गया तो वहाँ न खेत का मालिक ही मिला और न कुआँ ही दिखाई दिया। खेत में देखा मतीरे की बेल लगी थी पर फल किसी पर भी नहीं था। काफी तलाश करने पर एक बेल पर एक छोटा-सा मतीरा लगा हुआ मिला, परन्तु उसे खेत के मालिक ने मिट्टी में दबाया हुआ था। जब

वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया तो मैंने अपनी जेब से एक अठन्नी निकाली और बेल के पास रख दी। क्योंकि खेत का मालिक जब मतीरे को बरबाद देखेगा तो बड़ा दुःखी और क्रुद्ध होगा, किन्तु जैसे ही मतीरे की कीमत अठन्नी वहाँ देखेगा तो कम-से-कम यह तो कहेगा कि तोड़नेवाला कोई जरूरतमन्द होगा जिसने मतीरे की कीमत पहले यहाँ रखकर ही उसे तोड़ा है।

"मतीरा तोड़ लिया। मैं मन-ही-मन प्रसन्न था कि इससे दोनों काम होंगे— प्यास भी बुझेगी और भूख भी। पर जैसे ही मतीरा खाने को तैयार हुआ, इस दुखियालाल ने सहसा आकर मेरे पीछे खड़े हो मिट्टी की मुट्ठी भरकर मतीरे पर फेंक दी। जब मैंने इसका विरोध किया तो दुखियालाल ने धमकी दी कि वह इस खेत का मालिक है। तुम भगवान् को धन्यवाद दो कि तुम्हारे सिर पर लट्ठ नहीं मारा। मैं वहाँ से चुपचाप चला गया।

"सरपंच साहब ! मैं आपसे यही कहना चाहता हूँ कि दुखियालाल के पास लड़का है। यदि वह मेरी बेटी के साथ उसका रिश्ता कर विवाह कर दे तो मेरी बेटी इसके घर को स्वर्ग बना देगी। यदि मैंने दुखियालाल की बेटी से अपने लड़के का विवाह कर लिया तो इसकी बेटी मेरे घर आनेवाले अतिथियों की रोटियों की थालियों में रेत-मिट्टी फेंका करेगी, क्योंकि इसके पिता की यही आदत है। जैसी माँ-बाप में आदतें होती हैं, वे जैसे संस्कार बच्चों पर डालते हैं, उनका असर उन बच्चों पर अवश्य होता है। पुत्री तो पराये घर जाकर वैसा ही नाम रोशन करती है।"

सूर्या में अन्तर्हित इस शक्ति को बतानेवाली कितनी ही ऐतिहासिक घटनाएँ इतिहास में सुरक्षित हैं। यहाँ केवल एक घटना का उल्लेख पर्याप्त है। परमसंत रामकृष्ण परमहंस की पत्नी का नाम शारदा था। उसका विवाह छोटी आयु में ही हो गया था। अपने पति से भेंट करने एक बार वह अकेली ही चल पड़ी। सूर्य अस्त हो रहा था। मार्ग में थे सुनसान घने जंगल और जंगल में ऊबड़-खाबड़ रास्ते। राह भटकने पर कोई रास्ता बतानेवाला भी उस निर्जन स्थान में नहीं था। ऐसे में निर्भीक अठारह वर्ष की कन्या शारदा सघन वन में अकेली चली जा रही थी।

शारदा एक साधक की पत्नी थी। उसका विवाह बचपन में ही रामकृष्ण से हो गया था। जब वह समझदार हुई तबतक रामकृष्ण परमहंस बनके साधना के मार्ग में बहुत आगे बढ़ चुके थे। फिर भी पत्नी के नाते अपने पति से मिलने वह जा रही थी। उसे विश्वास था कि इस घनघोर जंगल में भी कोई उसका कुछ बिगाड़ न सकेगा।

"ठहरो ! कौन हो तुम ? कहाँ चली जा रही हो ?" इस कठोर आवाज को

सुनते ही शारदा का ध्यान भंग हुग्रा। देखा एक भयंकर ग्रादमी उसे ललकार रहा था।

शारदा ने निर्भय स्वर में उत्तर दिया—

"मैं तुम्हारी कन्या हूँ—शारदा। नहीं पहचानते मुझे ? ग्रपने पति—तुम्हारे जामाता—से मिलने जा रही हूँ।"

सामने सुन्दरवन का कुख्यात डाकू खड़ा था। डाकू कुछ कहता, इससे पहले उसकी पत्नी ने ग्रागे बढ़कर शारदा को छाती से लगा लिया। बोली—

"सचमुच हमारी बेटी है यह। जामाता के पास ग्रकेली जा रही है। रास्ता ठीक नहीं है। रात का समय है। राह में जंगली जानवर मिल सकते हैं। ग्राग्रो ! इसे छोड़ ग्राते हैं ग्रपने जामाता के पास।"

सबको ग्रातंकित करनेवाला सुन्दरवन का नृशंस डाकू ! किन्तु पिता का हृदय उसमें भी धड़क रहा था। केवल स्पर्श करने की आवश्यकता थी। शारदा ने स्पर्श किया ग्रौर एक भयंकर डाकू ग्रादमी बन गया। डाकू को आदमी बनाने-वाली यह सूर्या ही थी।

सूर्या के गुण

सूर्या पत्नी-पूजा का ग्रपना ग्रधिकार प्राप्त कर सके, इसके लिए उसके गुणों ग्रौर विशेषताग्रों का वेदादि शास्त्रों में विस्तृत वर्णन है। महाकवि भवभूति लिखते हैं—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

—उत्तररामचरित ४.११

गुणियों में उनके गुण ही ग्रादर का कारण होते हैं, उनका स्त्री या पुरुष, बाल या वृद्ध होना नहीं।

प्रत्येक पति की यह इच्छा होती है कि उसकी पत्नी ग्रपने गुणों ग्रौर व्यवहार से उसकी ही नहीं ग्रपितु सबकी ग्रादर की पात्र बनी रहे। ऐसे कुछ गुण हैं—

पतिव्रता—पति के प्रति हार्दिक सच्चा प्रेम, सेवा ग्रौर पति-सन्तोष पतिव्रता नारी की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस सम्बन्ध में कुछ चर्चा 'सूर्यपूजा' प्रसंग में पूर्वं की जा चुकी है। मनु कहते हैं—

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमतेः पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥

—मनुस्मृति ५.१५१

पिता ग्रथवा पिता की सहमति से भाई इस स्त्री का जिससे विवाह कर दे उसकी जीते जी पत्नी-रूप में साथ-साथ रहते, सदा सेवा करती रहे ग्रौर कभी उसका तिरस्कार न करे।

सेवा और प्रेम ऐसे गुण हैं जो जीवनपर्यन्त पति-पत्नी को एक-दूसरे से बाँधे रहते हैं। प्रेम में बदला या लाभ-हानि का विचार नहीं किया जाता, अपितु उसका आधार है त्याग—अपनी सभी इच्छाओं और सुख का त्याग। यह त्याग जितना निःस्वार्थ तथा अधिक होता है उतना ही प्रेम का बन्धन दृढ़ होता जाता है। अथर्ववेद में इस बन्धन को चकवा-चकवी के समान बताया है—

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।—अथर्ववेद १४.२.६४

हे परमेश्वर! इस पति-पत्नी को चकवा-चकवी की भाँति प्रेम में एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त कर।

प्रेम ही वह साधन है जिससे नारी पतिगृह पहुँचकर पति की अनुकूलता, सास-ससुर, ननद-देवर सभी को सुख देने के कारण उनके हृदयों पर प्रभुता स्थापित कर लेती है—

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्॥—अथर्ववेद १४.१.४२

हे नारि! तू सौमनस्य, सन्तान, सौभाग्य और ऐश्वर्य की कामना करती हुई पति के अनुकूल कर्मोंवाली होकर अमर जीवन के लिए सन्नद्ध हो।

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य॥—अथर्ववेद १४.१.४३

जैसे वर्षा करनेवाले समुद्र ने नदियों पर साम्राज्य स्थापित किया है उसी प्रकार हे पत्नी! तू भी पति के घर जाकर सबके हृदयों पर विजय प्राप्त कर।

इतिहास में सीता-सावित्री जैसी कितनी ही पतिव्रता नारियाँ हुई हैं जिनकी कीर्ति इसी विशेषता के कारण आज भी महनीय बनी हुई है। वाल्मीकि रामायण में अनसूया सीता के सम्मुख सावित्री का आदर्श उपस्थित करती है—

सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते।

—वा० रा० अयो० ११७.१०

पतिसेवा द्वारा सावित्री स्वर्ग को सुशोभित कर रही है। राम भी नारी के इस धर्म की प्रशंसा करते हैं—

एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः।

—वा० रा० अयो० २४.२८

(पतिसेवा) स्त्रियों का लोक और वेद में प्रतिपादित धर्म है।

संकट में भी जो पत्नी पति की सेवा और साहचर्य न छोड़े, सीतासदृश ऐसी पतिव्रता नारियाँ सदा पूज्य हैं। वनगमन से पूर्व सीता श्रीराम से ऐसा ही आग्रह करती है—

फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः।
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा॥

अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि।
इच्छामि परतः शैलान्पल्वलानि सरांसि च ।।

—वा० रा० अयो० २७.१६-१७

तुलसीदास जी ने इसी भाव को रामचरितमानस में सीता के माध्यम से निम्न प्रकार प्रकट किया है—

मोहि मग चलत न होइहि हारी, छिनु छिनु चरन सरोज निहारी।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं, मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ।।
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं, करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं।
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें, कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें ।।
सम महि तृन तरुपल्लव डासी, पाय पलोटिहि सब निसि दासी।
बार बार मृदु मूरति जोही, लागिहि तात बयारि न मोही ।।

—रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, पृष्ठ ३८७

परित्यक्ता सीता महाकवि कालिदास के शब्दों में यही प्रार्थना करती है—

भूयो यथा मे जन्मान्तरेऽपि
त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः ।।

मैं यही प्रार्थना करती हूँ कि जन्मान्तर में भी यदि मैं स्त्री बनूँ तो राम ही मेरे पति होवें किन्तु उनसे कभी वियोग न हो।

शुक्रनीति में पत्नी के गुणों में पतिसेवा को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है—

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी।
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु ।।५१।।
दासीवादिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत् ।।५२ ।।
संगीतैर्मधुरालापैः स्वायत्तस्तु पतिर्यथा ।।६५।।
भवेत्तथाचरेयुस्तं मायाभिः कामकेलिभिः।
नास्ति भर्तृसमा नाथो नास्ति भर्तृसमं सुखम् ।।६६।।

—शुक्रनीति ४·५१-५२, ६५-६६

मन, वचन और कर्म से शुद्ध, पति के अनुकूल आचरण करनेवाली, दुःख और सुख में छाया के समान पति के साथ रहनेवाली और हितकारक कर्मों में सच्चे मित्र के समान आचरण करनेवाली पत्नी होती है।

पत्नी को उचित है कि पति द्वारा आदिष्ट कार्यों को एक सेविका के समान करे। संगीत, मधुर संवाद तथा मनोरंजन के अन्य प्रकारों से पति के सन्तोष और प्रसन्नता के कार्य करे, क्योंकि पति के समान नाथ और सुख अन्य नहीं है।

महाभारत के वनपर्व का द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद अत्यन्त प्रसिद्ध है। सत्यभामा के प्रश्नों का उत्तर देते हुए द्रौपदी कहती है—

देवो मनुष्यो गन्धर्वो युवा चापि स्वलंकृतः।
द्रव्यवानभिरूपो वा न मेऽन्यः पुरुषो मतः ॥२३॥
नाभुक्तवति नास्नाते नासंविष्टे न भर्तरि।
न संविशामि प्राश्नामि सदा कर्मकरेष्वपि ॥२४॥
यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्ता न सेवते।
यच्च नाश्नाति मे भर्ता सर्वं तद् वर्जयाम्यहम् ॥३२॥
पत्याश्रयो हि मे धर्मो मतः स्त्रीणां सनातनः।
स देवः गतिर्नान्या तु तस्य का विप्रियं चरेत् ॥३७॥
अहं पतिं नातिशये नात्यशने नातिभूषये।
नापि श्वश्रूं परिवदे सर्वदा परियन्त्रिता ॥३८॥
प्रथमं प्रतिबुध्यामि चरमं संविशामि च।
नित्यकालमहं सत्ये! एतत् संवननं मम ॥५८॥
नैतादृशं दैवतमस्ति सत्ये सर्वेषु लोकेषु सदेवकेषु।
यथा पतिस्तस्य तु सर्वकामा लभ्यः प्रसादात् कुपितश्च हन्याद् ॥६२॥

महाभारत वनपर्व २३३. २३-२४, ३२, ३७-३८, ५८, ६२

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवक, अलंकृत, धनवान् तथा परम सुन्दर कैसा ही कोई पुरुष क्यों न हो, मेरा मन भर्ता को छोड़कर और कहीं नहीं जाता।

मैं पति तथा नौकरों तक को बिना भोजन कराये भोजन नहीं करती; बिना स्नान कराये मैं स्नान नहीं करती; बिना बिठाये या सुलाये मैं कभी बैठती व सोती नहीं हूँ। मैं सदा कर्म में रत रहती हूँ।

मेरे पति जिस वस्तु को खाते, पीते अथवा सेवन नहीं करते, मैं भी उन सब वस्तुओं का परित्याग कर देती हूँ।

पति के आश्रय में रहना ही स्त्रियों का शाश्वत धर्म है। पति ही उनका देवता है, गति है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है। ऐसे पतिदेव का कौन स्त्री अप्रिय करेगी?

पति के शयन से पूर्व शयन और भोजन से पूर्व भोजन मैं कभी नहीं करती। उनकी इच्छा के विपरीत कभी अपने को अलंकृत नहीं करती। अपनी सास की कभी निन्दा नहीं करती और अपने को सदा नियन्त्रण में रखती हूँ।

हे सत्यभामा! प्रतिदिन मैं सबसे पहले जागती और सबके बाद सोती हूँ। यह पति-भक्ति और सेवा ही मुझे सबसे अधिक अभीष्ट है।

हे सत्यभामा! देवों सहित समस्त लोकों में स्त्रियों के लिए स्वपति के समान अन्य कोई देवता नहीं है। पति की प्रसन्नता से नारी की सम्पूर्ण कामनाएँ सफल और उसकी अप्रसन्नता से समस्त आशाएँ नष्ट हो जाती हैं।

पत्नी द्वारा पति की सेवा तथा उसकी हार्दिक शुभकामनाओं से पतियों को

जीवन में जो कुछ प्राप्त होता है वह कथनमात्र नहीं, जीवन का अनुभवगम्य सत्य है। वन से लौटने पर सीता से माता कौसल्या और सुमित्रा कहती हैं कि हे सीते! तेरे पतिव्रत-प्रभाव से राम-लक्ष्मण संकटमुक्त हो सकुशल घर लौट सके हैं—

उत्तिष्ठ वत्से ननु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्ता शुचिना तवैव।
कृच्छ्रं महत्तीर्णमिति प्रियार्हां तामूचतुस्ते प्रियमप्यभिष्टया॥

'वत्स सीते! उठ, तेरे पवित्र आचरण के प्रभाव से ही लक्ष्मणसहित तेरे पति इस महान् विपत्ति को पार कर सके हैं'—ऐसी प्रिय अभीष्ट वाणी उन दोनों ने कही।

वीर सावरकर की पत्नी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि जब आकाशवाणी से पतिदेव की जलपोत से समुद्र में कूदने की खबर मैंने सुनी तो अपनी कुलदेवी से अपने सुहाग की रक्षा की मैंने प्रार्थना की। भारत लौटने पर सावरकर को जेल की कोठरी में बन्द कर दिया गया। उनसे जेल में मिलने जब मैं गई तो मिलते ही अपने को मैं न रोक सकी। आँखों से अविरल आँसू बहने लगे। इस पर सावरकर बोले—"रोती हो? तुम्हारी प्रार्थना के प्रभाव से ही तो बचकर मैं यहाँ सकुशल लौट सका हूँ। मातृ-भूमि के लिए कष्ट बहुत भाग्यवान् ही उठाते हैं। तुम मुझसे भी ज्यादा भाग्यवान् हो, क्योंकि तुम्हें मुझसे भी अधिक कष्ट झेलने पड़े हैं।" वास्तव में पतिव्रता की प्रार्थना और पुकार में बहुत शक्ति है।

पति का अभिवादन—गृहस्थ का प्रारम्भ विवाह-संस्कार द्वारा होता है और उस संस्कार का प्रारम्भ जिस विधि द्वारा होता है उसे 'स्वागतविधि' कहते हैं। इस विधि में वधू तथा उसके निकट सम्बन्धी व माता-पिता आसन, जल, आचमनीय और मधुपर्क द्वारा हार्द-भावों से वरणीय वर का अभिवादन करते हैं। यह वह शिक्षा है जो वधू को संस्कार के साथ दी जाती है। ऋषि दयानन्द तो लिखते हैं कि 'जब-जब दिन में प्रथम बार मिलें या वियुक्त हों तब-तब दोनों परस्पर इसी प्रकार प्रीतिपूर्वक नमस्ते द्वारा एक-दूसरे का अभिनन्दन करें।' जहाँ पति-पत्नी में ऐसा आचरण रहता है वहाँ मनोमालिन्य नहीं रहता। दिनभर काम से थककर पति बड़ी उमंगों से घर लौटता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बच्चन ने इस भावना को निम्न पंक्तियों में पक्षी के रूप में बाँधने का प्रयास किया है—

बच्चे प्रत्याशा में होंगे, नीड़ों से झाँक रहे होंगे
यह ध्यान परों में चिड़िया के भरता कितनी चंचलता है
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

अपने घर के घोंसले में जब यह पतिरूपी पक्षी इसी उमंग और भावना से लौटता है तब उसे वहाँ प्यार, सत्कार तथा प्रसन्नता न मिले तो वह टूट-टूट जाता है। इसी कारण कितने ही 'पक्षी' अपनी पत्नी के क्रूर स्वभाव के कारण

घर से बाहर ही समय व्यतीत करना अच्छा समझते हैं। पत्नी को चाहिए कि दिन में चाहे कितनी ही अप्रिय बातें क्यों न हो गई हों, तो भी सायं मिलने के समय मुख से मुस्कान बिखेरती हुई मधुर वचनों और व्यवहार से पति का अभिवादन करे, न कि अपना, बच्चों का या घर के अभावों का रोना लेकर बैठ जाए। पत्नी के प्रेमपूर्ण व्यवहार से पति की सारी थकावट दूर हो जाती है। उसमें नव जीवन और नवशक्ति का संचार होने लगता है। इसी प्रकार पति को भी घर पहुँचकर प्रेमपूर्ण व्यवहार से सबका मन जीतना चाहिए।

महाभारत में सत्यभामा द्रौपदी से एक रहस्य की बात पूछती है—

तव वश्या हि सततं पाण्डवाः प्रियदर्शने।
मुखप्रेक्षाश्च सर्वे ते तत्त्वमेतद् ब्रवीहि मे॥

—महाभारत, वनपर्व २३३.६

हे प्रियदर्शने! क्या कारण है कि पाण्डव निरन्तर तुम्हारे वश में रहते हैं और वे सब तुम्हारे मुँह की ओर देखते रहते हैं? इसका रहस्य मुझे बताओ।

द्रौपदी उत्तर देती है—

क्षेत्राद् वनाद् व ग्रामाद्वा भर्तारं गृहमागतम्।
अभ्युत्थायाभिनन्दामि आसनेनोदनकेन च॥२५॥
श्रुत्वा स्वरं द्वारगतस्य भर्तुः
प्रत्युत्थिता तिष्ठ गृहस्य मध्ये।
दृष्ट्वा प्रविष्टं त्वरिताऽऽसनेन
पाद्येन चैनं प्रतिपूजयस्व॥६६॥

—महाभारत, वनपर्व २३३.२५,६६

खेत से, जंगल से अथवा गाँव से घर आये पति का मैं उठकर अभिनन्दन करती हूँ और आसन तथा जल अर्पित कर उनका स्वागत-सत्कार करती हूँ।

महल के द्वार पर आये पति का स्वर सुनते ही उठकर घर के आँगन में आ जाए और उनकी प्रतीक्षा में खड़ी रहे। जब पति भीतर आ जाएँ तब तुरन्त आसन और जल आदि द्वारा उनका यथावत् स्वागत व आदर-सत्कार करे।

शीतल मधुर वाणी—मधुर शीतल वाणी-व्यवहार यों तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है, तथापि पारिवारिक शान्ति के लिए तो यह अनिवार्य ही है। परिवार में भी पत्नी के लिए इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है—

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।

—अथर्ववेद ३.३०.२

पत्नी पति के प्रति मधुर और शान्तिदायक वाणी बोले।

सुकरात और ताल्स्ताय की कटुभाषिणी पत्नियों के उदाहरण प्रसिद्ध हैं। आचार्य चाणक्य ने जिस आदर्श परिवार की कल्पना की है उसमें वे बुद्धिमान् पुत्र

ग्रौर प्रियवादिनी पत्नी की कामना करते हैं—

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता प्रियालापिनी ।

—चाणक्य नीति ग्र० १२

इस सम्बन्ध में स्वामी विद्यानन्दजी विदेह लिखते हैं—

"पत्नी जब पति के प्रति ग्रभद्र व्यवहार करती है ग्रौर ग्रशालीन वचन बोलती है तो सारा परिवार ही ग्रश्लील ग्रौर ग्रनुशासनहीन हो जाता है। जो पत्नी ग्रपने पति के प्रति शिष्ट ग्रौर सुभाषिणी होती है उस परिवार के सभी व्यक्ति ग्रौर पुत्र-पुत्रियाँ सौम्य, सुशील ग्रौर शालीन होते हैं। पत्नी कभी भूलकर भी कटु ग्रौर उत्तेजक वचन न बोले। सदैव मधुर ग्रौर शान्ति-सम्पादक भाषण ही करे।"

वेद में इस सम्बन्ध में 'वल्गु' (ग्रथर्ववेद ३.३०.५) तथा 'विदथ' (ग्रथर्ववेद १४.१.२१) दो शब्दों का प्रयोग हुग्रा है। 'वल्गु' का ग्रर्थ है—सत्य, प्रिय, मधुर, मनोहारी, चित्ताकर्षक, सौहार्द्रपूर्ण वचन ग्रौर 'विदथ' का ग्रभिप्राय है—ज्ञान-पूर्ण वचन। जिस परिवार में यह मधुर साधना नित्य होती है वहाँ सर्वत्र मधुरता का वातावरण छा जाता है—

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ।—ग्रथर्ववेद १.३४.३

वाणी से मैं मधुर बोलूँ जिससे मधु-सदृश ही हो जाऊँ।

वाणी की यह मधुरता ग्राचार्य मनु की दृष्टि में इतनी महत्त्वपूर्ण है कि वे 'सद्यस्त्वप्रियवादिनी' (मनु ९.८१) कहकर ग्रप्रियवादिनी पत्नी को तो तुरन्त त्यागने के लिए कहते हैं।

सहिष्णुता—विवाह संस्कार में वर ग्रथर्ववेद के मन्त्र का उच्चारण करता हुग्रा कहता है—

द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।—ग्रथर्ववेद १५.२.७९

हे पत्नी ! मैं सूर्यरूप हूँ ग्रौर तू पृथिवीरूपा है। पत्नी की तुलना पृथिवी से कर वेद ने यहाँ नारी की सहिष्णुता, क्षमाशीलता ग्रौर सहनशीलता के गुणों को प्रकट किया है। पृथिवी से ग्रधिक सहनशील ग्रन्य कोई नहीं है जो पृथिवी-भर के प्राणियों के भार को अकेली उठाती है ग्रौर फिर भी कुछ नहीं बोलती। पत्नी-जीवन की सफलता भी इसी गुण में निहित है। 'एक चुप सौ को हरावे' वाली लोकोक्ति प्रसिद्ध है। परिवार में ग्रनेक झगड़े इसीलिए बढ़ जाते हैं कि एक-दूसरे की बात सहन नहीं होती। महाभारत के युद्ध का कारण दुर्योधन द्वारा द्रौपदी का हास्यपूर्ण उपालम्भ सहन न करना ही था। सास-बहू के व्यवहार में यह गुण सर्वाधिक ग्रावश्यक है। यदि दोनों ग्रोर से भावना रहे तो घर उजाड़ने-वाले ये झगड़े कभी न हों। महाभारत (वनपर्व) में द्रौपदी ग्रपनी सास कुन्ती की पृथिवी-सम क्षमाशीलता की प्रशंसा तथा कुन्ती के प्रति निज व्यवहार की चर्चा

करती हुई कहती है—

नैतामतिशये जातु वस्त्रभूषणभोजनैः ।
नापि परिवदे चाहं तां पृथां पृथिवीसमान् ।।

वस्त्र, अलंकार और भोजन आदि में कभी मैं सास की अपेक्षा अपने लिए कोई विशेषता नहीं रखती। पृथिवी के समान क्षमाशील उन पृथादेवी (कुन्ती) की मैं कभी निन्दा नहीं करती।

सास-बहू-सम्बन्ध के विषय में 'हनुमन्नाटक' में माता सुमित्रा ने सीता से एक बहुत हृदयद्रावक बात कही है—

वाचे त्वया वरमिमं वनवासिनीषु
श्वश्रूस्तु ता जगति सन्तीति नैव वाच्यम् ।

हे सीता! मैं तुझसे विशेष रूप से यह वर माँगती हूँ कि वनवासिनी स्त्रियाँ जब तुझसे हमारे विषय में पूछें तो हम सासों को जीवित मत बताना। अन्यथा वे कहेंगी कि वे कैसी पाषाणहृदया सास हैं जिन्होंने ऐसी बहू को भी जंगल भेज दिया।

सास-बहू में जहाँ ऐसी भावना होती है वहाँ क्लेश-कष्ट वास नहीं करते।

मनु-प्रोक्त पत्नी-गुण—मनुस्मृति में आचार्य मनु ने पत्नी के कुछ विशेष गुणों की चर्चा की है—

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ।।

—मनुस्मृति ९.११

अपनी स्त्री को धन की सँभाल और उसके व्यय की जिम्मेदारी में, घर एवं घर के पदार्थों की शुद्धि में, धर्म-सम्बन्धी अनुष्ठान यज्ञयागादि में, भोजन पकाने और घर की सभी वस्तुओं की देखभाल में लगाये।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।।

—मनुस्मृति ५.१५०

स्त्री को योग्य है कि सदा प्रसन्न तथा गृहकार्यों में दक्ष रहे। सब पदार्थों के उत्तम संस्कार, घर की शुद्धि और व्यय में अत्यन्त उदार न रहे।

(१) **अर्थ-व्यवस्था**—आर्थिक व्यवस्था विशेष रूप से आधुनिक युग में गृहस्थ-सुख के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। इसकी व्यवस्था का उत्तर-दायित्व मनु के अनुसार पत्नी पर है। अर्थ का अर्जन न भी हो तो भी उसका संग्रह और विनियोजन जितनी कुशलता से नारी कर सकती है उतना पुरुष नहीं। इसके लिए दो सावधानियाँ अपेक्षित हैं—प्रथम है अपनी आवश्यकताएँ सीमित रखना। परिवार में आवश्यकताएँ जितनी कम होंगी वह परिवार उतना ही सुखी

होगा। अधिकाधिक धन कमाना और उसका संग्रह करना गृहस्थ में बुरा नहीं है। बुरा है दूसरों की देखा-देखी अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाते जाना और उनकी पूर्ति के लिए धनार्जन में दिन-रात एक कर देना। अथर्ववेद में कहा है—

गृहाः अतृष्याः स्त।—अथर्ववेद ७.६०.६

हे गृहस्थो ! तुम तृष्णारहित बनो।

तृष्णा नाम इच्छा, लोभ और प्यास का है। इच्छाओं की वृद्धि से लोभ की वृद्धि होती है और उससे माया की प्यास बढ़ती जाती है। मानव उचित-अनुचित का विचार त्यागकर केवल धन के पीछे पड़ जाता है। असन्तोष, अनाचार और अन्याय की प्रवृत्ति उसे निरन्तर व्याकुल रखती है। सन्तोषी ही सदा सुखी रहते हैं। सन्तोष ही सदाचार का मूल है—इस ओर गृहपत्नी सबसे अधिक ध्यान दे सकती है। मुंशी प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास 'गबन' में लेखक ने जालपा के चरित्र के रूप में इसी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है।

धनार्जन तथा संग्रह में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि धन अपने-आप में न बुरा है और न अच्छा। प्राप्ति के साधन ही उसे अच्छा या बुरा बनाते हैं। अच्छे उपायों से प्राप्त धन परिवार में कल्याण का विधायक होता है। अर्थशुचिता समस्त शुचिताओं की जननी है।

अर्थ-संग्रह के बाद उसका दूसरा पक्ष है—व्यय। व्यय का भार भी मनु पत्नी पर ही डालते हैं। उसके लिए उनका कथन है—'व्यये चामुक्तहस्तया'—व्यय में पत्नी को मुक्तहस्त नहीं होना चाहिए। परिवार की वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं और निजी साधनों को देखकर उसके व्यय की योजना बनानी चाहिए। समझदार पत्नी इस विषय में बड़ी सजग रहती है—'चादर देखकर पाँव फैलाती है।' दूसरों की देखादेखी तथा व्यर्थ फैशन में वह नहीं पड़ती। समय-समय पर अच्छे कार्यों में वह दान भी देती है। किसी बुद्धिमान् व्यक्ति की सलाह है—"प्रत्येक वस्तु खरीदते समय खरीदने से पूर्व अपने से एक प्रश्न पूछा करो कि क्या इस वस्तु के बिना भी मेरा काम चल सकता है ?" इस प्रकार आवश्यक और अनावश्यक में स्वतः विवेक होता जाता है और मनुष्य धन की कमी के कारण दुःखी नहीं होता, अतः 'कोशिका' बनकर आय-व्यय की संरक्षिका पत्नी ही हो सकती है।

(२) **गृह-व्यवस्था**—सुघड़ पत्नी की मनु-प्रोक्त दूसरी विशेषता है—कुशल गृह-व्यवस्था। घर में प्रवेश करते ही नारी की यह विशेषता प्रत्यक्ष होने लगती है। घर की प्रत्येक वस्तु सुव्यवस्थित और यथास्थान होनी आवश्यक है। ऐसा होने पर आवश्यकता के समय उसे प्राप्त करने के लिए भटकना नहीं पड़ता। अन्धेरे में सूई की माँग हो तो एक क्षण का विलम्ब किये बिना झट लाकर दे दे। प्रत्येक वस्तु शुद्ध, पवित्र, साफ-सुथरी हो तथा उनमें सुरुचि और सुन्दरता के

दर्शन हों। मनु के शब्दों में—'सुसंस्कृतोपस्करया'—प्रत्येक वस्तु को सुसंस्कृत तथा शुद्ध रखनेवाली हो। परिवार में वृद्ध-वृद्धा, युवा-युवती, बालक-बालिका जो भी भिन्न-भिन्न अवस्था तथा रुचि-सम्पन्न सदस्य हों उन सबकी आवश्यकता, रुचि व हित का सम्पादन होता रहे, ऐसे उसकी सुव्यवस्था का सुफल होना चाहिए।

महाभारत में द्रौपदी कहती है—

प्रमृष्टभाण्डा मृष्टान्ना काले भोजनदायिनी।
संयता गुप्तधान्या च सुसम्मृष्टनिवेशना॥

—महाभारत, वनपर्व २३३.२६

घर के बर्तनों को मैं माँज-धोकर साफ रखती हूँ। अन्न आदि शुद्ध स्वच्छ करके ठीक समय पर सबको भोजन कराती हूँ। मन व इन्द्रियों को संयम में रखकर धान्य, अनाज आदि आवश्यक वस्तुओं को सँभालकर सुरक्षित करती हूँ। घर को झाड़-बुहार तथा लीप-पोतकर सदा स्वच्छ एवं पवित्र रखती हूँ।

(३) **भोजन-व्यवस्था**—कहावत है कि 'पतिप्रेम का मार्ग पति के पेट से होकर गया है।' इसलिए मनु ने भोजन पकाने में निपुणता भी पत्नी की एक विशेषता कही है। विविध प्रकार के स्वादिष्ट, ऋतु-अनुकूल, बलकारक और स्वास्थ्यवर्धक भोजन बनाने की पाकविद्या में निपुणता भी प्रत्येक नारी की प्राथमिक आवश्यकता है। वेद में पत्नी के विशेषणों में एक विशेषण 'सिनीवाली' भी है। निरुक्त (११.३१) में कहा है—

'सिनम् अन्नं भवति, सिनाति भूतानि'

'सिन' अन्न को कहते हैं, क्योंकि यह प्राणियों को परस्पर बाँधता है। सिनीवाली का अर्थ हुआ अन्नपूर्णा। अथर्ववेद के सप्तम काण्ड के ४६वें सूक्त का देवता ही 'सिनीवाली' है। यजुर्वेद (११.५६) में भी उसे इसी विशेषण से स्मरण किया गया है। अथर्ववेद के सूर्या सूक्त में पाकविद्या का ज्ञान सूर्या के लिए अनिवार्य बताया गया है—

तृष्टमेतत्कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति॥

—अथर्ववेद १४.१.२९

यह अन्न तृषाजनक है, यह कड़ुवा है, यह निस्सार है, यह विषैला है, यह न खाने योग्य है—इस प्रकार ज्ञानवाली सूर्या को जो जानता है वह ही उसके साथ विवाह का अधिकारी होता है।

ऋषि दयानन्द यजुर्वेद १९.१५ मन्त्र के भावार्थ में लिखते हैं—

"सब कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकरण, धर्मविद्या और आयुर्वेदादि पढ़, स्वयंवर विवाह कर ओषधियों को और ओषधिवत् अन्न और दाल, कढ़ी आदि अच्छा पका, उत्तम रसों से युक्त कर पति आदि को भोजन करा तथा

स्वयं भोजन करके बल-आरोग्य की सदा उन्नति किया करें।"

संस्कृत कवि ने 'शिव-परिवार' की फक्कड़ता के सन्दर्भ में व्यंग्य करते हुए अन्नपूर्णा पार्वती की प्रशंसा में कहा है—

स्वयं पंचमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे॥

शिव स्वयं पंचमुख है। पुत्र हैं—तो एक हाथी के मुखवाला और दूसरा (कार्तिकेय) छह मुखोंवाला। पास में खाने को कुछ नहीं—दिगम्बर हैं। यदि अन्नपूर्णा पार्वती न हो तो कैसे निर्वाह हो ?

(४) **आध्यात्मिक वातावरण**—मनु पत्नी के लिए निर्देश करते हैं—'धर्मे नियोजयेत्'—धर्म-सम्बन्धी अनुष्ठान यज्ञ-यागादि में पत्नी को नियुक्त करे। अथर्ववेद में पत्नी की विशेषता यजन करने में बताई है—

पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो दैव।

—अथर्ववेद २०.१३५.५

ऋग्वेद में कहा है—

या दंपती समनसा सुनुत आ च धावतः।
देवासो नित्ययाशिरा॥५॥
पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः।
उभा हिरण्यपेशसा ॥८॥

—ऋग्वेद ८.३१.५,८

इन मन्त्रों का देवता 'दम्पती' है। उन्हीं के विषय में कहा है—'जो पति-पत्नी सम्यक् मन से नित्य देव-यजन करते हैं वे दोनों पुत्र-पौत्रोंवाले होकर तेजस्वी रूप में परिपूर्ण आयु प्राप्त करते हैं।'

अथर्ववेद में एक मन्त्र में उस घर को 'देवपुरी' कहा है जहाँ पूर्व-पश्चिम, अन्त-मध्य सर्वत्र वेदध्वनि गूँजती रहती है। ऐसे व्याधिरहित पतिलोक में कल्याणी वधू प्रवेश कर सदा प्रसन्न रहती है।

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज॥

—अथर्ववेद १४.१.६४

जिस परिवार में पत्नी के प्रयत्न से ऐसा आध्यात्मिक वातावरण स्थिर रहता है वहाँ प्रेम, सुख तथा सन्तोष का राज्य बना रहता है। महात्मा आनन्द स्वामी अपनी पुस्तक 'सुखी गृहस्थ' में लिखते हैं—

"अपने मकान में एक स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ पहुँचकर समझा जाए कि हम प्रभु-मन्दिर में आ गये हैं।…ऐसे कमरे, बराण्डे या कोने में सारा परिवार दिन में एक बार तो अवश्य बैठे। बैठें भी पूरी श्रद्धा-भक्ति से, दिखावे के लिए

नहीं। वास्तव में शरीर के लिए भोजन उतना आवश्यक नहीं जितना आत्मा और मन के लिए ईशभक्ति और प्रार्थना की आवश्यकता होती है।" ऋषि दयानन्द इसका लाभ बताते हुए कहते हैं—

"आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है?"

आधुनिक तनावपूर्ण जीवन में प्रभुविश्वास मनुष्य को तनावमुक्त कर मानसिक शान्ति व सुख प्रदान करता है। शारीरिक स्वास्थ्य, ईश-भक्ति और शान्त, एकान्त वातावरण प्राप्त करने के लिए ब्राह्ममुहूर्त (प्रातः चार बजे) उठना विशेष उपयोगी होता है।

(५) हसामुदाः—मनु ने 'सदा प्रहृष्टया भाव्यम्' तथा वेद (अथर्ववेद ७.६०.६) में 'हसामुदाः' कहकर परिवार के प्रत्येक सदस्य और विशेष रूप से गृहपत्नी के लिए सदा प्रसन्न रहने पर बल दिया है। कहावत है—'हंसत घर बसते।' जिन घरों में हास और मोद, प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण रहता है उसके निवासी तो स्वयं प्रसन्नचित्त रहते ही हैं उनके सम्पर्क में आनेवाले व्यक्ति भी सदा आनन्द और उल्लासमय हो जाते हैं। स्वामी विद्यानन्द जी विदेह लिखते हैं—

"गृहस्थों को चाहिए कि वे हास और मोद के महत्त्व को समझें। जिस प्रकार खिले हुए फूलों से सजी वाटिका सुन्दर और सुहावनी लगती है उसी प्रकार जिस परिवार में प्रत्येक व्यक्ति फूल की तरह खिला हुआ और प्रमुदित रहता है उस परिवार में सदा बहार और प्रियता छाई रहती है।

हास और मोद शरीर के कण-कण में संजीवन का संचार करते हैं तो इनका अभाव जीवन के कण-कण में से जीवनशक्ति का ह्रास करता है। फूल के अन्तःकरण में मधु और सुगन्धि होने से ही वह खिला रहता है। इसी प्रकार जिन व्यक्तियों के अन्तःकरण में मधुरता और पवित्रता होती है वे ही 'हसामुदाः' रह सकते हैं अन्य नहीं।"

संसार में प्रायः दो प्रकार की मनोवृत्तिवाले व्यक्ति दिखाई देते हैं। एक वे जो सदा शिकायत करते रहते हैं कि उन्हें जीवन में ऐसे-ऐसे अभाव हैं, कष्ट हैं, दुःख हैं आदि। वे दुःख में तो दुःखी रहते ही हैं, अपनी इस मनोवृत्ति के कारण उन्हें सुख में भी सुख अनुभव नहीं होता। उन्हें भगवान् अपने प्रति निष्ठुर और अकृपालु दिखाई देता है। दूसरे व्यक्ति वे हैं जो फूलों की तरह काँटों में भी मुस्कराते हैं, कष्टों, व्याधियों, अभावों में भी उस प्रभु की कृपा का एक कण अनुभव कर उसके प्रति सदा कृतज्ञ बने रहते हैं।

कवि की भावना के अनुसार

जीवन बन तू फूल समान।
पर-उपकार सुरभि से सुरभित, सन्तन को सुखदान।

कठिन कण्टकों के घेरे में, दारुण दु:खदायी फेरे में
पड़कर विचलित कभी न होना, बनना नहीं अजान ।
शत्रु-मित्र दोनों का हित हो, पावन यह तेरा शुभ व्रत हो
मधुदाता बन सबका प्यारा, तजकर भेद-विधान ।
दे तू सुरभि टूटने पर भी, पैरों तले रौंदने पर भी
इस विधि से प्रभु की माला में पा ले प्यारा स्थान ।
जीवन बन तू फूल समान ।।

कबीर, रविदास, नरसी मेहता, रामकृष्ण परमहंस, ऋषि दयानन्द कितने ही 'काँटों' में मुस्करानेवाले 'सुमन' इस धरती पर हुए हैं। ऋग्वेद (६.५२.५) में भी 'विश्वदानीं सुमनस: स्याम'—हम सदा सुमन बने रहें, इसी भावना को अभिव्यक्त किया गया है। रूस के महान् विचारक और कथाकार लियो ताल्स्ताय ने ऐसे 'हसामुदा' और सुखी व्यक्तियों के इस रूप को प्रकट करने के लिए 'सुखी आदमी की कमीज' नाम से एक सुन्दर कहानी लिखी है—

बहुत पहले की बात है। किसी देश का राजा अचानक ऐसा बीमार पड़ा कि खाट से उठना ही मुश्किल हो गया। देशभर के वैद्य, हकीम और डाक्टरों ने एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया, पर राजा की बीमारी का पता न लगा सके।

एक बार एक सन्त महल में आया और राजा को धीरज दिलाते हुए उसने कहा—'तुम घबराओ मत राजन् ! कुछ ही दिनों में एकदम ठीक हो जाओगे। हाँ, यदि हो सके तो किसी दिन रात को सोते समय अपने राज्य के किसी सुखी आदमी की कमीज पहन लेना।'

राजा ने अपने अनुचरों को सुखी आदमी की खोज में दौड़ा दिया। सुखी आदमी हो तो मिले ! कोई अपने बच्चे के न रहने पर आँसू बहा रहा था तो कोई अपनी माँ की मृत्यु से टूट चुका था।

राजा का लड़का भी अपने पिता के लिए सुखी आदमी की कमीज ढूँढने के लिए निकला। काफी दिनों तक भूखे-प्यासे भटकने के बाद भी जब उसे कोई सुखी आदमी नहीं मिला, तब वह निराश होकर राजमहल की ओर लौट चला।

गरीबों की बस्ती से गुजरते हुए अचानक एक झोंपड़ी से उसे आवाज सुनाई दी—'भगवान् कितना दयालु है ! मुझे और मेरे परिवार को भरपेट भोजन ही नहीं खुशी भी दी है उसने। दिनभर हँसी-खुशी काम किया, पत्नी का बनाया हुआ बढ़िया भोजन किया। चलो, अब आराम से चैन की नींद सोता हूँ।'

राजकुमार खुशी से उछल पड़ा—'यही तो है वह, जिसको मैं इतने दिनों से खोज रहा हूँ।'

वह तेजी से झोंपड़ी में घुस गया। वह चाहता था कि किसी भी कीमत पर उस आदमी की कमीज अपने पिता के लिए खरीद ले। पर यह क्या ? वह जैसे

ही झोंपड़ी में घुसा तो यह देखकर दंग रह गया कि वह आदमी इतना गरीब था कि उसके पास पहनने के लिए कमीज तक न थी।

मनुष्य के जीवन में वैसे ही समस्याएँ, कष्ट, तनाव और दुःख अधिक कष्ट-दायक अनुभव होते हैं। ऐसे में विशेष रूप से गृहस्वामी और स्वामिनी अपनी प्रसन्न मनोवृत्ति से समस्त वातावरण को इतना मोदमय बना लेते हैं कि वे कष्ट भी कष्टदायक अनुभव नहीं होते। जीवन के तनावों से मुक्ति के दो ही स्वस्थ उपाय हैं—प्रभुभक्ति में अपने को तल्लीन करना अथवा कष्टों में भी फूलों की तरह खिलखिलाकर हँसना। कवि के शब्दों में—

होंठों पर मुस्कान और चेहरों पर आह्लाद जहाँ है
निश्चय जानो स्वर्ग वहीं है, स्वर्ग वहीं है, स्वर्ग वहाँ है।

सूर्या पत्नी के गुणों का विस्तार यहीं तक सीमित नहीं है। उसके महत्त्व के कारण उसमें अन्य भी अनेक विशेषताओं और गुणों की अपेक्षा की गई है—

शारीरिक स्वास्थ्य—अश्मानं तन्वं कृधि—अथर्ववेद १.२.२
अश्मा भवतु ते तनूः—अथर्ववेद २.१३.४

ब्रह्मचर्य, मानसिक दक्षता, बुद्धिमत्ता, वात्सल्य, उदारता, परोपकार, गोपालन आदि गुण इसी प्रकार के हैं।

सूर्य-(पति)-पूजा का तो इस देश में बहुत प्रचार रहा, किन्तु वेदादि शास्त्रों के आधार पर सूर्या-(पत्नी)-पूजा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करनेवाले आचार्य मनु और देव दयानन्द की दिव्य दृष्टियाँ ही रही हैं। ऋषि दयानन्द ने विशेष रूप से पौराणिक पंचदेवता—अम्बिका, विष्णु, गणेश, शिव और सूर्य के पीछे छिपे चेतन देव—माता, पिता, आचार्य, अतिथि और पति-पत्नी की पूजा-सत्कार की ओर सत्यार्थप्रकाश में हमारा ध्यान आकर्षित किया। आवश्यकता है इस भावना को महत्त्व देकर सच्ची देवपूजा और मूर्तिपूजा की।

ऋषि दयानन्द के शब्दों में—

"(यही) सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्ति-पूजा है···ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियाँ हैं।" □

•

आधार ग्रन्थ

१. ऋग्वेद संहिता	सं० पं० सातवलेकर
२. यजुर्वेद संहिता	भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती
३. सामवेद संहिता	भाष्यकार पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार
४. अथर्ववेद संहिता	सं० पं० सातवलेकर
५. शतपथ ब्राह्मण	
६. तैत्तिरीय ब्राह्मण	
७. एकादशोपनिषद्	भाष्यकार पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
८. निरुक्त	सं० चन्द्रमणि विद्यालंकार
९. वाल्मीकि रामायण	
१०. महाभारत	
११. श्रीमद्भगवद्गीता	(गीता रहस्य) तिलक
१२. मनुस्मृति	सं० सुरेन्द्र कुमार
१३. याज्ञवल्क्यस्मृति	
१४. हरिवंशपुराण	
१५. व्याकरणमहाभाष्य	पतञ्जलि
१६. शुक्रनीति	
१७. चाणक्यनीति	
१८. बृहत्पाराशरसंहिता	
१९. अमरकोश	रामाश्रमी टीका
२०. हिन्दी शब्दसागर	
२१. सत्यार्थप्रकाश	स्वामी दयानन्द सरस्वती
२२. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	स्वा० दयानन्द सरस्वती
२३. संस्कारविधि	स्वा० दयानन्द सरस्वती
२४. पंचतन्त्र	
२५. हितोपदेश	
२६. रघुवंश	कालिदास

२७. अभिज्ञान शाकुन्तल	कालिदास
२८. उत्तररामचरित	भवभूति
२९. काव्यमीमांसा	
३०. बृहत्कथा	गुणाढ्य
३१. हनुमन्नाटक	
३२. रामचरितमानस	गोस्वामी तुलसीदास
३३. विनय पत्रिका	गोस्वामी तुलसीदास
३४. कुरुक्षेत्र	रामधारीसिंह दिनकर
३५. कबीर ग्रन्थावली	सं० श्यामसुन्दर दास
३६. सर्वंगी	संत रज्जब
३७. वैदिक गृहस्थाश्रम	पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड
३८. सुखी गृहस्थ	आनन्द स्वामी
३९. गृहस्थ विज्ञान	स्वामी विद्यानन्द विदेह
४०. पंचयज्ञ प्रकाश	स्वामी समर्पणानन्द
४१. उरुधारा नारी	डॉ० प्रज्ञादेवी
४२. धरती का स्वर्ग	पं० शिवकुमार शास्त्री
४३. वैदिक स्वर्ग की झाँकियाँ	प्रेमभिक्षु
४४. वैदिक शिव	पं० विश्वबन्धु शास्त्री
४५. वैदिक देवपुरी के दर्शन	डॉ० ओम्प्रकाश वेदालंकार
४६. मृत्यु से अमृत की ओर	डॉ० ओम्प्रकाश वेदालंकार

एक भजन : एक प्रेरणा

हम कभी माता-पिता का ऋण चुका सकते नहीं।
इनके तो एहसान हैं इतने गिना सकते नहीं।।

यह कहाँ पूजा में शक्ति यह कहाँ फल जाप का
हो तो हो इनकी कृपा से खातमा संताप का
इनकी सेवा से मिले धन ज्ञान बल लम्बी उमर
स्वर्ग से बढ़कर जगत् में आसरा माँ-बाप का
इनकी तुलना में कोई वस्तु भी ला सकते नहीं
हम कभी माता-पिता का ऋण चुका सकते नहीं।

देख लें हमको दुःखी तो भर लें अपने नयन ये
दुःख की खातिर हैं हमारे कलपते दिन-रैन ये
भूख लगती प्यास ना और नींद भी आती नहीं
कष्ट हो तन पर हमारे हो उठें बेचैन ये
इनसे बढ़कर देवता भी सुख दिला सकते नहीं
हम कभी माता-पिता का ऋण चुका सकते नहीं।

पढ़ लो वेद और शास्त्र का ही एक यह भी मर्म है
योग्यतम सन्तान का यह सबसे उत्तम कर्म है
जगत् में जब तक जीयें सेवा करें माँ-बाप की
इनके चरणों में यह तन-मन-धन लुटाना धर्म है
यह 'पथिक' वह सत्य है जिसको भुठा सकते नहीं
हम कभी माता-पिता का ऋण चुका सकते नहीं।
इनके तो एहसान हैं इतने गिना सकते नहीं।।

सत्यपाल 'पथिक'
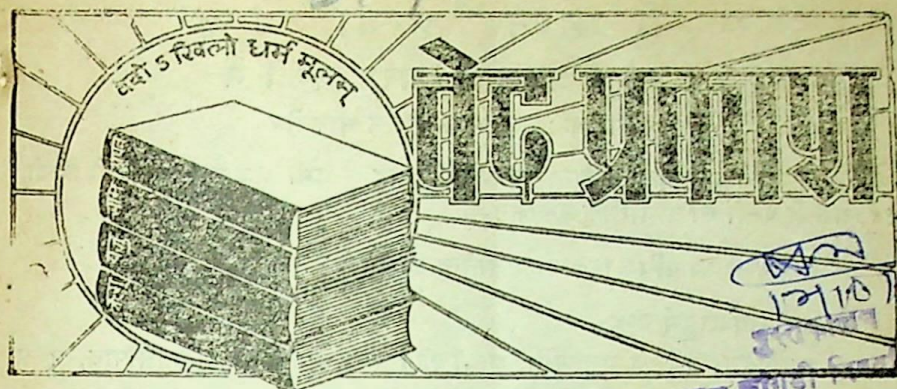
स्वर्गीय अमरस्वामी जी महाराज

आर्यसमाज के युग-निर्माताओं में से एक का और निधन हो गया। ९४ वर्ष के वयोवृद्ध श्री अमरस्वामी जी महाराज अब नहीं रहे। कैंसर से पीड़ित रोगी के और जीवित रहने की आशा भी नहीं की जा सकती थी। रोग की यातना से उन्हें मुक्ति मिली। शनिवार ५ सितम्बर को प्रातःकाल ११ बजे के लगभग उनका शरीर भी अग्नि की ज्वालाओं को समर्पित कर दिया गया।

पूज्य स्वामी जी मुझसे आयु में १२ वर्ष बड़े थे—उनका स्नेह मुझे प्राप्त था। किसी भी संन्यासी के चरणों में नतमस्तक होने में मुझे संकोच नहीं है, पर मेरे लिए अमरस्वामी जी अन्तिम व्यक्ति थे, जिनसे आशीर्वाद प्राप्त करने में मुझे आत्मीयता प्राप्त होती थी। उन्हें लोग शास्त्रार्थ-महारथी कहते हैं। शास्त्रार्थों की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है। स्वामी शंकराचार्य ने भी शास्त्रार्थ किये, गुरुवर विरजानन्द ने भी। ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ तो इतिहास में प्रसिद्ध रहेंगे। आर्यसमाज के इस युग में स्वामी दर्शनानन्द जी, पं० गणपति शर्मा, पं० लेखराम जी, पं० रामचन्द्र देहलवी—ये नाम शास्त्रार्थों के क्षेत्र में मूर्धन्य हैं। अमरसिंह जी भी उसी शृंखला की अन्तिम कड़ी और उद्भट तार्किक थे। मेरे लिए तो उनकी गरिमा उन साहित्यिक प्रमाण-वाक्यों के लिए भी थी, जिनका उनके पास अद्भुत भण्डार था। ओजस्वी वाणी, निर्भीकता और स्मरण-शक्ति अन्तिम दिनों तक उनका साथ देती रही।

साथ ही साथ, स्वामी जी महाराज संगीत के कलाविद् थे। उन्होंने अपने कई शिष्यों को संगीतज्ञ बना दिया। शायद यह गुण और किसी शास्त्रार्थ-महारथ में नहीं दिखाई पड़ेगा। स्वामी जी के छोटे-छोटे निष्कर्ष भी बड़े रोचक और महत्त्व के हैं, जैसे 'द्रौपदी का एकमात्र पति युधिष्ठिर था', 'राम ने क्वार के महीने में रावण को नहीं मारा जब हम विजयादशमी मनाते हैं'।

अब स्वामी जी नहीं रहे तो हमें उनका अभाव बहुत अखरेगा। यह स्वाभाविक है। दिवंगत स्वामी जी का सबसे अच्छा स्मारक यही होगा कि हम शीघ्र ही उनका विस्तृत जीवन-चरित प्रकाशित करें, उनके ग्रन्थागार को सुरक्षित रखते हुए उसे अखिल भारतीय ग्रन्थागार में विकसित करने की योजना हाथ में लें।

—स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली का

अभूतपूर्व प्रकाशन ग्यारह खण्डों में

सम्पादक : डॉ० भवानीलाल भारतीय

उपर्युक्त ग्रन्थमाला के अन्तर्गत अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के सभी हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी ग्रन्थों का प्रामाणिक प्रकाशन—

कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा)

धार्मिक उपदेशपूर्ण ग्रन्थ—

धर्मोपदेश, संक्षिप्त मनुस्मृति, आर्यों की नित्यकर्म पद्धति, मुक्तिसोपान, पञ्च महायज्ञों की विधि आदि।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज विषयक ग्रन्थ—

आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त, ईसाई पक्षपात और आर्यसमाज, वेद और आर्यसमाज, उपदेशमंजरी की भूमिका, ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार की भूमिका।

हिन्दू संगठन और शुद्धि-समस्या—

वर्णव्यवस्था, आचार-अनाचार और छूत-छात, जाति के दीनों को मत त्यागो, हिन्दू संगठन, मातृभाषा का उद्धार आदि।

स्वामी श्रद्धानन्द के राजनैतिक ग्रन्थ—

'इनसाइड कांग्रेस' का प्रथम बार हिन्दी अनुवाद, स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा प्रकाशित दि लिब्रेटर में प्रकाशित २५ राजनैतिक लेखों का प्रामाणिक अनुवाद, इसके साथ ही स्वामीजी का पं० गोपाल कृष्ण गोखले आदि नेताओं के साथ हुए दुर्लभ पत्र-व्यवहार को भी दिया जा रहा है) हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद (एकता) की कहानी।

पं० लेखराम का जीवनचरित और बंदीघर के विचित्र अनुभव

आर्यसमाज एण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स : ए विण्डिकेशन का अनुवाद—आर्यसमाज और उसके शत्रु : एक प्रतिवाद के शीर्षक से यह दुर्लभ ग्रन्थ ८० वर्ष पश्चात् पुनः पाठक वर्ग को अर्पित किया जा रहा है।

सद्धर्म प्रचारक का अभियोग : पूर्ण और प्रामाणिक अनुवाद (गोपीनाथ काश्मीरी के अभियोग का विवरण)

उर्दू ग्रन्थों का अनुवाद : कुलियात संन्यासी तथा अन्य ग्रन्थ।

स्वामी श्रद्धानन्द की प्रामाणिक बृहत जीवनी (सचित्र)

सम्पूर्ण स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली : ग्यारह खण्डों में—मूल्य ६६०-००। प्रकाशन से पूर्व २२ अक्तूबर १९८७ तक मूल्य भेजने वालों को ३६०-०० में। **थोड़ी ही संख्या में ग्रन्थावली छापी जा रही है। शीघ्र ग्राहक बनें।**

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक ३] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [अक्तूबर १९८७

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

स्वामी श्रद्धानन्द : लेखक और साहित्यकार के रूप में

लेखक—डॉ० भवानीलाल भारतीय

स्वामी दयानन्द के सुयोग्य शिष्य और अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन बहुमुखी आयामोंवाला था। उन्होंने एक साथ ही धर्म, समाज, शिक्षा तथा राष्ट्र इन चार विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में अवतीर्ण होकर उल्लेखनीय कर्मठता प्रदर्शित की। वे एक ओर जहाँ अत्यन्त कर्मशील, भावना-प्रवण तथा अनेकानेक रचनात्मक कार्यक्रमों के विधाता तथा संयोजक रहे, वहाँ उनकी लेखनी से एक ऐसी विशाल साहित्यराशि भी प्रसूत हुई है जिसे पढ़कर न केवल उनके समकालीन जनों ने ही प्रेरणा प्राप्त की, अपितु वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ियाँ भी उससे असीम आशा, उत्साह तथा सम्बल प्राप्त करेंगी।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का साहित्य मुख्यत: हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू—इन तीन भाषाओं में उपलब्ध होता है। उन्होंने 'कल्याणमार्ग का पथिक' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखी थी जिसका प्रथम संस्करण ज्ञानमंडल काशी ने १९८१ वि० में प्रकाशित किया था। इसमें स्वामी जी ने अपने चारित्रिक पतन और तदनन्तर उत्थान की कहानी को नितान्त बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया है। महापुरुषों के चरित्र की एक विशेषता होती है कि वे अपनी उपलब्धियों का बखान करने में चाहे कितनी ही कृपणता क्यों न बरतें, अपनी त्रुटियों, कमजोरियों और चारित्रिक स्खलनों को जनसमाज के समक्ष प्रस्तुत करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। यही कारण है कि ऋषि दयानन्द के सम्पर्क में आने से पूर्व तक युवक मुंशी-राम का जीवन पतन के भयानक गर्त में गिरता ही चला गया, किन्तु दयानन्द के चमत्कारी सम्पर्क ने उस व्यक्ति के जीवन की दिशा ही बदल दी। पाठक देखेंगे

कि 'कल्याण मार्ग का पथिक' जहाँ एक व्यक्ति की जीवन-कथा है, वहाँ तत्कालीन आर्यसमाज, हिन्दू-समाज तथा भारतीय परिस्थितियों का निष्पक्ष मूल्यांकन भी है।

स्वामी श्रद्धानन्द ने एक अन्य ग्रन्थ में अपने जेल-जीवन के संस्मरण भी लिखे हैं। वे 'गुरु का बाग' सत्याग्रह में सिखों के पक्ष को सत्य समझकर सम्मिलित हुए थे। उस दौरान उन्हें पर्याप्त समय तक कारावास भी भोगना पड़ा। ब्रिटिश जेलों में दुरवस्था थी, किन्तु सत्याग्रही स्वामी ने उस विषम अवस्था में भी अपने धैर्य को न खोकर किस प्रकार अपना तपस्या, अनुशासन, आत्मसंयम तथा स्वाभिमानयुक्त जीवन जिया, इसकी मुँह-बोलती कहानी आप 'बन्दीघर के विचित्र अनुभव' में पढ़ेंगे।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने ही एक सहयोगी और सहकर्मी, किन्तु अपने से बहुत पहले ही शहादत का जाम पीकर अमर हो जानेवाले वीर लेखराम की जीवनी को भी लेखनीबद्ध किया था। यों तो पं० लेखराम की अनेक छोटी-बड़ी जीवनियाँ लिखी गई हैं किन्तु कथानायक को वर्षों तक निकट से देखनेवाले तथा वैदिक धर्म के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा को अनुभव करनेवाले मुंशीराम जिज्ञासु की लेखनी का चमत्कार कुछ अलग ही है। आर्यसमाज के जीवनी-साहित्य में यह ग्रन्थ अनोखा ही है।

अपने विभिन्न सार्वजनिक कार्यों और सामाजिक गतिविधियों के प्रति पूर्ण न्याय करके भी स्वामी श्रद्धानन्द अध्ययन, लेखन और शोध के लिए पर्याप्त समय निकाल लेते थें, यह उनके व्यक्तित्व का एक उल्लेखनीय पक्ष है। उन्होंने दयानन्द-वाङ्मय का विशद एवं गम्भीर अध्ययन किया था। यही कारण है कि पौराणिक पं० कालूराम ने जब सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण दूसरी बार छापकर आर्य-समाज में अनावश्यक हलचल उत्पन्न करने का असफल प्रयास किया तो महात्मा मुंशीराम ने अपनी सुदृढ़ लेखनी को उठाया और 'आदिम सत्यार्थप्रकाश तथा आर्यसमाज के सिद्धान्त' शीर्षक विस्तृत विवेचनायुक्त ग्रन्थ लिखा। इसमें उन्होंने प्रथम संस्करण की विशेषताओं और सीमाओं का सतर्क विश्लेषण करते हुए सिद्ध किया कि सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण भी आर्यसमाज की एक अपूर्व धरोहर है तथा इसके पुनः प्रकाशित होने से (चाहे यह प्रकाशन कालूराम जैसे मत्सरग्रस्त व्यक्ति ने विद्वेषभाव से ही किया है) हमें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

समय-समय पर आर्यसमाज के मन्तव्यों और सिद्धान्तों पर अन्य मतानुयायियों द्वारा किये गए आक्षेपों का विधिवत् अध्ययन कर उनके निराकरण करने का मुंशीराम जी का प्रयास भी श्लाघनीय था। प्रसिद्ध पादरी फर्कुहर ने अपनी विख्यात पुस्तक 'मॉडर्न रिलिजियस मूवमेण्ट्स इन इण्डिया' में आर्यसमाज का विवेचन करते हुए जो निराधार तथा अलीक धारणाएँ प्रकट कीं, उनका सटीक उत्तर देना स्वामी श्रद्धानन्द जैसे चिन्तक एवं विचारक के ही सामर्थ्य की बात थी।

इसी प्रकार 'वेद और आर्यसमाज' में उन्होंने आर्यसमाज तथा उसके प्रवर्त्तक के वेद-विषयक मन्तव्यों को तर्कपूर्ण शैली में प्रस्तुत तो किया ही है, स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों में किये गए प्रक्षेपों तथा तज्जन्य भ्रान्तियों का भी सप्रमाण निराकरण किया है। इसी प्रकार 'उपदेश मंजरी के उर्दू अनुवाद की भूमिका', 'ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार की भूमिका', 'पं० लेखरामकृत महर्षि के उर्दू जीवन-चरित की भूमिका', 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उर्दू अनुवाद की भूमिका' भी उनके दयानन्द-विषयक अध्ययन की विशालता तथा उनकी व्यापक दृष्टि की परिचायिका हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द अपने युग के एक सफल पत्रकार भी थे। उन्होंने वर्षों तक 'सद्धर्म प्रचारक' का उर्दू तथा हिन्दी में प्रकाशन एवं सम्पादन किया। इस पत्र में उनके जो महत्त्वपूर्ण लेख छपते थे, वे ही कालान्तर में 'आर्य-धर्म ग्रन्थमाला' के कतिपय पुष्पों के रूप में पुस्तकाकार भी छपे। उन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक' में वेद, उपनिषद् तथा मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थों के मंत्रों, वाक्यों एवं श्लोकों के आधार पर आध्यात्मिक एवं नैतिक उपदेशों की जो सतत प्रवहमान धारा बहाई थी, उसे कालान्तर में 'धर्मोपदेश' तथा 'मुक्तिसोपान' शीर्षक ग्रन्थों में लिपिबद्ध किया गया था। इन ग्रन्थों को पढ़ने से स्वामी श्रद्धानन्द के आध्यात्मिक व्यक्तित्व का परिचय पाठकों को मिलता है।

महात्मा मुन्शीराम गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक और आचार्य भी थे। वे महाविद्यालय की कक्षाओं को तुलनात्मक धर्म तथा आर्य सिद्धान्त पढ़ाया करते थे। इसी प्रसंग में उन्होंने 'पारसी मत और वैदिक धर्म' का तुलनात्मक अध्ययन किया और उसे छात्रोपयोगी शैली में लिखकर ग्रन्थाकार छपाया। 'आर्यों की नित्यकर्म विधि', 'पंच महायज्ञों की विधि' आदि उनके कर्मकाण्डपरक ग्रन्थ हैं। उनके एक मित्र श्री ज्वालासहाय ने 'विस्तारपूर्वक संध्या' शीर्षक उर्दू ग्रन्थ अपने अनुभवों के आधार पर लिखा था। मुन्शीराम जी को यह ग्रन्थ इतना अच्छा लगा कि उन्होंने उसे हिन्दी में अनूदित कर प्रकाशित किया।

धर्म-विषयक ग्रन्थों के अतिरिक्त स्वामी श्रद्धानन्द की रचनाओं **में** ऐसी कृतियाँ भी प्रचुर संख्या में हैं जो 'हिन्दू संगठन', 'छुआछूत की समस्या', 'इस्लाम और ईसाइयत के हिन्दू समाज पर किये गये आक्रमणों के प्रतिकार' तथा इसी प्रकार की अन्य समस्याओं से सम्बद्ध हैं। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् स्वामीजी देश और समाज के विराट् फलक पर अवतीर्ण हो गये थे। लाला लाजपतराय और पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे हिन्दुत्वनिष्ठ नेताओं के सहयोग से उन्होंने हिन्दू महासभा को भी पुनरुज्जीवित किया तथा शुद्धि और संगठन का शंखनाद किया। कहना नहीं होगा कि हिन्दू धर्म और समाज की रक्षा की दृष्टि से उनका यह कार्य अत्यन्त महत्त्व का था। 'हिन्दू संगठन', 'जाति के दीनों को मत त्यागो', 'आचार अनाचार और छूत-छात' आदि उनके ऐसे ही ग्रन्थों में उपर्युक्त प्रश्नों का

विश्लेषण किया गया है।

कांग्रेस में कार्य करने का अवसर भी स्वामी श्रद्धानन्द को मिला था। यों तो महात्मा गांधी से उनका सम्पर्क तब से ही था, जब महात्मा जी दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह करने के पश्चात् स्वदेश में आये थे। उन दिनों वे कर्मवीर गांधी के नाम से जाने जाते थे। 'महात्मा' का पद तो उन्हें स्वयं महात्मा मुन्शीराम ने ही प्रदान किया था। रॉलेट एक्ट के विरोध में गांधी जी द्वारा प्रदत्त आह्वान को स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी अन्तरात्मा में अनुभव किया और अपने अन्य सभी कार्यक्रमों को स्थगित कर वे आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। रॉलेट एक्ट के विरोध में दिल्ली की जनता को जागृत करने तथा उन्हें प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करने में स्वामी श्रद्धानन्द जी सर्वात्मना जुट गये तथा डॉ० अन्सारी और हकीम अजमल खाँ जैसे नेताओं को साथ लेकर दिल्ली में सत्याग्रह का सफल संचालन किया। इसी दौरान उन्हें अंग्रेजी सेना के गोरखों की संगीनों के आसन्न प्रहार के लिए अपनी छाती खोलनी पड़ी तथा मुसलमानों को राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति का सन्देश देने के लिए जामा मस्जिद की वेदी से साम्प्रदायिक सौहार्द का उपदेश भी देना पड़ा। स्वामी जी के सार्वजनिक जीवन के ये स्वर्णिम दिन थे। किन्तु कांग्रेस को लेकर उनका शीघ्र ही मोह भंग हो गया। खिलाफत के बाद मुसलमानों में साम्प्रदायिक विद्वेष का जो विस्फोट हुआ और जिसके फलस्वरूप देश में सर्वत्र हिन्दू-मुस्लिम दंगे फूट पड़े, उसके घिनौने दृश्य भी स्वामी जी ने देखे। उन्होंने अनुभव किया कि मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति पर यदि कांग्रेस चलती रही तो उससे हिन्दू जाति का तो अहित होगा ही, स्वराज्य-प्राप्ति का लक्ष्य भी दूर हो जाएगा। स्वामी श्रद्धानन्द ने चाहे १९४७ की घटनाओं को न देखा, किन्तु यह अप्रकट नहीं है कि कांग्रेस की नीति में मुस्लिम तुष्टिकरण का जो दानव प्रविष्ट हुआ, उसकी राक्षसी क्षुधा निरन्तर बढ़ती ही गई और वह पृथक् निर्वाचन, अल्पमतों के अधिकार तथा आरक्षण तक ही सीमित नहीं रही, किन्तु उसने इन्हीं नेताओं से देश का विभाजन भी करवाया।

स्वामी श्रद्धानन्द की जागरूक दृष्टि ने देश के राजनैतिक क्षितिज को निरन्तर तीस वर्षों तक सतर्कता से देखा था। अपने इन्हीं अनुभवों को उन्होंने स्व-सम्पादित अंग्रेजी पत्र 'दि लिबरेटर' में धारावाही लेखमाला के रूप में प्रकाशित किया। कालान्तर में उनके ये लेख 'इनसाइड कांग्रेस' शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। स्वामी जी का अपने युग के सभी विख्यात नेताओं तथा राजनीतिज्ञों से महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार हुआ था। महात्मा गांधी, गोपालकृष्ण गोखले तथा देशबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज से हुए उनके पत्र-व्यवहार में अनेक महत्त्वपूर्ण सार्व-जनिक प्रश्नों की चर्चा हुई है।

स्वामी श्रद्धानन्द अंग्रेजी भाषा के एक प्रौढ़ लेखक थे। उनका इस भाषा पर

वेदप्रकाश

असाधारण अधिकार था। जब पटियाला राज्य में ब्रिटिश शासकों के संकेत से आर्यसमाजियों पर सत्ता पलटने और शासन के विरुद्ध षड्यन्त्र करने का अभियोग चलाया गया और बेकुसूर आर्यों को बनावटी मुकद्दमों में फाँसकर नाना प्रकार की अमानुषिक यन्त्रणाएँ दी गईं, तो महात्मा मुन्शीराम का हृदय क्रन्दन कर उठा। यद्यपि थोड़े समय के लिए ही सही, आचार्य ने अपने पीत वेश को उतारा और वकील का काला कोट एक बार पुनः पहना। अब वे बैरिस्टर रोशनलाल (लाहौर-निवासी) तथा दीवान बद्रीदास (जालन्धर-निवासी) जैसे आर्यसमाजी विधिवेत्ताओं के सहयोग से 'पटियाला षड्यन्त्र अभियोग' का पर्दाफाश करने तथा वहाँ के आर्यसमाजियों को निर्दोष सिद्ध करने के गुरुतर कार्य में लग गये। अन्ततः सत्य की विजय हुई और पटियाला राज्य को यह अभियोग समाप्त कर देना पड़ा। किन्तु इसी मुकद्दमे की पैरवी के दौरान म० मुन्शीराम ने अनुभव किया कि अंग्रेज शासक आर्यसमाज को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और उसके निर्दोष कार्यक्रमों तथा धार्मिक मन्तव्यों में भी उन्हें राजद्रोह तथा षड्यन्त्र की गन्ध आती है। इसी बात को ध्यान में रखकर विदेशी हुकूमत द्वारा भविष्य में किये जानेवाले अत्याचारों और उत्पीड़न से दयानन्द के महान् मिशन को बचाने की दृष्टि से मुन्शीराम ने अपने सहयोगी आचार्य रामदेव के सहलेखन में एक ऐतिहासिक ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा जिसका शीर्षक था 'आर्यसमाज तथा उसके शत्रु : आक्षेपों का निराकरण और प्रतिवाद'—'Aryasamaj and its Detrectors A Vindication'। १६१० में केवल एक बार छपा यह प्रामाणिक दस्तावेज है। उनके अंग्रेजी में लिखे अन्य लघु ग्रन्थ 'दि फ्यूचर ऑफ आर्यसमाज' और 'दि आर्यसमाज एण्ड पॉलिटिक्स' आदि भी महत्त्वपूर्ण हैं। पण्डित गोपालकृष्ण गोखले विषयक संस्मरणों पर आधारित एक लेख स्वामी श्रद्धानन्द ने 'वैदिक मैगजीन' के जून १६२० के अंक में भी छपाया था। दुर्भाग्यवश यह लेख अधूरा ही छपा और इसकी अवशिष्ट सामग्री प्रमादवश नष्ट हो गई।

स्वामी जी के उर्दू में रचित ग्रन्थों की संख्या भी पर्याप्त है। अपने आर्यसामाजिक जीवन के आरम्भ में ही उन्हें कश्मीरी पण्डित गोपीनाथ के साथ एक मानहानि के मुकद्दमे में उलझना पड़ा था। सद्धर्मप्रचारक में जब पण्डित गोपीनाथ पर कुछ सत्य आरोप लगाये गये तो उसने प्रचारक के सम्पादक व प्रकाशक महाशय मुन्शीराम को अदालत में खींच लिया। परन्तु इससे गोपीनाथ का ही भण्डा फूटा और अभियोग के दौरान यह सिद्ध हुआ कि वह ईसाई पादरियों का वेतनभोगी एजेण्ट है। स्वामी जी ने इस अभियोग का पूरा विवरण, जो अनेक ऐतिहासिक तथ्यों और जानकारियों से भरपूर है, उर्दू में पुस्तकाकार प्रकाशित किया था। इसका हिन्दी अनुवाद भी उन्होंने ही किया, जो १६०१ ई० में छपा।

स्वामी जी के अन्य उर्दू ग्रन्थ निम्न हैं : वर्णव्यवस्था, एक मांस-प्रचारक महा-

पुरुष की गुप्त लीला का प्रकाश, क्षात्र धर्मपालन का गैरमामूली वाक्य, यज्ञ का पहला अंग, आर्यसमाज के खानाजाद दुश्मन, (सद्धर्मप्रचारक में छपे लेखों का संग्रह), सुब्हे-उम्मीद (स्वामी दयानन्द की वेदभाष्य-शैली का विवेचन), पुराणों की नापाक तालीम से बचो, महात्मा मुन्शीराम के सात लेक्चरों का मजमूआ, दु:खी दिल की पुरदर्द दास्ताँ, मेरी जिन्दगी के नशेबोफराज, हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद की कहानी, अन्धा एतकाद और खुफिया जेहाद, मुहम्मदी साजिश का इन्कशाफ, अछूतोद्धार एक फौरी मसला, मेरा आखिरी मश्वरा तथा दाइए-इस्लाम या तबाहिए-इस्लाम।

उपर्युक्त सूची पर दृष्टिपात करने से विदित हो जाता है कि स्वामी श्रद्धानन्द ने उर्दू में अपने जीवन के अनेक खट्टे-मीठे अनुभवों को जहाँ लेखनी द्वारा उतारा है वहाँ आर्यसमाज की अनेक आन्तरिक समस्याओं और उसके विवादों पर भी साधिकार विचार व्यक्त किये हैं। इस प्रसंग में उनकी बृहदाकार कृति 'दु:खी दिल की पुरदर्द दास्ताँ' विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। इसमें उन्होंने आर्यसमाज की उस दुखती रग पर अंगुली रक्खी है जिसकी पीड़ा स्वयं स्वामी जी ने भी भोगी थी। 'कुलियात संन्यासी' शीर्षक से स्वामी जी की प्रतिनिधि उर्दू कृतियाँ छप चुकी हैं।

सम्पूर्ण श्रद्धानन्द ग्रन्थावली का पुन: प्रकाशन

यह अत्यन्त हर्ष का प्रसंग है कि आर्यसमाज के यशस्वी प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द ने स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पूर्ण साहित्य को ११ खण्डों में प्रकाशित करने का सराहनीय प्रयास किया है। इस ग्रन्थावली के सम्पादक का प्रमुख भार इन पंक्तियों के लेखक पर ही है। उर्दू ग्रन्थों का अनुवाद व सम्पादन श्री राजेन्द्र जिज्ञासु करेंगे। स्वामी जी के दुर्लभ व अनुपलब्ध ग्रन्थों को प्राप्त कराने में हमें बदायूँ के श्री राजाराम जिज्ञासु, पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक तथा कतिपय अन्य सज्जनों से सहयोग मिला, तदर्थ उनके प्रति आभार व्यक्त करना आवश्यक है। आशा है आर्य जनता ११ खण्डों में प्रकाशित इस ग्रन्थावली को हाथोंहाथ अपनाकर सम्पादक एवं प्रकाशक का उत्साहवर्धन करेगी।

वेदप्रकाश

'जीवन-सन्देश' में क्या-क्या है ?

लेखक—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु', वेद सदन, अबोहर

आर्य जनता को अबतक पता लग चुका है कि अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के उर्दू साहित्य का हिन्दी-अनुवाद यह सेवक कर रहा है। गोविन्दराम हासानन्द के संचालक श्री विजयकुमार जी ने इस ग्रंथावलि के दो खण्डों को तैयार करने की आज्ञा दी। उनकी इच्छानुसार प्रथम खण्ड **'जीवन-संदेश'** के नाम से तैयार किया जा चुका है और जबतक ये लेख पाठकों के हाथ में पहुँचेंगे तबतक यह पुस्तक प्रेस में जा चुकी होगी। दूसरा भाग भी तैयार हो रहा है और जबतक पाठक ये पंक्तियाँ पढ़ रहे होंगे तबतक यह भी लगभग पूरा हो चुका होगा।

अनेक जिज्ञासु, स्वाध्यायशील व धर्मानुरागी पूछ रहे हैं कि इसमें हम क्या-क्या दे रहे हैं ? स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इतना-कुछ लिखा है कि उनके सारे साहित्य का लेखा-जोखा करना अत्यन्त कठिन है और यदि 'सद्धर्म प्रचारक' के सम्पादकीय व टिप्पणियाँ भी लें तो संकलन (Selection) चुनाव करके भी पन्द्रह-बीस खण्ड सामग्री प्रकाशन-योग्य बनेगी। इन परिस्थितियों में इस सेवक ने बड़ी सावधानी से 'जीवन-सन्देश' की सामग्री का चुनाव किया है। अपनी ही रुचि को नहीं देखा; आर्य विद्वानों, आर्य संन्यासियों, आर्य वीरों व साधारण आर्य जनता तथा प्रकाशक महोदय से विचार-विमर्श करके सबकी सुरुचि, राष्ट्र व समाज-हित को भी ध्यान में रखते हुए इस खण्ड को तैयार किया है। इसकी विशेषतायें क्या हैं व त्रुटियाँ हमसे क्या-क्या रह गई हैं—यह तो छपने पर विद्वान् महानुभाव ही बतायेंगे, तथापि हमने इसमें **विविधता** का बड़ा ध्यान रक्खा है।

स्वामी जी महाराज के सार्वजनिक व साहित्यिक जीवन के आरम्भिक दिनों से लेकर बलिदान से कुछ समय पूर्व (नवम्बर १९२६ ई०) तक के लेख व प्रवचन खोज-खोजकर दिये हैं। यथा—

१. 'सद्धर्म प्रचारक' के प्रथम वर्ष (१८८९ ई०) की कुछ सम्पादकीय टिप्पणियाँ तथा अन्य लेखों के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश।

२. स्वामी जी महाराज की हलचल मचानेवाली एक प्रथम पुस्तक 'स्त्री-सुधार' (सन् १८९१ ई०) दी है। हमारे विचार में यह अपने विषय की उर्दू में पहली स्वतन्त्र व लोकप्रिय पुस्तक है।

३. इसी वर्ष की एक अन्य पुस्तक की केवल भूमिका ही दी है।

४. महात्मा मुंशीराम जी जब (सन् १९०० ई०) पंजाब सभा के प्रधान थे तब आपने 'ऋषि दयानन्द और उनका ज़हूर' एक पुस्तिका लिखी थी। यह पुस्तिका भी हमने दी है।

५. राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए समर्पित क्रान्तिकारी लाला पिण्डी दास जी (अमृतसरवाले नहीं) द्वारा सम्पादित व प्रकाशित संस्कारविधि का वह ऐतिहासिक संस्करण जिसे साम्राज्यवादी सरकार ने Search (तलाशी) में छपने से रोका और जिसे बाद में अमर धर्मवीर महाशय राजपाल जी ने छापा था, उस पुस्तक में संस्कारों पर संन्यास-दीक्षा से पूर्व जो कुछ भी महात्मा मुंशीराम जी ने लिखा था, वह सारी खोजपूर्ण सामग्री हमने अनूदित कर दी है।

६. 'आर्यों के रोज़ाना फरायज़' पुस्तिका एक से अधिक बार छपी थी। इस विषय में स्वामी जी ने राष्ट्रभाषा में भी यदाकदा लिखा। हमने उर्दू-पुस्तक का अनुवाद बड़े परिश्रम से कर दिया है।

७. 'सद्धर्म प्रचारक' तथा आर्यसमाज के जीवन में सन् १८९९ तथा १९०० ई० के वर्ष बड़े मोड़ के व महत्त्वपूर्ण थे। उन दिनों महात्मा जी का बलिदान अभी हुआ ही था। तब महात्मा जी कैसा लिखा करते थे, इसके लिए हमने उनके कुछ लेख दिये हैं।

८. एक समय आया जब आर्यों के लिए आग बरस रही थी। पटियाला का ऐतिहासिक अभियोग चल रहा था। खरे-खोटे परीक्षा की कसौटी पर कसे जा रहे थे। उन दिनों लोग आर्यों को जानते हुए भी पहचानते न थे। महात्मा मुंशीराम जी का एक रोचक यात्रा-वृत्तान्त (हिन्दी साहित्य में एक आरम्भिक यात्रा-वृत्तान्त माना जावेगा) उन दिनों का दिया है। तब एक जाने-पहचाने सज्जन कैसे महात्मा जी से बच-बचकर निकले। यह अत्यन्त रोचक, प्रेरणाप्रद व गौरवपूर्ण कहानी आप पढ़ेंगे।

९. विश्वख्याति के साहित्यकार सुदर्शन जी ने महात्मा मुंशीराम जी के कुछ ऐतिहासिक भाषणों की Reporting की थी। बड़े यत्न से हमने खोजी है। इसमें से कई व्याख्यान दिये हैं।

१०. 'प्रकाश' उर्दू व 'आर्य मुसाफिर' उर्दू में छपे कई छोटे-बड़े ऐतिहासिक व दुर्लभ लेख तथा ट्रैक्ट आदि दिये हैं।

११. सामग्री जो कभी पुस्तकरूप में आई ही नहीं, लुप्त-गुप्त कुछ ऐसी सामग्री

का जीर्णोद्धार हो रहा है—यह जानकर प्रकाशन से पूर्व ही आर्य जगत् के सर्वोच्च संन्यासी वीतराग पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने इसे आग्रह करके पढ़ा व सुना। श्री महाराज इस दुर्लभ सामग्री को सुनकर दंग रह गये और इसके प्रकाशन पर आनन्दित हो रहे हैं।

हमने सम्पादकीय टिप्पणियों में नई-नई व महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है। अभी **'जीवन सन्देश'** के विषय में इतना ही बताना व लिखना ठीक है। शेष फिर।

उर्दू वाले दूसरे खण्ड में स्वामी जी की वेद-विषयक सुप्रसिद्ध पुस्तक 'सुब्हे-उम्मीद' (आशा की उषा) ही अधिक पृष्ठ ले जावेगी, तथापि हमारा यत्न होगा कि इसमें विविधता आए एवं अधिक-से-अधिक सामग्री हो। पुस्तक का आकार जितनी आज्ञा देगा हम उसके अनुसार अधिक-से-अधिक सेवा को तत्पर हैं। **इसमें स्वामी जी के शास्त्रार्थ भी दिये हैं।**

जीवन-सन्देश में हिमाचल प्रदेश सम्बन्धी भी स्वामी जी का एक महत्त्वपूर्ण, खोजपूर्ण व रोचक लेख आ रहा है। यह भी एक छोटी पुस्तक ही समझें।

क्रिया योग

डॉ० नारायण दास साधक
पतञ्जलि योग केन्द्र, कृष्णनगर
क्षत्री वारी रोड, गुवाहाटी-७८१००८

क्रिया योग क्या है ?

योग में क्रिया योग एक बड़ी ही सरल तथा प्रभावशाली पद्धति है। क्रिया-पद्धति में न तो एकाग्रता और न स्थिर आसन की आवश्यकता है। ऐसा व्यक्ति जिसका मन अति चंचल हो, जो पाँच मिनट भी एक आसन में स्थिर न बैठ सकता हो, क्रिया योग कर सकता है। वास्तव में क्रिया योग में मन का एकाग्र नहीं करते अपितु उसमें चंचलता उत्पन्न करते हैं। उसे एक से दूसरे बिन्दु पर ले जाते हैं। कोई भी बिन्दु आपकी दृष्टि से ओझल नहीं होता।

क्रिया शब्द का अर्थ होता है—मन तथा चेतना की गतिविधि। योग की अन्य पद्धतियों में जैसा करते हैं, उससे ठीक उल्टा क्रिया योग में मन व चेतना की गतिविधियों पर कोई अंकुश नहीं रक्खा जाता; न उसे शान्त करने का ही उपाय किया जाता है। उनमें एक गति लाई जाती है। इससे मन में विभिन्न विभाग विकसित होते हैं।

क्रिया योग की तैयारी में श्वास की चेतना, उसका मानसिक मार्ग तथा कुछ प्रारम्भिक क्रियाओं की अच्छी जानकारी तथा अभ्यास आवश्यक है। इसके साथ ही क्रिया योग सीखने के लिए साधक को कुछ बन्ध तथा मुद्राओं की जानकारी भी जरूरी है।

क्रिया योग का अभ्यास चेतना की पूर्ण स्वतन्त्रता एवं आकस्मिक दृश्यों के साथ चलता है। इसमें बैठकर हम अपने शरीर को तनावयुक्त नहीं करते। क्रिया-योग उतना ही सरल, सहज एवं स्वाभाविक है जैसे—आप अपने पति, पुत्र अथवा पत्नी से बात करते अथवा कोई पुस्तक पढ़ते हैं। इससे किसी प्रकार सन्देह या भ्रम नहीं होता। इसी सहज अवस्था में बैठकर आप चेतना को एक दिशा में संचारित करते हैं।

इस प्रकार योग के दो विभाग होते हैं—प्रथम है मन को बाहरी जगत् के

अनुभवों से खींचकर एकाग्रता, ध्यान तथा समाधि में ले जाना। यदि इसे कर सकते हैं तो करते जाइए, बड़ी अच्छी बात है। परन्तु यदि आप ऐसा न कर सकें, यदि आपका मन चंचल बालक के समान उछल-कूद जारी रक्खे तो अच्छा होगा कि आप क्रिया-योगपद्धति को अपनाएँ। इसके द्वारा किसी भी संघर्ष अथवा कठिनाई का निवारण कर सकते हैं। केवल पाँच या दस क्रियाएँ चुन लीजिए। उनका अभ्यास चंचल मन की किसी भी समस्या को हल करने में सहायक होगा।

क्रिया योग के अभ्यास के लिए धर्म, जाति, रंग, मानसिक दशा अथवा भोजन आदि बाधक नहीं हैं। यदि आपके लिए लाभदायक है तो आज से ही इसके लिए तैयारी प्रारम्भ कर दीजिए।

प्रधान योजना

"क्रिया योग" का अभ्यास एक विशिष्ट योजना का अनुकरण करता है और इसे तीन विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है। ये वर्ग क्रमानुसार निम्न हैं—

१. प्रत्याहार, २. धारणा, ३. ध्यान।

प्रथम १ से निम्नांकित ९ क्रियाएँ प्रत्याहार से सम्बन्धित हैं, १० से १९ तक की क्रियाएँ धारणा में शनैः-शनैः प्रवेश से सम्बन्धित हैं, अन्तिम क्रिया संख्या २० कोमलता से ध्यानावस्था-लाभ कराती है।

क्रियाएँ

१. विपरीतकरणी मुद्रा, २. चक्र-अनुसन्धान, ३. नाद-संचालन, ४. पवन-संचालन, ५. शब्द-संचालन, ६. महामुद्रा, ७. महा भेद मुद्रा, ८. मुंडूकी मुद्रा, ९. तन्दन क्रिया, १०. नौमुखी, ११. शक्तिचालिनी, १२. शाम्भवी, १३. अमृत-पान, १४. चक्र-भेदन, १५. सुषुम्ना-दर्शन, १६. प्राण-आहुति, १७. उत्थान, १८. स्वरूप-दर्शन, १९. लिंग-संचालन, २० ध्यान।

दैनिक जीवन में सजगता—

दैनिक जीवन में अधिक-से-अधिक सजगता उत्पन्न करने की चेष्टा कीजिए। अपना कर्त्तव्य और कर्म करते हुए भी सजग रहने की चेष्टा कीजिए। हरेक विचार, भावना और कार्य का निरीक्षण-परीक्षण कीजिए।

तपः-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः—इसमें तप का अभिप्राय आसन को स्थिर करने में सजगता बनाये रखना तथा स्वाध्याय से अभिप्राय आत्मनिरीक्षण में सजग रहना कि मैं क्या कर रहा हूँ? तथा ईश्वर-प्रणिधान से तात्पर्य है कि परमपावन शक्ति आपके समक्ष उपस्थित है—इस भाव को सजग रखना है। यदि क्रिया योग में उपर्युक्त निर्देशों का ठीक-ठीक पालन होता है तो सफलता मिलने में कोई देरी नहीं।

उज्जयी प्राणायाम 'ओ३म्' के साथ

उज्जयी प्राणायाम ओ३म् के साथ मिला हुआ मनोवैज्ञानिक श्वास-साधन है। यह शिथिलता और पूर्वध्यान की एक अनूठी कला है। यह किसी भी समय दिन अथवा रात, युवा-वृद्ध सबके लिए सीखना अथवा अभ्यास करना सर्वथा आसान है। आप किसी भी आसन में, जो आरामदेह हो और जिसमें सुषुम्ना, गर्दन तथा सिर एक सीध में रहें, लम्बे समय तक बैठ सकते हैं। इसमें आपको बिना निद्रा के खर्राटे लेना सीखना चाहिए।

विधि :

अपने पूर्ण शरीर को शिथिल कीजिये और आसन को ऐसा व्यवस्थित कीजिये कि अभ्यास-क्रम में बदलने की आवश्यकता नहीं हो। अपनी आँखें बन्द कीजिये।

नासिका से अन्दर और बाहर आते-जाते श्वास के प्रति सजग होइये। अपनी सजगता को अपने गले पर केन्द्रित कीजिये। श्वास को श्वासनली में महसूस कीजिये।

गहन परन्तु नर्म श्वास लीजिये। आपका श्वसन सोते हुए बच्चे के श्वसन की तरह ध्वनि पैदा करे। आपको सिर्फ अपनी श्वास-नली में ही श्वसन महसूस करना चाहिए।

हर श्वास ग्रहण और निर्गमन के साथ ओ३म्-ध्वनि सम्मिलित कीजिये। श्वास-ग्रहण के साथ मस्तिष्क में जाप कीजिये। श्वास-निर्गमन के साथ मस्तिष्क में ओ३म् का जाप कीजिये। खर्राटे लेते हुए मन-ही-मन ओ३म् का जाप करते जाइये।

स्थितिकाल :

इस विधि के साथ अभ्यास घण्टों किया जा सकता है। हालाँकि पाँच या दस मिनट तनाव खतम करने और शिथिल होने वा दूसरे अभ्यास की तैयारी के लिए बहुत है।

लाभ :

यह अभ्यास सरल होते हुए भी पूर्ण शरीर पर प्रभावकारी है और मनोवैज्ञानिक तल पर लाभकारी है। यह स्नायु-संस्थान को शान्त करता है तथा मन की चिन्ता और परेशानी को दूर करता है। जो लोग अनिद्रा से ग्रसित हैं, सोने के

पहले इसके अभ्यास से गहरी निद्रा आती है। उन्हें शवासन में बिना तकिये के लेटना चाहिए क्योंकि तकिया सिर को छोड़कर श्वासनली को संकुचित कर श्वसन में बाधा उत्पन्न करता है। यह क्रिया उनके लिए भी अति उपयोगी है जो रक्तचाप से ग्रसित हैं क्योंकि यह क्रिया हृदयगति को मंद करती हैं।

अजपा जप

परिभाषा—किसी मन्त्र को बार-बार दोहराने को जाप कहा जा सकता है।

तात्पर्य है कि बिना किसी चेष्टा के किसी मन्त्र का अपने-आप जाप होना। जाप में चेतनता की आवश्यकता होती है, जबकि अजपा में किसी चेष्टा की आवश्यकता नहीं होती। कहा जाता है कि जाप मुँह से होता है, परन्तु अजपा हृदय से।

जाप आरम्भिक अभ्यास है और अजपा एक पूर्णता।

उज्जयी खेचरी मुद्रा की अखण्डता :

उज्जयी प्राणायाम और खेचरी मुद्रा दोनों बहुत सरल, लेकिन बहुत शक्तिशाली अभ्यास हैं और अधिक लाभ के लिए अजप से अखण्डित करना चाहिए।

अजप अवस्था १

आराम की स्थिति में बैठिए। आँखें बन्द करके पूरे शरीर को शिथिल कीजिए। बिना दबाव के सुषुम्ना को सीध में रखिए। अपने-आप से कहिए कि सारी परेशानियाँ और चिन्ताएँ दूर हो गई हैं। जब तैयार हों तब अभ्यास शुरू कीजिए।

अपनी श्वसन-क्रिया में आइए। हरेक श्वास-ग्रहण और श्वास-निर्गमन के प्रति पूर्ण सचेत रहिये।

श्वास की ध्वनि को महसूस कीजिए। कुछ मिनटों तक इसी तरह कीजिए।

तब अपने श्वासों को गले के अग्र और नाभि के मध्य बहने की कल्पना कीजिए। श्वास-ग्रहण में श्वास का अवरोहण गले से नाभि तक होगा। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अपने श्वासों से पूर्ण अवगत होना। श्वासों को तालबद्ध होने दीजिए, गहरा और दीर्घ, परन्तु बिना कोई शक्ति लगाये। जितना आप शिथिल होंगे श्वास उतना ही अपने-आप धीमा और गम्भीर होता जायेगा। अगर मन भटकता हो, जो कि स्वाभाविक है, उससे संघर्ष कीजिए, पर श्वास पर सजगता बरकरार रखिये। तब श्वास की गति के साथ "सोऽहम्" मन्त्र गले से नाभि तक अभिभूत कीजिये।

"सो"-ध्वनि नाभि से गले तक श्वास-ग्रहण में तथा "हम्"-ध्वनि गले से

नाभि तक श्वास-निर्गमन में। जैसे-जैसे आपका श्वास गले और नाभि के बीच प्रवाहित हो रहा हो, "सोऽहम्" से सजग रहें।

सजगता :

आपको श्वास और मन्त्र को साथ-साथ स्थिर व सजग रखना चाहिए; मन को विचरण करने दीजिए, आपको सिर्फ सजग रहना चाहिए।

लाभ :

यह क्रिया योग की तैयारी के लिए अनूठी और जरूरी है। यह मानसिक शान्ति और मन की एकाग्रता प्रदान कर सीधे ध्यानावस्था में ले जाती है।

अजप अवस्था २

आराम के आसन में बैठिए! अवस्था १ में वर्णित तरीके से आरम्भिक शिथिलता की क्रिया कीजिए।

बार-बार ओ३म् का जप कीजिये, उदाहरण के लिए १३ बार। तब खेचरी मुद्रा और उज्जयी प्राणायाम कीजिये। अवस्था १ के अनुसार अपने श्वासों के प्रति सजग होते हुए इसे गम्भीर और मन्द होने दीजिये। ऐसा महसूस करने की कोशिश कीजिये कि आप खुद ही श्वसन की प्रक्रिया हैं। तदुपरान्त श्वास का बहाव नाभि से गले तक में अनुभव कीजिये।

श्वास-ग्रहण ऊपर की ओर नाभि से गले तक और श्वास-निर्गमन नीचे की ओर गले से नाभि तक।

निरीक्षण कीजिये कि श्वसन मंदतर से मंदतम हो जाए। तब मन्त्र "सोऽहम्" को अपने श्वास के साथ अभिभूत कीजिए।

श्वास-निर्गमन नीचे की ओर कण्ठ से नाभि तक "हम्"-ध्वनि और श्वास-ग्रहण ऊपर की ओर नाभि से गले तक "सो"-ध्वनि।

अतः हर श्वसन के साथ आप "ऽहम् सो...ऽहम् सो...ऽहम् सो" की ध्वनि सुनेंगे।

श्वास-निर्गमन और श्वास-ग्रहण के बीच तारतम्य रहेगा, किन्तु दोनों के बीच एक क्षणिक टूट।

निश्चित होइये कि श्वास और मन्त्र के प्रति आप सजग हैं।

पाँच मिनट पश्चात् जप छोड़कर बन्द आँखों के समक्ष अन्तरिक्ष से सचेत होइये। विच्छिन्नता के झुकाव से उत्पन्न किसी प्रतिरूप का दर्शन कीजिये।

इसे कुछ क्षण तक जारी रखिये। तब पाँच मिनट बाद मन्त्र के साथ जप और श्वास-सजगता की ओर लौटिये। पुनः आँखों के समक्ष दर्शन कीजिये। कुछ समयोपरान्त जप में वापस आइये। इसी प्रकार क्रिया को यथासमय जारी रखिये।

अजप अवस्था ३

इसमें आपको श्वास के आरोहण और अवरोहण की, सुषुम्ना से होकर कल्पना करनी चाहिए। पिछली अवस्थाओं में श्वास का बहाव शरीर के सामने नाभि (मणिपूरक क्षेत्र) और गले (विशुद्धि क्षेत्र) के बीच था।

विधि :

आरामदेह आसन में बैठिए। अपनी आँखें बन्द करके पूरे शरीर को शिथिल कीजिये। पिछली अवस्थाओं में वर्णित अभ्यासों की तरह (जैसे कि ओ३म्-जप आदि) शरीर और मस्तिष्क को अभ्यास के लिए तैयार कीजिए।

श्वसन-क्रिया के प्रति सचेत होइये। इसे धीरे किन्तु गम्भीर होने दीजिये। गले को थोड़ा संकुचित करते हुए खेचरी मुद्रा में अपनी जिह्वा को मोड़िये तथा उज्जयी प्राणायाम कीजिये। कुछ क्षणों के लिए सिर्फ श्वसन के प्रति सजग रहिये। जब आपका श्वसन दीर्घ और तालबद्ध हो जाए तब कल्पना करने की चेष्टा कीजिए कि इसका आरोहण श्वास-ग्रहण के साथ और अवरोहण श्वास-निर्गमन के साथ हो रहा है।

श्वास को हर चक्र से होकर प्रवाहित होता हुआ अनुभव करने की चेष्टा कीजिये।

जैसे आप श्वास-ग्रहण करें, अनुभव कीजिये कि श्वास मूलधारा से स्वाधिष्ठान तक चल रहा है, तब मणिपूरक से अनाहत, विशुद्धि, अन्त में आज्ञा तक। इसी क्रिया को श्वास-निर्गमन में आज्ञा से मूलाधार तक अवरोहण कीजिये। कुछ समयोपरान्त "सोऽहम्" मन्त्र को श्वास-ग्रहण ऊपर की ओर तथा "हम्" श्वास-निर्गमन नीचे की ओर।

पूर्ण सुषुम्ना में मन्त्र का स्पन्दन अनुभव कीजिये। इसे हर चक्र को बारी-बारी से भेदते हुए अनुभव कीजिए। पूर्ण सजगता होनी चाहिए। इस अभ्यास को पाँच मिनट तक जारी रखिये, तब अपनी बन्द आँखों से परोक्ष का निरीक्षण कीजिये। किसी उदित हुई मनोवैज्ञानिक घटना का साक्ष्य कीजिये। अगर कोई दृश्य उदित होता है तो उसमें हस्तक्षेप नहीं कीजिये। यह मस्तिष्क को शुद्ध करने की विधि है।

कुछ मिनट के बाद जप में वापस लौटिये, सुषुम्ना में मन्त्र और श्वसन के प्रति सचेत रहिये।

पूर्ण एकाग्रता से इसे पाँच मिनट तक कीजिये। तब चिदाकाश से सजगता को दुहराइये, बन्द आँखों से परीक्षा; पाँच मिनट के बाद जपकर वापस आइये।

इस क्रिया को जितना समय हो सके जारी रखिये।

स्थितिकाल :

अभ्यास आपका लक्ष्य होना चाहिए। इस विधि को प्रत्येक रोज कम-से-कम आधा घण्टा बिना नागा तथा आराम से बिना चेष्टा के करना चाहिए।

विशेष :

अजप एक शक्तिशाली विधि है। बहुत-से महान् योगियों ने इस विधि से चेतनता के उच्चतम शिखर को प्राप्त किया है।

ओ३म्

चतुर्थ प्राणायाम

चतुर्थ प्राणायाम, प्राणायाम और ध्यान-अभ्यास दोनों है। यह मन्त्र-श्वसन और चक्र-सजगता दोनों को मिलाता है।

परिभाषा—

प्रथम तीन तरह के प्राणायाम पूरक, रेचक तथा कुम्भक की तरह जाने जाते हैं। चतुर्थ प्राणायाम चौथे प्रकार का है। याद रहे प्राणायाम शब्द प्राण और यम से अवतरित है, जहाँ प्राण जैविक शक्ति और यम समय तथा स्थान के एक नये आयाम में फैला है।

इसलिए प्राणायाम "प्राण" की दक्षता से सजगता के एक नये आयाम को उत्पन्न करने की विधि है।

कहा जाता है कि चतुर्थ प्राणायाम चौथे आयाम में ले जाता है।

उच्चारण—

इस अभ्यास में आपको 'ओ३म्' मन्त्र का मानसिक जप करना है। "ओ"-ध्वनि श्वास-ग्रहण के साथ तथा "म्"-ध्वनि श्वास-निर्गमन के साथ-अभिभूत होनी चाहिए।

आसन—

चाहे आप पद्मासन, स्वस्तिकासन लीजिए, नहीं तो सुखासन में बठिए।

विधि—

पाँच अवस्थाएँ हैं। आपको क्रमानुसार निम्न को बारी-बारी से करना चाहिए—

अवस्था १

श्वसन-सजगता, आरामदेह आसन, बन्द आँखें, रीढ़ सीधी और अबाध दीर्घ श्वसन।

एक चक्र में श्वास-ग्रहण और श्वास-निर्गमन होता है। जितना समय मिले उतनी पारी कीजिए। श्वास को गम्भीर और अतिसूक्ष्म होने दीजिए।

श्वास की तालबद्धता के प्रति जागरूक रहिए। तब कई पारियों के पश्चात् (कम-से-कम २०) दूसरी अवस्था में जाइए।

अवस्था २

"ओ३म्" अभिभूत श्वसन के साथ गम्भीर श्वसन। मस्तिष्क से "ओ३म्" को श्वास के साथ अभिभूत कीजिए। 'ओ'-ध्वनि श्वास-ग्रहण के साथ उत्पन्न होनी चाहिए। "म्-म्-म्-म्-म्" ध्वनि श्वास-निर्गमन के साथ उत्पन्न होनी चाहिए।

याद रहे ध्वनि मानसिक है। मुँह वन्द रखते हुए नासिका से श्वास लीजिए। इसी प्रकार श्वसन और मन्त्र से सचेत रहते हुए जारी रखिए।

अवस्था ३

व्यक्तिगत चक्र-सजगता अवस्था २ के साथ चालू है। साथ-साथ किसी एक चक्र को भ्रूमध्य या नासिकाग्र पर केन्द्रित कीजिए। किसी एक केन्द्र का चयन कीजिए। हम भ्रूमध्य की सलाह देते हैं। उस केन्द्र पर मानसिक ध्वनि 'ओ' के साथ श्वसन का अनुभव कीजिए। उसी केन्द्र पर मानसिक ध्वनि "म्-म्-म्" के साथ श्वास-निर्गमन को अनुभव कीजिए। इसी प्रकार श्वास, मन्त्र और मनोवैज्ञानिक केन्द्र के प्रति सजग रहते हुए जारी रखिए।

अवस्था ४ : चक्र-भेदन

श्वास-ग्रहण के साथ 'ओ'-ध्वनि को सहस्रार पर सजगता स्थिर कीजिए। अनुभव कीजिए कि निम्न क्रम में चक्रों का बारी-बारी से भेदन हो रहा है।

सहस्रार, अजना, विशुद्धि, अनाहता, मणिपूरक, स्वाधिष्ठाना और मूलधारा।

श्वास और 'ओ' ध्वनि को सुषुम्ना में नीचे की ओर प्रवाहित होता अनुभव कीजिए। तब श्वास-निर्गमन के साथ "म्-म्-म्-म्" ध्वनि को बारी-बारी से चक्र

मूलधारा से ऊपर की ओर सहस्रार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, अजना, सहस्रार तक भेदते हुए अनुभव कीजिए। श्वास और ध्वनि को सुषुम्ना में ऊपर की ओर प्रवाहित होता हुआ अनुभव कीजिए। यह पहली पारी की समाप्ति है। समयानुकूल अधिक पारियाँ कीजिए। तब अन्तिम अवस्था में प्रवेश कीजिए।

अवस्था ५ : सूक्ष्म जप

पुन: किसी एक चक्र को चुनिए। साधारणत: अधिकांश लोगों को भ्रूमध्य उत्तम होता है। श्वसन आरम्भ कीजिए पर इसके प्रति सजगता आवश्यक नहीं। सिर्फ मन्त्र और मनोवैज्ञानिक केन्द्र के प्रति सचेत रहिए।

'ओ' और 'म्' ध्वनि को वांछित केन्द्र पर अनुभव कीजिए। जितना समय हो इसे जारी रखिए। यह मस्तिष्क के गहन अवलोकन और सम्बन्ध की तरफ ले जाएगा। यह इस अभ्यास का अन्त है।

सजगता :

श्वास, मन्त्र और मनोवैज्ञानिक केन्द्र के प्रति अति सजग रहें।

लाभ :

यह अभ्यास मानसिक तनाव को मिटाता है और अवलोकन को तीव्र तथा एकाग्र बनाता है। यह ध्यान समाधि में ले-जा सकता है।

अजपा जप

अजपा एक महत्त्वपूर्ण साधना है। इसके माध्यम से समाधि का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। अन्य भौमिक विधियों द्वारा समाधि-प्राप्ति के लिए श्वास रोककर कुम्भक लगाना पड़ता है। इस प्रकार श्वास पर नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है। परन्तु अजपा के निरन्तर अभ्यास में श्वास स्वाभाविक होता है। समाधि में उसमें कोई अन्तर नहीं आता।

अजपा क्रिया योग का एक अंश है। पातंजल योगसूत्र के अनुसार तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर-प्रणिधान क्रिया योग हैं। संस्कृत के अनुसार उस स्तर के अजपा को 'विलोम अजपा' कहते हैं। इस अजपा के सन्दर्भ में कबीर ने कहा है—"मुझे चेतना की चतुर्थ अवस्था का अनुभव हो रहा है।" पुन: वे कहते हैं—'हम्' के प्रति

चेतना नाभिचक्र से प्रारम्भ होती है। बाहर आकर वह विपरीत हो जाती है। इस प्रकार हम नाभिचक्र से 'हम्' की ध्वनि उत्पन्न करते है। पूर्णता के पश्चात् उसके विपरीत 'सोऽ' की ध्वनि उत्पन्न होती है। अब वह ध्वनि 'हम् सोऽ' हो जाती है।

योग के कुछ अभ्यासों के द्वारा मनुष्य अन्तर्मुखी हो जाता है। उसे श्वास पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। उसमें कठिनाई यह है कि यदि अभ्यासी के फेफड़े सूक्ष्म न हों तो कुछ देर के उपरान्त वह बहिर्मुखी हो जाता है। यह कठिनाई अधिकांश लोगों की है। अजपा के अभ्यास से यह समस्या सुलझ जाती है। द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अजपा एक पूर्ण साधना है।

अजपा के संदर्भ में भगवद्गीता में स्पष्टतः कहा गया है—अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥ गीता—४।२९

कुछ अभ्यासी प्राण का योग अपान से करते हैं। अन्य अपान का प्राण में योग करते हैं एवं कुछ अन्य प्राण का योग प्राण से करते हैं। प्राण भीतर जानेवाला श्वास है, एवं अपान निःश्वास है। 'सो' प्राण का एवं 'ऽहम्' अपान का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार कुछ अभ्यासी प्राण को अपान में मिलाते हैं, या 'सो' का योग 'ऽहम्' बन जाता है। अन्य अभ्यासी अपान का मेल प्राण से करते हैं, अर्थात् वे 'ऽहम्' को 'सो' से युक्त करते हैं जिससे 'हम् सोऽ' उत्पन्न होता है। कुछ अन्य साधक प्राण का योग प्राण से करते हैं। इस अभ्यास का विवरण आगे दिया जाता है।

कहा गया है कि व्यक्ति को 'अनाहत जप' करना चाहिए अर्थात् अनन्त जप करना चाहिए, अनन्तता तक उसका विस्तार होना चाहिए।

ऐसा मन्त्र हमें ज्ञात नहीं है। अतः मन्त्र की पुनरावृत्ति की ऐसी विधि होनी चाहिए कि मन्त्र का अन्त न हो। अजपा के अभ्यास से ऐसा किया जा सकता है जबकि मन्त्र का योग श्वास के साथ किया जाता है। इस प्रकार उसकी चेतना पूरे समय बनी रहती है।

मैं आपसे प्रश्न करता हूँ कि आपकी चेतना कहाँ है? कुछ मिनट के लिए आप विचार कीजिए कि आप कहाँ हैं? इस समय आपकी चेतना बहिर्मुखी एवं बिखरी हुई है, परन्तु शरीर के किसी केन्द्र पर आप उसे केन्द्रित कर सकते हैं। मान लीजिए, ध्यान के समय एक सेकण्ड के लिए आप प्रकाश का दर्शन मानस-पटल पर करते हैं। यौगिक भाषा में यह "चेतना को स्थापित करना या निर्दिष्ट करना" कहलाता है।

आध्यात्मिक उन्नति के लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसी प्रक्रिया द्वारा योगी अपनी चेतना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है।

सामान्यतः हम इस बात से अनभिज्ञ हैं कि हमारा सूक्ष्म शरीर कहाँ है?

अजपा के अभ्यास द्वारा आप यह ज्ञात करने में समर्थ होंगे कि आपकी चेतना कहाँ है।

दो पक्षी हैं, एक सफेद रंग का और दूसरा काले रंग का है। दोनों दो रस्सियों द्वारा खूँटी से बँधे हैं, परिणामतः वे उड़कर उसी स्थान पर वापस आ जाते हैं। अन्त में थककर शान्तिपूर्वक खूँटी के पास सो जाते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण इड़ा एवं पिंगला नाड़ी का है। उन पक्षियों की भाँति ये भी पक्षी हैं। दाहिने नासिका-छिद्र का प्रवाह पिंगला या सूर्य नाड़ी है तथा बायीं नासिका का प्रभाव इड़ा या चन्द्र नाड़ी है। उन दोनों का क्रमिक प्रवाह व्यक्ति को उसकी आंतरिक चेतना से अलग रखता है।

जब तक एक के पश्चात् दूसरे का प्रवाह होगा, तब तक समाधि की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब ये दोनों पक्षी थककर आत्मा या हृदय-केन्द्र में सुप्त हो जाते हैं, अर्थात् सुषुम्ना जागृत हो जाती है, तब ध्यान की प्रक्रिया सहज हो जाती है।

स्वर योग के अनुसार जब दोनों नासिका-छिद्रों में समान प्रवाह होता है, तब सुषुम्ना का प्रभाव माना जाता है। इस समय सांसारिक कर्मों का ध्यान कर ज्ञान करना चाहिए। यह सामान्य अनुभव की बात है कि कभी-कभी ध्यान बहुत अच्छा लगता है। इसका कारण यही है कि उस समय सम्पूर्ण संस्थानों में एक-रूपता होती है।

विचारों की श्रृंखला को रोकने के लिए उनका अवलोकन करना चाहिए; चेतनतापूर्वक उन्हें देखना चाहिए। अजपा के समय उस बात के प्रति पूर्णता एवं अखण्ड रूप से जागरूक रहिये कि आप क्या कर रहे हैं। अखण्ड तैलधारावत् आपकी चेतना बनी रहे। यह स्वाध्याय है। यहाँ स्वाध्याय का अर्थ आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन नहीं है। अपने कार्यों के प्रति निरन्तर जागरूकता ही स्वा-ध्याय है।

अजपा के सन्दर्भ में द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ध्यान के केन्द्र आज्ञा-चक्र, अनाहत चक्र या शरीर के अन्य केन्द्र पर चेतना स्थिर रक्खी जावे। इसे ईश्वर-प्रणिधान या वस्तुनिष्ठ ध्यान के लिए चयन किये गए किसी केन्द्रविशेष पर मन को स्थिर करना कहते हैं।

इस प्रकार अजपा में ये तीन बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। तपस्या या शरीर पर नियन्त्रण, स्वाध्याय या पूरे समय आत्म-अवलोकन, तथा ईश्वर-प्रणिधान या ध्यान के केन्द्र पर मन की स्थिरता।

अजपा के अभ्यास में ये तीन बातें स्मरणीय हैं—

(१) गहरी श्वसन-क्रिया, (२) शिथिलीकरण, (३) पूर्णतः जागरूकता। कोई भी श्वास चेतना के परे न हो। मात्र प्राकृतिक श्वसन न हो, वरन् प्रत्येक

आने-जानेवाले श्वास पर अखण्ड चेतना बनी रहे।

इसी प्रकार श्वसन-प्रक्रिया में मन्त्रों का योग ही अजपा है। किसी भी आसन में भूमि पर, कुर्सी पर या किसी भी स्थान पर इसका अभ्यास किया जा सकता है। पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में अभ्यास कर सकते हैं।

सोपान

प्रथम सोपान

- ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइए।
- अजपा का अभ्यास बैठकर या लेटकर कैसे भी किया जा सकता है।
- परन्तु योग के विद्यार्थी को एक आसन चुन लेना उपयुक्त होगा।
- आँखें बन्द कर लीजिए।
- कुछ मिनट के लिए शारीरिक एवं मानसिक रूप से शिथिल हो जाइए।
- स्वयं को अधिकतम सीमा तक हल्का एवं शिथिल कीजिए।
- कुछ समय के लिए समस्त चिन्ताओं एवं समस्याओं को भूल जाइए।
- शान्ति, सुख एवं आनन्द का अनुभव कीजिए।
- अभ्यास के पूर्व पूर्णरूपेण तनावरहित बन जाइए।
- अनुभव कीजिए कि आप आरामपूर्वक बैठे हैं।
- पूर्वनिर्दिष्ट विधि से श्वसन कीजिए।
- प्रत्येक आने-जानेवाले श्वास पर ध्यान रखिए।
- भीतर जानेवाला श्वास नाभि तक जाता है तथा बाहर आनेवाला श्वास नाभिप्रदेश से आता है।
- स्वाभाविक रूप से नहीं बल्कि सचेत होकर गहरा श्वास लीजिए।
- श्वसन के समय कोई ध्वनि उत्पन्न न कीजिए।
- श्वास के दो प्रवाहों का अनुभव कीजिए।
- प्रत्येक श्वास के प्रति जागरूक रहिए।
- श्वास-प्रश्वास के साथ 'सोऽहम्' का योग कीजिए।
- 'सोऽहम्' इसके समकालीन हो।
- प्राण एवं मन्त्र पर अखण्ड चेतना बनाये रखिए।
- अब भृकुटि, आज्ञाचक्र या हृदयचक्र पर चेतना को केन्द्रित कीजिए।

- किसी एक चक्र का ध्यान कीजिए।
- विचार रोकिए और मानसिक शून्यता का निर्माण कीजिए।
- सब विचारों को एक ओर रखिए।
- विशेष केन्द्र पर सामान्य चेतना बनी रहे।
- सचेत होकर श्वास लीजिए एवं छोड़िए।
- श्वास-प्रश्वास के साथ पूर्णतः 'सोऽहम्' प्रारम्भ कीजिए।
- कुछ समय तक यह अभ्यास जारी रखिए।

द्वितीय सोपान

- प्रथम अभ्यास में आपने भीतर जानेवाले श्वास के साथ 'सो' तथा बाहर आनेवाले श्वास के साथ 'ऽहम्' के दर्शन किये। द्वितीय अभ्यास में इस क्रिया को विपरीत कर दीजिए।
- रेचक के साथ 'ऽहम्' का अनुभव कीजिए।
- पूरक के साथ 'सो' का अनुभव कीजिए।
- 'ऽहम्' एवं 'सो' के मध्य विराम न हो।
- 'ऽहम्' एवं 'सो' के उपरान्त क्षणिक विराम हो।
- सदैव 'ऽहम् सो' पर अपनी चेतना को बनाये रखिए।
- 'सो' भीतर जानेवाली श्वास-तरंग का अन्तरावलोकन है एवं 'ऽहम्' बाहर आनेवाले श्वास का अन्तरावलोकन है।
- 'ऽहम् सो' के अजपा के पश्चात् शून्यता का निर्माण कीजिए।
- किसी प्रकार का विचार न कीजिए।
- आने-जानेवाले विचारों के प्रति सजग रहिये।
- आज्ञा या अनाहत चक्र पर चेतना को ले जाइए।
- ध्यान के केन्द्र पर पूर्ण एकाग्रता रहे।
- केन्द्रबिन्दु पर किसी प्रकार दबाव न पड़े।
- क्रिया स्वाभाविक हो इसका हमेशा खयाल रक्खें।
- सामान्य रूप से अपने मन को वहाँ एकाग्र कीजिए।
- श्वास की गहराई, शिथिलीकरण, पूर्ण चेतना आदि प्रथम अभ्यास की भाँति ही रहेंगे। इस 'ऽहम् सो' के अभ्यास में ये बातें 'सोऽहम्' के अभ्यास की तरह ही होंगी।
- 'ऽहम् सो' का अभ्यास एक माह किया जा सकता है।
- इसमें सफलता प्राप्त करने बाद तृतीय अभ्यास प्रारम्भ कीजिए।

तृतीय सोपान

- अजपा के प्रथम अभ्यास में आपने अपनी चेतना को 'सोऽहम्' का रूप प्रदान किया था।
- द्वितीय अभ्यास में इसके विपरीत 'ऽहम् सो' में परिणत किया। अब तृतीय अभ्यास प्रारम्भ कीजिए।
- मानसिक रूप से शिथिल हो जाइए।
- सुख, शान्ति एवं आनन्द का अनुभव कीजिए।
- स्वतःनिर्देश या 'मैं' की चेतना के द्वारा शिथिलीकरण में सफलता प्राप्त की जा सकती है।
- यदि अत्यधिक तनाव न हो तो एक अन्य विधि 'गिनती गिनने' की है—

  अन्दर जानेवाले श्वास एवं बाहर आनेवाले श्वास के साथ एक गिनिये।

  भीतर जानेवाले एवं बाहर आनेवाले श्वास के साथ दो गिनिये।

  इसी प्रकार चार तक गिनिये।

  पाँचवें अंक के समय सतर्क हो जाइए।

  समष्टिगत चेतना का पोषण कीजिए।

  चेतना को एकत्रित कीजिए।

  अनुभव कीजिए कि आप निश्चित पाँच गिन रहे हैं।

  मानसिक रूप से कहिए—"मैं भीतर जानेवाले श्वास के साथ पाँच एवं बाहर आनेवाले श्वास के साथ पाँच की गिनती के प्रति चैतन्य हूँ।"

  इसी प्रकार नौ तक गिनती गिनिये।

  दस की गिनती में सचेत हो जाइए।

  दस की संख्या पर पूर्णतः जागरूक हो जाइए।
- कुछ समय तक यह क्रिया कीजिए।
- अब लययुक्त गहरा श्वास लीजिए।
- लम्बा, सहज एवं आरामपूर्वक श्वास लीजिए।
- श्वसन की पूर्ण प्रक्रिया में सचेत रहिए।
- 'सोऽहम्' या 'ऽहम् सो' का अन्तरावलोकन न कीजिए वरन् भीतर जानेवाले एवं बाहर आनेवाले श्वास के साथ अलग-अलग क्रमशः 'सो' एवं 'ऽहम्' का अन्तरावलोकन कीजिए।
- 'सोऽहम्' या 'ऽहम् सो' का संयुक्त रूप से ध्यान न कीजिए।
- पूरक के साथ 'सो' एवं रेचक के साथ 'ऽहम्' का अनुभव कीजिए।
- इस अभ्यास की पूर्णता पर मानसिक शून्यता का निर्माण कीजिए।
- ध्यान से किसी भी केन्द्र पर अपनी चेतना को केन्द्रित कीजिए।
- पुनः चेतनता के साथ श्वसन-क्रिया प्रारम्भ कीजिए और व्यक्तिगत 'सो' एवं 'ऽहम्' का ध्यान एक माह या अधिक कीजिए।

चतुर्थ सोपान

- किसी स्थिर आसन में बैठिए।
- नेत्रों को बन्द कीजिए।
- स्वत:निर्देशन, आत्मचेतना तथा सुख-शान्ति-आनन्द का अनुभव करते हुए मानसिक रूप से तनावरहित स्थिति में आ जाइये।
- लययुक्त श्वसन प्रारम्भ कीजिए।
- नाभि तक श्वास लीजिए एवं नाभि से श्वास छोड़िए।
- नाभि तक जाते समय एवं नाभिप्रदेश से बाहर आते समय श्वास जिन केन्द्रों से होकर आता-जाता है उसपर अपनी चेतना को ले जाइए।
- श्वसन लययुक्त, ध्वनिरहित, सुखद एवं आरामदायक हो।
- पूर्ण चेतना बनाए रखिए।
- भीतर जानेवाले श्वास के साथ 'सो' एवं बाहर आनेवाले श्वास के साथ 'ऽहम्' का ग्रोग कीजिए।
- चेतना निरन्तर बनी रहे।
- चेतना का अखण्ड रूप—'सोऽहम्-ऽहम् सो' बना रहे।
- 'सो' का लोप 'ऽहम्' में एवं 'ऽहम्' का लोप 'सो' में हो।
- इस प्रकार अनन्त वृत्त निर्मित हो।
- 'ऽहम्' की ध्वनि-तरंग को दीर्घ कीजिए एवं भीतर जानेवाली 'सो' की ध्वनि-तरंग से उसका योग कीजिए।
- 'सो' की ध्वनि-तरंग को दीर्घ कर 'ऽहम्' की ध्वनि-तरंग से युक्त कीजिए।
- 'ऽहम्' के अन्तिम भाग का योग 'सो' के प्रारम्भिक भाग से होता है।
- इस प्रकार "सोऽहम्-ऽहम्सो" का अखंड वृत्त निर्मित होता है।
- "सोऽहम्-ऽहम्सो" का निरन्तर अन्तरावलोकन होना चाहिए।
- "सोऽहम्-ऽहम्सो" में से किसी के मध्य की शृंखला न टूटे।
- अब यह अभ्यास बन्द कीजिए।
- विचाररहित व शून्यता का निर्माण कीजिए।
- ध्यान के किसी भी केन्द्र पर चेतना को केन्द्रित कीजिए।
- कोई विचार न आने पावे।
- कुछ समय के उपरांत पुन: "सोऽहम्-ऽहम्सो" के अखंड वृत्त का निर्माण आरम्भ कीजिए।
- आधे या एक घंटे के अभ्यास के अन्त में आराम एवं शान्ति की कल्पना चरम बिन्दु पर कीजिए।
- इसका अनुभव मानसिक रूप से कीजिए।

"आनन्दं, परमं, सुखं, शांति, मंगलम्।"

वेदप्रकाश

◦ अजपा के सब अभ्यास मौखिक नहीं वरन् मानसिक हैं।

पंचम सोपान

◦ अजपा के चार अभ्यासों का वर्णन किया गया।
◦ अब हम पाँचवें अभ्यास का विवरण देंगे जो अपेक्षाकृत कठिन है तथा जिसके लिए साधक में महान् काल्पनिक शक्ति होनी चाहिए।
◦ इस अभ्यास में चेतना को मेरुदण्ड में घुमाया जाता है।
◦ एकाग्रता एवं ध्यान की प्रक्रिया के दो गुणक हैं—(१)बाह्य चेतना का विनाश एवं (२) अपने में निहित शान्त-निश्चल आत्मा का प्रदर्शन। यदि लालटेन या किसी लैम्प का काँच धुएँ से परिपूर्ण हो तो वह पूर्ण प्रकाश नहीं दे सकता। काँच की पूर्ण शुद्धता पर ही उसका प्रकाश शतशः प्राप्त किया जा सकता है।
◦ इसी भाँति आत्म का प्रकाश या शक्ति हमारे अन्दर है परन्तु दैनिक जीवन से उसका प्रकाशन नहीं हो सकता।
◦ इसका कारण विचार, सिद्धान्तों की बाधाएँ, मन की चंचलता, विह्वलता, बिखरी हुई चेतना आदि हैं।
◦ इन्द्रिय-चेतना को नष्ट करने एवं आत्म-चेतना की जागृति में ध्यान सहायक है।
◦ उससे मन की अशुद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं।
◦ ध्यान की विभिन्न पद्धतियाँ हैं—
प्रथम का सम्बन्ध शारीरिक समूह से, द्वितीय का मन के समूह या चिन्तन से तथा तृतीया का सम्बन्ध बौद्धिक समूह से है एवं चतुर्थ प्रक्रिया उच्च क्षेत्रों से सम्बन्धित है।
◦ जब शारीरिक चेतना, मानसिक चेतना, बौद्धिक जागरूकता और अन्त में अहं का पूर्णतया अस्तित्व लोप हो जाता है तब प्रकाश का साक्षात्कार होता है।
◦ जब तक आप शरीर, मन तथा बुद्धि से ऊपर नहीं उठेंगे तब तक आपको धैर्य एवं शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।
◦ अजपा के विभिन्न अभ्यासों का उद्देश्य इसी की प्राप्ति करना है।
◦ उच्च शिक्षाप्राप्ति के लिए व्यक्ति को प्राइमरी, माध्यमिक, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा क्रमशः करनी पड़ती है। इसी भाँति ध्यान के भी चार सोपान हैं—
प्रथम है शिथिलीकरण, द्वितीय है जागरूकता, तृतीय है एक हो जाना तथा चतुर्थ है भूल जाना।

- अजपा के पूर्ववर्णित अभ्यास में इसके विषय में समझाया जा चुका है।
- अब हम अजपा के पंचम अभ्यास में आते हैं जो उच्च अभ्यास है।
- लययुक्त श्वसन अजपा के अभ्यास की प्रथम महत्त्वपूर्ण बात है।
- द्वितीय महत्त्वपूर्ण विषय चेतनता है।
- ध्यान में अपनी प्रत्येक प्रक्रिया के प्रति आपको सचेत रहना पड़ेगा।
- यदि ध्यान के समय आप यह भूल जावें कि आप ध्यान कर रहे हैं तो आपको कभी भी सफलता नहीं मिल सकती।
- ध्यान के समय तन्द्रा आती है।
- ध्यान के प्रत्येक अभ्यासी के सम्मुख यह समस्या आती है।
- मान लीजिए आप किसी विषय पर १५ मिनट तक विचार करते हैं।
- समस्या पर चिंतन करते समय आपको इस बात का ध्यान नहीं रहता कि आप विशेष विषय पर चिंतन कर रहे हैं।
- चिंतन की समाप्ति पर ही आपका ध्यान इस ओर जाता है कि आप इतनी देर तक किसी विषय पर विचार कर रहे थे। इसे ध्यान नहीं कहते।
- ध्यान की प्रक्रिया में एकाग्रता नहीं वरन जागरूकता का विशेष महत्त्व है।
- इसीलिए मैं सदैव एक बात पर जोर देता हूँ—"आप जो कुछ कर रहे हैं उसके प्रति जागरूक रहिए।"
- गिनती के प्रति चेतना को बनाए रखिए।
- श्वसन की प्रक्रिया के प्रति सचेत रहिए।
- संक्षेप यह है कि आप पूर्णत: सजग एवं चैतन्य रहिए।
- अखण्ड जागरूकता बनी रहे, किसी भी भाँति खण्डित न होने दीजिए।
- ध्यान में यदि आप एक, दो, तीन गिनती गिनते हैं तो एक सेकण्ड के लिए भी मन इधर-उधर न भटकने पावे।
- मन भटकता है तो भटकने दीजिए परन्तु आपको इस बात का ज्ञान रहे।
- मन की प्रत्येक क्रिया के प्रति जागरूक रहें।
- यदि आप एकाग्रता का अभ्यास कर रहे हैं तो उसके प्रति चैतन्य रहिए।
- निश्चित स्थान से हट जाना तथा भटकना मन का स्वभाव है।
- अत: इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिएं परन्तु मन के प्रत्येक कार्य के प्रति, उसकी वृत्तियों के प्रति सजग रहिए।
- जब कभी भी आपकी चेतना, आपकी जागरूकता भटकती है तो उसके प्रति सतर्क रहिए।
- मन का कोई भी कार्य ऐसा न हो जिसपर आपका ध्यान न हो।
- एकाग्रता की क्रिया में असावधान न रहिए—

ध्यान की क्रिया में यह बात बहुत ही महत्त्व की एवं प्राथमिक है। यही मूल-

भूत आधार है।

- यदि इस महत्त्वपूर्ण विषय को आप भुला दें या उसपर ध्यान न दें तो सदियों के अभ्यास के उपरांत भी आपको ध्यान में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।
- द्वितीय महत्त्वपूर्ण विषय है—"मेरुदंड में लययुक्त श्वसन तथा उसके प्रति सजगता।"
- 'सो' एवं 'ऽहम्' शब्द की तरंगों की मेरुदण्ड में आवृत्ति एवं पुनरावृत्ति तृतीय महत्त्वपूर्ण विषय है।
- यह मनोवैज्ञानिक सत्य है—"यदि आप मन पर नियन्त्रण करना चाहेंगे तो वह अधिक चंचल होगा, परन्तु यदि आप केवल द्रष्टा की भाँति ही उसके क्रिया-कलापों का अवलोकन करेंगे तो वह शान्त हो जाएगा।"
- इसी कारण मैंने मन पर दबाव डालने के लिए नहीं वरन् केवल उसके कार्यों के प्रति सतर्क रहने के लिए कहा है।
- लययुक्त श्वास-प्रश्वास के साथ बीज-मन्त्र का योग कर आपने अभ्यास किया तथा अन्त में अस्थायी शून्यता का निर्माण कर अभ्यास किया।
- पाँचवें स्तर पर प्रारम्भ में आपको अनेक कल्पनाओं का सहारा लेना पड़ेगा।
- बाद में यह स्वाभाविक प्रक्रिया में परिवर्तित हो जावेगी।
- पूर्व के अभ्यास में आपने नाभि से आनेवाले तथा नाभि तक जानेवाले श्वास का अन्तर्दर्शन किया। अब इस क्रिया में परिवर्तन लाना है।
- अपनी चेतना को मेरुदण्ड के छः चक्रों में घुमाइए।
- यदि हम नीचे से ऊपर की ओर जावें तो छः चक्र क्रमशः इस प्रकार हैं—
  (१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूरक, (४) अनाहत, (५) विशुद्धि, एवं (६) आज्ञा।
- सर्वप्रथम आप स्वयं को शारीरिक तथा मानसिक रूप से शिथिल करिए।
- किसी सुखद आसन में बैठिए।
- गहरी लययुक्त श्वास-क्रिया कीजिए।
- उसपर पूर्णतः सजगता बनाए रखिए।
- अब श्वास को आज्ञा-चक्र से नीचे विशुद्धि, अनाहत, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, मूलाधार तक ले जाइए।
- श्वास के साथ अपनी चेतना को भी उन चक्रों में घुमाइए। इस प्रकार चेतना मेरुदण्ड में आज्ञा-चक्र से प्रारम्भ होकर नीचे मूलाधार तक जावेगी।
- कुछ अवधि के लिए अपनी चेतना को मूलाधार पर केन्द्रित कीजिए।
- मेरुदण्ड के मूल में एक उल्टा त्रिभुज है। इसमें सुषुप्तावस्था में कुंडलिनी शक्ति का वास है। यह शक्ति सर्प के रूप में कुंडली मारे सोई हुई है जिसका

सिर नीचे की ओर तथा पूंछ ऊपर की ओर है।

- कुछ क्षण के लिए इस कुंडलिनी पर ध्यान कीजिए।
- अब मूलाधार से श्वास लेते हुए मेरुदण्ड में स्थित चक्रों से होकर ऊपर अपनी चेतना को ले जाइए।
- इस स्वाभाविक श्वसन-चेतना के साथ पूरक एवं रेचक करते हुए उसमें 'सो-ऽहम्' का योग कीजिए।
- चेतना का मार्ग मेरुदण्ड है तथा उसका केन्द्र मूलाधार चक्र पर स्थित त्रिभुज एवं कुंडलिनी है।
- भीतर जानेवाले श्वास के समय "सो" का योग कीजिए।
- मूलाधार से इसकी तरंग को मेरुदण्ड से होते हुए आज्ञाचक्र तक लाइए।
- श्वसन-चेतना को कुछ देर के लिए यहाँ केन्द्रित कीजिए।
- भ्रूमध्य पर ध्यान कीजिए।
- तत्पश्चात् 'ऽहम्' की मानस तरंग के साथ रेचक करते हुए मेरुदण्ड से होकर नीचे मूलाधार में अपनी चेतना को ले जाइए।
- मेरुदण्ड में "सो" की तरंग के साथ आप आरोहण करते हैं अर्थात् ऊपर तक चढ़ते हैं और इसके विपरीत 'ऽहम्' की तरंग के साथ आप मेरुदण्ड में नीचे उतरते हैं जिसे हम अवरोहण कहेंगे।
- आरोहण का मार्ग मूलाधार चक्र से आज्ञाचक्र तक है तथा अवरोहण का मार्ग आज्ञाचक्र से मूलाधार तक है।
- 'ऽहम्' के साथ रेचक करने के उपरान्त कुछ विश्राम कीजिए।
- स्वयं के प्रति सचेत रहिए।
- शून्य का निर्माण नहीं करना है।
- सारांश में यह प्रक्रिया इस प्रकार है —
  आप 'सो' की तरंग के साथ मेरुदण्ड में से ऊपर आरोहण करते हैं।
  कुछ क्षण के लिए श्वास रोककर भ्रूमध्य पर ध्यान करते हैं।
  तत्पश्चात् 'ऽहम्' एवं रेचक के साथ मेरुदण्ड में से नीचे अवरोहण करते हैं।
  कुछ क्षण विश्राम करते हैं।
  चेतना मूलाधार चक्र की कुंडलिनी पर स्थिर रहती है।
- इस प्रकार पंचम अभ्यास के अन्तर्गत 'सो' एवं 'ऽहम्' के साथ युक्त श्वसन के साथ चेतना को मेरुदण्ड में ऊपर-नीचे लाते एवं ले जाते हैं।
- सम्पूर्ण प्रक्रिया निम्नानुसार होगी—प्रथम अभ्यास शिथिलीकरण का है।
- द्वितीय अभ्यास में मेरुदण्ड के अन्दर लययुक्त श्वसन निहित है। तृतीय अभ्यास में मेरुदण्ड में 'सोऽहम्' की तरंगों की आवृत्ति-पुनरावृत्ति है।
- चतुर्थ सोपान से मूलाधार में रुककर उल्टे त्रिभुज एवं उसके भीतर की

सर्वशक्ति पर ध्यान करते हैं।

- चेतना के आरोहण एवं अवरोहण पर निरन्तर अपनी सजगता बनाए रखते हैं और अन्त में चेतना को स्थानविशेष पर केन्द्रित करते हैं।
- रेचक को चेतना का अवरोहण कहेंगे।
- पश्चात् मूलाधार पर ध्यान ही चेतना को वहाँ स्थिर या केन्द्रित करना कहलावेगा।
- पूरक के समय चेतना का आरोहण होगा।
- अजपा के अभ्यास में प्रमुख बातें ये हैं—लययुक्त श्वसन, ऊँची कल्पना, पूर्ण एवं अखण्ड सजगता, पूर्ण शिथिलीकरण, तथा समस्त कार्यों के प्रति चैतन्यता।
- मानसिक शिथिलीकरण के लिए सर्वोत्तम साधन आत्म-चेतना एवं स्वनिर्देश या स्वप्रस्ताव है।
- प्रारम्भ में चेतना की परिक्रमा कठिन क्रिया मालूम होती है परन्तु बाद में अभ्यास के उपरान्त वह सरल एवं स्वाभाविक बन जाती है।
- यह अभ्यास अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इसकी सफलता पर व्यक्ति को सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। अच्छे स्वप्न आते हैं और दृष्टिकोण बदल जाता है। कुंडलिनी के जागरण पर व्यक्ति को सर्वप्रथम शान्तिलाभ होता है, पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति होती है। यदि अभ्यासी को शान्ति मिले, ज्ञानार्जन हो तो ध्यान का यह अभ्यास सफल समझना चाहिए।
- इस अभ्यास के उपरान्त हम अभ्यास के अन्तिम सोपान पर कदम रखते हैं।

षष्ठ सोपान

- यह अभ्यास अपेक्षाकृत कठिन है। इसके लिए अधिक कल्पनाशक्ति, धैर्य तथा श्वसन-प्रक्रिया पर नियन्त्रण की आवश्यकता होती है।
- किसी सुखद आसन में बैठिए।
- मेरुदण्ड सीधा तना रहे।
- हाथों को घुटनों पर रखिए या परस्पर बाँधकर गोद पर रखिए।
- कपड़ों को ढीला कीजिए।
- टाई, घड़ी, अंगूठी, मोजा आदि निकाल दीजिए।
- मानसिक तनाव एवं चिन्ताओं से अपने को मुक्त कीजिए।
- चैतन्यता का अभ्यास कीजिए।
- स्वतः को प्रस्ताव दीजिए।
- शान्ति एवं आनन्द का अनुभव कीजिए।
- इस प्रकार अपने को पूरी तरह शिथिल कीजिए।
- अब अंगूठे से कानों को बन्द कर लीजिए।

- नेत्रों एवं ओठों को अंगुलियों से बन्द कीजिए।
- गहरा श्वास लीजिए।
- पूरक के पश्चात् नासिका-छिद्रों को भी बन्द कीजिए।
- चेतना को मेरुदण्ड में घुमाइये।
- 'ऽहम्' की तरंग के साथ आज्ञा-चक्र से मूलाधार पर अवरोहण कीजिये और 'सो' से आज्ञा-चक्र तक आरोहण कीजिए।
- श्वास को शिथिल कीजिए।
- कुछ विश्रान्ति लीजिए।
- इस विश्रान्तिकाल में आत्म-सजगता तथा चेतनता का अभ्यास कीजिए।
- अजपा के षष्ठ सोपान के द्वितीय अभ्यास में नेत्र, कान, मुँह और नासिका को बन्द न कीजिए।
- स्वाभाविक रूप से पूरक कीजिए।
- कुम्भक लगाइये।
- इस काल में अपनी चेतना को मूलाधार से आज्ञा तक मेरुदण्ड में घुमाइए।
- कुछ देर के लिए आज्ञाचक्र पर स्थिर रखिए।
- अब रेचक के समय अवरोहण कीजिए।
- विश्राम कीजिए।
- आत्म-जागरूकता का अभ्यास कीजिए।

निष्कर्ष :

अजपा ध्यान के छः सोपानों का हमने विस्तारपूर्वक वर्णन किया। इनके द्वारा यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि किस प्रकार सजगतापूर्वक चेतना को श्वास के के साथ भ्रमण कराते हैं। अभ्यासी को प्राथमिक अभ्यास से साधना आरम्भ कर क्रमशः बढ़ते हुए अन्तिम अभ्यास पर पहुँचना चाहिए।

इन छः अभ्यासों में से प्रथम चार का अभ्यास सरलतापूर्वक प्रतिदिन घर पर किया जा सकता है। पंचम अभ्यास कुछ कठिन है जिसके लिए पर्याप्त मात्रा में कल्पना-शक्ति या धारणा-शक्ति की आवश्यकता होती है। अतः इस अभ्यास की सफलता हेतु कुछ समय लगेगा परन्तु इसमें सफलता प्राप्त होने पर षष्ठ अभ्यास सरल हो जावेगा।

अजपा जप की क्रिया व्यावहारिक है। उसके मनोवैज्ञानिक महत्त्व पर प्रकाश नहीं डाला गया है, परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि मानसिक विकारों का यह स्थायी इलाज करता है। अनेकों बीमारियों के निवारण की इसमें जो क्षमता है उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

अजपा जप-क्रिया के अनेकों गुप्त लाभ हैं जिनकी ओर संकेत प्राचीन शास्त्रों में अप्रकट तथा रहस्यात्मक ढंग से किया गया है।

दीर्घ अवधि के अभ्यासोपरान्त अनुभव प्राप्त करने पर ही अजपा जप के विभिन्न क्षेत्रों पर चर्चा की जा सकती है। □

प्रकाशक व मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।
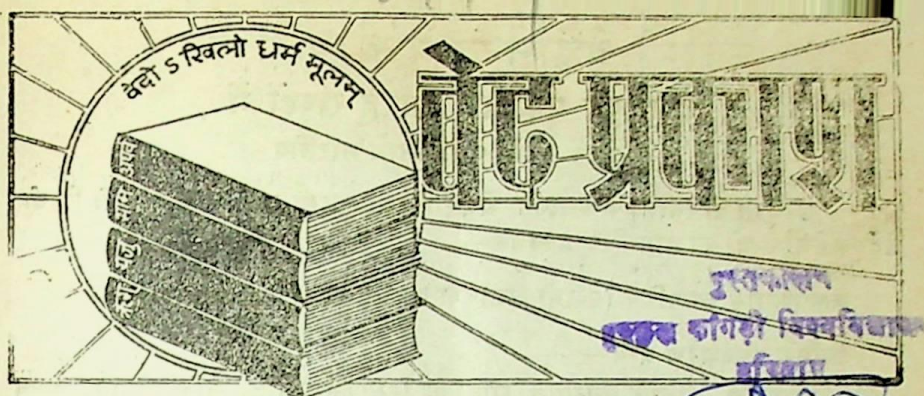
श्री अमर स्वामी विशेष अंक

प्रस्तुत अंक में हम श्री अमर स्वामी जी पर प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु का एक विशेष लेख दे रहे हैं। यही वेदप्रकाश-परिवार की उन्हें श्रद्धांजलि है। —सम्पादक

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली का आर्य-जगत् ने हृदय से स्वागत किया। स्वामी श्रद्धानन्द महर्षि दयानन्द के बाद आर्य-जगत् के सर्वमान्य नेता रहे। उनका बहुमुखी व्यक्तित्व उनके लेखों तथा पुस्तकों में स्पष्ट दिखाई देता है। इनका स्वाध्याय करनेवालों को आर्यसमाज के स्वर्णिम युग का पता चलेगा।

ग्राहकों ने रुपये भेजते हुए अपने पत्रों में हमें उत्साहित किया है। स्वामी श्रद्धानन्द जी की पौत्री बहिन पुष्पा जी के पति आचार्य धर्मवीर जी ने ग्राहक बनकर उत्साहित किया है।

सबका धन्यवाद।

"यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली पूरी छापकर दिसम्बर में दे रहे हैं। ग्रन्थावली छापने के लिए बधाई। मुझे ग्राहक बना लें। ड्राफ्ट संलग्न है।" —**आचार्य श्री धर्मवीर विद्यालंकार**, पीलीभीत

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप ग्यारह खण्डों में श्रद्धानन्द ग्रन्थावली प्रकाशन कर रहे हैं। इस प्रकार की प्रकाशन-शृंखला में वर्तमान आर्यों तथा नई पीढ़ी के आर्य युवकों के लिए ये ग्रन्थावली प्रेरक सिद्ध होगी।

—**श्री लक्ष्मणसिंह एम० ए०**, हैदराबाद

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली प्रकाशन योजना की सफलता की मंगल-कामना करता हूँ। तथा आपको बधाई देता हूँ कि आपने इस जन-हितकारी एवं राष्ट्रीय महत्व के प्रकाशन का बीड़ा उठाया। —**श्री पं० टी० डी० आर्य**, ग्वालियर

वेदप्रकाश के ग्राहक तीस नवम्बर तक ४०० रुपये भेजकर अब भी ग्राहक बन सकते हैं। इसके बाद यह ग्रन्थावली ६६० रुपये में ही प्राप्त होगी।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक ४] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [नवम्बर १९८७

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

आर्यसमाज के एक विप्र योद्धा : स्व० श्री अमरस्वामी जी महाराज

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु, वेदसदन, अबोहर-१५२११६

४ सितम्बर सन् १९८७ ई० को सायं पाँच बजे श्री अमरस्वामी जी (पूर्व ठाकुर अमरसिंह जी) ने नश्वर देह का परित्याग करके अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। ठाकुर अमरसिंह जी का जन्म सन् १८९४ ई० में अरणियाँ ग्राम जिला बुलन्दशहर(उ०प्र०) में हुआ। आपके पिताजी का शुभ नाम ठाकुर टीकमसिंह था। आपकी माता का नाम श्रीमती राजकुमारी था।

क्या लिखें और क्या न लिखें ?

धौलपुर के प्रसिद्ध सत्याग्रह से आपके सार्वजनिक जीवन का आरम्भ हुआ। इस प्रकार आपने ७० वर्ष तक आर्यसमाज, आर्य जाति तथा आर्यावर्त्त देश की सक्रिय सेवा की। इन पंक्तियों के लेखक का आपसे ३३ वर्ष तक सम्बन्ध रहा। यह सम्बन्ध उनके महाप्रयाण तक बना रहा। अभी कुछ ही समय पूर्व उनका पत्र पाकर हमने 'वेदप्रकाश' मासिक तथा आर्यगज़ट हिन्दी व उर्दू में 'महात्मा हंसराज जी का वेतन कितना था ?' विषय पर एक शोध लेख लिखा था।

जिस कर्मवीर ने पौन शताब्दी तक धर्म-प्रचार, धर्म-रक्षा व साहित्य-सृजन का सुदक्षता से कार्य किया उसके जीवन पर हम क्या लिखें व क्या न लिखें ? लेखक व प्रकाशक दोनों की कुछ सीमायें हैं। समय भी थोड़ा है। साधनों व स्थिति को देखते हुए हम स्वामी जी के अत्यन्त पुराने लेखों, उनके पुराने साथियों व अपने निजी संस्मरणों के आधार पर यहाँ अत्यन्त प्रामाणिक सामग्री देने का प्रयास करेंगे।

आर्यसमाज का प्रथम सत्याग्रही

स्वामी जी के बालकाल की झाँकी प्रस्तुत करने से पूर्व हम इतिहास के विद्यार्थियों को यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि ऋषि जी के पश्चात् रक्त-साक्षी चिरञ्जीव लाल आर्यसमाज के प्रथम हुतात्मा थे। वही प्रथम भारतीय सामाजिक कार्यकर्त्ता थे जिन्होंने अपने नागरिक व धार्मिक अधिकारों के लिए कारावास में असह्य कष्ट झेले। उनके पश्चात् निज़ाम हैदराबाद ने ब्र० नित्यानन्द जी व पं० बालकृष्ण जी से छेड़छाड़ करके आर्यों को ललकारा व अपनी जेल की शोभा बढ़ाई। तब सारे आर्यजगत् में एक हलचल-सी मच गई।

ठीक इसी विषम वेला में, आर्यसमाज की इस अग्नि-परीक्षा के दिनों में ठाकुर अमरसिंह ने अरणियाँ में जन्म लिया। इस क्षत्रिय बालक को आगे चलकर आर्यसमाज के प्रथम सत्याग्रह में प्रथम जत्था में सत्याग्रही के रूप में भाग लेने का सुयश प्राप्त हुआ। धौलपुर के इस सत्याग्रह में ठाकुर जी के साथी थे महापण्डित राहुल जी, पूज्य पं० बिहारीलाल जी तथा आर्य-गौरव प्रो० महेशप्रसाद जी।

उन्हें पिछला जन्म याद था

ठाकुर अमरसिंह के विचारों, व्यवहार व नीति-रीति से तो किसी को भेद हो सकता है परन्तु उनके घोर विरोधी भी उनके पाण्डित्य का लोहा मानते थे। उनका अध्ययन गहन व विस्तृत था। सूझ का तो कहना ही क्या! परन्तु यह विद्वत्ता और यह अथाह ज्ञान उनकी एक जन्म की तो कमाई न थी। बहुत-कुछ उनके पूर्व-जन्मों की साधना का फल था।

इन पंक्तियों के लेखक ने धूरी में १९६१ या १९६२ ई० में एक शंका की कि ऋषि जी लिखते हैं कि पूर्वजन्म की स्मृति नहीं रहती। ऋषि ने इसके लिए कई तर्क दिये हैं और मनोविज्ञान का भी यह सिद्धान्त है कि यदि हम भूलें न तो स्मरण भी कुछ न रहे—"Forgetfulness is necessary for memory."

परन्तु आए दिन हम पत्रों में पुनर्जन्म की घटनाएँ पढ़ते हैं। महात्मा नारायण स्वामी जी व उपाध्याय जी ने अपनी पुस्तकों में ऐसी कई घटनाएँ दी हैं। हमारे इस कथन को सुनकर स्वामी जी (तब ठाकुर अमरसिंह) ने कहा कि अबतक जितनी भी पुनर्जन्म की घटनाएँ सामने आई हैं, वे सब दुर्घटना से मरे हुए स्त्री-पुरुषों की हैं। इससे सिद्ध हुआ कि दुर्घटना के गहरे संस्कार के कारण कुछ जीवों को पूर्वजन्म की स्मृति रहती है। ठाकुर जी की बात मुझे एकदम समझ में आ गई।

मेरी अपनी ज्येष्ठ पुत्री प्रतिभा आर्या जब पूर्वजन्म की बातें करती थी तो मैंने भी पूछा कि तू फ़िर हमारे घर कैसे आ गई ? उसने एकदम कहा, "मैं बम्बई में समुद्र में डूबकर मरी थी।"

यह उत्तर पाकर मुझे ठाकुर जी के पूर्वोक्त वाक्य याद आ गए। तब ठाकुर जी ने मुझे अपना भी उदाहरण दिया और इस विषय पर जब कभी चर्चा चली उन्होंने हमें यह बात सुनाई कि उन्हें भी बालकाल में यह आभास होता था कि वह पूर्वजन्म में डूबके मरे थे और दूसरी बात यह थी कि "मैं पूर्वजन्म में संस्कृत का विद्वान् था।"

आपने आगे बताया "मैं हैदराबाद-सत्याग्रह में जेल से छूटकर अहमदनगर में एक स्थान पर गया। वहाँ कोई पुराना भवन था। मेरे मन में उस स्थान के लिए अपनत्व के गहरे भाव जागे। मुझे कारण समझ में न आया। मैंने उस भवन के बारे में जानकारी माँगी तो वहाँ किसी ने बताया कि यहाँ पहले एक बड़ी संस्कृत पाठशाला थी और एक ओर संकेत करके कहा कि यहाँ एक बड़ा तालाब था।" अमर स्वामी जी ने मुझे कहा, "बस मेरे मन में उमड़-घुमड़कर यह विचार आया कि मैं यहीं पढ़ता रहा और इसी सरोवर में डूबकर मरा था।"

आर्यसमाजी कैसे बने ?

'निर्णय के तट पर' तथा स्वामी जी के अभिनन्दन-ग्रंथ में उनके शास्त्रार्थी बनने व आर्यसमाजी बनने के विषय में बहुत-कुछ लिखा हुआ है। मूलरूप में तो दोनों पुस्तकों में ठीक ही बातें लिखी हैं परन्तु लेखकों ने स्मृति के आधार पर या सुन-सुनाकर ही सब-कुछ लिखा है। स्वयं स्वामी जी ने भी स्मृति के आधार पर ही कुछ वृत्त लिखा। उनकी स्मृति अद्भुत थी, फिर भी बुढ़ापे का उनकी स्मृति पर भी कुछ विपरीत प्रभाव पड़ा। हमारे पास इसके कई लिखित प्रमाण हैं। हम यहाँ उनके शास्त्रार्थी व आर्यसमाजी बनने की कहानी उनके अपने लेख के आधार पर देंगे, यह लेख स्वामी जी ने आज से ५४ वर्ष पहले भरी जवानी में लिखा था। अतः उस समय उनकी स्मृति और भी अच्छी थी।

पिता ने ऋषि-दर्शन किये

अमर स्वामी जी के पिता ठाकुर टीकमसिंह जी उन भाग्यशाली व्यक्तियों में से थे जिन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी वेदवेत्ता ऋषि दयानन्द जी के पावन दर्शन किए थे। ठाकुर अमरसिंह जी के शब्द हैं—"हमारे पिता ठाकुर टीकमसिंह जी ने अनूपशहर, जिला बुलन्दशहर में गंगास्नान के मेला के अवसर पर महर्षि दयानन्द जी महाराज को व्याख्यान देते हुए देखा। कुछ धूर्तों ने महर्षि के ऊपर झोली में भरकर धूलि फेंकी। महर्षि के भक्त राजपूतों ने उनको पकड़कर मारना-पीटना चाहा। महर्षि ने कहा कि ये बच्चे हैं, मारो मत! राजपूतों ने कहा कि महाराज, ये सब दाढ़ी-मूंछोंवाले जवान और बूढ़े भी हैं। बच्चे नहीं। हम इनको दण्ड देंगे। ऋषिवर ने कहा, चाहे बूढ़े हों, अल्प बुद्धि होने से बालक ही हैं, अतः कतई न मारो।

पिताजी ने ये सब शब्द अपने कानों से सुने पर स्वामी जी का व्याख्यान नहीं सुना था।"[1]

श्री डॉ० भारतीय जी ने ऋषि-जीवन में इस घटना को कर्णवास की लिखा है। उनकी जानकारी का आधार श्री अमर स्वामी जी हैं और मेरी जानकारी का आधार श्री ठाकुर अमरसिंह जी। हमने स्वामी जी से कहा कि "मैं कैसे आर्य-समाजी बना" में आपने अनूपशहर लिखा था, फिर भारतीय जी को कर्णवास कैसे बता दिया ? तब वह हँस पड़े। अपनी भूल भी स्वीकार की और कहा—अच्छा आपने हमारा इतना पुराना जवानी में लिखा लेख खोज लिया !

बारातियों ने वैदिक नाद बजा दिया

चानोख से अरणियाँ में ठाकुरों की एक बारात आई। इस बारात में ऋषि के प्रसिद्ध भक्त श्री ठाकुर महावीरसिंह तथा उनके भतीजे ऋषि-मिशन के दीवाने ठाकुर गुरुवरसिंह जी भी आए थे। इन दोनों ने उस क्षेत्र में वैदिक धर्मप्रचार की धूम मचा रखी थी।

इन दोनों आर्यवीरों ने अरणियाँ में विवाह के अवसर पर वैदिक धर्म पर भाषण देने आरम्भ कर दिए। यह बारात इन्हीं आर्यवीरों के कुल के एक लड़के की थी। वैदिक सिद्धान्तों पर इन दोनों के भाषणों से अरणियाँ के ठाकुर, पौराणिकों के बहकावे तथा अपने घोर रूढ़िवादी संस्कारों के कारण क्षुब्ध हो गए। अरणियाँ के ठाकुरों ने राजपूती शान से चानोख के बाराती राजपूतों पर धावा बोल दिया। अरणियाँ वालों की विजय हुई। चानोखवालों के शस्त्र छीन लिये गए। बड़ी कठिनाई से दोनों पक्षों में संधि हुई।

आर्य पराजित होकर भी विजयी हुए

देखने में तो ऐसा लगता था कि अरणियाँ में आर्यसमाजी पराजित हो गए हैं और अब यहाँ कभी वैदिकधर्मियों के पाँव न जम सकेंगे, परन्तु धर्म-दीवाने ठाकुर महावीरसिंह जी व ठाकुर गुरुवरसिंह जी की तड़प शीघ्र रंग ले आई। अब अरणियाँ के ठाकुर चानोख के समीप बालखा में बारात लेकर गए। इस बारात में ठाकुर अमरसिंह जी के कुल के बड़े व्यक्ति भी थे। आर्यों ने इस अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाया। न जाने अरणियाँवालों पर अपने व्यवहार व लग्न का क्या जादू चलाया कि अरणियाँ के ठाकुर वहाँ से वधू को तो लाए ही, साथ सत्यार्थ-प्रकाश भी लाए। ठाकुर गुरुवरसिंह जी की दो पुस्तकें 'पाप प्रदीप' तथा 'जगत् हितैषी' भी लाए। श्रीमान् पं० मुरारीलाल जी का 'भजन पचासा' भी वे लेकर आए।

---

१. "मैं आर्यसमाजी कैसे बना ?" उर्दू पुस्तक, पृष्ठ ८५ देखें।

'लहलहाई जी खेती दयानन्द की'

पूज्य पं० बस्तीराम के एक भजन की पंक्ति कुछ न बदलकर कहें तो अब अरणियाँ में **'लहलहाई जी खेती दयानन्द की'**। पहलेपहल पाँच सज्जन आर्यसमाजी बने। इनके नाम थे—मुंशी सावनसिंह जी (ठाकुर अमरसिंह के सगे चाचा), ठाकुर चेतराम सिंह, ठाकुर बलवन्त सिंह (ये दोनों भी ठाकुर अमरसिंह के चाचा लगते थे), पटवारी जोहरी मल जी, श्री ला० बन्तराम जी स्वर्णकार[1], फिर इनके पीछे अमरसिंह जी के एक और चाचा नारायण सिंह आर्य बन गये। इनके पश्चात् ठाकुर टीकमसिंह की बारी लगी।

अब अरणियाँ में आर्यसमाज के उत्सव धूमधाम से होने लगे। उन दिनों प्रत्येक आर्यसमाजी प्रचार करना अपना परम कर्त्तव्य मानता था। ठाकुर अमरसिंह के सगे चाचा सावनसिंह जी[2] घूम-घूमकर अड़ोस-पड़ोस में प्रचार करवाते थे। अरणियाँ में शास्त्रार्थ भी हुए। सिकन्दराबाद गुरुकुल के पं० मुरारीलाल जी की संयुक्त प्रान्त ही नहीं भारतभर में धूम मची हुई थी। पं० जी का ठाकुर अमरसिंह जी के परिवार से बड़ा निकट का सम्बन्ध हो गया। गाँव में ठाकुर सावनसिंह रात्रि को नित्य सत्यार्थप्रकाश की कथा करते-करवाते। शंका-समाधान भी हुआ करता था।

यमुना तीन लोक से न्यारी

ठाकुर सावनसिंह जी के पुरुषार्थ से उनका सारा कुटुम्ब आर्यसमाजी बन गया। कुँवर सुखलाल जी कुछ वर्ष गुरुकुल सिकन्दराबाद की सेवा करके श्री पं० भोजदत्त जी आर्यमुसाफिर आगरा के साथ जुड़कर कार्य करने लगे। अमरसिंह जी के एक भाई ठाकुर सरदार सिंह राजपूत सभा के उपदेशक बनकर कार्य करने लगे। "उन दिनों हमारा सारा कुल आर्यसामाजिक कुल बन चुका था और मैं अकेला सनातनधर्मी था।"[3]

सारा कुटुम्ब अमरसिंह को आर्यसमाजी बनाना चाहता था परन्तु, **'यमुना तीन लोक से न्यारी'** की उक्ति के अनुसार यह तीव्र-बुद्धि युवक अपने चाचा द्वारा आयोजित वादविवाद-सभाओं में सदैव आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध ही बोलता था। इन **'शास्त्रार्थों'** में आर्यसमाज के मुख्य वक्ता ठाकुर सावनसिंह जी (श्री साँवलसिंह) स्वयं और इन्हीं के सुपुत्र ठाकुर रामशरण सिंह होते थे। पिता-

---

१. स्वामी जी के अभिनन्दन-ग्रन्थ में इनका नाम नेतराम छपा है।

२. इनको साँवलसिंह भी कहा जाता था। यह आर्यसमाज की नींव का एक पत्थर थे।

३. देखिये—'मैं कैसे आर्यसमाजी बना?' पुस्तक, पृष्ठ ८७

पुत्र दोनों बड़े स्वाध्यायशील थे। कभी-कभी सावनसिंह जी अपनी विशेष देख-रेख में अपने पुत्र व अपने भतीजे अमरसिंह का शास्त्रार्थ करवाते। अन्य आर्य-समाजी सभासद् भी पूरी शक्ति लगाकर अमरसिंह को परास्त करना चाहते थे परन्तु अमरसिंह का पलड़ा सदा भारी रहता। न तो ये लोग अमरसिंह को आर्य-समाजी बना सके और न ही इसे हरा सके तथा न ही समझा सके।

प्रश्न हार-जीत का न था

इन शास्त्रार्थों का उद्देश्य हार-जीत न था। ज्ञान को बढ़ाना तथा सत्य की खोज ही इनका एकमात्र प्रयोजन था। इन सभाओं में गाँव का एक भी व्यक्ति अमरसिंह जी के पक्ष में न बोलता था; सब रामशरण जी के पक्ष में बोलते थे। अमरसिंह की प्रतिभा की तो धाक जम गई, परन्तु परिवार के छोटे-बड़े चिन्तित भी बहुत थे कि इस असाधारण सूझ-बूझवाले युवक को वैदिक धर्म की शरण में कैसे लाया जावे? परिवार के हितैषी आर्यजनों यथा ठाकुर देवीसिंह जी रुकन-पुरवाले (बड़े पूज्य आर्य पुरुष थे) ठाकुर टीकमसिंह के अभिन्नहृदय बन्धु थे। अमरसिंह जी इन्हें ताऊ जी ही कहा करते थे। इस आर्य विद्वान् देवीसिंह जी को अमरसिंह का पौराणिक होना बड़ा अखरता था। ठाकुर कुँवरसिंह इनकी सूझ को देखकर कहा करते थे कि यह कौओं में हंस पैदा हो गया है। ठाकुर हेतराम-सिंह इन्हें गर्भ में ही सब-कुछ पढ़-पढ़ाकर आया हुआ **'अभिमन्यु'** कहते थे।

परिवार व ग्राम के आर्य पुरुष अपने क्षेत्र के एक अन्य प्रतिष्ठित आर्य विद्वान् पुरुष वेदराम जी को लाये। वह भी अमरसिंह को न हरा सके। एक बार उ० प्र० सभा के उपदेशक पं० प्यारेलाल शर्मा जी को हमारे अमरसिंह जी के भ्रम-निवारण के लिए कहा गया। वह भी इन्हें सन्तुष्ट न कर सके। पं० मुरारी-लाल जी शर्मा आदि आर्यों के सब प्रयास विफल हुए। कुँवर सुखलाल जी ग्राम में आये और इन्हें 'आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा' में ले गये।

वैदिक सिद्धान्तों के खण्डन की चाह लेकर

आज पाठकों को यह जानकर आश्चर्य ही होगा कि ठाकुर अमरसिंह आगरा के आर्य मुसाफिर विद्यालय में आर्यसमाज का अधिक अध्ययन करके, आर्यसमाज का खण्डन और भली प्रकार से कर सकने की योग्यता प्राप्त करने के प्रयोजन से गए थे।[1] यहाँ भी वाद-विवाद होते रहते थे। अमरसिंह जी की वक्तृत्व-कला व सूझ-बूझ को देखकर पं० भोजदत्त जी के सुपुत्र श्री डॉ० लक्ष्मीदत्त जी व पं० तारादत्त जी वकील ने बड़ी दूरदर्शिता से इस विवाहित युवक को एक शर्त के

---

१. देखिए—'मैं कैसे आर्य समाजी बना' पुस्तक, पृष्ठ ८८

साथ विद्यालय में प्रवेश दे दिया। यहाँ भागवत आदि पुराणों को पढ़ते-पढ़ते इन्हें अपने-आप ही पुराणों से घृणा हो गई। श्री पं० बिहारी लाल जी इन्हें संस्कृत पढ़ाया करते थे। इनकी भी ठाकुर जी पर गहरी छाप लगी। यह है ठाकुर अमर-सिंह जी के आर्यसमाजी बनने की रोचक कहानी।

महात्मा हंसराज जी की प्रेरणा से

ठाकुर अमरसिंह जी ने जिन-जिन संस्थाओं के साथ कार्य किया, उनकी सूची बहुत लम्बी है, परन्तु विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनकी योग्यता, कर्मठता व राजपूती आन-बान-शान से महात्मा हंसराज जी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अमरसिंह जी को आर्य प्रादेशिक सभा में महोपदेशक नियुक्त कर दिया। उनका जीवन के अन्तिम श्वास तक प्रादेशिक सभा से किसी-न-किसी रूप में सम्बन्ध बना रहा। जीवन में प्रादेशिक सभा की नीतियों से कई बार वह रूठे भी और खीजे भी, परन्तु प्रादेशिक सभा का प्यार सदैव उनके हृदय में बना रहा। श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी जबतक प्रादेशिक सभा के सर्वेसर्वा रहे, वह अमर स्वामी जी को सच्चे हृदय से मान-सम्मान देते रहे।

आर्यसमाज तथा सभा के लिए एक त्याग

दिवंगत चौधरी वेदव्रत जी, सम्पादक आर्यगज़ट (स्वामी सत्यानन्द के रूप में धूरी में निधन हुआ था) अमरसिंह जी के बड़े मित्र व हमारे कृपालु थे। एक बार आपने इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि प्रादेशिक सभा का एक उपदेशक प्रलोभन में आकर पौराणिकों में जा फँसा। महात्मा हंसराज जी उसकी दुर्बलता से परिचित थे। आपने अपने अत्यन्त समझदार व्यक्तियों को भेजकर उससे सम्पर्क किया। महात्मा जी जाति व समाज-हित में उस व्यक्ति को समाज में लाने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय करने पर तुले हुए थे। दूरदर्शी हंसराज अपने उद्देश्य में सफल हो गए। उस व्यक्ति को कुछ अधिक दक्षिणा देकर महात्मा जी ने खींच लिया। इससे समाज का लाभ भले ही कम हुआ, परन्तु समाज को हानि वह न पहुँचा सका।

उस समय किसी ने महात्मा जी से कहा कि यदि इस व्यक्ति को इतनी दक्षिणा दी है तो ठाकुर अमरसिंह जी की वरिष्ठता बनाये रखने के लिए उनकी मासिक दक्षिणा भी बढ़ानी पड़ेगी अन्यथा वह बुरा मानेंगे। महात्मा जी व अन्य नेताओं को यह देखकर बड़ा आश्चर्य व हर्ष हुआ कि ठाकुर अमरसिंह ने न तो उस व्यक्ति की दक्षिणा बढ़ाने पर रोष प्रकट किया और न ही अपनी दक्षिणा बढ़ाने की माँग की।

हमें चौधरी वेदव्रत जी ने बताया कि ठाकुर अमरसिंह के इस व्यवहार से

महात्मा जी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वेदव्रत जी से कहा, "आर्यसमाज व जाति के हित में ठाकुर अमरसिंह के इस त्याग को देखकर मेरा सिर उनके सामने झुक जाता है।" हमने अमर स्वामी जी से इस घटना की चर्चा की तो उन्होंने इसकी पुष्टि करते हुए बड़ी नम्रता से कहा कि श्री महात्मा जी ने ऐसा करके एक व्यक्ति को समाज को हानि पहुँचाने से रोक लिया। यह घटना छोटी है परन्तु अमर स्वामी के समाज-प्रेम का अच्छा व प्रेरणाप्रद उदाहरण है।

रणभेरी सुनकर

१९३९ ई० में जब हैदराबाद में आर्यों ने संघर्ष छेड़ा तो रणभेरी बजते ही दोनों भाई कुँवर सुखलाल जी व ठाकुर अमरसिंह धर्मयुद्ध में कूद पड़े। श्री देवमुनि वानप्रस्थी बम्बई व महाशय महन्तराम फीरोजपुर आपके उस समय के जेल के साथी थे। इनके साथ अमर स्वामी जी का ऐसा लगाव था कि मानो ये सब सगे भाई हों।

स्वामी जी तथा कुँवर सुखलाल जी दोनों भाइयों ने तब कारागार में जाने से पूर्व व कारागार में जाकर ऐसे-ऐसे गीतों व कविताओं की रचना की, जिन्हें सुन-सुनकर तरुण हृदय फड़क उठते थे। दोनों भाई तब गीत क्या गाते थे, बस अंगार बरसाते थे। इतिहास के विद्यार्थी के नाते हमारा यह मत है कि उन दिनों आर्यसमाज के अनेक कवियों ने कविता के रूप में अपने उद्गार व्यक्त किए। उस सत्याग्रह में सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त करनेवाले गीतों में उन दोनों भाइयों की रचनाएँ भी थीं। स्मरण रहे कि स्वामी आत्मानन्द जी का गीत—

दयानन्द की है पताका रँगीली।
सजी ओ३म् के नामवाली सजीली।।

उस सत्याग्रह की देन है।

ठा० अमरसिंह के सीने में तब क्या वलवले थे, यह उन्हीं दिनों का उनका एक ऐतिहासिक गीत बता रहा है—

'बूढों ने बढ़ के धर्म पै कुर्बां बुढ़ापा कर दिया'[1]

कायम 'निज़ाम' रह चुका, हो चुकीं हुक्मरानियाँ।
ज़ुल्मो-सितम बिलात्रजह मिटने की हैं निशानियाँ।।

---

१. यह पंक्ति सत्याग्रह के फील्ड मार्शल स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी (तब ६० वर्ष के थे), महात्मा नारायण स्वामी जी प्रथम सर्वाधिकारी (तब ७० वर्ष से ऊपर के थे), शहीद स्वामी कल्याणानन्द, स्वामी सत्यानन्द जी की ओर संकेत करती है। ऐसे सैकड़ों वृद्ध सीना तानकर आग में कूद पड़े थे।

मेरा कहा ग़लत सही, फिर भी यह बात ठीक है।
जुल्मो-सितम से मिट गईं, राजों की राजधानियाँ॥
बूढ़ों ने बढ़ के धर्म पै कुर्बां बुढ़ापा कर दिया।
आएँगी काम कब कहो, चढ़ती हुई जवानियाँ॥
यह तो बता दो बात वह, क्या थी जो गढ़ चित्तौड़ में।
ज़िन्दा चिता में जल गईं, चौदह हज़ार रानियाँ॥
जीना उन्हीं का ठीक है, मरना उन्हीं का खूब है।
करते हैं धर्म के लिए कुर्बां जो ज़िन्दगानियाँ॥
जग में रहेंगी आर्यो अपनी "अमर" कहानियाँ।
जड़ से मिटेंगी एक दिन ज़ालिम की सितमरानियाँ॥

ठीक है कि यह जीवनी अमर स्वामी जी की है, परन्तु यहाँ जेल में रची कुँवर सुखलाल की कविता के कुछ पद्य देना भी अप्रासंगिक न होगा। हमारे पाठकों को पता तो लगे कि इन दोनों भाइयों की वाणी में क्या जादू था और इनके सीने में क्या अरमान थे! श्याम भाई, वेद प्रकाश व धर्म प्रकाश के बलिदानों का लक्ष्य करके लिखा गया था—

यह किसका फ़साना है, यह किसकी कहानी है।
सुनकर जिसे महफ़िल की हर आँख में पानी है॥
जलने में मज़ा क्या है? क्यों सत्य के दीपक पर।
दीवाने पतंगों ने जल जाने की ठानी है॥
दे मुझको मिटा ज़ालिम, मत धर्म मिटा मेरा।
यह धर्म मिरे ऋषियों मुनियों की निशानी है॥

कुँवर जी के एक अन्य गीत ने तब युवकों को बड़ा तड़पाया तथा उभारा। उसकी पहली पंक्तियाँ थीं—

यह क्या हैदराबाद में हो रहा है।
कि महशर का आलम बपा[1] हो रहा है॥

इसी में गांधीजी की मुस्लिम-पोषक नीति के कारण उनकी चुप्पी पर प्यार-भरा एक बड़ा तीखा व्यंग्य कसते हुए यह पद्य लिखा था—

हमायत[2] न कर प्यारे गांधी हमारी।
मगर इतना कह दे बुरा हो रहा है॥

---

१. प्रलय मची हुई है।

२. पक्ष-पोषण।

कुँवर साहब ने तब जेल में एक बड़ा भावपूर्ण पद्य लिखा था—

लगा रहता है गो सय्याद[1] का हरदम कड़ा पहरा।
मगर हम ख्वाब में शब[2] को वतन से घूम आते हैं।।

पोंगा पंथ की पोल खोलते रहे

वह जीवन-भर बड़ी निर्भीकता से पोंगा पंथ की पोल खोलते रहे। एक घटना हमारे लिए सदा अविस्मरणीय रहेगी। अमृतसर में आर्य प्रादेशिक सभा ने आर्यसमाज-शताब्दी मनाई। इस अवसर पर प्रातःकाल यज्ञ के पश्चात् स्वामी सच्चिदानन्द 'योगी' प्रवचन कर रहे थे। स्वामी जी ने शंकराचार्य जी की चर्चा करते हुए एक पोंगापंथी बात कह दी। सब विद्वानों को यह बात बड़ी अखरी। अभी कानाफूसी आरम्भ ही हुई थी कि अमर स्वामी जी ने झट-से एक ही मिनट में स्वामी सच्चिदानन्द की उस वेद-विरुद्ध बात का ऐसा प्रतिवाद किया कि सब पर अमर स्वामी जी के पाण्डित्य की गहरी छाप लगी। स्वामी सच्चिदानन्द श्री अमर स्वामी की बात का क्या उत्तर देते ? उनके पास कुछ उत्तर था ही नहीं।

'नास्तिकों को आगे करके'

तभी वहाँ एक नेता जी ने आर्यों को आह्वान दिया कि भौतिकवाद व नास्तिकता को जड़ से उखाड़कर वैदिक अध्यात्मवाद के प्रसार में शक्ति लगा दें। यह सुनकर अमर स्वामी जी ने कई मिलनेवालों से कहा कि अध्यात्मवाद का उपहास उड़ानेवाले, आर्यसमाज को 'संध्या-हवन एण्ड कम्पनी' कहनेवाले नास्तिकों से जोड़-तोड़कर नेता जी अब वैदिक अध्यात्मवाद फैलाने का उपदेश देते हैं ! नास्तिकों को आर्यसमाज की वेदी पर लादकर अब वेद का आस्तिकवाद याद आया ?

स्वामी जी की मृत्यु-इच्छा -

यह सन् १९७१ ई० की घटना होगी। हिसार में स्वामी जी और हम किसी कार्यक्रम में इकट्ठे हुए। हमारे मन में एक विचित्र विचार उत्पन्न हुआ। रविवार के दिन प्रातःकाल बड़े आर्यसमाज मन्दिर के द्वार के साथ दाईं ओर के एक छोटे-से कमरे में स्वामी जी लेटे हुए थे। हम कुछ मित्रों के साथ सत्संग के

---

१. शिकारी, हत्यारे शासक।
२. रात (भाव यह है कि कारागार से बाहर तो जा नहीं सकते परन्तु हम रात्रि-स्वप्न में घर से हो आते) हैं।

आरम्भ होने से पूर्व ही स्वामी जी के पास पहुँच गए। श्रीयुत आचार्य सत्यप्रिय जी शास्त्री, एम० ए० से हमने कहा कि पूज्य पं० रामचन्द्र जी देहलवी से मृत्यु से पूर्व किसी विद्वान् ने आर्यसमाज के नाम उनका अन्तिम सन्देश माँगा तो उन्होंने कहा, "आर्यसमाज की रक्षा करनी है, ऋषि का मिशन फैलाना है तो इन रंग-बिरंगी टोपियों से आर्यसमाज को बचाओ!" भाव यह था कि काली, लाल, श्वेत टोपीधारी राजनैतिक व्यक्तियों के राजनैतिक स्वार्थों से आर्यसमाज की रक्षा करो। अब अमर स्वामी जी भी नदी-किनारे का पेड़ हैं। क्या पता कब चल बसें! इसलिए हम आज उनकी मृत्यु-इच्छा (Death Will) लिखेंगे।

श्री स्वामी जी ने हमारी विनती सुनकर तत्काल प्रसन्नतापूर्वक अपनी मृत्यु-इच्छा अथवा आर्यसमाज के नाम सन्देश छपवाया। हमने इसे एक पत्रिका में छपवाया भी। उस मृत्यु-इच्छा का एक वाक्य तो एकदम हमारे सीने पर अंकित हो गया। आपने ऋषि के सैनिकों को सन्देश देते हुए कहा, "पहली व दूसरी पीढ़ी के आर्यों ने अपना घर-बार फूंककर सभा, संस्थायें व समाज बनाए, परन्तु वर्तमान में ऐसे लोग समाजों में घुस रहे हैं व घुस गए हैं जो सभा, संस्थाओं व समाजों को फूँककर अपने घरघाट बना रहे हैं। ऐसे लोगों से आर्यसमाज की रक्षा करो!"

स्वामी जी ने तब एक और वाक्य भी कहा। वह इसे प्रायः दुहराया करते थे और हमने भी इस वाक्य को अपनी कई पुस्तकों में दिया है—

"पहले समाज मन्दिर तो कच्चे थे,
परन्तु, समाजी बड़े पक्के होते थे।
"अब समाज मन्दिर बड़े पक्के (चिप्स के) बन गये हैं,
परन्तु आर्यसमाजी कच्चे हो गए हैं।"

इन वाक्यों में कितना मर्म है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

उनके प्रति आर्यजन का आदरभाव

एक बार महाशय राजपाल मण्डली के साथ ठाकुर अमरसिंह के रूप में आप किसी उत्सव पर गये। दक्षिणा व मार्गव्यय जो कुछ भी मिला किसी जेब-कुतरे ने स्टेशन पर टिकट आदि लेते हुए उड़ा लिया। ठाकुर जी कहीं आते-जाते अपने प्रेमियों को मिलने के लिए मार्ग में उतर जाया करते थे। जेब तो कट गई, परन्तु अपने पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार आप धूरी में महाशय कुन्दनलाल जी (वानप्रस्थी महात्मा प्रेमप्रकाश जी के पिताजी) से मिलने के लिए उतरे। महाशय जी ने रात्रि-भोजन का निमन्त्रण दिया। आपसे कुशलक्षेम पूछा। आपने कहा, सब ठीक है। जेब कटने की तनिक भी चर्चा न की। भोजन करते समय महाशय राजपाल जी ने महाशय कुन्दनलाल जी को बता दिया कि ठाकुर जी

की जेब कट गई। दो सौ, ढाई सौ रुपया चला गया। ठाकुर जी को राजपाल जी की यह बात अच्छी न लगी।

भोजन हो गया। अगले दिन महाशय कुन्दनलाल जी ने तीनों को आगे का टिकट लाकर दिया और ठाकुर जी को वह राशि दी, जो जेब में से जेबकुतरा ले उड़ा और साथ ही दक्षिणा दी। ठाकुर जी ने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया। महाशय जी अपनी बात पर अड़ गये और कहा, "हमारे उपदेशक की चोरी हो जावे, वह खाली हाथ हमारे घर से आवे, उसके बच्चे मुँह देखते रह जावें, यह हमारे लिए अशोभनीय है।" ठाकुर जी कहते रहे, "यह आपको दण्ड क्यों ? जेब कट गई तो कट गई। दक्षिणा क्यों लूँ ? मैंने प्रचार तो यहाँ किया नहीं।"

महाशय कुन्दनलाल जी ने ठाकुर जी की एक न सुनी और ठाकुर जी को हार माननी पड़ी। महाशय जी भेंट देने में सफल हुए। ऐसा था आर्य जनता का उनके प्रति आदर भाव। उनके भक्तों, मित्रों, परिचितों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत था। उनको भी किसी का नाम कभी भूलता ही न था।

अन्तिम समय तक स्वाध्याय व शोध में लीन रहे

एक बार हमने स्वामी जी से उनके स्वास्थ्य के बारे पूछा तो कहने लगे, "कमर के नीचे-नीचे का शरीर तो अब बेकार ही है। एक बोझा है जो ढो रहा हूँ परन्तु (गले की ओर संकेत करते हुए बोले) यहाँ से ऊपर-ऊपर का जिसकी आपको (आर्य समाज को) आवश्यकता है, ठीक-ठाक कार्य कर रहा है। मुझे एक बार कहीं भी ले जाकर वेदी पर बिठा दो, फिर मैं जानूं और मेरा काम। कोई कसर न छोड़ूंगा।" उनका यह कथन पूर्णतया सत्य है। उनके कान, आँख, नाक, वाक्, शिर सब मृत्यु से कुछ दिन पहले तक वैदिक धर्मप्रचार के लिए कार्यरत रहे।

जब उन्हें कैंसर हो गया तो भी उन्होंने रोग की चिन्ता न करते हुए सबके पत्रों के उत्तर यथासम्भव अपने हाथ से ही दिये। स्वामी सत्यप्रकाश जी के पास मैं बैठा था कि डाक से उन्हें अमर स्वामी जी का पत्र मिला। मुझे पत्र पढ़ाया। रोग की उसमें चर्चा तक न थी। सारी सामाजिक बात थी।

मृत्यु-पर्यन्त उन्हें शोध की सनक रही। इन पंक्तियों के लेखक को एक पत्र लिखा कि पं० भोजदत्त जी आर्यमुसाफिर तथा मौलाना सत्यदेव जी के साहित्य की सूची भेजें, कुछ लिखना चाहता हूँ। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह बाबा भी कैसा विचित्र है ! जर्जर शरीर के साथ इस भयंकर रोग में भी इसे शोध की ही सूझती है ! हमने उनकी आज्ञा का पालन करते हुए श्री पं० भोजदत्त जी की बीस पुस्तकों (दीवानेआर्य—काव्य संग्रह सहित) की सूची भेज दी। वह बड़े आनन्दित हुए।

महात्मा अमर स्वामी बीस वर्ष महात्मा हंसराज के निकट रहे और ६२ वर्ष तक महात्मा जी के चरणों में तीस-चालीस वर्ष तक बितानेवाले महात्मा आनन्द स्वामी जी जैसे व्यक्तियों के साथ रहे। वह स्वयं महात्मा हंसराज पर एक Source of Information (जानकारी का स्रोत) थे, तथापि जब आर्य जगत् में किसी ने उनकी चिट्ठी पढ़कर उन्हें रांची से लिख दिया कि महात्मा जी कालेज से वेतन लेते थे तो अमर स्वामी तड़प उठे, उनका कलेजा फटे जा रहा था। उनको दुःख तो हुआ ही, साथ ही उनकी स्थिति ठीक वैसी ही थी जैसी कि ठगों से घिरे हुए गऊ को ले जा रहे भोले ब्राह्मण की थी। ठग्गों ने बारी-बारी कहा, "पं० जी, यह बकरी कहाँ से लाए हो ?" यह सुन-सुनकर ब्राह्मण ने गाय को बकरी मानकर फैंक दिया।

अमर स्वामी जी का हमें पत्र आया कि 'महात्मा जी वेतन लेते थे या नहीं' इसपर अपनी व्यवस्था मुझे लिखकर भेजें। आप ही इस विषय पर एक अधि-कारी विद्वान् हैं। हमने उन्हें तत्काल उत्तर दिया और पत्रों में लेख दिये। स्वामी जी हमारा पत्र पाकर गद्गद हो गये। आपने हमारा पत्र श्रीमान् प्रो० रत्नसिंह जी को भी दिखाया।

बात यहीं तक समाप्त नहीं होती। आपने अपना एक व्यक्ति भेजा कि महात्मा हंसराज ग्रंथावलि लाओ, इस विषय के सब प्रमाण नोट करने हैं।

जब गुरुकुल गौतम नगर में मिले

गत वर्ष स्वामी जी हमें आचार्य हरिदेव जी के तपोवन गुरुकुल गौतम नगर में मिले। यज्ञशाला के सामने कार्यालय के पासवाले कमरों के बाहर आसन जमा-कर अलभ्य पुस्तकों की चर्चा छेड़ दी। शरीर की सब सुधबुध भूल गये। आपने कहा—शास्त्रार्थों का तीसरा खण्ड छपवा रहा हूँ, कुछ पुराने शास्त्रार्थ दो। प्रसंग-वश हमने कहा—महात्मा हंसराज ग्रन्थावलि में महात्मा जी का जम्मू-शास्त्रार्थ तथा गोपीनाथ से हुआ शास्त्रार्थ भी दे दिया है। महात्मा जी ने जम्मू में कभी शास्त्रार्थ किया था, यह जानकारी धूरी में हमें अमर स्वामी जी ने ही दी थी। हमने यह शास्त्रार्थ खोज निकाला। अमर स्वामी यह सुनकर भावविभोर हो गये और कहा, "अच्छा हम इसे महात्मा हंसराज ग्रन्थावलि से लेकर छापेंगे। आपने बड़ा सुन्दर कार्य कर दिया।"

जब ठाकुर अमरसिंह ने काला झूठ बोला

पाठक यह शीर्षक पढ़कर चौंक पड़ेंगे कि अमर स्वामी जी ने यदि झूठ बोला तो यहाँ इसे देने की क्या आवश्यकता थी ? यह भी कोई शिक्षाप्रद बात है कि श्री अमरसिंह ठाकुर ने कभी झूठ बोला ? यह घटना भारतीय स्वाधीनता-संग्राम

के इतिहास के एक विद्यार्थी के लिए पठनीय है अतः हम इसका उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते ।

वीर भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव की त्रिमूर्ति ने डी० ए० वी० कालेज लाहौर के ठीक सामने साण्डर्स को गोली मारकर अंग्रेजी साम्राज्य को कम्पा दिया। तत्क्षण पुलिस ने व गुप्तचरों ने उस क्षेत्र को घेर लिया। पता चला कि गोली मारनेवाले डी० ए० वी० कालेज में घुसकर कहीं भाग गये हैं। कौन-कौन था ? किधर को भागे ? पुलिस ने पूछताछ आरम्भ की। मिनटों में ही तो पुलिस ने जाँचपड़ताल का कार्य आरम्भ कर दिया।

पुलिस अधिकारी डी० ए० वी० कालेज में प्रविष्ट हुए। वहाँ लालचन्द पुस्तकालय के बाहर बने चबूतरे पर तीन व्यक्ति पुस्तकें उलट पुलटकर न जाने क्या खोज रहे थे। पुलिस ने बड़े रोब से इन्हें आतंकित करते हुए कहा, "क्या तुम ने गोली की आवाज सुनी ? हत्यारे कितने थे ? कौन-कौन था ? वे किधर को गये ?"

इन तीनों ने कहा, "हम तो पुस्तकें पढ़ने में लीन थे। हाँ ! आवाज तो कुछ आई परन्तु हम अपने काम में लगे थे। जब शोर अधिक मचा तो पता नहीं चला कि कौन आया और कौन गया। हमने सिर जब ऊपर उठाया तो आप ही को सामने पाया। हमने किसी को और देखा ही नहीं और न ही किसी को पहचानते हैं।"

पाठकवृन्द ! पता है ये तीन व्यक्ति कौन थे ? एक तो थे श्री पं० भगवद्दत्त जी, दूसरे वैद्य रामगोपाल जी और तीसरे थे ठाकुर अमरसिंह जी। पुलिस के बार-बार पूछने पर भी इनका उत्तर यही रहा। इसमें तो दो मत नहीं कि इन तीनों ने काला झूठ बोला। इन्होंने वीर भगतसिंह को साथियों सहित भागते देखा था। ये तीनों वीर भगतसिंह के सारे परिवार को जानते थे। वीर सुखदेव भी तो एक आर्यसमाजी परिवार का रत्न था। जानते हुए भी इन तीनों ने यह झूठ बोला। अब पाठक स्वयं सोच लें कि इनका यह असत्य भाषण आर्योचित कर्म था या नहीं ? यह नीतिमत्ता थी या नहीं ? यह राष्ट्रधर्म था या नहीं ?

यह घटना स्वयं अमर स्वामी ने हमें सुनाई थी। उनके जीवन-काल में ही हमने यह कई बार अपने लेखों में दी।

पौराणिकों के भगवान् अमरसिंह

अमर स्वामी जी की ज्ञानप्रसूता लेखनी व वाणी में ओज था, रस था, प्रवाह था। उनकी वाणी व व्यवहार में नीरसता न थी। कभी-कभी अपनी विनोदप्रियता व प्रत्युत्पन्नमति से वह बड़ी-बड़ी सभाओं व शास्त्रार्थों में हँसी का ऐसा फव्वारा छोड़ते थे कि विरोधी भी हंसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे।

देश-विभाजन से पूर्व बट्टोमली में बड़े शास्त्रार्थ होते थे। एक बार आर्यों का

पौराणिकों से शास्त्रार्थ होना था। आर्यसमाज की ओर से ठाकुर अमरसिंह जी ने शास्त्रार्थ करना था। पौराणिकों की ओर से पं० माधवाचार्य आए हुए थे। वह एक ऊँचे मंच पर विराजमान थे। जब राजपूती मूँछों को ताव दिये हुए मारवाड़ी पगड़ी पहने हुए ठाकुर अमरसिंह पण्डाल में प्रविष्ट हुए तो आर्य जनता ने कर-तल-ध्वनि से उनका स्वागत किया।

माधवाचार्य जी को न जाने क्या सूझी उसने 'ऊँट रे ऊँट तेरी कौन-सी कल सीधी' की लोकोक्ति के अनुसार कुछ तो अनाप-शनाप कहना ही था। व्यक्तिगत बातचीत में वह अमर स्वामी जी की बड़ी प्रशंसा किया करता था, परन्तु ऋषि को गाली देने से माधवाचार्य कभी चूक जावे, ऐसा हो नहीं सकता था। उसने अमरसिंह जी को देखते ही कहा, "लो आ गये मुझसे शास्त्रार्थ करने! ये लाहौर में सारंगी बजाते थे, ये अब शास्त्रार्थ करेंगे!"

ठाकुर जी कण्ठसंगीत व वाद्यसंगीत दोनों में ही प्रवीण थे। माधवाचार्य को इस बात का ज्ञान था ही।

तपाक से ठाकुर अमरसिंह ने कहा, "सारंगी बजाने से हमारा सिद्धान्त कम नहीं हो जाता, **ना ही मेरी विद्या व योग्यता कम हो जावेगी प्रत्युत मैं भी पौरा-णिकों के भगवानों की पंक्ति में सम्मिलित हो गया।**"

इसपर पं० माधवाचार्य तिलमिलाए तो ठाकुर जी ने अनायास ही अगला वाक्य बोल दिया, "आपके शिवजी डमरू बजाया करते थे। श्री कृष्ण जी बाँसुरी बजाया करते थे। आपके नारद जी वीणा बजाया करते थे। ये तुम्हारे भगवान् व देव हैं।"

ठाकुर जी के मुख से बड़ी शालीनता से यह वाक्य जब निकला तो आर्य जनता के साथ पौराणिकों ने भी इतने जोर से तालियाँ बजाईं कि लेखनी उस दृश्य का वर्णन करने में अक्षम है। माधवाचार्य को लज्जित होकर सिर नीचे करना पड़ा। ऐसा निरुत्तर हुआ कि कुछ सूझा ही नहीं।

यह घटना हमने बद्दोमली आर्यसमाज के विद्वान् पुरोहित स्व० पं० गंगाराम जी (हमारे नगर में भी वह पुरोहित रहे) से कई बार सुनी। ठाकुर जी से भी वह संस्मरण सुना और उनके अभिनन्दन-ग्रंथ में भी यह दिया हुआ है।

वह झूम उठे

एक बार हिसार में आर्यसमाज पटेल नगर में ऋषिबोध-पर्व पर बड़ी विराट् सभा का आयोजन किया गया। श्री अमर स्वामी जी तथा इन पंक्तियों का लेखक वहाँ मुख्य वक्ता थे। ज्ञान के भण्डार अमर स्वामी की यह बड़ी विशे-षता थी कि वे युवकों को उभारते व प्रोत्साहन देते हुए कंजूसी न करते थे। स्वामी जी से पूर्व बोलते हुए हमने ऋषि के प्रादुर्भाव का चित्रण करते हुए एक स्वरचित

कविता के निम्न पद्य सुनाए :—

कोई नबी बना, कोई वली बना,
कोई पीर मजावर बन बैठा।
बिन वेद पढ़े ही मन्दिर में,
कोई करता था टन-टन बैठा।।
कोई दूत बना, कोई पूत बना,
कोई ईश्वर स्वयं आप बना।
मत हँसना बात यह सच्ची है,
कोई परमेश्वर का बाप बना।।

'कोई परमेश्वर का बाप बना' इस पंक्ति का भाव सब श्रोता नहीं समझ सकते थे। यह हमें पता ही था। हमने स्वामी जी की ओर देखते हुए कहा कि क्यों स्वामी जी महाराज! इन्हें बताइए यह बात एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक तथ्य है कि नहीं ?

स्वामी जी ने भाव-विभोर होकर कहा—"यह सर्वथा सत्य है। आपने यह कमाल की बात लिखी है! इस पंक्ति में हमारा संकेत मिर्जा गुलाम अहमद की ओर है। श्री मिर्जा ने लिखा था कि अल्लाह ने मुझे शुभ सूचना दी है कि तुम्हारे यहाँ एक पुत्र जन्म लेगा जो हुबहू (पूर्णतया) अल्लाह मियाँ होगा। कहिए जब जब पुत्र अल्लाह है तो अल्लाह को जन्म देनेवाला उसका बाप ही तो ठहरा!" स्वामी जी स्वाध्याय व सूझ के लिए युवकों की पीठ थपथपाते थे।

ऋषि क्यों रोये ?

अमृतसर के पौराणिक पण्डित रुलियाराम ने बद्दोमली ज़िला स्यालकोट में कहा कि स्वामी दयानन्द ने अपने स्वलिखित जीवनचरित्र में लिखा है कि मैंने स्वप्न में देखा कि शिव और पार्वती मेरे पास खड़े हैं। पार्वती जी कहती हैं कि—इस दयानन्द का विवाह कर देना चाहिए। शिव जी इस विचार से सहमत नहीं थे। जब पार्वती जी इस बात के लिए अधिक आग्रह करने लगीं तो दयानन्द जी लिखते हैं कि इतने में मेरी आँख खुल गई और मैं बहुत रोया।

यह कहकर रुलियाराम जी अमृतसरी ने कहा कि स्वामी दयानन्द जी इस-लिए रोये कि—हाय, मेरा विवाह होते-होते रह गया! थोड़ी देर और सोया रहता तो विवाह हो जाता।

ठाकुर अमरसिंह जी ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि रुलियाराम जी ने स्वामी जी की बात का सर्वथा उलटा अर्थ निकालने का विफल प्रयास किया है। उसी स्व-लिखित चरित्र में लिखा हुआ है कि घर पर विवाह की तैयारियाँ होती देखकर ही विवाह से बचने के लिए स्वामी जी घर से भागे थे।

शिवपार्वती के विवाह-सम्बन्धी संवाद को स्वप्न में सुनकर रोने का कारण यह हो सकता है कि मैं तो विवाह से बचने के लिए सम्पत्तिशाली घर और परिवार का परित्याग करके भागा था परन्तु पौराणिकों के देवी-देवता यहाँ भी सगाई लिये फिरते हैं और स्वप्न में भी पीछा नहीं छोड़ते।

ठाकुरजी के इस उत्तर को सुनकर श्रोता बड़े प्रसन्न हुए। लोग खिलखिलाकर हँसे। रुलियाराम जैसे लोग जिनकी खीर-पूड़ी ही ऋषि दयानन्द को गालियाँ देने व ऐसी-ऐसी उल्टी-सीधी बातें सोचने व कहने पर निर्भर करती थी, ठाकुर जी का यह उत्तर पाकर फीके पड़ गए। आश्चर्य तो इस बात का है कि एक अमरीकन महिला के साथ बढ़िया पोज में स्वामी विवेकानन्द का चित्र देखकर व घरों में लटकाकर पौराणिकों को ऐसी-ऐसी उल्टी-सीधी बात कभी नहीं सूझती। जाति-हित में ये लोग कुछ करते नहीं।

हमने मिट्टी का यह दीपक फेंक दिया

देश-विभाजन के कुछ वर्ष पश्चात् की घटना है कि राजधनवार (बिहार) में आर्यों का पौराणिकों से एक ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ। पं० माधवाचार्य तथा कविरत्न अखिलानन्द पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थ कर रहे थे। आर्यसमाज ने श्री ठाकुर अमरसिंह जी को अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाकर खड़ा किया।

इस शास्त्रार्थ में पं० अखिलानन्द ने श्रोताओं से कहा, "मैं भी पहले आर्य-समाजी था और देखिए आज मैं आर्यसमाज की छीछालेदर कर रहा हूँ। आर्यों की ओर हाथ घुमाकर कहा—

'इस घर को आग लग लई'

फिर अपनी ओर संकेत करके कहा—

(इस) 'घर के चिराग से।'

श्री अमर स्वामी जी ने कहा, "ठीक है कि यह मिट्टी के तेल का चिराग हमारे घर में जलता था, हमारे घर में दुर्गन्धि फैलाता था और हमारे घर की दीवारों को भी काली करता था। हमारे घर को भी इस चिराग (अखिलानन्द) ने आग लगानी आरम्भ कर दी। हमने हानि पहुँचने से पूर्व ही उस आग को बुझा लिया और इस मिट्टी के तेल वाले चिराग को उठाकर बाहर फेंक दिया। अब ये देखिए, हमारे यहाँ ये बिजली के बड़े-बड़े बल्ब (पूज्य स्वामी अभेदानन्द जी, आचार्य रामानन्द जी व पं० गंगाधर जी आदि की ओर संकेत करते हुए) आज जगमग-जगमग कर रहे हैं और यह मिट्टी के तेल का चिराग आज उस घर में टिमटिमा रहा है जहाँ घटाटोप अँधेरा था।"

सम्भवतः पं० अयोध्या प्रसाद जी भी तब वेदी पर विराजमान थे।

ठाकुर अमरसिंह जी के इस उत्तर से श्रोता बड़े आनन्दित हुए। लोग हँसी से लोटपोट हो गए।

'अन्तर जान जाओगे'

दानापुर (बिहार) में अमर स्वामी जी शंकासमाधान कर रहे थे कि एक युवक ने एक विचित्र प्रश्न लिखकर भेजा था।

प्रश्न था—"औरत व जहर में अन्तर क्या है?" अमर स्वामी जी ने कहा, "प्यारे युवक! औरत वह है जिसने तुम्हें जन्म दे दिया और विष वह है जो तुमको मार सकता है। एक का अनुभव तुम्हें हो चुका, दूसरे की परीक्षा करके देख लो। अन्तर का पता तुम्हें ही नहीं तुम्हारे सगे-सम्बन्धियों को भी चल जावेगा।"

दर्शन का ठाठें मारता हुआ सागर

सन् १९३६ में बद्दोमली में ठाकुर अमरसिंह का मौलाना सनाउल्ला साहिब के साथ एक स्मरणीय शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ की रोचक कहानी हमने बद्दोमली के आर्यों से भी कई बार सुनी और ठाकुर जी के मुख से भी सुनकर नोट की थी। 'निर्णय के तट पर' में भी यह शास्त्रार्थ छपा है।

मौलवी साहिब ने बड़ी चतुराई से ठाकुर जी से पूछा, "क्या जीवात्मा अनादि है और इसके गुण भी अनादि हैं?"

ठाकुर जी ने उत्तर दिया कि हाँ! जीवात्मा अनादि है और इसके औसाफ (गुण) भी अनादि व नित्य हैं।

मौलाना बोले, "जिसके गुण अनादि नहीं उसके वह स्वयं भी अनादि नहीं हो सकता?" भाव यह था कि फिर तो जीव भी अनादि न होकर उत्पन्न हुआ मानना पड़ेगा।

ठाकुर अमरसिंह जी ने कहा, "जी हाँ, जिसके गुण अनादि नहीं वह गुणी भी अनादि नहीं हो सकता।"

फिर मौलाना बोले, "क्या इल्म (ज्ञान) रूह (आत्मा) का गुण है?"

ठाकुर जी ने कहा, "हाँ, ज्ञान जीव का गुण है।" अब मौलाना सनाउल्ला जी ने अपना मार्मिक प्रश्न बड़े लच्छेदार शब्दों में किया और कहा, "मैं अनुभवी सेनापति हूँ और पं० जी नये रंगरूट हैं। मैं आज फ़लसफ़ा (दर्शन) का सागर बहा दूंगा। दर्शन का सागर आज यहाँ ठाठें मारता दिखाई देगा। सज्जनो! यदि इल्म (ज्ञान)जीव का गुण है तो मनुष्य स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय किसलिए खोलता है? स्पष्ट है कि ज्ञानप्राप्ति के लिए। इससे सिद्ध है कि ज्ञान जीव का गुण नहीं है। जब ज्ञान जीव का गुण नहीं तो ज्ञान का गुण अनादि न होने से जीव भी अनादि न रहा।"

ठाकुर जी ने उत्तर में कहा, "या तो मौलाना ने दर्शन पढ़ा ही नहीं या फिर बुढ़ापे के कारण भूल गए हैं। मैं तो जवान हूँ इसलिए मुझे दर्शन याद है। मेरा दर्शन का ज्ञान ताजा है। मैं दर्शन की बात बताता हूँ।"

आपने कहा, ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक स्वाभाविक, दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक ज्ञान तो प्राप्त करना नहीं पड़ता। नैमित्तिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ही स्कूल-कालेज आदि खोले जाते हैं।

मौलाना ने पूछा, "स्वाभाविक ज्ञान साथ रहता है इसका प्रमाण दीजिए।"

ठाकुर जी ने कहा, "नैमित्तिक ज्ञान का प्राप्त करना ही इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि स्वाभाविक ज्ञान अनादि है और साथ रहता है।"

ठाकुर जी ने उदाहरणार्थ कहा—मौलाना साहिब, आपने अनेक छात्रों को पढ़ाया। पढ़नेवाले छात्र तो पढ़-पढ़कर मौलवी, फाजिल, मुन्शी फाजिल कर गए परन्तु आपके मदरसा (विद्यालय) के कमरे, मेज, कुर्सियाँ, दीवारें व खिड़कियाँ वैसे के वैसे ही अज्ञानी व जड़ हैं। कारण क्या? यही कि जिसमें ज़ाती स्वाभाविक ज्ञान होगा, वही नैमित्तिक ज्ञान प्राप्त कर पाएगा और प्राप्त करता है।

ठाकुर जी के इस उत्तर को सुनकर सहस्रों जन उनके ज्ञान व चिन्तन पर 'वाह! वाह!' करके तालियाँ बजाने लगे। मानना पड़ेगा कि यह प्रश्न भी बड़ा गम्भीर है और ठाकुर जी का उत्तर भी बड़ा मार्मिक तथा शास्त्रोक्त है।

इसी शास्त्रार्थ में मौलाना ने कहा था कि अल्लाह हमारा स्वामी इसी कारण है कि वह आयु में हमसे बड़ा है। यदि जीव व ईश्वर दोनों ही कदीम अनादि हैं तो फिर अल्लाह ईश्वर हमारा शासक राजा कैसे?

ठाकुर जी ने इसका उत्तर देते हुए कई युक्तियाँ व उदाहरण दिए। एक यह भी था कि हज़रत ख़दीजा की आयु हज़रत मुहम्मद से १५ वर्ष अधिक थी। हज़रत छोटे होने पर भी ख़दीजा जी के मालिक थे अथवा नहीं? जार्ज पंचम तब सम्राट् थे। मौलाना से आयु में छोटे थे परन्तु आयु में छोटे होते हुए भी जार्ज पंचम शासक थे। इस उत्तर से भी मौलाना बड़े निरुत्तर हुए।

इसी शास्त्रार्थ में मौलाना ने यह भी कहा था कि हमारी सत्ता (वजूद) अल्लाह की देन है। ठाकुर जी ने कहा यदि वजूद (अस्तित्व) दिया गया था तो क्या आप उस समय (मौजूद) थे जब अल्लाह ने आपको आपका वजूद (सत्ता) दिया?

यदि आप कहें कि मेरा तब अस्तित्व नहीं था जब ईश्वर ने आपका अस्तित्व दिया तो फिर बताइए कि यह अस्तित्व किसको दिया गया? और यदि आप तब (मौजूद) थे तो फिर बिना वजूद (सत्ता) के कैसे माजूद (अस्तित्व में) थे?

इस प्रकार अपनी प्रबल युक्तियों से ठाकुर जी ने मौलाना को उस शास्त्रार्थ में पराजित व निरुत्तर किया। श्रोता ठाकुर जी के दर्शन-ज्ञान से अत्यन्त प्रभावित

हुए। इस शास्त्रार्थ के अध्यक्ष थे प्रसिद्ध इतिहासकार श्री पं० भगवद्दत्त जी।

श्री स्वामी जी सुवक्ता थे, विद्वान् थे, वैद्य थे, गायक थे, कवि थे, गवेषक थे और सिद्धहस्त लेखक थे। वह शिक्षक थे, शास्त्रार्थी थे और कई भाषाओं के विद्वान् थे। उनके जीवन के सब पहलुओं पर प्रकाश डालना यहाँ अति कठिन है। वह हिन्दी व उर्दू दोनों भाषाओं में गद्य व पद्य-रचना में समर्थ थे। उनके सम्पूर्ण साहित्य का लेखा-जोखा यहाँ क्या करें? उन्होंने धर्म, दर्शन व इतिहास सब पर लिखा। श्री अमरस्वामी जी ने साठ वर्ष तक निरन्तर अपनी लौह लेखनी चलाई। हमारा अनुमान है कि आपके सब लेखों, अग्रलेखों, ट्रैक्टों व पुस्तकों को महात्मा हंसराज ग्रंथावलि के आकार प्रकाशित किया जावे तो ये चार सहस्र पृष्ठ बनेंगे और अभी दो सहस्र पृष्ठ अप्रकाशित सामग्री पड़ी हुई है। ऐसा स्वामी जी ने कुछ समय पूर्व हमें संकेत दिया था और प्रो० रत्नसिंह जी ने हमारे इस कथन की पुष्टि की है। प्रो० साहब ने हमें समय निकालकर यह सब सामग्री देखने की प्रेरणा दी है।

अमर स्वामी ज ी की कविताओं के कुछ अंश

अखिलाधार अमर सुखधाम, एक सहारा तेरा नाम।
कैसी सुन्दर सृष्टि बनाई, चन्द्र-सूर्य-सी ज्योति जगाई॥
कैसी अद्भुत वायु बहाई, एक से एक विलक्षण काम॥
एक सहारा तेरा नाम.........
आप अमर सत्पथ के स्वामी; मैं हूँ अमर असत्पथगामी।
एक नाम के दोनों नामी, मैं गुणरहित आप गुणग्राम॥
एक सहारा तेरा नाम.........

गर तुझे मरना ही है तो मौत कुत्तों की न मर।
नाम तू कर ले 'अमर' यह ज़िन्दगी का मोल कर॥

जो सुख-सागर से दूर रहें, उनको सुख का सम्पर्क कहाँ?
वे भाग्यहीन भगवान् बिना, नित नूतन संकट सहते हैं॥
सद्धर्मी सभ्य सदाचारी, सत्पुरुष 'अमर' पद पाते हैं।
भगवान् भक्त सुजनों के लिए, सुखस्रोत सदा ही बहते हैं॥

हुतात्माओं का जाति से उपालम्भ

मिट्टी हुई जिनके लिए बरबाद हमारी।
अफ़सोस! उन्हें खाक नहीं याद हमारी॥

वेदप्रकाश

क्या हम नहीं कर सकते थे इनकार धर्म से ?
जब काटते थे गरदनें जल्लाद हमारी ।।

सोच समझ कर पग धर मग में ।
लाग न जाय शूल कहीं पग में ।।
यथायोग्य व्यवहार करो तुम,
समझो भेद साधु और ठग में ।
बिना विचारे कर्म किया तो,
संकट है, भय है, डग डग में ।।

विद्या के दो शत्रु हैं, कहो 'अमर' वह कौन ?
अज्ञानी की वाह-वाह, ज्ञानवान का मौन ।।

उड़ न सके आकाश में पक्षविहीन विहंग ।
पक्षहीन मानव 'अमर' रहता अचल अपंग ।।

धनियों में समुदारता, निर्धन में सन्तोष ।
रहे 'अमर' तो जाय मिट, याचकता का दोष ।।

प्रभु प्रकाश के पुञ्ज हैं, करते ज्ञान प्रकाश ।
हो इस निश्चय से 'अमर' अंधकार का नाश ।।

दो जन पत्थर बांध के जल में देओ डुबाय ।
धनी न दान करे 'अमर' निर्धन तप न कमाय ।।

सारे संशय मेट कर 'अमर' ज्ञान प्रकटाय ।
सबका लोचन शास्त्र है, इस बिन अंध कहाय ।।

धन, सम्पद, यौवन 'अमर' चौथा है कुविचार ।
एक समर्थ विनाश में कौन दशा जहँ चार ।।

किसी वंश से हो 'अमर' गुण से पूछा जाय ।
कीचड़ से उपजे कमल, सबको सदा सुहाय ।।

हो समृद्ध और धार्मिक गुणी पुत्र विद्वान् ।
सेवक बन वश में रहे 'अमर' पुण्यफल जान ।।

मनुज निपट प्रारब्ध पर तजे न 'अमर' उपाय ।
तिल से बिन पुरुषार्थ के तेल न सकते पाय ।।

जिन पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः श्री अमर स्वामी जी लिखते रहे

१. आर्य गज़ट उर्दू साप्ताहिक, लाहौर, जालंधर तथा देहली।
२. आर्य गज़ट हिन्दी लाहौर, जालंधर तथा देहली।
३. 'आर्यवीर' रावलपिण्डी, लाहौर व जालंधर।
४. 'वेदपथ' मासिक गाज़ियाबाद।
५. 'आर्य संसार' कलकत्ता।
६. 'मिलाप' दैनिक लाहौर।
७. 'आर्य मित्र' साप्ताहिक लखनऊ।
८. 'आर्य जगत्' साप्ताहिक जालंधर व देहली।
९. 'सार्वदेशिक' मासिक व साप्ताहिक देहली।
१०. 'आर्यसमाज' कलकत्ता।

इनके अतिरिक्त भी यदा-कदा जनज्ञान, आर्य मर्यादा, दयानन्द सन्देश, सर्वहितकारी, परोपकारी, आर्यसन्देश, वेदप्रकाश, मधुरलोक, आर्यपथ, आर्य मार्त्तण्ड आदि सब पत्रों में उनके लेख छपते ही रहे। अनेक मत-पंथों से उन्होंने शास्त्रार्थ किए। उनके ये शास्त्रार्थ **आर्यसमाज के हिन्दी-उर्दू पत्र बड़े चाव से छापते रहते थे।**

वह इतिहास क्या कभी छपेगा ?

श्री स्वामी जी ने कुछ वर्ष पूर्व आर्य प्रादेशिक सभा का इतिहास लिखा था। इसे लिखते समय वह हमारे यहाँ भी पधारे। कुछ पत्र-व्यवहार भी किया, फिर इस पाण्डुलिपि को भी देखने की आज्ञा दी। हम इसे देख तो न पाए परन्तु हमारी इच्छा है कि इस पुस्तक का प्रकाशन होना चाहिए। इससे नई पीढ़ी को कुछ प्रेरणा अवश्य मिलेगी। अब लेखनी को विराम देते हुए उनके जीवनकाल में उन पर लिखे दो पद लिखकर पाठकों की ओर से उन्हें श्रद्धाञ्जली भेंट करते हैं—

काम किए निष्काम, धर्महित बढ़चढ़ करके।
लड़े धर्महित सदा, तली पर सिर धर करके॥
संकट सहे अनेक, नहीं किञ्चित् घबराए।
गुणी विप्र मतिमान्, सभी के पूज्य कहाए॥

*

प्रकाशक व मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।
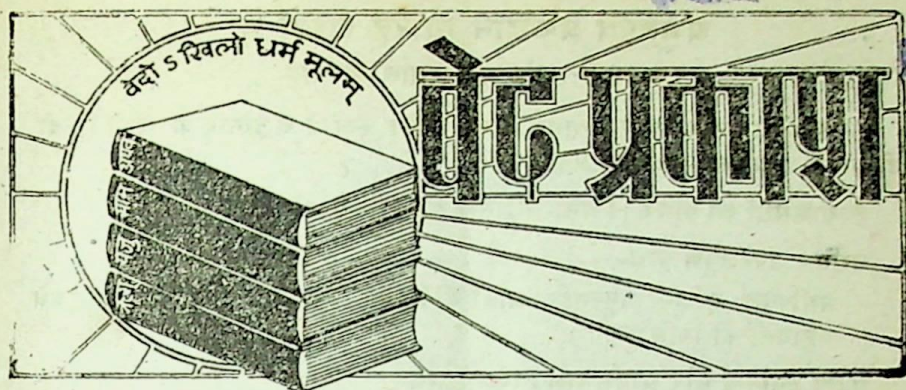
स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी दयानन्द ने मृत्यु के समय आर्यसमाज का नेतृत्व किसी व्यक्ति के हाथ में नहीं छोड़ा था। ईश्वर के भरोसे मानो वे चल दिए। १८८३ ई० के बाद स्वयं ही आर्यसमाज में व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। इन व्यक्तियों में स्वामी श्रद्धानन्द का व्यक्तित्व सर्वशिरोमणि है। १८८३ से १९२६ तक का मुंशीराम-श्रद्धानन्द का इतिहास ही आर्यसमाज का इतिहास है।

स्वामी श्रद्धानन्द ने इस शती के प्रथम पाद में भारत के इतिहास में मार्मिक भूमिका निभाई। आर्यसमाज में दयानन्द के बाद श्रद्धानन्द-सा दूसरा व्यक्ति देखने में नहीं आ रहा।

गुरुकुल के अनगिनत स्नातकों के कुलगुरु महात्मा मुंशीराम थे, न कि श्रद्धानन्द। मुंशीराम और श्रद्धानन्द दो अलग-अलग व्यक्तित्व हैं। मुंशीराम के रूप में वे महात्मा थे, गांधी के अत्यन्त निकट, गुरुकुल प्रणाली के उन्नायक, शिक्षा के क्षेत्र में अनन्य प्रयोगी तथा टैगोर की समकक्षता के शिक्षाशास्त्री।

दूसरा उनका स्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द का रहा। राष्ट्र-उलझनों में फँसे हुए—कभी मालवीय के साथ, कभी महासभा के साथ, कभी उनसे दूर भागते हुए अत्यन्त विवादास्पद व्यक्तित्व; पर उनके सामने एक आलोक था—महर्षि दयानन्द का। उसका उन्हें पुरस्कार मिला २३ दिसम्बर सन् १९२६ को सायंकाल ४ बजे, दिल्ली में अब्दुल रशीद की गोलियों से बलिदान होकर वे सदा के लिए अमर हो गये।

ऐसे महामानव के चरित्र के विविध रूपों का चित्रण उनके ग्रन्थों, लेखों, सम्पादकीयों में सुरक्षित कर दिया है स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली में। बहुत-बहुत साधुवाद, बधाई और स्नेह सहित आशीर्वाद।

—स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली का

अभूतपूर्व प्रकाशन ग्यारह खण्डों में

सम्पादक : **डॉ० भवानीलाल भारतीय**

उपर्युक्त ग्रन्थमाला के अन्तर्गत अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के सभी हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी ग्रन्थों का प्रामाणिक प्रकाशन—

कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा)

धार्मिक उपदेशपूर्ण ग्रन्थ—

धर्मोपदेश, संक्षिप्त मनुस्मृति, आर्यों की नित्यकर्म पद्धति, मुक्तिसोपान, पञ्च महायज्ञों की विधि आदि।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज विषयक ग्रन्थ—

आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त, ईसाई पक्षपात और आर्यसमाज, वेद और आर्यसमाज, उपदेशमंजरी की भूमिका, ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार की भूमिका।

हिन्दू संगठन और शुद्धि-समस्या—

वर्णव्यवस्था, आचार-अनाचार और छूत-छात, जाति के दीनों को मत त्यागो, हिन्दू संगठन, मातृभाषा का उद्धार आदि।

स्वामी श्रद्धानन्द के राजनैतिक ग्रन्थ—

'इनसाइड कांग्रेस' का प्रथम बार हिन्दी अनुवाद, स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा प्रकाशित दि लिबरेटर में प्रकाशित २५ राजनैतिक लेखों का प्रामाणिक अनुवाद, इसके साथ ही स्वामीजी का पं० गोपाल कृष्ण गोखले आदि नेताओं के साथ हुए दुर्लभ पत्र-व्यवहार को भी दिया जा रहा है) हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद (एकता) की कहानी।

पं० लेखराम का जीवनचरित और बंदीघर के विचित्र अनुभव

आर्यसमाज एण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स : ए विण्डिकेशन का अनुवाद—आर्यसमाज और उसके शत्रु : एक प्रतिवाद के शीर्षक से यह दुर्लभ ग्रन्थ ८० वर्ष पश्चात् पुनः पाठक वर्ग को अर्पित किया जा रहा है।

सद्धर्म प्रचारक का अभियोग : पूर्ण और प्रामाणिक अनुवाद (गोपीनाथ काश्मीरी के अभियोग का विवरण)

उर्दू ग्रन्थों का अनुवाद : कुलियात संन्यासी तथा अन्य ग्रन्थ।

स्वामी श्रद्धानन्द की प्रामाणिक बृहत जीवनी (सचित्र)

सम्पूर्ण स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली : ग्यारह खण्डों में—सम्पूर्ण ग्रन्थावली का मूल्य ६६०-००।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली-६

।। ओ३म् ।।

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक ५] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [दिसम्बर १९८७

सम्पा० विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

धर्म-विज्ञान (द्वितीयो भागः)

क्षमा

स्वामी विश्वमित्रानन्द सरस्वती

पातंजल योगसाधनाश्रम

पो०—जेठोली, जिला—खेडा (गुजरात)

धर्म का द्वितीय लक्षण है, क्षमा। यह दो अक्षरवाला पुनीत अमृतमय शब्द कर्णकुहर में प्रविष्ट होते ही अन्तरात्मा में कितनी शान्ति विराज जाती है ! क्षमा के द्वारा क्या-क्या असाध्य साधन नहीं होता ! इसे धारण करनेवाला क्षमावान् पुरुष मानव-शरीर में देव बन जाता है। देवत्व की प्राप्ति की दिशा में क्षमा एक प्रबल साधन है।

क्षमा किसको कहते हैं ? अपने से दुर्बल होते हुए भी यदि किसी ने दोष किया हो और दण्ड देने के लिए आपमें पूर्ण सामर्थ्य रहते हुए भी यदि दोषी के दोष को आप माफ कर देते हैं, तब उसे क्षमा कहते हैं। यदि आपके ऊपर कोई अत्याचार कर रहा हैं और उसका प्रतिकार करने में आपमें कोई सामर्थ्य नहीं है तथा उस स्थान पर आप कहते हैं कि "चलो, मैं तुम्हें क्षमा कर देता हूँ" तो यह यथार्थ क्षमा नहीं है। यह तो असामर्थ्य ही है। असमर्थ व्यक्ति क्षमा नहीं कर सकता। इसलिए कहा है—'क्षमा वीरस्य भूषणम्' क्षमा वीर का भूषण है, दुर्बल का नहीं।

दूसरी बात यह है कि 'आपमें शक्ति नहीं है'—यह विचार आप क्यों करते हैं ? यह तो भ्रममात्र ही है, क्योंकि शक्ति सभी में विद्यमान है। कहते हैं—जिसके

राज्य में सूर्य अस्त ही नहीं होता था, ऐसा प्रवाद प्रचलित था, उस ससागरा धरा के अधिष्ठाता प्रबल प्रतापी चक्रवर्त्ती ब्रिटिश साम्राज्य के समक्ष एक हड्डी-हड्डी का ढाँचा, दुबला-पतला शरीरविशिष्ट एक नंगा फकीर, जिसे हम महात्मा गांधी के रूप में जानते हैं, वह कितना तुच्छ था ! परन्तु, उस अस्थिपंजरावशिष्ट दुबले साधु ने, जगत् जानता है कि ब्रिटिश साम्राज्य को हिला दिया। जिधर उसकी आँख उठती थी उधर करोड़ों आँखें, जिधर उसका पग चल पड़ता था उधर करोड़ों पग चल पड़ते थे। आखिर उस साधु की शक्ति के समक्ष ब्रिटिश सरकार को घुटने टेकने पड़े। अत: अपने सामर्थ्य को पहचानो !

सामर्थ्य केवल शारीरिक नहीं होता, किन्तु मानसिक, आत्मिक बल के सामने शारीरिक, आसुरी बल भी अत्यन्त तुच्छ, नगण्य है। अत: मनोबल तथा आत्मिक बल की वृद्धि करने पर ही आप क्षमा प्रदान करने के अधिकारी बनेंगे।

मनुष्य क्षमा को ग्रहण कब नहीं कर सकता ? जब गर्व-अभिमान से भरकर उद्दण्ड हो जाता है। गर्वी, अभिमानी व्यक्ति यही समझता है कि 'मुझसे बड़ा और कोई नहीं है ! मैं सब-कुछ कर सकता हूँ ! मेरे सामने वह कौन होगा, जो मुझसे द्रोह करनेवाला हो, मेरा विरुद्धाचरण करनेवाला, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला हो ? मैं उसे दण्ड दिये बिना नहीं रहूँगा !' गीता में ऐसे व्यक्तियों के स्वभाव का निरूपण इस प्रकार किया गया है—

"आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ?"

अर्थात् 'मैं बड़ा धनवान्, कुलवान् हूँ, दूसरा मेरे तुल्य कौन है ?'

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥

अर्थात् 'इस शत्रु को आज मैंने मारा, कल दूसरों को भी समाप्त कर दूँगा। मैं ही ईश्वर, मैं ही भोगी, मैं ही सिद्ध, बलवान् और सुखी हूँ।'

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥

अर्थात् 'आज मैंने यह प्राप्त कर लिया, कल इस मनोरथ को पूरा करूँगा। आज इतना धन है, कल फिर बहुत हो जाएगा।' इत्यादि गीता के इन वचनानुसार ऐसे व्यक्तियों को 'अज्ञान-विमोहितः, मोहजालसमावृतः, अनेकचित्त-विभ्रान्तः' कहा गया है और इन्हें 'पतन्ति नरकेऽशुचौ' महान् अपवित्र नरक में गिरते हैं—ऐसा कहा गया है।

ऐसे रजोगुण और तमोगुण से आच्छादित दुर्बुद्धि दंभी मनुष्य क्षमा धारण करने में असमर्थचित्त होता है। वह क्षमा की बात की कल्पना भी नहीं कर सकता। छोटे-से अपराध करनेवालों को भी बड़ा दण्ड देने की सोचता है। किन्तु

थोड़ा-सा भी स्थिरमन, शान्तचित्त से वह विचार करे तो अपनी भूल का पता लगा सकता है। अरे भई, ज़रा सोचो तो सही ! तुम जैसे बलवान् से जान-बूझकर द्वेष करनेवाला कौन हो सकता है ? तुम इतने बड़े शक्तिशाली और वह इतना छोटा आदमी, तुमसे कैसे लड़ने की ठान सकता है ? तो फिर यह अपराध क्यों किया ? यह दोष उससे अनजान से हो गया। तुम उसे क्षमा कर दो। इससे दोनों पक्षों को लाभ पहुँचेगा।

किन्तु गर्वी फिर भी अहंकार करता है। वह बात न समझकर कहता है कि 'मेरा क्या लाभ होगा ? मैं चाहूँ तो उसका कचूमर निकाल दूँ, उसे मसल डालूँ ! फिर भी उसे क्षमा कर देता हूँ। उसका भला हो जाएगा। पर, मेरा उससे क्या बनता-बिगड़ता है ?'

परन्तु, यह गर्व तुम्हारा वृथा है। बात नहीं समझ में आती है तो सुनो ! तुम्हारे जैसों के लिए तो सिंह और चूहे की गाथा कही गयी है जो तुमने पढ़ी नहीं, अथवा पढ़ी होगी तो गुनी नहीं।

पंचतन्त्र में आता है—जंगल के राजा सिंह की निद्रावस्था में एक चुहिया अनजाने में उसके ऊपर चढ़ जाती है। सिंह उसे पकड़ लेता और गरजता है—'कचूमर निकाल दूँ ? तू मेरे ऊपर चढ़ती है, इतना तेरा साहस ?' चुहिया थर-थर काँप उठती है। गिड़गिड़ाकर विनती करती है—'पशुराज'! एक बार दया-पूर्वक क्षमा करके छोड़ दो। आइन्दा ऐसी भूल कभी नहीं होगी। और इसके बदले कभी आपका प्रत्युपकार करूँगी।' सिंह हँसता है—'तू क्या मेरा प्रत्युपकार करेगी ? छोटी-सी तो तेरी जान है ! खैर, जा, छोड़ देता हूँ।' चुहिया को यूँ कहकर छोड़ दिया।

एक दिन भीलों के जाल में फँसकर सिंह गर्जन-तर्जन करने लगा। चुहिया उसका शब्द पहचानकर बिल से निकली और अपने सूक्ष्म और तीक्ष्ण दाँतों से जाल को छिन्न-भिन्न कर डाला। सिंह बन्धनमुक्त हो गया। प्रत्युपकार की बात सिंह को जताकर कृतज्ञ चुहिया अपने बिल में घुस गयी। तभी सिंह की समझ में आया कि क्षुद्र जीव में भी शक्ति होती है और वह कभी बड़ों के उपकार में भी आती है। सो मेरे भाई, किसी को छोटा मत समझो !

दूसरी बात यह है कि तुममें जो शक्ति है वह कहाँ से प्राप्त हुई—कभी यह भी सोचा ? इसी समाज ने तुम्हें शक्ति प्रदान की है। चाहे वह विद्या-ज्ञान की शक्ति हो, शारीरिक शक्ति अथवा धन की शक्ति क्यों न हो, वह सब समाज की सहायता से ही मनुष्य प्राप्त करता है। माँ के पेट से जनमते ही कोई सम्पदा के गट्ठर साथ नहीं लाता, विद्वान् या पहलवान बनकर जन्म नहीं लेता। दो-दो एम०ए० पास पिता-माता गर्भ से ही एक मैट्रिक पास बच्चा पैदा नहीं कर सकते। पिता-माता चाहे कितने विद्वान्-विदुषी क्यों न हों, उनकी सन्तान जन्म से विद्वान्

नहीं हो सकतीं, मूर्ख ही पैदा होती है; हाँ, क्रमशः वयोवृद्धि के साथ-साथ वह मनुष्य-समाज के सम्पर्क में आकर ज्ञान प्राप्त कर लेती है; 'धन, बल आदि सभी पदार्थों को प्राप्त कर लेती है। आज किसी गुरु ने अक्षर-शिक्षा दी, कल किसी ने संस्कृत भाषा की तो किसी ने अंग्रेजी भाषा की, किसी ने व्याकरण तो किसी ने गणित पढ़ाया, अथवा किसी गुरु से हम विज्ञान या दर्शनशास्त्र का शनैः-शनैः अध्ययन करके एक दिन स्वयं इन सब शास्त्रों में, विद्या में, पारंगत हो जाते हैं, विद्वान् बन जाते हैं। तब उसके लिए इतना अभिमान क्यों ?

छोटी उम्र में कोई आसन, प्राणायाम, दण्ड, बैठक आदि सिखाता है, और उससे भी शक्तिशाली बनने के लिए कोई दूसरा गुरु लाठी-मुद्गर आदि चलाना सिखाता है, पिता-माता खाने-पीने आदि की व्यवस्था करते हैं, तब कहीं जाकर हम एक दिन पहलवान बन जाते हैं। तब इस शारीरिक बल के लिए भी अभिमान कैसा ? क्योंकि यह तो समाज-प्रदत्त है !

आज हम निर्धन हैं। कल किसी की सहायता से छोटी-सी दूकान करते हैं। लोगों की सभी प्रकार सहायता प्राप्त कर पुरुषार्थ करने पर एक दिन हम लखपति बन जाते हैं। तो फिर इस धन-बल से अभिमानी बनने की क्या आवश्यकता है ? जिस सामाजिक सहायता को प्राप्त करके हमने विद्या, शक्ति व धन को प्राप्त किया, उसी समाज के उपकार में उस सबको लगा देना ही उसका यथार्थ उपयोग है। तभी हम कृतज्ञ कहला सकेंगे, अन्यथा कृतघ्न बनने का अवसर आएगा।

परन्तु, मनुष्य यह समझते हुए भी नहीं समझता। किसी कवि ने यथार्थ ही ही कहा है—

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

अर्थात् 'मैं शास्त्रार्थ करूँगा, विवाद करूँगा और बड़े-बड़े दिग्गज पण्डितों को परास्त कर दूँगा' ऐसा सोचकर विद्याध्ययन करता है। 'मुझसे बड़ा धनी कोई नहीं होगा, सब मेरे सामने नतमस्तक हो जायेंगे' यह सोचकर धनार्जन करता है। पहलवानी आदि करके खूब शारीरिक बल इसलिए बढ़ाता है कि 'सबका कचूमर निकाल दूँगा, बलात् सभी को दबा दूंगा, दुर्बलों को सताऊँगा, मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा' इत्यादि ऐसा कौन आदमी सोचता है ? खल, अर्थात् दुष्ट, दुर्जन। यह दुर्जन जनों का स्वभाव है। किन्तु, साधु सज्जनों की इससे विपरीत विचारधारा होती है। वह कैसी ? विद्या—ज्ञान के लिए—स्वयं अपना ज्ञान बढ़ाता और दूसरों को भी ज्ञान-दान देता है। धन दान के लिए, परोपकार के

लिए; और शक्ति, शारीरिक बल इसलिए कि दुर्बलों की रक्षा हो।

इसी दृष्टिकोण से ही वैदिक वर्णव्यवस्था की कल्पना की गयी है। संसार में तीन ही प्रकार का अभाव होता है—ज्ञान का, बल का और धन का अभाव। ज्ञान न हो तो समाज में अज्ञान-अन्धकार फैल जाएगा। लोग मनमाना चलकर अपने को पापपंक में गिरा देंगे। इसलिए ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि—स्वयं ज्ञानार्जन करे और लोगों के अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करे।

बल न हो तो दुष्ट व्यक्ति समाज को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इसलिए क्षत्रिय का कर्त्तव्य है कि दुष्टों का दलन और शिष्ट सज्जनों का पालन-रक्षण करे। उसका नाम भी इसलिए क्षत्रिय है कि—'क्षतात् त्रायत इति'—क्षत से, विपत्ति से त्राण करता है, बचाता है।

धन न हो, तो भी प्राणरक्षा असंभव है। अतः वैश्य का कर्त्तव्य है कि धन कमाकर उसे समाज के पालन-पोषण में लगा दे। वेद का आदेश है—**"शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर"** अर्थात् 'सैकड़ों हाथों से कमाओ और हजार हाथों से बाँट दो!' अर्थात् लोकहितकर, जनकल्याणकर कार्य में लगा दो। प्राचीन युग की इस वैदिक वर्णव्यवस्था की सुष्ठु परम्परा अधुना लुप्तप्राय है। सभी आज स्वार्थवश होकर सामाजिक एकता को नष्ट-भ्रष्ट करने में तुले हुए हैं।

ये सब बातें आज मनुष्य समझते हुए भी नहीं समझता। वह सोचता है कि यह सब तो मेरी ही कमाई है, मेरे ही पुरुषार्थबल से यह सब धन एकत्रित हुआ है, इसे दूसरों को क्यों दूं? देखिये, हम पुनः चेतावनी देते हैं कि मनुष्य में जो कुछ भी धन, बल, विद्या आदि उपलब्ध हैं वे सब दूसरों की अर्थात् समाज के अन्य लोगों की सहायता से ही वह संभव है। केवल मनुष्य ही नहीं, अपितु इतर प्राणियों में भी जो कुछ गुण, दोष, बल, विद्या आदि परिलक्षित होते हैं, वे सब भी दूसरों की संगति से, दूसरों की सहायता से ही।

एक पथिक रास्ता चलते हुए जंगल-मार्ग में सूर्यास्त हो जाने पर आश्रय-स्थान ढूंढने लगा। निकट ही कुछ दूरी पर दीपक का प्रकाश देखा तो वहाँ पहुँचा। तभी भयंकर शब्द सुनाई दिये—"धरो! काटो! मारो! चमड़े उतारो!" पथिक भय से व्याकुल होकर देखने लगा कि कहाँ से ये शब्द आ रहे हैं? उसकी दृष्टि बराण्डे में लटकते पिंजरे में बन्द एक तोते पर पड़ी जिसके मुख से ये शब्द निकल रहे थे। 'जहाँ के तोता-मैना भी ऐसे भयंकर शब्द बोलें, वह निश्चित ही डाकुओं का अड्डा है!'—ऐसा विचारकर वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

कुछ दूर आने पर पुनः एक कुटिया की तरफ से प्रकाश दिखाई दिया। पथिक वहाँ पहुँचा तो वहाँ भी एक तोता पिंजरे में बैठा मिला। वह उसे देखते ही बोला—"आइये! बैठिये! ब्रह्मचारियो, पानी लाओ, अतिथि आये हैं!" यह सुनकर आश्वस्तचित्त तथा आश्चर्यचकित होकर पथिक ने पूर्वदृष्ट शुक-

पक्षी की वार्त्ता सुनाकर पूछा—"आप एक ही जाति के पक्षी हो, परन्तु गुणों में आकाश-पाताल का अन्तर क्यों ?" तब वह तोता बोला जोकि किसी कवि ने श्लोक बना दिया है—

अहं मुनीनां वचनं शृणोमि,
गवाशनानां स वचः शृणोति ।
न तस्य दोषो न च मद्‌गुणो वा,
संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।।

अर्थात् "यह एक ऋषि-आश्रम है। यहाँ मुनिकुमारगण कोई भी अतिथि आने पर 'नमस्कार, आइये, बैठिये, पानी पीजिये' आदि भद्रवाणी का प्रयोग तथा भद्र व्यवहार-प्रदर्शन करते हैं। उसे मैं देखता-सुनता हूँ और वैसे ही बोलना-चालना मैं भी सीख गया हूँ। किन्तु, वह एक चमारों का डेरा है। वहाँ चमड़े का कारोबार चलता है। 'धरो, काटो, मारो, चाकू लाओ, चमड़े उतारो' आदि शब्दों के अलावा चर्मकारों के यहाँ दूसरा क्या सुनने को मिलेगा ? अतः वह तोता वही सब सुनते-सुनते वही कुछ बोलना सीख गया है। बहेलिया (शबर) ने बचपन से हमें पकड़कर उसे चर्मकारों के यहाँ और मुझे ऋषि-आश्रम में लाकर बेच दिया है। न वह दोषी है और न मैं गुणवान् हूँ। प्राणी जैसा संसर्ग (संग) करता है, वैसा ही बन जाता है, नहीं तो हम दोनों भाई-भाई ही हैं।"

उपर्युक्त उदाहरण से पता चलता है कि पशु-पक्षी भी जो कुछ सीखते हैं, जानते हैं, वह संसर्ग, संग के ही बल से। फिर मनुष्य की तो बात ही क्या ? तात्पर्य यह निकला कि दूसरों की सहायता के बिना कोई न कुछ सीख सकता और न प्राप्त कर सकता है।

बन्दर तीन चक्केवाली साइकिल पर बैठकर उसे चलाता है, बीड़ी पीता है; भालू या हाथी फुटबॉल (Football) खेलते हैं; आग के गोले के बीच शेर छलाँग लगाता है; ये सब खेल सर्कस में देखने को मिलते हैं। ये सब जीव कैसे इस प्रकार खेल दिखाते हैं ? सिखाने से।

इंगलैंड में पैदा हुआ बच्चा अंग्रेजी कैसे बोलता है ? इस प्रकार कि उसके माता-पिता उसी भाषा को बोलते हैं और उसे भी सिखाते हैं। यदि वही लड़का दूसरे किसी देश में पैदा हुआ होता अथवा किसी दूसरे देश में छोड़ दिया जाता तो जहाँ रहता, वहीं की भाषा बोलता, अर्थात् महाराष्ट्र में मराठी, बंगाल में बंगला, उड़ीसा में उड़िया और गुजरात में गुजराती भाषा सीख जाता। कैसे ? —अपने से बड़ों के, गुरुजनों के सिखाने से।

यदि इसी प्रकार आप दस-बीस भाषा के विद्वान् बन गये तो इसमें अभिमान की क्या बात है ? उस ज्ञान के द्वारा समाज का उपकार करो तथा अभिमानशून्य हो जाओ, तभी उसमें ज्ञान की सार्थकता है। परन्तु, विद्वन्मन्य सोचता है कि मैं

इतना बड़ा विद्वान् होकर मूर्खों से कैसे मिलूँ ? भाई, मूर्खों के कारण ही तो तुम विद्वान् कहलाते हो ? यदि तुम्हारे जैसे सभी विद्वान् बन जायँ तो तुम्हें कौन पूछे? विद्वानों के साथ विद्वत्ता का व्यवहार किया तो कोई विशेषता नहीं। विद्वत्ता तो इसी में है कि मूर्खों के साथ भी मिल-जुलकर रह सको। इसी में विद्या का वैशिष्ट्य पता चलेगा।

दुर्बल व्यक्ति संसार में हैं, तभी तो तुम बलवान् कहलाते हो ! यदि तुम्हारे जैसे सभी बलवान् हो जायँ तो तुम्हें कौन पूछेगा ? इसी प्रकार निर्धन व्यक्तियों के होने पर ही लोग तुम्हें धनी मानते हैं। यदि सभी लखपति-करोड़पति हों तो कौन किसको धनी मानेगा ? धनी का नाम ही लुप्त हो जायेगा।

अतः विद्वान् हो तो मूर्खों का, बलवान् हो तो निर्बलों का, धनवान् हो तो निर्धनों का समादर करो। उनके दोषों, दुर्बलताओं के प्रति ध्यान न दो, उन्हें क्षमा कर दो, उनसे मिलकर चलो। इससे तुम्हारी मर्यादा बहुगुणित हो जायेगी। गांधी, रमण महर्षि, रामकृष्ण देव आदि महात्माओं का जीवन इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

अन्धकार के होने से ही लोग प्रकाश को चाहते हैं, उसका आदर करते हैं; अन्धकार न होने पर प्रकाश को कौन पूछे ? इसी प्रकार इन्हीं नगण्यों के रहने पर ही तुम्हारा अस्तित्व टिका हुआ है, ऐसा सोच-समझकर क्षमाशील बनो !

दूसरी बात यह सोच लो कि जैसे धान में भूसा होता है, इसी प्रकार ये दुर्बल, निर्धन, मूर्ख व्यक्ति यदि भूसा हैं, तभी तुम उनमें चावल हो। यदि चावलों से भूसा को पृथक् कर दिया जाय और बढ़िया जमीन को अच्छी तरह जोतकर, उत्कृष्ट खाद डालकर, उन्हीं चावलों को बोया जाय तो एक भी अंकुरित नहीं होगा। सब चावल मिट्टी में मिल जायेंगे। किन्तु वही चावल भूसा के साथ हों तो अंकुर निकलकर शतगुणित फल प्रदान करने लग जायेंगे, लगातार वृद्धि को प्राप्त होते चले जायेंगे। अतः भूसा को व्यर्थ की वस्तु मत समझो, क्योंकि उसमें भी शक्ति विद्यमान है। हाँ, केवल भूसा भी किसी काम का नहीं। मिलकर रहने से ही उसकी शक्ति काम आती है, अतः परस्पर मिलकर चलो। इसी प्रकार—

'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।'—गीता

'परस्पर मिलकर परमश्रेय को; उन्नति को प्राप्त करो।'

एकता में ही बल है, विघटन में नहीं। सभी प्रकार के विघटन, अनेकता का मूल कारण है अहंमन्यता, अभिमान, अहंकार, गर्व। इस गर्व, अहंकार को त्यागने का एकमात्र उपाय है 'क्षमा'। क्षमाशील व्यक्ति निरहंकारी, निरभिमानी बन-कर अपना तथा समाज का महाकल्याण साधित करता है। मनुष्य यदि इस तथ्य को समझ जाय तो उसका महाकल्याण हो जाय।

इस बात को लोग समझते नहीं, ऐसी बात नहीं। हाँ, जागकर भी सोनेवालों

का इलाज क्या ? आज समाज में जो हिंसा, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि फैलकर परस्पर वमनस्य, लड़ाई, झगड़ा, मुकद्दमा आदि के द्वारा अर्थनाश और प्राणनाश होकर संसार की जो महाहानि हो रही है, इसके मूल में धर्म के इन तत्त्वों को न पहचानना ही कारण है। यदि मनुष्य धर्म के इन धृतिः, क्षमा आदि तत्त्वों का अनुसन्धान करे और इन्हें अपने जीवन में धारण करे, तब उसका तन, मन, धन, समय और शक्ति का वृथा अपचय न होकर लोकहितकर कार्य में लग जाय तथा सारे संसार का महाकल्याण साधित हो जाय।

परन्तु, हा हन्त ! ऐसा देखने को मिलता नहीं। जब विद्वान् होकर भी मद, अभिमानग्रस्त होके मनुष्य आज अपनी ही हानि में पुरुषार्थ समझता है तो दूसरे सामान्य जनों की क्या कथा ?

वेदशास्त्रों तथा पुराणादि में भी इस गर्व, अभिमान को दूर करने के लिए उपदेश भरे पड़े हैं। काश, मनुष्य उनसे कुछ सीख पाता ! निम्न में एक पुराण-प्रोक्त दृष्टान्त उद्धृत करते हैं—

कहते हैं—एक बार देवर्षि नारद के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि 'इस संसार में सबसे महान् कौन ?' वे सीधे वैकुण्ठ धाम पहुँचे। भगवान् विष्णु के दरबार में पहुँचकर औपचारिक सत्कार के अनन्तर जब नारद जी ने अपना प्रश्न व्यक्त कर दिया तब भगवान् विष्णु ने उत्तर में कहा—

पृथ्वी तावदतीव विस्तृतमती तद्वेष्टनं वारिधिः
पीतोऽसौ कलशोद्भवेन मुनिना स व्योम्नि खद्योतवत्।
तद् व्याप्तं दनुजाधिपस्य जयिना पादेन चैकेन खम्
तं त्वं चेतसि धारयस्यविरतं त्वत्तोऽस्ति नाऽन्यो महान्॥

अर्थात् 'सबसे बड़ी तो यह पृथिवी नजर आ रही है, पर वह तो समुद्र से घिरी हुई है। रही बात समुद्र की, सो उसे तो अगस्त्य मुनि ने चुल्लू भरकर पी लिया था। किन्तु अगस्त्य भी तो इस अनन्त आकाश में खद्योत (जुगनू) तुल्य चमक रहे हैं ! तब क्या आकाश बड़ा है ? प्रसिद्ध है कि भगवान् विष्णु ने वामनावतार में एक पग में ही इस आकाश को नाप लिया था। इसीलिए इसका एक नाम विष्णु-पद भी है। इससे पता चला कि सबसे बड़े विष्णु हुए। परन्तु वे भी बड़े नहीं, क्योंकि वे तुम्हारे अंगुष्ठ-तुल्य हृदय में सदा अवरुद्ध हैं। इसलिए भय्या नारद जी! तुमसे बड़ा कौन हो सकता है ?'

नारद जी बड़े लज्जित हुए। वे समझ गये कि सबसे महान् भगवान् विष्णु ही अपने को छोटा बताते हैं तो और दूसरों की बात ही क्या ? सचमुच वह महान् है जो अपने को छोटा समझे।

यहाँ कोई प्रश्न कर बैठे कि क्या भगवान् के रहने के लिए कोई वैकुण्ठपुर नामक स्थानविशेष भी है ? यद्यपि यहाँ प्रसंग अलग ही है, फिर भी आगे ऐसे ही

स्थलों पर संगति लगा लेने की दृष्टि से हम थोड़ा स्पष्टीकरण कर देना समुचित समझते हैं, क्योंकि आज विज्ञान-युग का बोलवाला होने से लोग थोड़ी-सी भी असंगत प्रतीत होनेवाली बात पर विज्ञानविरुद्ध कहकर चिल्लाने लग जाते हैं। हम भी कहते हैं विज्ञानविरुद्ध, सृष्टिविरुद्ध बातें मत स्वीकार करो, अपितु युक्ति-युक्त, तर्कसंगत बात को मानो ! आइये हम युक्तिसंगत इस बात का स्पष्टीकरण कर देते हैं—

वि+कुण्ठा, विगत कुण्ठा यस्य स **विकुण्ठः**, अपत्यार्थ में **वैकुण्ठः**। जिसको कोई कुण्ठा, लज्जा, भय ही नहीं, जो विगतभय हो चुका है, उसके हृदय में प्रभु का निवास होता है। वैसे तो **"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"** गीता के इस वचनानुसार ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में विराजमान है, पर निर्भय हृदयवाला उस प्रभु का दर्शन अपने ही हृदय में कर सकता है। कौन लज्जा-भय से विरहित हो सकता है ?—जो निष्पाप है। पापी व्यक्ति को तो सर्वदा कुण्ठा, अर्थात् लज्जा और भय लगा रहता है। जो धर्माचरण में तत्पर है, ऐसे व्यक्ति के हृदय को वैकुण्ठ कहते हैं। इसी प्रकार सभी पौराणिक गाथाओं की संगति **विपश्चिज्जन** लगा लेने के लिए विनम्र प्रार्थना है। अस्तु !

अब कुछ क्षमाशील सन्त महापुरुषों की जीवन की घटना निम्न में उद्धृत की जा रही है, ताकि हम उससे क्षमाशीलता का पाठ सीख सकें।

एक सन्त थे। एक दिन भक्तों के साथ वे जा रहे थे। रास्ते में एक व्यक्ति ने ईर्ष्या में भरकर उनके ऊपर कोयले और राख की टोकरी उँडेल दी। सन्त के सभी भक्तजन क्रोध से तिलमिला उठे। परन्तु सन्त ने ऊपर सिर उठाकर उस व्यक्ति से कहा—'इस उपकार के लिए आपको धन्यवाद।' भक्तों ने पूछा—'धन्यवाद ? यह कौन-सा उपकार हुआ ?' सन्त बड़े ही शान्तभाव से बोले—'एक तो सर्व-प्रथम उस दयालु प्रभु को मैं किस भाषा में धन्यवाद दूं ! और ये सज्जन भी इस-लिए धन्यवाद के पात्र हैं कि पता नहीं किस पूर्वकृत पाप के फलस्वरूप मेरे ऊपर जलते हुए अंगारों की वृष्ठि होनेवाली थी, जबकि इन महाशय ने तो ठण्डे कोयले और ठंडी राख डालकर ही मुझे निर्भय बना दिया है। इसके लिए मैं इनका कृतज्ञ हूँ।"

सन्तों की कैसी अद्भुत क्षमा होती है ! इस बात को सुनकर वह कोयले फेंकने-वाला बड़ा लज्जित हुआ और पश्चात्ताप करता हुआ नीचे आकर सन्त के चरणों में आ गिरा। सन्त की थोड़ी-सी सहनशीलता ने उसके क्रूर हृदय का परिवर्तन कर दिया !

दूसरी एक गृहस्थ सन्त की बात है। बड़े धनी थे। उनका एक नौकर उनसे झगड़कर भाग गया था। एक दिन जब सन्त के यहाँ भजन में सभी भक्तवृन्द तल्लीन थे, तभी वह नौकर आकर सन्त के ऊपर तलवार का एक भरपूर वार

करके भाग खड़ा हुआ। कुछ भक्त लोग सन्त को सँभालने लगे और कुछ हत्यारे को पकड़ने भागे। घाव में से अधिक रक्तस्राव होने के कारण सन्त को बड़ी प्यास लगी थी। अतः उनके लिए शर्बत लाया गया। इधर हत्यारे को भी लोग पकड़ लाये। सन्त ने कहा—'पहले शर्बत इसे पिला दो, क्योंकि यह भागते-भागते हाँफ रहा है। अवश्य ही इ से प्यास लगी होगी।'

कैसी पवित्र क्षमा-भावना है ! इसी से वह नौकर भी सदा के लिए सन्त का अनुयायी बन गया।

महात्मा जन जानते हैं कि यह नश्वर शरीर एक दिन नाश होनेवाला ही है, अतः इस क्षणभंगुर शरीर की परवाह न करके वे शाश्वत, अक्षय यश, इसी के द्वारा कमा लेते हैं। इसीलिए वे क्षमा आदि धार्मिक सद्गुणों से सम्पन्न होकर सभी के पूज्य बन जाते हैं।

चीन के बादशाह के मन्त्री शाहचांग बहुत थके हुए थे। उस दिन सवेरे ही बादशाह के सम्मुख एक रिपोर्ट पेश करनी थी। आधी रात तक वे अपने सहायक से रिपोर्ट लिखवाते रहे। रिपोर्ट पूरी करके वे उठे और शयनकक्ष की ओर जाने लगे। सहायक भी उठा, किन्तु उसकी असावधानी से लैंप को धक्का लगा और गिर पड़ा। सब कागजात तेल में भीग गये और आग लगकर क्षणभर में भस्म हो गये। सहायक का मुँह ही सूख गया। काटो तो खून नहीं !

मन्त्री महोदय लौट पड़े। सहायक पर अपार क्रोध आना स्वाभाविक था। किन्तु, उन्हें तनिक भी गुस्सा नहीं आया, क्योंकि उनका हृदय दया-क्षमा से भरपूर था। बड़े प्रेम से बोले—'यह तो संयोग की बात है। इसमें तुम्हारा क्या अपराध है ? कभी-कभी ऐसा हो ही जाता है। बैठो, हम दोनों फिर से रिपोर्ट तैयार कर लेंगे।'

इस प्रकार के महान् पुरुषों का हृदय बड़ा ही क्षमाशील होता है। साधारण मनुष्य होता तो ऐसी परिस्थिति में आगबबूला हो जाता और काम भी कुछ न बनता। सभी प्रकार से हानि उठाकर अन्त में पछतावा के सिवाय और कुछ नहीं मिलता। क्या आधुनिक तथाकथित बड़े कहलानेवाले बाबू लोग कुछ सीखेंगे ?

आप जानते हैं कि पद-मद से लोग अत्यधिक अहंकारी बन जाते हैं। कोई विरला ही महामानव होता है जो अपने स्वरूप को पहचाननेवाला होता है और कभी भी अभिमानग्रस्त नहीं होता। ऐसे ही सर वाल्टर रेले थे। वे इंगलैण्ड की महारानी एलिजबेथ के आदर-भाजन तथा प्रख्यात शूरवीर थे। एक दिन एक घमंडी युवक ने उन्हें द्वन्द्व युद्ध की चुनौती दी। उस समय यूरोप में द्वन्द्व युद्ध की चुनौती को अस्वीकार करना अत्यन्त कायरता का चिह्न माना जाता था। सर वाल्टर रेले तलवार चलाने में अत्यन्त निपुण थे, फिर भी उन्होंने चुनौती को अस्वीकार कर दिया। इससे उस घमंडी असभ्य युवक ने उनके मुँह पर थूक

दिया। तब भी वह बिना किसी उत्तेज़ना से बोले—'मेरे मुंह पर पड़े थूक को जितनी सरलता से मैं रूमाल से पोंछ सकता हूँ, यदि उतनी सरलता से मानव-हत्या का पाप भी पोंछा जा सकता, तो मैं तुरन्त ही तुम्हारे साथ भिड़ जाता।' यह सुनके युवक लज्जित होकर चल पड़ा। सच ही कहा है—**'क्षमा वीरस्य भूषणम्।'**

महाभारत में क्षमा का अति उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत है। कपटपाशा में हार-कर अपने चारों भाइयों तथा द्रौपदी के साथ धर्मराज युधिष्ठिर काम्यक वन में निवास करते थे। कुटिलमति दुर्योधन को घोषयात्रा के बहाने अपनी धन-सम्पत्ति दिखाकर पाण्डवों को नीचा दिखाने की सूझी। वह चतुरंगिणी सेना के साथ चल पड़ा। रास्ते में गन्धर्वों का एक सरोवर पड़ा। उसमें जबर्दस्ती घुसने पर दुर्योधन और गन्धर्वराज चित्रसेन में युद्ध छिड़ गया। चित्रसेन अर्जुन के मित्र थे। उन्होंने देखा कि दुष्ट दुर्योधन दुःखी पाण्डवों को अपना वैभव दिखाकर त्रास देने के लिए आया है, इसे अच्छी शिक्षा देनी चाहिए। यह सोचकर सारी सेना तहस-नहस कर डाली और दुर्योधन को बाँधकर विमान में बिठाके मारने के लिए चल पड़े। दुर्योधन प्राणभय से चीत्कार करने लगा—"रक्षा करो! त्राहि माम्! त्राहि माम्!"

ये शब्द महाराज युधिष्ठिर के कानों में भी पड़े। वह तुरन्त भाइयों से बोले—'जाओ, दुर्योधन को मुक्त करो!'

भीम बड़े रोष में आकर बोले—'अब भी आपकी यह व्यर्थ की धार्मिकता नहीं छूटी? मुझे दुर्योधन ने विष के लड्डू खिलाकर मारने की कुचाल चली, वारणावत में हम सबको लाक्षागृह में जलाने का प्रबन्ध किया, कपटपाशा में हमारा सर्वस्व अपहरण किया, अब भी हम जंगल में मारे-मारे भटक रहे हैं, और सबसे बड़ी बेइज्जती की बात कि द्रौपदी को भरी सभा में निर्वस्त्र करने का प्रयत्न किया, फिर भी आप नहीं चेतते? वह अब अपने किये का फल भोग रहा है तो भोगने दो। हमें तो अपने वैभव के प्रदर्शन से तड़पाने ही आया था न! बीच में आ पड़ा गन्धर्वराज जो उसे बाँधकर ले-जा रहा है। हम क्यों बीच में पड़ें?'

परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर तो क्षमा के अवतार ही थे। वे कैसी युक्ति देकर भीम को समझाते हैं, जिससे भीम की कही हुई सारी बातें मिथ्या हो जाती हैं और वही भाई उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। महाराज कहते हैं—'नहीं भय्या! ऐसा मत कहो—

परस्परं विवादे तु, वयं पंच, शतं च ते,
अन्यैः सह विवादे च, वयं पंचशतोत्तरम्।'

धर्मराज युधिष्ठिर समझाते हैं—'सुनो भाइयो! यदि हम भाई-भाई आपस में लड़ें तो कौरव सौ और हम पाण्डव पाँच हैं। किन्तु यदि दूसरा कोई लड़े तो

कौरव-पाण्डव मिलकर एक सौ पाँच हैं, यह कभी नहीं भूलना चाहिये।' यह कहकर उन्होंने अर्जुन को भेजके दुर्योधन को मुक्त कराया।

महापुरुषों से क्षमाशीलता सीखनी चाहिये। क्षमा से एकता की वृद्धि होती है और एकता से शक्ति। हमें दुर्योधन का नहीं, बल्कि युधिष्ठिर का अनुसरण करना चाहिये!

यदि धर्मराज युधिष्ठिर की इस एकता-भाव से परिपूर्ण शिक्षा को आज भारतवासी ग्रहण कर लें तो सभी प्रकार के आपसी विवाद और झगड़े तुरन्त समाप्त हो जायँ। हम हैं कि नित्य 'महाभारत' का पाठ करते हुए भी उस नीति का अनुसरण नहीं करते। प्रभु से प्रार्थना है कि वे भारतीय जनों को सुमति प्रदान करें ताकि इस देश में प्राचीन युग-सदृश दया-क्षमा आदि दिव्यगुण सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगें और यह धरा स्वर्ग बन जाय!

लोग कहते हैं—दोषी को दण्ड क्यों न दिया जाय? अवश्य दिया जाय; किन्तु तभी जब कोई दुष्ट सारे समाज को कष्ट पहुँचा रहा हो; तब राजपुरुष उसे पकड़कर अवश्य ही उचित दण्ड विधान करें। किन्तु महर्षि मनु ने जीवन को धार्मिक बनाने तथा शान्तिपूर्वक जीवन यापन करने के लिए धर्म के कुछ नियमों का भी तो विधान किया है! बाहरी दुष्ट शत्रुओं से रक्षार्थ राज्यव्यवस्था-नियम पृथक् है और यह है—सुख-शान्ति प्राप्त करने का व्यावहारिक धर्म। हाँ, अपने प्रति, अपने ही व्यक्ति, अपने ही देशवासी भाई के छोटे-से त्रुटियुक्त व्यवहार से हम जो असहनशील हो उठते हैं और उसे दण्ड देने को उतावले हो जाते हैं, वह शोभनीय नहीं, धर्मयुक्त व्यवहार नहीं। इससे परस्पर वैमनस्य की वृद्धि होती है और सामाजिक सुख-शान्ति भंग हो जाती है। ऐसे स्थान पर हमें सोचना चाहिये कि इस व्यक्ति की जैसी त्रुटि आज हम देख रहे हैं, वैसी कभी हमसे भी हो सकती है। हम कौन-से दूध के धुले हुए हैं? भला वह कौन-सा मनुष्य है जिसने हाड-चाम का पुतला बनकर भी जीवन में कोई भी दोष, कोई भी त्रुटि नहीं की? इसीलिये तो चाणक्य महाराज को लिखना पड़ा कि—"कस्य कुले दोषो नास्ति?" अर्थात् किसके कुल में दोष नहीं? अर्थात् छोटा हो या बड़ा, सभी में कोई-न-कोई त्रुटि तो होती ही है।

ईसाई धर्म के प्रचारक महात्मा ईसा मसीह के पास कुछ लोग एक स्त्री को पकड़कर ले आये। वह भय से थरथर काँप रही थी। मन-ही-मन सोच रही थी कि अब प्रभु ईसा मसीह मुझे छुड़ा देंगे। किन्तु यह क्या? जब लोगों ने बताया कि 'यह व्यभिचारिणी स्त्री बड़ी पापिन है। जाने कितने ही जवान लोगों को इसने भ्रष्ट किया है। इसे पत्थर मारकर मार डालना चाहिये।' तब ईसा ने कहा—'बेशक! इसे प्राणदण्ड ही मिलना चाहिए!' तब तो वह वेश्या काँप उठी। अब लोगों की भीड़ ने पत्थर उठा लिये। तभी ईसा ने फिर कहा—'खबरदार

मित्रो ! इसे वही व्यक्ति पहले पत्थर मारे जो स्वयं निष्पाप हो, जिसने अपने जीवन में कोई भी पाप न किया हो।' उत्तेजित भीड़ शान्त हो गयी। ईसा ने पुनः अपनी बात जारी रक्खी—'मारो मित्रो ! देख क्या रहे हो ? इस पापिन स्त्री की हत्या कर दो ! जो तुममें निष्पाप हो, वही पत्थर से इसका प्राणान्त कर दे।' भीड़ धीरे-धीरे छँटने लगी। अन्त में रह गए केवल ईसा और वह स्त्री। ईसा ने आगे बढ़कर उसके बन्धन खोल दिये और बोले—'माता ! तुम अब स्वतन्त्र हो। जहाँ चाहो वहीं जा सकती हो।' स्त्री ने रोते-रोते ईसा के पैर पकड़कर क्षमायाचना की। उसके सारे पाप उसी के आँसुओं से धुल चुके थे। महात्मा ईसा ने बड़े प्रेम से कहा—'प्रभु सबका पिता है। बच्चों का ऐसा कोई अपराध नहीं हो सकता, जिसे उस परमपिता से क्षमा माँगने से वह क्षमा न कर दे। तुम उसी से क्षमा माँगो !' उस स्त्री का जीवन ही बदल गया। उसने तब से भद्र जीवन को अपना लिया।

उपर्युक्त घटना से दो बातों की शिक्षा मिलती है। एक तो यह कि क्षमा के द्वारा दोषी व्यक्ति के जीवन में भी परिवर्तन लाया जा सकता है, और दूसरी—सभी मनुष्यों में कुछ-न-कुछ दोष होता ही है, अतः प्रथम अपने ही दोष का सुधार करना वांछनीय है।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय,
जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय।

अपने ही दिल में झाँककर देखें—कितनी बुराई इसमें भरी हुई है ! उसी की झाड़ू-बुहारी करें, अन्यों की नहीं। पहले अपने घर तो साफ रक्खें ! इस मानव-तन रूपी प्रभु के दिव्य मन्दिर को रोज ही साफ रखने के लिए प्रयत्नशील बनें। इसीलिये तो किसी ने कहा है—

प्रेमी भरकर प्रेम में ईश्वर के गुण गाया कर,
मन-मन्दिर में गाफिला, झाड़ू रोज लगाया कर।

इस मन-मन्दिर के अन्दर काम, क्रोध, मद और अहंकाररूपी न जाने कब से और कितनी धूल जमी हुई है, इसे धोना चाहिए। तभी हम मानव कहलाने के लायक होंगे।

किन्तु, यहाँ तो उलटी रीत चल पड़ी है। हमारे प्राचीन नीतिकार ने मार्ग बताया—'मुझसे बुरा न कोय', अब नई पीढ़ी ने नूतन श्लोक की भी रचना कर डाली है—

भला जो देखन मैं चला, भला न दीखा कोय,
जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा भला न कोय।

इस विचित्र अंधेरखाते का क्या इलाज है ? शायद इस लेख को पठन-मनन करके किसी का भला हो जाय, केवल इसी दृष्टि से हम निवेदन-मात्र कर रहे हैं, शेष तो प्रभु ही बचाये !

याद रखिये—

जरा रूपं हरति धैर्यमाशा, मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया,
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा, ह्नियं कामः सर्वमेवाभिमानः ।

—विदुरनीति

महाभारत के विदुर-प्रजागर में यह नीति-श्लोक आता है । भावार्थ है—जरा (बुढ़ापा) रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, असूया धर्माचरण को, क्रोध श्री को, अनार्य-सेवा शील को और काम लज्जा का नाश कर देता है, किन्तु अभिमान इन सबको, अर्थात् सर्वनाश कर देता है ।

क्या आपने पढ़ा, सुना या गुना नहीं कि—

अति दर्पे हता लंका, अति माने च कौरवाः ।

अर्थात् 'अत्यन्त दर्प-गर्व के कारण सोने की लंका नष्ट-भ्रष्ट हो गयी और अति-अभिमान से महाबलवान् कौरवों का नाश हो गया ।' इसीलिए सावधान हो जाओ ! उपनिषद् में आता है--

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराःपण्डितमन्यमानाः !

अर्थात्—'अपने को धीर पंडित समझनेवाला अविद्या-अधर्म में लिप्त होकर अन्धकार के गड्ढे में गिरता है ।

शेफोक्लीज़ नामक एक विदेशी विद्वान् ने क्या ही अच्छा लिखा है—

"If any man thinks that he alone is wise, that in speech or in mind, he hath no peer such a soul, when laid open is ever found empty."

अर्थात्—'एक व्यक्ति यह समझता है कि वह अकेला ही बुद्धिमान् है, व्याख्यान देने अथवा बुद्धि में उससे बढ़-चढ़कर कोई नहीं है, ऐसे व्यक्ति का जब वास्तविक रूप सामने आता है तो वह पूर्ण रूप से खोखला मालूम पड़ता है ।' अतः संपूर्ण रूप से अहंमन्यता को त्याग दो ! अहंकार-अभिमानशून्य जीवन मधुमय बन जाता है । अन्यथा—

लेने को हरिनाम है, देने को कुछ दान,
तारन को है नम्रता, डूबन को अभिमान ।

संतों ने हमें बारम्बार यही चेतावनी दी है । अतः अभिमान त्यागकर नम्रता को धारण करो !

अपने गाँव के वृद्धों से सुनी हुई बचपन की एक कहानी आपको सुनाता हूँ—

एक सायंकाल एक चूहे ने अपने बिल से बाहर निकलकर देखा कि—घनघटा की छाया एक कोने से निकलकर समग्र आकाश में फैल गयी है। क्षणभर में मेघ से सारा संसार आच्छादित हो गया है। चारों तरफ अँधेरा छा गया है। चूहे ने सोचा—इतने बड़े संसार को, आकाश को क्षणभर में ढक देनेवाला इस मेघ से बढ़कर और कौन हो सकता है ? यह मेघ ही सबसे शक्तिशाली है। ऐसा सोचकर वह बादल से जाकर बोला—'हे मेघराज ! संसार में आपसे बढ़कर पराक्रमशाली और कौन हो सकता है ? एक ही क्षण में आप तो सारे संसार को ढाँप लेते हैं !' मेघ हँसने लगा और बोला—'भय्या ! तू बड़ा भोला प्रतीत होता है। मुझसे भी बड़े विद्यमान हैं।' चूहे ने पूछा—'कौन है ?' मेघ बोला—'अभी हवा का एक झोंका आ जाय तो पता नहीं मुझे आकाश के किस कोने में ले-जाके पटक देगा !' चूहे ने सोचा—तब तो पवन देवता ही सबसे बड़े ठहरे ! उनके पास जाकर बोला—'हे वायुदेवता ! आप संसार में सबसे बड़े हैं।' वायुदेव चौंककर बोले—'सो कैसे ?' चूहे ने बताया—'वह ऐसे कि समग्र संसार को क्षणभर में ढाँप देनेवाले इस मेघ को भी आप उड़ा ले-जाते हैं। भला आपसे बढ़कर और कौन शक्तिशाली हो सकता है ?' वायुदेवता हँसकर बोले—'यह सच है कि केवल मेघ की तो बात ही क्या, जब मैं उनचास पवनों के संग प्रभञ्जन बनके निकलता हूँ तो घर-बार, पेड़-पौधे, सबको उड़ा ले-जाता हूँ। पर, एक चीज को मैं भी नहीं उड़ा सकता; वहीं हार जाता हूँ।' चूहे ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—'वह क्या ?' पवनदेव बोले—'वह है बल्मीक, बांबी, दीमक का घर !' चूहा बुदबुदाया—तब तो बांबी ही बड़ी हुई !

तब चूहे ने बांबी के पास पहुँचकर कहा—'हे बल्मीक ! आपसे बढ़कर कोई नहीं, क्योंकि परम शक्तिशाली पवनदेव भी आपको उड़ा नहीं सकते जो सारे संसार को उड़ा लेते हैं।' बांबी हँसकर बोला—'भाई, ऐसा समझना तुम्हारी भूल है। अभी कोई सांड आ जाय तो क्षणभर में अपने सींगों से मुझे उखाड़कर मिट्टी में मिला देगा।' तब चूहा साँड के पास पहुँचकर हाथ जोड़कर बोला—'हे वृषभ देवता ! आप महान् हैं, आपसे बड़ा कोई नहीं।' सांड की समझ में न आया कि मामला क्या है ? तब चूहे ने आद्योपान्त सारा किस्सा सुनाकर कहा—'इसीलिए कहता हूँ कि आप सबसे बड़े हैं।' वृषभराज तब हँसकर बोले—'भाई, मैं भी बड़ा नहीं हूँ। अभी कोई एक छोटी-सी दो हाथ की रस्सी लाकर बाँध दे तो मैं उसी में बँध जाता हूँ, टस से मस नहीं हो सकता।' चूहे ने सोचा—तब तो सबसे शक्तिशाली रस्सी ही निकली ! उसके पास जाकर सारी कथा सुनाके कहा कि—'हे रज्जु ! आपसे बड़ा कौन हो सकता है ?' रस्सी ने भी तत्काल हँसकर उत्तर दिया—'अभी कोई चूहा आ जाय तो मुझे अपने नुकीले दाँतों से टुकड़े-टुकड़े कर देगा। मैं कैसे बड़ा ठहरा ?'

चूहे ने अपने बारे में कभी कुछ सोचा ही नहीं था। रस्सी की बात सुनकर

तो वह फूला न समाया। वह गर्व से सोचने लगा—अरे, मैं तो यूँ ही भटक रहा था! भला मुझसे बड़ा और कौन होगा? ऐसा सोचके अपनी पिछली दोनों टाँगों पर खड़ा होकर अगले पैर से मूंछ मरोड़ने लगा तो सहसा एक बिल्ली ने आकर उसे झपट लिया। चूहे के कब प्राण निकल गए उसे पता भी न चला। इसीलिये उड़िया भाषा में एक बड़ी ही सुन्दर कहावत है कि—"जे कहे मुईं, से पड़े भुईं', अर्थात्—"जो 'मैं' का घमंड करता है वही भूमि पर आ गिरता है" अर्थात् उसका पतन हो जाता है।

किसी कवि-हृदय ने किसी दिन उमड़ते-घुमड़ते बादल की गर्जन के दौरान पिछली टाँगों पर खड़े चूहे को बिल्ली द्वारा झपटने का दृश्य अवलोकन करके ही शायद यह कहानी घड़ ली हो, ऐसा प्रतीत होता है। खैर, जो कुछ भी हो, ऐसे किस्से-कहानियाँ सच हों, या न हों, मनुष्य-जीवन के लिए बड़ी शिक्षाप्रद हैं। तभी तो लोग कहते हैं कि संसार में एक से एक बढ़कर मौजूद है, अतः मनुष्य कभी गर्व न करे, अभिमान या अहंकार में डूबने से बचे, अन्यथा उसका पतन अवश्यम्भावी है।

महान् पुरुष कितने क्षमाशील होते हैं! महर्षि दयानन्द जी महाराज की जीवनी क्षमा-करुणा आदि से भरी पड़ी है। जब पूना में चीफ जस्टिस महात्मा महादेव राणाडे आदि भक्त लोगों ने महर्षि की सवारी निकाली तो मूर्ख विरोधियों ने दूसरी गली में एक आदमी को गधे की पीठ पर बिठाके, एक गाल में कालिख और दूसरे गाल में चूना लगाकर "गधानन्द की जय" करते हुए सवारी घुमायी। यह अपमानजनक खबर किसी भक्त ने महर्षि को सुनायी तो वे मुस्करा पड़े; बोले—'नकली दयानन्द की तो यही दशा होनी ही चाहिए। असली तो मैं यहाँ सही-सलामत बैठा हूँ।'

किसी अज्ञानी साधु ने उन्हें गाली दी तो उसके पास मिठाई और फलों का टोकरा भिजवाया। कहीं अबोध लोगों ने ढेला-पत्थर मारा तो बोले—'आज जहाँ ढेले बरस रहे हैं, कल वहाँ फूल बरसेंगे।' अन्त में तो अपने जहर देनेवाले को भी प्राण बचाने के लिए उन्होंने रुपयों की थैली देकर भाग जाने का अवसर प्रदान करते हुए क्षमा का अद्भुत व अत्युत्कृष्ट उदाहरण उपस्थापित कर दिया। महामानवों के जीवन इसी प्रकार क्षमा-करुणा आदि से पूर्ण होते हैं। अतः हमें भी चाहिए कि घृणा, अविश्वास और अभिमान को त्यागकर क्षमा और प्रेम आदि को धारण करें। इसी से महाकल्याण साधित होगा। एक पाश्चात्य विचारक यंग ने लिखा है—

"We rise in glory as we sink in pride."

अर्थात्—'अच्छे कर्मों से प्राप्त यश के द्वारा हम उन्नत होते हैं और अभिमान के कारण पतन के गर्त में गिरते चले जाते हैं।'

पोप (Pope) लिखते हैं—"To err is human, to forgive divine." अर्थात्—'गलती करना मानवीय है और क्षमा करना देवत्व।'

कबिरा गर्व न कीजिए, कबहुँ न हँसिए कोय।
अबहूँ नाव समुद्र में, का जाने का होय॥
धन अरु यौवन का गरब, कबहूँ करिए नाँहि।
देखत ही मिट जात है, ज्यूँ बादर की छाँहि॥
कबिरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस।
ना जाने कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस॥

सचमुच कवीरदास जी के इन दोहों का मर्म समझनेवाला अभिमानी कैसे बन सकता है?

अंग्रेजी भाषा की एक चेतावनी है—

"The proud of learning is the greatest ignorance." (Taylor) अर्थात्—'ज्ञान का गर्व करना परले सिरे की मूर्खता है।'

अतः पहले गर्व—अभिमान छुट जाय तो मनुष्य में क्षमा आदि स्वाभाविक सद्गुण स्वतः आ जाते हैं।

अन्त में एक प्रश्न खड़ा हो जाता है कि क्षमावान् को तो लोग कायर कहते हैं, फिर क्षमाशील होने में क्या धरा है? इसके बारे में 'महाभारत' में भी एक प्रसंग आता है—

एक क्षमावतां दोषो, द्वितीयो नोपपद्यते,
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः।

क्षमाशीलों में बस एक ही दोष है कि लोग उनके इस गुण को न पहचानने के कारण उन्हें शक्तिहीन (दुर्बल) समझने लग जाते हैं।

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः, क्षमा हि परमं बलम्,
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां, शक्तानां भूषणं क्षमा।

ऐसा कहनेवालों का क्या दोष जो यही नहीं समझते कि क्षमा ही परमबल है! क्षमा तो दुर्बलों को भी सबलता का गुण प्रदान करती है और बलवानों का भूषण भी क्षमा है।

महात्मा गांधी जी ने अच्छा ही कहा है—

"Forgiveness adorns a soldier" अर्थात्—'क्षमा क्षत्रिय को सुभूषित करती है।' कवीरदास ने भी कहा है—

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥

और भी कहा है—

क्षमा शस्त्रं करे यस्य, किं करिष्यति दुर्जनः ?
अतृणे पतितो वह्निः, स्वयमेवोपशाम्यति ।।

अर्थात्—'जिसके हाथ में क्षमारूपी शस्त्र है, उसका दुर्जन पुरुष क्या बिगाड़ सकता है ? जहाँ घासफूस ही नहीं आग स्वयं ही बुझ जाती है।'

अन्त में एक विशेष बात ध्यान देने योग्य यह है कि संसार में गुण-अवगुण, भला-बुरा, विष-अमृत मिला हुआ हैं। बुद्धिमान् मनुष्य वही है जो विष को छोड़कर अमृत को, बुराई को छोड़कर भलाई को, अवगुण को छोड़कर गुण को ग्रहण करे। मनुष्य कितना बड़ा भी क्यों न हो, उसमें कुछ-न-कुछ अवगुण या त्रुटि अवश्य होगीं। इसी प्रकार कितना ही बड़ा दुष्ट क्यों न हो, उसमें कुछ-न-कुछ गुण अवश्य होगा। नहीं तो रत्नाकर जैसा भयंकर डाकू वाल्मीकि ऋषि कैसे बन सकता ? अतः मनुष्य को चाहिए कि सभी से गुण ग्रहण करने की नीति को अपनाये। किसी नीतिकार ने कितना सुन्दर लिखा है—

भ्रमरा मधुमिच्छन्ति, व्रणमिच्छन्ति मक्षिकाः,
उत्तमा गुणमिच्छन्ति, दोषमिच्छन्ति दुर्जनाः।

अर्थात्—'संसार में दो प्रकार की मक्षिका (मक्खियाँ) होती हैं। एक मधुमक्षिका और दूसरी भिनभिनानेवाली। मधुमक्षिका चाहे विषवृक्ष भी क्यों न हो, उसके फूलों में जाकर बैठती है तो उनमें से केवल मधु को, अमृत को संचय करती है। किन्तु मैले में बैठनेवाली मक्खी के समक्ष चाहे कितना भी सुन्दर पुरुष क्यों न खड़ा हो, वह उसके सुन्दर शरीर में कहीं सौन्दर्य न ढूँढकर वहीं बैठेगी जहाँ व्रण (घाव) होगा। तो व्रण में उसे क्या मिलेगा ? खून मिलेगा, पीप मिलेगी; गंदगी ही उसे प्रिय है। संसार में मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं। सज्जन पुरुष मधुमक्षिका की तरह होते हैं, वे सभी से गुण ग्रहण कर लेते हैं। दूसरे प्रकार के दुर्जन पुरुष हैं जो दूसरों के गुणों को न देखकर उनके अवगुणों की ही निन्दा में लगे रहते हैं, इसलिए स्वयं भी अवगुणी बन जाते हैं।'

महान् पाश्चात्य विचारक इमर्सन की यह चेतावनी याद कीजिए—"Pride ruined the angels" अर्थात् 'अभिमान ने देवताओं को भी बर्बाद कर दिया।'

अतः आइये, हम प्रभु-कृपा से दंभ, अभिमान, दर्प, अहंकाररूपी जहर को छोड़कर दया, करुणा और क्षमा के अमृत-घूंट पीने का प्रयत्न करें। जो एक बार भी इसका पान कर लेता है वह कृतकृत्य हो जाता है। लोग उसे साधु-सज्जन कहते हैं, संत-महापुरुष कहते हैं। महापुरुष बनने के लिए इससे बढ़िया नुस्खा और कहाँ मिलेगा ? इस धर्माचरणरूपी नुस्खे को आजमाओ ! सभी के प्रति क्षमा, प्रेम, दया, करुणा का प्रदर्शन करके दूसरों को भी सुखी बनाओ और स्वयं भी सुखी हो जाओ ! ओ३म् शम् ! □

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।
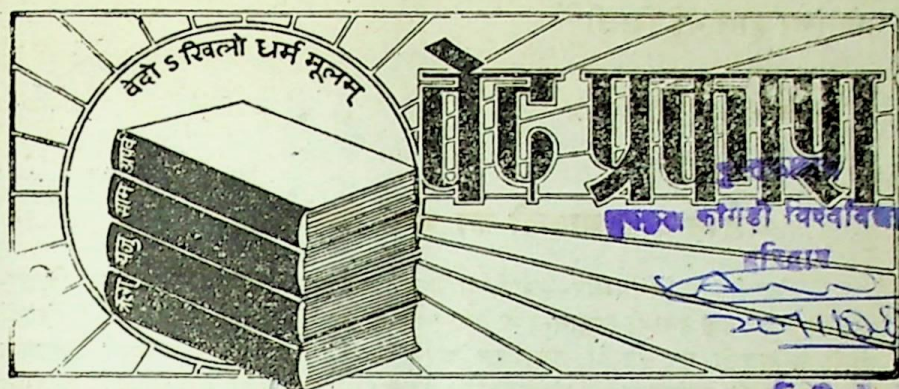
गोरक्षा के लिए अपील

मान्यवर,

आपके द्वारा लालित-पालित यह गोचर भूमि संस्था अपनी हर कठिनाइयों के बावजूद अपनी ७०० एकड़ भूमि की एवं २७० के लगभग गोवंश की रक्षा एवं पालन करती रही है—वर्ष भर में लगभग ५५-६० हजार लीटर शुद्ध गोदुग्ध मथुरा के नागरिकों को उपलब्ध कराती है एवं उत्तम नस्ल के सांड पालकर अपनी गोशाला के अलावा निकटवर्ती गाँवों की गायों को निःशुल्क पाल देती है। इस वर्ष समस्त उत्तर भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश के पच्छिमी जिले सूखाग्रस्त हो जाने से नलकूपों का जल-स्तर पर्याप्त नीचा (वर्तमान में ७० फीट) हो गया है—अति कठिनाई से अपने बिजली संयंत्रों को जो विगत १५ वर्ष से काम करते रहने से जीर्ण हो गये हैं, आवश्यक मरम्मत आदि कराकर पुनः कूपों को नीचा करके जल-स्तर पर फिट किया है परन्तु फिर भी जल की सप्लाई विगत वर्षों के अनुरूप नहीं हो पायी है। इस सब कार्य में संस्था के सीमित अर्थ-साधन का उपयोग कर बैठे हैं। १४० एकड़ के खेतिहर खण्ड में अभी आधी बुवाई हो पायी है, फिर भी अथक परिश्रम से गायों के चारे-दाने आदि की बुवाई में लगे हुए हैं। घाटे का मुख्य कारण अनावृष्टि की वजह से जंगल का जो तृण गोवंश को मिल पाता था वह भी नहीं मिल सका।

हमारी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि संस्था का अस्तित्व बनाये रखने के लिए भूसे की सहायता का संग्रह किसी भी प्रकार से होना ही चाहिए।

प्रभु से प्रार्थना है कि अनावृष्टि से उत्पन्न इस कठिन परीक्षा-काल में अपनी ओर से कृपादृष्टि रखते हुए सफल बनावें।

भवदीय

रामबाबू

मथुरा-वृन्दावन हासानन्द गोचर भूमि, ट्रस्ट समिति

७०१, गऊघाट; मथरा

श्रद्धानन्द ग्रन्थावली का भव्य विमोचन समारोह

दिल्ली—21 दिसम्बर—आर्यसमाज के अग्रगण्य नेता तथा गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के प्रवर्तक स्वामी श्रद्धानन्द के समस्त ग्रन्थों को सुन्दर एवं आकर्षक ११ जिल्दों वाली ग्रन्थावली के रूप में प्रकाशित करने का श्रेय लब्धप्रतिष्ठ आर्य प्रकाशक श्री गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली को है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थमाला के अन्तर्गत स्वामी श्रद्धानन्द के हिन्दी तथा अंग्रेजी के लगभग सभी ग्रन्थों का सम्पादन एवं अनुवाद डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा तथा उर्दू साहित्य का सम्पादन प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा किया गया है। स्वामीजी की विशद जीवनी डॉ० भारतीय की ओजस्वी लेखनी से लिखी गई है। नई दिल्ली के मावलंकर हाल में ग्रन्थावली का विमोचन आर्य जगत् के प्रख्यात संन्यासी स्वामी सत्यप्रकाश जी के द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्होंने इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य के लिए सम्पादकों एवं प्रकाशक को बधाई तथा आशीर्वाद दिया। स्वामी श्रद्धानन्द के व्यक्तित्व एवं कार्यों पर प्रकाश डालते हुए सर्वश्री डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, पं० क्षितीश, वेदालंकार, डॉ० प्रशान्त वेदालंकार, श्री वेदव्रत वेदालंकार, श्री सोमनाथ मरवाह, प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु आदि वक्ताओं ने इस कार्य के महत्व का विवेचन किया और आशा प्रकट की कि स्वामीजी के अवशिष्ट साहित्य को भी शीघ्र ही प्रकाश में लाया जायगा।

स्वामी श्रद्धानन्द के साहित्य के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करते हुए ग्रन्थावली के प्रमुख सम्पादक डॉ० भवानीलाल भारतीय ने बताया कि इस प्रकाशक योजना में स्वामीजी की आत्मकथा उनके द्वारा लिखे गये संस्करण, आर्य धर्म ग्रन्थमाला के विभिन्न गुच्छक इनसाइड कांग्रेस, आर्यसमाज के निन्दक : एक प्रतिवाद, वैदिक धर्मोपदेश तथा स्वामी दयानन्द विषयक अन्य अन्वेषणात्मक सामग्री का संकलन किया गया है। विभिन्न वक्ताओं ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि आर्यसमाज में साहित्य के लेखन, प्रकाशन, संरक्षण तथा प्राचीन सामग्री की खोज की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। सभी वक्ताओं का प्रमुख स्वर यही था कि इस ग्रन्थावली का प्रकाशन तो बहुत पहले ही किसी शीर्षस्थ आर्यसमाजी संगठन या गुरुकुल काँगड़ी जैसी शिक्षण संस्था के द्वारा होना चाहिए था। इस अवसर पर मावलंकर सभागार नगर के प्रबुद्ध लोगों से खचाखच भरा हुआ था और उनकी राय थी कि यद्यपि स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान की यादगार में राजधानी में विभिन्न संस्थाओं द्वारा जलसे, जुलूस, भाषण आदि के कार्यक्रम होते हैं किन्तु स्वामीजी के साहित्यिक कृतित्व के मूल्यांकन करने का यह पहला ही अवसर है।

विमोचन समारोह का सफल संचालन ग्रन्थावली के सम्पादक डॉ० भवानीलाल भारतीय ने किया तथा श्री वेदकुमार वेदालंकार ने धन्यवाद प्रस्ताव रक्खा। जलपान के पश्चात् श्रद्धानन्द ग्रन्थावली का यह गरिमामय समारोह सम्पन्न हुआ।

संवाददाता

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक ६] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [जनवरी १९८८

सम्पा० विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रेम

—प्रो० रामविचार, एम० ए०
दयानन्द कॉलेज, हिसार

विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव ।
अति गाहेमहि द्विषः ॥ (ऋ० २-७-३)

हे विद्वन् ! (त्वया) आपके साथ (वयं) हम लोग (धारा उदन्या इव) जल की धाराओं को जैसे, वैसे (विश्वाः) समस्त (द्विषः) वैर-वृत्तियों को (अतिगाहेमहि) अवगाहें, विलोड़ें, मथें, वैसे आप (उत) भी इनको गाहो।

महर्षि दयानन्द जी ने इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार लिखा है—

"जैसे जल की धारा प्राप्त हुए स्थान को छोड़ दूसरे स्थान को जाती है वैसे शत्रुभाव को छोड़ मित्रभाव को सब मनुष्य प्राप्त होवें।"

जल की धाराएँ एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को प्राप्त होती हैं, यह जलधाराओं का धर्म है। हम जल की धाराओं को आदर्श रूप मानकर एक स्थान अर्थात् द्वेष को छोड़कर, दूसरा स्थान अर्थात् प्रेमभाव को धारण करें। इस मन्त्र द्वारा मनुष्य को प्रेमभाव अपनाने की प्रेरणा दी गई है।

प्रेम संसार की एक अद्भुत वस्तु है। इसके तुल्य संसार की किसी वस्तु को नहीं ठहराया जा सकता। यह जीवन का परम सत्य तत्त्व है। यह मन और आत्मा की वस्तु होती है, शरीर की नहीं। प्रेम ही जीवन का प्राण है। मनुष्य-समाज इसी के सहारे चलता है। इसमें महान् शक्ति है। इसकी शक्ति को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। जिस हृदय में प्रेम नहीं, वह धड़कन तो रखता है, परन्तु हृदय कहलाने का अधिकारी नहीं। जिस हृदय में प्रेम नहीं, वह पाषाण के समान होता है। ऐसा हृदय एक अन्धकारपूर्ण गुफा के समान है जिसमें प्रकाश का प्रवेश नहीं है। प्रेम और विश्वास का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। प्रेम और सन्देह की

घोर शत्रुता होती है। जहाँ प्रेम है वहाँ सन्देह नहीं; जहाँ सन्देह है वहाँ प्रेम नहीं टिकता। प्रेम बाहर की वस्तु नहीं, वह अन्तर् की वस्तु है; वह आँख की वस्तु नहीं, अपितु हृदय की वस्तु होती है। प्रेम हृदयों को जोड़ता है, वह हृदयों को तोड़ता नहीं है। प्रेम हृदयों की मैल को धो देता है; वह मनों में स्वच्छता और निर्मलता को भरता है। संसार में सबसे बड़ी आकर्षण-शक्ति प्रेम है। जैसे गुरुत्वाकर्षण के कारण सूर्य धरती को अपनी ओर खींचता है, वैसे प्रेम के कारण ही मनुष्य दूसरों को अपनी ओर खींचता है। प्रेम के कारण ही मनुष्य महानता को प्राप्त करता है। प्रेम के कारण ही मनुष्य में पवित्रता का संचार होता है। प्रेम ही मनुष्य-समाज को स्वर्ग बनाता है, अन्यथा प्रेम के बिना मनुष्य-समाज नरक हो जाता है। प्रेम के कारण ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है। परमाणुओं का परस्पर आकर्षण प्रेम का ही सूचक है। प्रेम में ही सृष्टि स्थित रहती है। प्रेम मानव-मात्र की एक साँझी वस्तु है। प्रेम के मार्ग में महाद्वीप, देश, प्रान्त, सम्प्रदाय, रंग, व्यवसाय, भाषा, भूमि, सम्पत्ति, धन, पदवी, ज्ञान और आयु के भेद-भाव उत्पन्न नहीं होते। भेद-भाव के ये सब कारण प्रेम के मार्ग में तुच्छ हैं। यह व्यक्ति अमुक महाद्वीप का है, यह अपने देश का नहीं है, यह दूसरे प्रान्त का है, यह अपने सम्प्रदाय का नहीं है, यह काले रंग का है, यह अपनी भाषा नहीं बोलता, यह निर्धन है, इसकी पदवी ऊँची नहीं है, यह ज्ञान में मुझसे कम है, इत्यादि सभी भेद-भाव प्रेम के विशाल साम्राज्य में कोई अस्तित्व नहीं रखते। प्रेम तो मानो इन सबकी प्रतिक्रिया है। प्रेम सब प्रकार की संकीर्णताओं को भस्मसात् कर देता है। संसार के अन्धकारमय वातावरण में प्रेम ही एक प्रकाश-स्तम्भ है। यही सन्मार्ग का प्रकाशक होता है। इसीसे पथभ्रष्ट व्यक्ति सन्मार्ग पर चलता है। सभी तीर्थ-स्थानों के जल से यदि कोई पवित्र वस्तु है तो वह है प्रेम। प्रेम विपत्ति का सामना तो भले ही कर ले, परन्तु वह अवहेलना सहन नहीं कर सकता। संसार का बड़े-से-बड़ा ऐश्वर्य और बड़े-से-बड़ा वैभव प्रेम के साम्राज्य के आगे तुच्छ है। प्रेम की आधार-शिला दृढ़ता है, शिथिलता नहीं। प्रेम में स्वयं कोमलता पाई जाती है, परन्तु वह कठोरता पर सदा विजय प्राप्त करता है। आत्मा की सच्ची तृप्ति का यदि कोई कारण है तो प्रेम। प्रेम अनन्यता का पोषक होता है, उसमें अन्यता का कोई स्थान नहीं। जब हृदय में प्रेम का झरना बहने लगता है तो मानो मनुष्य के हृदय में ईश्वरीय प्रेरणा काम कर रही होती है। सच्चे प्रेम में वासना का कोई स्थान नहीं होता। प्रेम वह रसमय काव्य है जिसमें शुष्कता को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। प्रेम का अर्थ है सरसता और रसमयता। प्रेम सदाबहार है, प्रेम के राज्य में शिशिर ऋतु का कोई समावेश नहीं है।

प्रेम में उष्णता ही होती है, इसमें शीतता का कोई समावेश नहीं है। यह एक

ऐसा पुष्प है जिसमें रस भी है, गन्ध भी है और रंग भी। प्रेम ही मनुष्य की अन्तरात्मा है जिसके सहारे मनुष्य जीवित रहता है। प्रेम-शून्य व्यक्ति मृतक के समान होता है। कहते हैं कि पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है, इसी प्रकार प्रेम के स्पर्श से राक्षस में भी देवत्व का संचार हो जाता है। सच्चे प्रेम में व्यक्ति अपने को भूल जाता है। उसे केवल उसी की स्मृति रहती है जिससे कि वह प्रेम करता है। संसार में यदि कोई सर्वोत्तम धन है तो वह प्रेम-रूपी धन है। इससे उत्तम कोई धन ही नहीं। इस संसार में दुःख की मात्रा को कम करने की ओषधि केवल प्रेम ही है। स्तुति प्रेम प्रकट करने का एक बाहरी साधन है। सच्चा प्रेम मन में हिलोरें मारता है। जहाँ प्रेम है वहाँ परमात्मा का निवास होता है।

प्रेम ईश्वर से समन्वय कराता है। प्रेम ही ईश्वर-मिलन का मात्र साधन है। प्रेम का पता आत्म-त्याग से चलता है। हम दूसरे के प्रति कितना स्वार्थ-त्याग कर सकते हैं, इससे हमारे सच्चे प्रेम का परिचय मिलता है। हम अपने सुख का, अपने आराम का और अपने लाभ का दूसरे के लिए कितना त्याग कर सकते हैं, इससे ही पता चलता है कि हम दूसरे के लिए कितना प्रेम रखते हैं। प्रेम एक ऐसी अग्नि है जिसमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और वैमनस्य सब जलकर राख हो जाते हैं। प्रेम एक ऐसा जादू है जिससे असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। उत्कृष्ट प्रेम तो वही है जहाँ प्रतिदान की भावना न हो। प्रेम की महिमा अपरम्पार है। कविवर रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में--

स्थिर, पवित्र, आनन्द-प्रवाहित, सदा शान्त, सुखकर है।
अहा! प्रेम का राज्य परम सुन्दर, अतिशय सुन्दर है।।

प्रेम हृदय की भाषा को समझता है, वह शब्दों की भाषा को कोई विशेष महत्त्व नहीं देता। प्रेम स्थान और काल के बन्धन से परे की वस्तु है। वह स्थान और काल के बन्धन को तुच्छ समझता है। इसकी गति सर्वत्र होती है। मानसिक पीड़ा का एक ही उपचार है और वह है प्रेम।

संसार में हम प्रेम के अनेक रूप देखते हैं। ईश्वर-प्रेम, मानव-प्रेम, भूमि-प्रेम, देश-प्रेम, सन्तान के प्रति प्रेम, पति-पत्नी-प्रेम, भातृ-प्रेम, मित्र-प्रेम, परिचित व्यक्तियों से प्रेम, पशु-पक्षी-प्रेम इत्यादि में हम प्रेम के विभिन्न रूपों के दर्शन करते हैं। मन की सरसता और आर्द्रता इन सबकी आधार-भूमि है—

तू दिल में तो आता है, समझ में नहीं आता।
मालूम हुआ बस तेरी पहचान यही है।।

प्रभु का प्यार तो हृदय से होता है, बुद्धि से नहीं होता—

खुदा का नाम गो अक्सर ज़ुबानों पर है आ जाता।
मगर काम उससे तब चलता कि जब दिल में समा जाता।।

प्रेम का प्रथम रूप ईश्वर-प्रेम के रूप में हमारे सम्मुख आता है। संसार की सबसे प्रमुख वस्तु जो प्रेम की पात्र है वह है ईश्वर। वेद ने कहा है—

वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः। (ऋग्० २-१२-१५)

हे इन्द्र! हम सब तेरे सदा प्यारे रहें।

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥ (ऋग्० ८६-१-७)

हे उत्तम धनों के स्वामिन्! ऐश्वर्य चाहनेवालों को तू ऐश्वर्य दे दे। धन चाहनेवालों को तू धन दे दे। गौओं की कामना करनेवालों को तू गौएँ दे दे। घोड़े माँगनेवालों को तू घोड़े दे दे। हे परमात्मन्! अपने उपासक के प्रति तू ही चला जा अर्थात् उपासक को सिवाय ईश्वर के और कुछ नहीं चाहिए। उसे केवल ईश्वर ही चाहिए।

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये॥ (ऋग्० १-९१-१३)

हे परमेश्वर! जैसे खाने योग्य घास आदि पदार्थों में गौएँ रमती हैं, जैसे अपने घर में मनुष्य रमता है वैसे ही आप हमारे हृदय में रमण कीजिए।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥ (ऋग्० ८-४४-२३)

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! यदि मैं तू हो जाऊँ और तू मैं हो जाए तो तेरे आशीर्वाद इसी जन्म में पूरे हो जाएँ। यह केवल प्रभु-प्रेम के कारण ही हो सकता है।

कबीर ने कहा है—

भुक्ति-मुक्ति माँगौं नहीं, भक्ति दान दे मोहि।
और कोई याचौं नहीं, निसिदिन याचौं तोहि॥

भक्त प्रभु से कहता है कि मैं आपसे भोग और मोक्ष नहीं माँगता। मुझे तुम भक्ति (ईश्वर-प्रेम और ईश्वरोपासना) का दान करो।

ज्यों-ज्यों पीवै नाम-रस, त्यों-त्यों बढ़ै पियास।
ऐसा कोई एक है, बिरला दादू दास॥

संसार में ऐसा व्यक्ति विरला है जो प्रभु के नाम के अमृत को पीता रहे और उसकी प्यास बढ़ती रहे।

रहीम ने लिखा है—

प्रीतम छवि नैनन बसि, पर-छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आपु पथिक फिर जाय॥

जब प्रियतम परमात्मदेव का सौन्दर्य आँखों में समा जाता है तो किसी दूसरी वस्तु का सौन्दर्य आँखों में नहीं समा सकता, जिस प्रकार भरी सराय को देखकर पथिक स्वयं मुड़ जाता है।

समाया है जब से तू नजरों में मेरी।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है॥

रहीम ने कहा है—

ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे प्रिय माँही।
तैसे नर जग में रहे, हरि को बिसरे नाँहीं॥

जिस प्रकार विवाहिता स्त्री पितृकुल में बसती है, परन्तु उसका ध्यान अपने पति की ओर ही रहता है, वैसे ही मनुष्य को संसार में रहते हुए परमात्मा की ओर ध्यान रखना चाहिए और परमात्मा को भूलना नहीं चाहिए।

जिनको प्रभु से सच्चा प्रेम होता है, उनका ध्यान हर समय प्रभु की ओर रहता है। इस सन्दर्भ में महाराजा जनक के जीवन की एक घटना विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

शुकदेव जी ने अपने पिता जी से ब्रह्म को जानने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने कहा कि तुम मिथिलापुरी में राजा जनक के यहाँ जाकर ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करो। ब्रह्मचारी शुकदेव, महाराजा जनक के यहाँ पहुँचे तो राजा दरबार में बैठे हुए थे और अपने राजकार्य में व्यस्त थे। शुकदेव दरबार में पहुँचे और उन्होंने यह देखा तो बहुत चकित हुए। सोचने लगे कि राजकाज में फँसा हुआ व्यक्ति कैसे ब्रह्मज्ञानी हो सकता है? इन्हें भला क्या ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा? महाराज जनक शुकदेव की इस भावना को ताड़ गए। वे अपने एक कर्मचारी से कहने लगे कि 'शुकदेव को हमारी मिथिलापुरी दिखाओ, परन्तु तेल का तक प्याला इनके हाथ में दे दो। पीछे नंगी तलवार लेकर एक व्यक्ति चलता रहे। यदि प्याले में से तेल की एक बूंद भी नीचे गिर जाय तो शुकदेव का सिर धड़ से जुदा कर देना!'

शुकदेव को सारे नगर में घुमाया गया। भ्रमण की समाप्ति पर दरबार में लाए जाने पर राजा जनक ने शुकदेव से पूछा कि 'हमारी नगरी बहुत सुन्दर नगरी है, तुमने इस नगरी में क्या-क्या देखा?'

शुकदेव जी कहने लगे कि 'मैंने तो कुछ नहीं देखा। मेरा ध्यान तो तेल के प्याले की ओर केन्द्रित रहा कि कहीं इससे तेल की एक बूंद नीचे न गिर पाय।'

महाराजा जनक चुप हो गए।

रात्रि को जब सोने का समय आया तो शुकदेव जी को उस कमरे में सुलाया गया जिस कमरे की छत से, पलँग के ऊपर, एक धागे के साथ तलवार लटक रही थी। प्रातःकाल जब शुकदेव उठे तो राजा जनक ने पूछा कि 'रात्रि को तुमने

सुखपूर्ण निद्रा का उपभोग किया होगा ?'

शुकदेव कहने लगे कि 'मुझे तो रातभर नींद ही नहीं आई ! मेरा ध्यान तो लटकती हुई तलवार की ओर ही रहा कि कहीं यह मुझपर गिर न पड़े ! मेरा ध्यान रातभर तलवार की ओर ही रहा।'

महाराजा जनक कहने लगे कि 'शुकदेव ! जब तुम दरबार में आए थे तो तुम्हारे मन में शंका हुई थी कि यह राजदरबारी व्यक्ति क्या ब्रह्मज्ञानी हो सकता है ? इसी शंका के निवारण के लिए मैंने तुम्हें इन दो स्थितियों में डाला। जैसे नगर में घूमते समय तुम्हारा ध्यान तेल के प्याले की बूंद की ओर था, जैसे रात्रि में तुम्हारा ध्यान तलवार की ओर रहा, वैसे ही मेरा ध्यान संसार के सब काम करते हुए ईश्वर की ओर रहता है।'

सच्चे ईश्वर-भक्तों को ईश्वर से बढ़कर और किसी वस्तु से प्रेम नहीं होता। संसार के लोग शरीर से बहुत प्रेम करते हैं, परन्तु उनके लिए प्रभु-प्रेम के आगे शरीर-प्रेम तुच्छ होता है। सांसारिकों की दृष्टि में पति-पत्नी-प्रेम बहुत बड़ी वस्तु है, परन्तु उनकी दृष्टि में प्रभु-प्रेम के आगे यह भी नगण्य होता है। उनकी दृष्टि में भूमि, सम्पत्ति, धन और पद के प्रति प्रेम भी ईश्वर-प्रेम के आगे तुच्छ होता है। लोगों को अपनी सन्तान से बहुत प्रेम होता है, परन्तु ईश्वर-भक्तों के आगे सन्तान-प्रेम भी हेय होता है।

जिस प्रकार भूखे को भोजन की तीव्र इच्छा होती है, उसी प्रकार ईश्वर-भक्त को ईश्वर-प्राप्ति की तीव्र इच्छा होती है। जिस प्रकार प्यासे को जल की उत्कट इच्छा होती है, वैसे ही ईश्वर-भक्त को ईश्वर-प्राप्ति की उत्कट इच्छा होती है। जैसे आसक्त व्यक्ति को प्रियतमा की प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा होती है, वैसे ईश्वर-भक्त को ईश्वर-प्राप्ति की प्रबल इच्छा होती है।

कामी की दृष्टि नारी के अंग-प्रत्यंग में उलझी रहती है। कच और कुच में उसकी बहुत आसक्ति होती है, परन्तु ईश्वर-भक्त के लिए ये सब निस्सार हैं। उसकी दृष्टि में भर्तृहरि के ये शब्द गूंजते रहते हैं—

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ।
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम्॥
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धिजघनम्।
अहो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम्॥ (वैरा० शतक)

कविजनों ने मांस के लोंदे स्तनों को स्वर्णकलश, थूक-खखार के घर मुख को चन्द्रमा, मूत्र से भीगी जंघाओं को गजराज के सूंड की उपमा दी है। कवि लोगों ने न जाने क्यों इन निन्दा-योग्य स्त्रियों के रूप को इतना बढ़ावा दिया है !

'ईश्वर-भक्त के आगे अर्थ (धन) का आकर्षण भी तुच्छ होता है। उनके लिए अर्थ 'अनर्थ और व्यर्थ' होता है। सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, मोती उनके

लिए पत्थर और मिट्टी के ढेले के समान होते हैं। सच्चे-ईश्वर-भक्त शरीर, पत्नी और सन्तान के मोह-बन्धनों से ऊपर होते हैं। वे अहंकार का मर्दन कर देते हैं। सन्त कबीर के शब्दों में—

जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि हैं हम नाहीं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहीं।।

प्रभु-प्रेम निभाते समय अहंकार को कुचलना ही पड़ता है और सच्चा ईश्वर-भक्त उसे कुचल देता है—

उलफ़त की तंग राह में, दो की गुज़र नहीं।

प्रभु-प्रेम के तंग मार्ग पर प्रभु-प्रेम और अहंकार, दोनों इकट्ठे नहीं चल सकते। सांसारिक व्यक्तियों की दृष्टि में प्रभु-प्रेम का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, परन्तु सच्चे ईश्वर-भक्त की दृष्टि में यही सर्वस्व होता है—

किसी ने पूछा कि तेरा धन-माल कितना है?
किसी ने पूछा कि तेरा जाहो-जलाल कितना है?
किसी ने पूछा कि तेरा परिवार कितना है?
किसी ने पूछा कि तेरा प्रभु से प्यार कितना है?

प्रेम का दूसरा रूप मनुष्य-प्रेम है। परमेश्वर हम सबका पिता है और धरती हमारी माता है। एक ही पिता की सन्तान होकर भी मनुष्य-मनुष्य में कितना भेद है! एक महाद्वीप के लोग दूसरे महाद्वीप के लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों से अपने को पृथक् समझते हैं। कई बार एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त के लोगों को टेढ़ी दृष्टि से देखते हैं। काले और गोरे के भेद को लेकर मनुष्य ने मनुष्य पर कितने अत्याचार किये हैं! साम्प्रदायिकता का नाम लेकर मनुष्य ने मनुष्य पर बहुत अति की है। इससे बड़ी विचित्र बात कि एक ही सम्प्रदाय के लोगों ने अपने ही दूसरे सम्प्रदाय के लोगों के साथ अमानुषिक व्यवहार दिखाया है। भाषा का नाम लेकर मनुष्यों में बहुत रक्तपात हुआ है। व्यवसाय के कारण मनुष्य दूसरों से कितनी घृणा करता है! संडास उठानेवाले, चमड़े का काम करनेवाले, श्रमिक और इसी प्रकार छोटे काम करने-वालों को लोग प्रायः घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। अधिक सम्पत्ति, अधिक भूमि और अधिक धनवाले लोग निर्धनों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। बड़ी पदवीवाले छोटी पदवीवालों को तुच्छ समझते हैं। सुपठित व्यक्ति अशिक्षित और अल्पपठित व्यक्तियों को ही कुछ नहीं समझते।

जब तक उपर्युक्त कारण दूर न हों, तब तक मनुष्य-मनुष्य में प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता। ये कारण मनुष्य को मनुष्य से मिलने नहीं देते। जिसने प्रेम को सच्चे हृदय से धारण कर लिया वह इन निर्बलताओं का शिकार नहीं हो सकता।

वह केवल मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखता है। उसकी दृष्टि से ये सभी दीवारें उठ जाती हैं। जब मनुष्य इस स्थिति तक पहुँच जाय, तब उसमें मनुष्य-प्रेम विद्यमान होता है। इस ऊँची स्थिति तक पहुँचने के लिए व्यक्ति को अभिमान छोड़ना पड़ता है। मानवता के इस सूत्र को पहचानने के लिए बहुत ऊँचा उठने की आवश्यकता होती है। जो मनुष्य-समाज का एवं साँझा सूत्र है—मनुष्यता, उसे भुलाकर मनुष्य भूलभुलैयों में पड़ा हुआ है। मनुष्य कितने बड़े अज्ञान का शिकार हो रहा है! उदारचरित व्यक्ति इस भेद-भाव को भूल जाते हैं।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् !
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

यह अपना है और यह पराया है—यह गिनती छोटे दिलवालों की होती है। उदार हृदयों के लिए तो यह वसुधा ही परिवार है।

प्रेम का एक रूप देश-प्रेम के रूप में भी प्रकट होता है। मनुष्य जिस भू-भाग पर रहता है, मनुष्य को उससे तो प्रेम होता है और होना भी चाहिए। जिस धरती के अन्न-जल से मनुष्य का पोषण होता है उससे प्रेम का होना स्वाभाविक ही है। जब लंका की विजय हो गई तब लक्ष्मण जी ने श्री रामचन्द्र जी को लंका में कुछ समय और बिताने की प्रार्थना की। इसपर श्री रामचन्द्र जी ने कहा—

एषा स्वर्णमयी लंका सौमित्रे मे न रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।

हे लक्ष्मण! सोने की यह लंका भी मुझे अच्छी नहीं लगती। अपनी जननी और मातृभूमि स्वर्ग से भी अधिक प्रिय होती है।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने एक फूल की अभिलाषा इस प्रकार प्रकट की है—

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ ।।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि, डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ ।।
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जायें वीर अनेक ।।

देश-भक्ति का प्रतिपादन करते हुए फूल ने कहा है कि मैं देवकन्या के गहनों में गुंथना नहीं चाहता, प्रेमी-माला में बिंधना नहीं चाहता, सम्राटों के शव पर पड़ना नहीं चाहता, देवों के सिर पर भी चढ़ना नहीं चाहता। हे बाग के माली! तुम मुझे उस रास्ते पर फेंक देना कि जिस रास्ते पर अनेक वीर मातृभूमि पर सिर चढ़ाने के लिए जा रहे हों।

पं० व्रजनारायण चकबस्त ने लिखा है—

गुंचे हमारे दिल के इस बाग में खिलेंगे।
इस खाक से उठे हैं, इस खाक में मिलेंगे।।

गर्दो-गुबार माँ का, खिलअत है अपने तन को।
मरकर भी चाहते हैं, खाके-वतन कफन को।।

इकबाल ने लिखा है—

पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है!
खाके-वतन का मुझको हर जर्रा देवता है।।

मनुष्य में देश-भक्ति तो होनी ही चाहिए। जिस देश के अन्न-जल से मनुष्य के शरीर का पोषण होता है, उस देश के प्रति भक्ति-भाव तो होना चाहिए ही, परन्तु यह भी ध्यान होना चाहिए कि कोई भी देश-विशेष भूमि-माता का अंग ही तो है। भूमि-माता से यदि अपने मन में प्रेम होगा तो व्यक्ति अपने देश के प्रति भक्ति-भावना रखते हुए भी दूसरे देशों, विशेष रूप से अपने पड़ोसी देशों के प्रति भी प्रेम की भावना रक्खेगा। भूमि-माता का वर्णन करते हुए वेद ने उदात्त भावनाएँ प्रकट की हैं—

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।

(अथर्व० १२-१-३)

जिसमें समुद्र, नदियाँ, झरने और कूप हैं, जिसपर अन्न और खेतियाँ उत्पन्न हुई हैं, जिसपर यह श्वास लेता हुआ और चेष्टा करता हुआ जगत् चलता है, वह भूमि हमें श्रेष्ठों से रक्षायोग्य पद पर ठहरावे।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।

(अथर्व० १२-१-४)

जिस पृथिवी की चारों बड़ी दिशाएँ हैं, जिसमें अन्न और खेतियाँ उत्पन्न हुई हैं, जो अनेक प्रकार से श्वास लेते हुए और चेष्टा करते हुए जगत् को पोषती है, वह भूमि हमें गौओं में और अन्न में रक्खे।

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।।

(अथर्व० १२-१-१२)

हे पृथिवि! जो तेरा न्याययुक्त कर्म है और जो क्षत्रियों का हितकारक कर्म है, जो बलदायक पदार्थ तेरे शरीर से उत्पन्न हुए हैं, उन सबके भीतर तू हमको

रख और हमें सब ओर से शुद्ध कर। भूमि माता है और मैं भूमि का पुत्र हूँ।

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्॥

(अथर्व० १२-१-३५)

हे भूमि! जो कुछ तेरा मैं खोद डालूँ, वह शीघ्र ही उगे। हे खोजने योग्य! न तो तेरे मर्मस्थल की और न तेरे हृदय की मैं हानि करूँ। आगे कहा है—

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते॥

(अथर्व० १२-१-५६)

जो गाँव, जो वन और जो सभाएँ भूमि पर हैं, जो संग्राम और समितियाँ हैं, हे भूमे! उनमें तेरा सुन्दर यश हम कहें।

इस प्रकार जहाँ हम देश-प्रेम को धारण करें वहाँ भूमि-प्रेम यदि हमारे मन में रहे तो भूमि के दूसरे भाग अपने देश में मिलाने की भावना समाप्त हो जाए।

माता-पिता का सन्तान के प्रति प्रेम 'वात्सल्य' कहलाता है। माता-पिता सन्तान के लिए क्या नहीं करते! कौन-सा तप है जिसे वे सन्तान के लिए नहीं तपते! कौन-सा कष्ट है जिसे वे सन्तान के लिए नहीं भोगते! कई बार माता-पिता सन्तान के लिए अपने प्राणों को भी निछावर कर देते हैं। माँ-बाप संसार की अद्भुत वस्तु हैं। यदि सन्तान अपने शरीर के चमड़े की जूतियाँ बनाकर भी माता-पिता को पहना दे तो उसके ऋण से उऋण नहीं हो सकती। इसकी विस्तृत व्याख्या देवपूजन शीर्षक के अधीन की गई है, वहाँ पढ़ें।

पति-पत्नी का प्रेम भी संसार में एक अद्भुत वस्तु है। इसी के कारण घर स्वर्ग बनता है, अन्यथा नरक हो जाता है।

पति-पत्नी के आदर्श प्रेम को हम रामायण में देखते हैं। जब श्री रामचन्द्र जी वनवास के लिए चलने लगे तो सीता जी ने श्री रामचन्द्र जी के साथ चलने के लिए बहुत आग्रह किया। श्री रामचन्द्र जी ने बहुत मना किया, परन्तु उन्होंने एक न मानी। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में सीता जी कहती हैं—

प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिन रघुकुल कुमुद-बिधु, सुरपुर नरक समान॥
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई, प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई।
सासु ससुर गुरु सुजन सहाई, सुत सुन्दर सुशील सुखदाई।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते, प्रिय बिनु तियहिं तरनिहु ते ताते।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी, तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी।
राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत न जानिय प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, सील सनेह निधान॥

सबहिं भाँति प्रिय सेवा करिहौं, मारग-जनित सकल श्रम हरिहौं।
पाँय पखारि बैठि तरु छाहीं, करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं।
सम महि तृन तरु पल्लव डासी, पाँय पलोटिहि सब निसि दासी।
बार-बार मृदु मूरति जोही, लागिहि तात बयारि न मोही।

हे प्राणों के स्वामी ! दया के घर, सुन्दर, सुख देनेवाले, चतुर, रघुकुलरूपी कुमुद के लिए चन्द्रमा के समान, तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक के समान है। माता, पिता, बहिन, प्रिय भाई, प्रिय परिवार, मित्र-मण्डल, सास, ससुर, गुरु, मित्र, सहायक, सुन्दर, सुशील और सुखदायक पुत्र, हे नाथ ! जहाँ तक स्नेह और रिश्तों का सम्बन्ध है वे पति के बिना सूरज से भी अधिक तपानेवाले होते हैं। जैसे प्राणों के बिना शरीर और पानी के बिना नदी होती है, वैसे ही पुरुष के बिना नारी की स्थिति है।

हे दीनबन्धो, सुन्दर, सुखदायक, सदाचार और प्रेम के कोष ! यदि तुम चौदह वर्ष तक अवध में रक्खोगे तो ये प्राण शरीर में नहीं रहेंगे।

मैं सब प्रकार से प्रिय की सेवा करूँगी। रास्ते पर चलने से जो आपको थकावट होगी, उसको मैं दूर करूँगी। पाँव धोकर, वृक्ष की छाया में बैठकर मैं प्रसन्नता-पूर्वक आपको हवा किया करूँगी। समतल भूमि पर तिनकों और वृक्ष के पत्तों की कुटिया में यह दासी प्रतिरात्रि आपके पाँव दबाया करेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्ति को देखकर हे प्रिय, मुझे गर्म हवा नहीं लगेगी।

पति के प्रति पत्नी का कैसा आदर्श प्रेम है ! यही नहीं कि सीता जी को अपने पति श्री रामचन्द्र जी से इतना प्रेम था, श्री रामचन्द्र जी को भी सीता जी से सच्चा प्रेम था। श्री रामचन्द्र जी सीता जी के वियोग में इधर-उधर घूमकर पशु-पक्षियों से सीता जी के विषय में पूछते हैं—

हे खग, मृग, हे मधुकर-स्रेनी, तुम देखी सीता मृगनैनी ?

'हे पशु-पक्षियो, हे भँवरों की पंक्ति, क्या तुमने हरिण की आँखोंवाली सीता को देखा है ?' श्री रामचन्द्र जी सीता जी का किस प्रकार वियोग सहन कर रहे हैं, देखने योग्य है---

बरषा विगत शरद ऋतु आई, सुधि न तात सीता करि पाई।
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं, कालहुँ जीति निमिष महिं आनौं।।

'वर्षा बीत गई है और शरद् ऋतु आ गई है, परन्तु हे प्रिय लक्ष्मण ! अभी तक सीता का पता नहीं चला है। एक बार किसी प्रकार भी मैं उसकी सुधि प्राप्त करूँ तो मानो काल को जीतकर एक पल में ले आऊँ।' श्री रामचन्द्र जी को भी सीता जी के प्रति अद्भुत प्रेम था।

भाई-भाई का प्रेम भी संसार की एक अद्भुत वस्तु है। यदि प्रेम-भाव बना

रहे तो भाई का भाई को जीवन-भर सहारा होता है। यदि प्रेम न हो तो भाई भाई का शत्रु बन जाता है। वेद ने आदेश दिया है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् ! (अथर्व० ३-३०-३)

अर्थात् भाई भाई से द्वेष न करे। बड़े भाई का परम कर्त्तव्य है कि वह छोटे भाई से प्रेम करे। रामायण में हमें इसका उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है—

जो जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू, पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।
जथा पंख बिनु खग अति दीना, मनि बिनु फनि करिवर कर हीना।
अस मम जिवन बन्धु बिन तोही, जो जड़ दैव जियावै मोही।
जैहों अवध कौन मुँह लाई, नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई।

लक्ष्मण जब मूच्छित हो गए तो श्री रामचन्द्र विलाप कर रहे हैं। वे कहते कि यदि मुझे पता होता कि मुझे जंगल में प्रिय भाई लक्ष्मण का वियोग होगा तो मैं पिता के वचनों को न मानता। जिस प्रकार बिना पंखों के पंछी अति असमर्थ हो जाता है और नाग जिस प्रकार मणि के बिना हो जाता है और हाथी बिना सूंड के हो जाता है, इसी प्रकार मेरा जीवन भी तुम्हारे बिना हो गया है। मैं कौन-सा मुँह लेकर अब अयोध्या में जाऊँगा ? लोग कहेंगे कि अपनी पत्नी के लिए अपने प्यारे भाई को गँवा आया है।

उपर्युक्त पंक्तियों में श्री रामचन्द्र जी का लक्ष्मण जी के प्रति कितना प्रेम प्रकट होता है ! इसी प्रकार का प्रेम भाइयों में होना चाहिए।

प्रेम का एक रूप मित्र-प्रेम भी है। यह भी संसार की एक अद्भुत वस्तु है। संसार में परिचित तो बहुत होते हैं, परन्तु मित्र कोई विरला ही होता है। कहा भी गया है—

दुर्लभं प्राकृतं मित्रम्।

स्वाभाविक मित्र संसार में दुर्लभ होता है। मित्र जीवन का एक बहुत बड़ा सहारा होता है। मित्र अन्तर्वेदना का औषध होता है—

किं चन्दनैः सकर्पूरैः तुहिनैः किंच शीतलैः।
सर्वे ते मित्रगात्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

कपूर के सहित शीतल चन्दन का लेप कुछ महत्त्व नहीं रखता तथा शीतल बर्फ़ भी अपना कोई महत्त्व नहीं रखती। इनकी शीतलता तो मित्र के गात्र (शरीर) की सोलहवीं कला को भी नहीं छू सकती।

व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम्॥

रोगी, निर्धन, परदेशी और शोक-पीड़ित मनुष्य के लिए मित्र का दर्शन औषधरूप है। मित्रता प्रायः समान गुणवालों में हुआ करती है।

मृगा मृगैः संगमनुव्रजन्ति, गावश्च गोभिस्तुरंगास्तुरङ्गैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः, समानशीलव्यसनेषु सख्यम्॥

हरिण हरिणों के साथ, गौएँ गौओं के साथ, और घोड़े घोड़ों के साथ चलते हैं। मूर्ख मूर्खों के साथ और बुद्धिमान् बुद्धिमानों के साथ रहते हैं। जिनका समान शील और व्यसन होता है, उन्हीं की परस्पर मैत्री होती है।

मनुष्य का अपना व्यवहार ही मित्रता का कारण होता है और वही शत्रुता का कारण भी होता है—

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा॥

संसार में कोई किसी का मित्र नहीं होता और कोई किसी का शत्रु नहीं होता। व्यवहार से ही सभी मित्र और शत्रु होते हैं।

प्रेम का लगाना तो सरल होता है, परन्तु प्रेम का निभाना बहुत कठिन होता है। कबीर ने कहा है—

अगि सहना सुगम, सुगम खडग की धार।
ेह निभावन एकरस, महा कठिन व्यौहार॥

आग की आँच का सहना सरल होता है, तलवार की धार का सहना सरल होत ा, परन्तु प्रेम का समान रूप से निर्वाह करना बहुत कठिन होता है।

रहीम ने कहा है—

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
चटके तो फिर जुरै नहीं, जुरै तो गाँठि परि जाय॥

प्रेम का धागा बड़ा कोमल होता है। इसे चटकाकर मत तोड़ो। यदि यह टूट जाता है तो जुड़ता नहीं। यदि जुड़ जाता है तो उसमें गाँठ पड़ जाती है। यह गाँठ सदा मन को कचोटती रहती है।

मित्रता बड़ी सावधानी के साथ निभाई जानी चाहिए—

रहिमन खोजो ऊख में, जहाँ रसन की खानि।
जहाँ गाँठ तहाँ रस नहीं, यही प्रीति की हानि॥

गन्ना जो रस की खान होता है उसमें भी जहाँ गाँठ है वहाँ रस का अभाव पाया जाता है।

स्थान की दूरी मित्रता में बाधक नहीं हुआ करती; मन की दूरी ही बाधक हुआ करती है। स्थान की दूरी होने पर भी व्यक्ति अपने मित्र को स्मरण करता रहता है। यह स्मरण करना भी मित्रता का लक्षण होता है। मिलन की व्याकुलता दोनों ओर पाई जाती है—

इन्दुः क्व क्व च सागरः, क्व च रविः पद्माकरः क्व स्थितः।
क्व । ; क्व मयूरपंक्तिरमला, क्वालिः क्व वा मालती॥

मन्दाछवक्रमराजहंसनिचयः, क्वा सौ क्व वा मानसम्।
यो यस्याभिमतः स तस्य निकटे, दूरेऽपि वा वल्लभः।।

कहाँ चन्द्रमा और कहाँ समुद्र, कहाँ सूर्य और कहाँ कमल, कहाँ बादल और कहाँ मोरों की निर्मल पंक्ति, कहाँ भँवरा और कहाँ मालती का फूल, कहाँ मन्द-मन्द गति से चलनेवाले राजहंसों का समूह और कहाँ मानसरोवर, जो जिसका प्रिय होता है चाहे वह दूर हो अथवा निकट, वही उसका प्रिय होता है।

मित्रता निम्नलिखित छः बातों से प्रकट होती है—

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्।।

जो देता है, लेता है, गोपनीय बातों को कहता है, सम्मति लेता है, खाता और खिलाता है वह मित्र होता है। ये छः बातें मित्रता की सूचक होती हैं।

मैत्री टूटने के भी कुछ कारण होते हैं—

विवादो धनसम्बन्धो याचनं स्त्रीषु संगतिः।
आदानमग्रतः स्थानं मैत्रीभंगस्य हेतवः।।

मित्र से प्रायः वाद-विवाद करना, लेन-देन करना, धन माँगते रहना, मित्र के घर की स्त्रियों से मिलना-जुलना, हर काम में अगुआनी करना—इन सबसे मित्रता टूट जाती है।

किसी ने मित्रद्रोही के विषय में बहुत सुन्दर कहा है—

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः।
ते नराः नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।

जो मित्र के साथ द्रोह करते हैं, जो कृतघ्न हैं और जो विश्वासघाती हैं, ये तीनों जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं वे नरक को जाते हैं।

दुष्टों और सज्जनों की मित्रता में अन्तर होता है—

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्।।

दुर्जनों की मैत्री आरम्भ में गहरी होती है और फिर क्रम से क्षय हो जाती है। सज्जनों की मैत्री आरम्भ में अल्प और बाद में वृद्धि को प्राप्त होनेवाली होती है—दिन के पूर्वार्ध के समान, जो कि दिन के परार्ध से भिन्न है, अर्थात् जो बढ़ती है, घटती नहीं है तथा छाया के समान साथ देनेवाली होती है।

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन।।

रहीम कहते हैं कि खीरे की भाँति प्रेम नहीं होना चाहिए कि ऊपर से तो एक रूप हो और अन्दर से बहुरूपी (बीज, गूदा और मुख्य भाग) अलग-अलग।

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजै, तजै सफेदी चून।।

रहीम कवि कहते हैं कि मित्रता चूने और हल्दी जैसी होनी चाहिए। चूना सफेदी छोड़कर और हल्दी पीलापन छोड़कर लाल रंग को धारण कर लेते हैं।

मित्र वह है जो विपत्ति में काम आता है—यह मित्र की पहली पहचान होती है। सम्पत्ति में जो साथ लगे रहते हैं, वे मित्र नहीं होते—

आपत्काले तु संप्राप्ते, यन्मित्रं मित्रमेव तत्।
वृद्धिकाले तु संप्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद् भवेत्।।

दुर्दिन में जो साथ दे, वही सच्चा मित्र है। समृद्धि की दशा में तो दुर्जन भी मित्र बन जाते हैं।

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।। (चाणक्य नीति)

उत्सव, विपत्ति, अकाल, राजविद्रोह, न्यायालय या राजसभा में जो साथ दे वही सच्चा बन्धु है।

मित्रं चाऽऽपत्तिकालेषु। (चाणक्य नीति १-११)

मित्र की विपत्तिकाल में परीक्षा होती है। इसी प्रकार सन्त कबीर ने कहा है—

सज्जन ऐसा कीजिए, ढाल सरीखा होय।
दुख में तो आगे रहे, सुख में पाछे होय।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

धीरज धरम मित्र अरु नारी, आपतकाल परखिये चारी।

धीरज, धर्म, मित्र और नारी—इन चारों की विपत्तिकाल में परीक्षा होती है। कवि रहीम ने भी यही कहा है—

कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीति।
विपति-कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत।।

सम्पत्ति में तो सभी सगे होते हैं, परन्तु विपत्ति में काम आनेवाले ही सच्चे मित्र होते हैं।

मित्र का दूसरा लक्षण यह है कि सामने आलोचना करे, मित्र की कमियाँ बताए और पीठ-पीछे प्रशंसा करे। जो सामने प्रशंसा करे और पीठ-पीछे बुराइयों की चर्चा करे, वह शत्रु होता है—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।। (चाणक्य नीति २-५)

पीठ-पीछे कार्य बिगाड़नेवाले और सामने मीठी-मीठी बातें बनानेवाले मित्र को ऐसे छोड़ देना चाहिए जैसे मुख पर दूध-लगे और भीतर से विषभरे घड़े को त्याग दिया जाता है।

मित्र में तीसरा गुण यह होना चाहिए कि वह मित्र में सत्प्रेरणा प्रदान करे, उसे सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे, उसमें शुभगुणों का समावेश कराए और अवगुणों को दूर करे। जो मित्र इसके विपरीत, मित्र में अवगुणों का समावेश कराए, वह मित्र नहीं, अपितु शत्रु के तुल्य है। चाणक्य ने लिखा है—

दुराचारी च दुर्दृष्टिर्दुराऽऽवासी च दुर्जनः।
यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्रं विनश्यति॥

आचारहीन, बुरी दृष्टिवाले, बुरे स्थान में रहनेवाले और दुर्जन मनुष्य के साथ यदि मेल-जोल किया जाता है तो वह मैत्री करनेवाला मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है।

एक सच्चे मित्र की परिभाषा देते हुए यही कहा जा सकता है—

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतञ्च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

जो पाप-कर्मों से बचाता है, हित-कर्मों में प्रवृत्त कराता है, गोपनीय बातों को गुप्त रखता है, गुणों को प्रकाशित करता है, आपत्तिकाल में जो साथ नहीं छोड़ता है, समय पड़ने पर सहायता करता है, उसी को विद्वानों ने अच्छे लक्षणों से युक्त सच्चा मित्र कहा है।

प्रेम का एक रूप सामान्य परिचितों के प्रति भी होता है। इस विशाल संसार में एक व्यक्ति का परिचय बहुत विस्तृत नहीं हुआ करता। जीवन में परिचय के कुछ आधार हुआ करते हैं। रिश्तेदारी परिचय का प्रथम आधार हुआ करता है। दूसरे, वे व्यक्ति जिनके साथ पढ़ते रहे हैं। शिक्षा इसका संयोजक सूत्र हुआ करती है। तीसरे, मुहल्लेदारी भी परिचय का एक आधार हुआ करती है। चौथे, सह-व्यवसाय भी परिचय का एक सुदृढ़ आधार होता है। पाँचवें, धर्म-संस्थान, जिसमें सत्संगी जाते हैं, परिचय का आधार हुआ करता है। सामान्य व्यक्ति के यही पाँच आधार होते हैं। हाँ, किसी संस्था के प्रचारक, कार्यकर्त्ता अथवा नेता का परिचय सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक हुआ करता है। ये तीनों व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा विशेष होते हैं। सामान्य व्यक्ति के उपर्युक्त पाँच आधार हुआ करते हैं। ठोस आधार के बिना परिचय अधूरा ही होता है। यह परिचय ही आगे चलकर प्रेम का रूप धारण करता है। प्रेम के कारण ही नमो-

नमस्ते का सम्बन्ध चलता है। प्रेम का कारण तो परिचय ही है, परन्तु परिचय के होने पर प्रेम भी हो, यह आवश्यक नहीं। श्रद्धा के पात्र व्यक्तियों को छोड़कर नमो-नमस्ते का सम्बन्ध भी उन्हीं से रखना चाहिए जिनमें प्रेम हो। आपने पहले नमस्ते कर दी तो दूसरे ने भी कर दी, और यदि आपने न की तो दूसरे ने आपकी परवाह भी न की तो इस परिचय का परिणाम इकतर्फा प्रेम ही है, दोतर्फा प्रेम नहीं। संसार में इकतर्फा प्रेम नहीं चल सकता। अतः यह परिचय प्रेम की स्थिति पर न पहुँचकर बीच में अधूरा ही रह जाता है। कवि के शब्दों में—

बेगानगी नहीं है बस इतनी दोस्ती है,
मैं उनको जानता हूँ, वो मुझको जानते हैं।

बराबरवालों से तो सभी प्रेम करते हैं, परन्तु अपने से छोटों के साथ प्रेम करने से ही प्रेम के वास्तविक रूप का परिचय मिलता है। जो आपसे धन-सम्पत्ति, रिश्तेदारी, आयु, सेवा और ज्ञान की दृष्टि से छोटे हैं उनके प्रति उपेक्षा और घृणा न करके प्रेम को दिखाना ही प्रेम का वास्तविक प्रदर्शन होता है। अपने से छोटों के प्रति प्रेम ही प्रेम की वास्तविक कसौटी हुआ करती है। अपने बराबर-वालों से प्रेम करने में प्रेम का वास्तविक रूप प्रकट नहीं होता।

प्रेम का एक रूप पशु-पक्षी-प्रेम के रूप में भी प्रकट होता है। यही प्रेम अहिंसा का रूप धारण कर लेता है। इसी के कारण मनुष्य पशु-पक्षियों का भी घात नहीं करता। वैदिक संस्कृति यहीं तक मनुष्य को लाना चाहती है। जैसी पीड़ा तुम्हें होती है वैसी ही पीड़ा उन मूक जीवों को भी होती है। पशु-प्रेम इसी रूप में प्रकट होता है कि जीवों को अकारण पीड़ा न पहुँचाई जाए। इसीलिए बलिवैश्वदेव यज्ञ को पंचमहायज्ञों में स्थान दिया गया है।

गावो ऽखिलः प्रकाशमूलम्

सेवा में,

स्वामी आनन्दबोध जी महाराज
प्रधान, सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा
दयानन्द भवन, नई दिल्ली
विषय : गोरक्षारूपी परम कर्त्तव्य की आर्यसमाज द्वारा अवहेलना

सम्माननीय महोदय,

सादर नमस्ते !

वेद नाम प्रकाश का है, ज्ञान का है। निःसन्देह अग्नि-पशु यह गाय ही संसार में सारे प्रकाश अर्थात् भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान का आधार एवं स्रोत है। वेद का प्रचार अथवा संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य कहा गया है, कि जो इस परम उपकारक प्राणी, यज्ञस्वरूपा गाय के बिना कदापि सम्भव नहीं। गोघृत द्वारा अग्निहोत्र-यज्ञ के बिना आर्यत्व कदापि आ नहीं सकता, पनप नहीं सकता। इस गोरक्षारूपी परम कर्त्तव्य की अवहेलना कर आर्यसमाज आज अपनी कीर्ति को खोकर, उद्देश्यहीन हुआ अन्धसम डोल रहा है। समय की यह कैसी विडम्बना है!

जीवों के कल्याणार्थ परम दयालु परमेश्वर ने इस चित्र-विचित्र संसार को, दो सूर्यों के मध्य यज्ञवेदी के रूप में उत्पन्न किया। संसार में जब आँख खुली तो आँख का देवता 'सूर्य' पहले ही विद्यमान था और इसी प्रकार विद्या तथा बुद्धि-रूपी आँख का देवता ज्ञान का सूर्य 'वेद' भी पहले ही विद्यमान था, इन दोनों सूर्यों के बिना संचार चल नहीं सकता। संसार में आज तक कोई भी ऐसा विद्वान् कवि नहीं हुआ कि जो वेदमन्त्र बना सके और न ही कोई ऐसा ऋषि-मुनि-योगी हुआ है, जो यह कह सके कि वेदमन्त्र का अर्थ जो कुछ उसने किया है, बस उतना ही है। यह प्रभु का ज्ञान तो अलौकिकता और अनन्तता में रमण करता है। प्रभु का ज्ञान अनन्त, प्रभु का ब्रह्माण्ड अनन्त कि जिसका वर्णन करते-करते योगिजन भी अन्त में नेति-नेति कहकर मौन हो जाते हैं। उस देव और वेद की महती महिमा का पार पाया नहीं जाता; और संस्कृत भाषा के जाने बिना वेद का सार जाना नहीं जाता।

मनुष्य-योनि प्रकाश की योनि कही गयी है, अतः सब प्राणी इसकी ओर आकर्षित रहते हैं। परम-पुनीत वैदिक काल में यज्ञों से सुगन्धित, सुरभित, 'अहिंसा परमो धर्मः' में ओत-प्रोत उस परम-सतोगुणी वायुमण्डल में ऋषिजन जब वेदगान करते तो सिंह तथा सर्प आदि हिंसक प्राणी भी प्रभावित हुए उनके चरणों में आ-आकर लोटपोट होते थे, अतः यह वाक्य सत्य ही है कि वेद प्राणिमात्र के लिए है। उन ऋषियों, योगियों के समक्ष यह भौतिक विज्ञान तो ऐसे था कि जैसे गाय के सन्मुख उसका बछड़ा, परन्तु वे तो विरक्त भाव में समाधिस्थ हुए प्रभु की गोद में सदा रमण करते थे।

महाभारत-युद्ध के पश्चात् वेद का सूर्य अस्त हो गया। वायुमण्डल घोर दुर्गन्धित, तमोगुणी, निकृष्ट बन गया। यज्ञ की प्रथा समाप्त हो गई। यज्ञों की परिभाषा-प्रक्रिया बदल गयी, गाय की अवहेलना हो गयी, वैदिक वर्णाश्रम-धर्मों की नींव गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली भंग हो गयी। गौओं के बिना गुरुकुल कदापि गुरुकुल नहीं कहला सकता; ब्रह्मचारियों का गौओं से अकाट्य सम्बन्ध रहता है। गौओं के सहवास, सेवा, पूजा के बिना विद्यार्थियों में तेज और ओज नहीं आ सकता, ऋतम्भरा और प्रज्ञाबुद्धियों का उदय नहीं हो सकता अर्थात् वे दार्शनिक, वैज्ञानिक और योगी नहीं बन सकते। संसार का सारा सुख-सौन्दर्य, गति-प्रगति और गान इस गोधन के ऊपर सदा आधारित रहता है। गौएँ अधिक होंगी तो संसार स्वर्ग बनेगा और मनुष्य अधिक होंगे तो संसार नरक बनेगा। इस गाय की अवहेलना से, हिंसा से ३३ कोटि देवता देवत्व को त्याग, रुद्ररूप धारण कर संसार को संतप्त तथा विनष्ट कर देते हैं, जैसे आज सब प्रकार के प्राकृतिक प्रकोपों, विद्रोह-विप्लवों और दुर्घटनाओं आदि द्वारा प्रपीड़ित हुआ संसार घोर विनाश के मुख में प्रविष्ट हो रहा है।

स्वामी दयानन्द को वेदोंवाला कहते हैं। गोपूजन अर्थात् श्रद्धापूर्वक गौओं का पालन, सम्वर्धन, अग्निहोत्र-यजन, वेद की परम आज्ञा, मर्यादा मानी गई है और इसी के पालनार्थ स्वामी दयानन्द ने प्रबल प्रयास किया था। वस्तुतः वेदोद्धार के लिए ही स्वामी दयानन्द और स्वामी शंकराचार्य का इस युग में प्रादुर्भाव हुआ था, और दोनों का कार्यक्षेत्र भी एकसमान संघर्षमय था। शंकराचार्य ने चार मठ गुरुकुलरूप में खोले थे और उसी के अनुरूप ही दयानन्द ने भी वैदिक पाठशाला खोली थी, जो चली नहीं थी, और इसकी असफलता में वे गाय की अवहेलना और गोवध के पातकी वायुमण्डल को कारण मानते थे। तत्कालीन उस सूक्ष्म-से गोवध के प्रति अपनी वेदना की पुकार करुणानिधान प्रभु के दरबार में 'गोकरुणा-निधि' में अन्त में इस प्रकार करते हैं—"हे महाराजाधिराज जगदीश्वर! जो इन (गौओं) को कोई न बचावे तो आप इनकी रक्षा करने और हमसे कराने में शीघ्र उद्यत हूजिए।" उन्होंने बड़ा सफल गोरक्षा-आन्दोलन भी

छेड़ा था। वे दो करोड़ प्रमुख व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से युक्त आवेदन-पत्र लेकर स्वयं महारानी विक्टोरिया के सन्मुख जाना चाहते थे। घोर दुर्भाग्यवश उनके तत्काल निधन से वह गोरक्षा-आन्दोलन फिर सदा के लिए असफल रह गया और संसार के विनाश का मूलकारण बन गया।

बड़े ही खेद तथा घोर पश्चात्ताप की बात है कि दयानन्द के उत्तराधिकारी आर्यसमाज ने गोरक्षा के प्रति अत्यन्त अवहेलना कर दयानन्द की आत्मा को घात पहुँचाया है, आर्यसमाज की उस विमल कीर्ति पर धब्बा लगाया है। अब 'बीती ताहि विसार दे' वाली बात का पाठ कर आर्यसमाज को प्रायश्चित्त कर तत्परता से उठ खड़ा होना चाहिए। चाहे कल प्रलय आनी है अथवा हजार वर्ष पश्चात्, धीरजन, आर्यजन कर्त्तव्य-पथ पर चलने में एक क्षण भी पग पीछे नहीं धरते। आर्यसमाज को आज अपनी सारी धन-सम्पत्ति और जन-शक्ति इस गोरक्षा-रूपी यज्ञ-अग्नि में श्रद्धापूर्वक स्वाहा कर देनी चाहिए और **"सर्वं वै पूर्णं स्वाहा"** का पाठ कर इस परम-यज्ञ की पूर्ति-समाप्ति द्वारा संसार के कुछ कल्याण का उपाय-प्रयास करना चाहिए। अब सर्वप्रथम आर्यसमाज के मंच से गो-महिमा का गान-बखान और गौवध के भीषण परिणाम का बखान सर्वत्र होना चाहिए। यथासम्भव गोधन की सँभाल और गोशालाएँ खोलनी चाहिएँ कि जहाँ गोदुग्ध को न बेचें, गोघृत बना, गोघृत के यज्ञों का सर्वत्र अनुष्ठान करना-कराना चाहिए। यह महान् पराक्रमकारी परम विषनाशक गाय का घी ही इस परमाणुबम के विष का तोड़ है, शामक है कि जिसे आज का वैज्ञानिक भी जानता है। महाभारत-युद्ध के समय महान् वैज्ञानिक कृष्ण ने अग्निहोत्र यज्ञ के परमाणुओं द्वारा एक परम-यंत्र (वैज्ञानिक रेखा) का आविष्कार कर और उसका युद्ध-स्थल के चारों ओर निर्माण करवाकर परमाणुविष के प्रभाव से बाहिरी-जगत् को बचाया था, परन्तु आज का वैज्ञानिक बचाव का ऐसा कोई यंत्र अभी बना नहीं पाया।

आर्यसमाज की बड़ी तत्परता बर्तनी होगी और सरकार के साथ बातचीत की विफलता में योजनाबद्ध गोरक्षा-आन्दोलन का भीषण शंखनाद कर देना होगा। इस परम कर्त्तव्य के समक्ष समय और परिस्थिति की बात अनार्षबुद्धि की बात होगी। यदि आज आर्यसमाज ने इसी प्रकार मूकता, उदासीनता अपनाये रखी तो घोर अपयश और पाप का भागी रहेगा; इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। ज्यों-ज्यों यह गोवध का जघन्य पाप प्रबल होता जा रहा है, समय भी भयंकरतर से भयंकरतम बनता जा रहा है। पाप का घट अब भर ही रहा है। आज इस विकट वेला में किसी कृष्ण जैसी दिव्य-आत्मा के प्रादुर्भाव का भी यहाँ अनुमान हो रहा है।

आशा है आदरणीय प्रधान जी इस ओर तत्काल ध्यान दे कर्त्तव्यपरायणता

का परिचय देंगे और आर्यसमाज को एकता और उज्ज्वलता के पवित्र सूत्र में पुनः बांधेंगे। इसी में लोक और परलोक का हित निहित है, और यही है युगपुरुष योगिराज दयानन्द के चरणों में आज सच्ची श्रद्धांजली।

उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी।

दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे, दयानन्द का काम पूरा करेंगे।
उठाये ध्वजा धर्म की हम फिरेंगे, उसी के लिए हम जियेंगे मरेंगे।।

भवदीय,

(पं० रणवीरचन्द कहोल)
१-३-१८३/२७/१०,
तल्लाबस्ती, कवाड़ीगुड़ा,
गांधीनगर, हैदराबाद-५००३८०

ग्यारह खण्ड

सम्पादक : डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु

प्रथम खण्ड : कल्याण मार्ग का पथिक

(स्वामी श्रद्धानन्द की आत्म-कथा का प्रामाणिक संस्करण)

द्वितीय खण्ड : धर्मोपदेश

तृतीय खण्ड : 1. आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त (महर्षि दयानन्द ने कुछ ऐसी बातें भी इस स० प्र० में लिखी थीं जो पीछे छपे स० प्र० में नहीं आईं) 2. आर्यों के नित्य कर्म 3. विस्तारपूर्वक सन्ध्याविधि 4. ईसाई मत और आर्यसमाज 5. आचार-अनाचार और छूतछात।

चतुर्थ खण्ड : 1. आर्यपथिक पं० लेखराम (जीवनी)

2. बन्दीगृह के विचित्र अनुभव (अमृतसर के (गुरुद्वारा गुरु का बाग) की जमीन के सम्बन्ध में 1922 में सिखों ने सत्याग्रह किया। सत्याग्रहियों को सम्बोधित करने के अपराध में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को

ब्रिटिश अदालत ने 16 मास का कारावास का दण्ड दिया। उसी समय के जेल-जीवन के अनुभव स्वामी जी ने लिखे)

3. उपदेशमंजरी के उर्दू अनुवाद की भूमिका 4. उर्दू ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका की भूमिका 5. पं० लेखराम लिखित महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र (उर्दू) की भूमिका।

पंचम खण्ड : 1. इनसाइड कांग्रेस (1926 में 'लिबरेटर' नामक साप्ताहिक पत्र में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के राजनैतिक विचारों को प्रकट करनेवाले लेखों का संग्रह)

2. हिन्दू संगठन (कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टिकरण तथा हिन्दू-हितों की उपेक्षा की नीतियों से असन्तुष्ट होकर स्वामी जी ने हिन्दू संगठन का कार्य आरम्भ किया था। यह पुस्तक 1924 में लिखी गई)।

षष्ठ खण्ड : 1. पारसी मत और वैदिक धर्म 2. वेद और आर्यसमाज 3. मातृभाषा का उद्धार 4. मुक्ति सोपान 5. रामायण रहस्य कथा 6. गोपाल कृष्ण गोखले से पत्र-व्यवहार 7. मनुस्मृति की भूमिका।

सप्तम खण्ड : गोपीनाथ का मुकदमा (एक ऐतिहासिक मुकदमा)

अष्टम खण्ड : जीवन-सन्देश : कुलियात संन्यासी के लेखों का हिन्दी अनुवाद।

नवम खण्ड : आशा की उषा : कुलियात संन्यासी के लेखों का हिन्दी अनुवाद महात्मा गांधी तथा स्वामी श्रद्धानन्द का पत्र-व्यवहार।

दशम खण्ड : आर्यसमाज, उसके संस्थापक तथा उसके शत्रु और पटियाल अभियोग।

एकादश खण्ड : स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का विस्तृत सचित्र जीवन चरित डॉ० भवानीलाल भारतीय की कलम से।

मूल्य : 660.00

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	५०.००
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	प्रेस में
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

श्रीकृष्ण चरित २५.००
श्याम जी कृष्ण वर्मा २४.००
आर्यसमाज विषयक
साहित्य परिचय २५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली
(सम्पादित) ग्यारह खण्ड ६६०.००

By Swami Satya Prakash Sarasvati

Founders of Sciences in
Ancient India
Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India
Two Volumes 600.00
Critical Study of
Brahmagupta and
His works 350.00
Geomatry in Ancient
India 350.00
God and His Divine Love 5.00

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली
चार खण्ड २४०.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश ३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००
सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा ५०.००
मैं ब्रह्म हूँ ४.००

प० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा ६.००
ईशोपनिषद् ४.५०

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय ६.००

प्रो० विष्णदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की
साधना व संघर्ष ६.००

सुरेशचन्द वेदालंकार

महकते फूल १०.००
ईश्वर का स्वरूप १५.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य २.५०
प्राणायाम विधि २.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप ५.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ३५.००
संध्या विनय ८.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा ३५.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सतसंग गुटका	१.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका	४.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००

घर का वैद्य

लेखक : सुनील शर्मा

प्याज	३.५०
लहसुन	३.५०
गन्ना	३.५०
नीम	३.५०
सिरस	३.५०
तुलसी	३.५०
आँवला	३.५०
नींबू	३.५०
पीपल	३.५०
आक	३.५०
गाजर	३.५०
मूली	३.५०
अदरक	३.५०
हल्दी	३.५०
बरगद	३.५०
दूध-घी	३.५०
दही-मट्ठा	३.५०
हींग	३.५०
[illegible]	३.५०
[illegible]	३.५०

बाल साहित्य

बाल शिक्षा दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	२.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	२.५०
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	०.७५
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	२.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	२.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	२.५०
नैतिक शिक्षा	सप्तम	२.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम	२.५०
नैतिक शिक्षा	नवम	३.००
नैतिक शिक्षा	दशम	३.००

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर	६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

डॉ० मनोहरलाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००

सन्तराम वत्स्य

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महाबली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	५.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	५.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह	६.००
ज्ञान की कहानियाँ	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेट मार्डन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
शरणागत की रक्षा (वेदों ,,)	६.००
कीर्ति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणों की कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइबल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रंथों ,,)	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेड़ों वाली	८.००
राजा-रानी की कहानी	८.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

हास्य-व्यंग्य

माडर्न शादी	३.००
हँसो हँसाओ	५.००
हास परिहास	५.००

विविध लेखक

भक्त बालक	६.००
पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हम सब राम-रहीम के बेटे	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	६.००
ऋतुगीत	६.००
सफलता की राह	५.००
उन्नति की राह	५.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें	६.००
अवसर को पहचानो	६.००
अपने आपको पहचानिये	६.००
आप सफल कैसे हों	६.००
उन्नति कैसे करें	६.००
धन कुबेर कैसे बनें	६.००

स्वास्थ्य और योग

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	६.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशु पालन	१२.००
हृदय-रोग कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

डॉ० जायसवाल

कैंसर : कारण निवारण	१०.००

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	१०.००
सौ वर्ष कैसे जियें	१०.००
आहार चिकित्सा	१२.००

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डाक्टर (होम्योपैथी)	१२.००
मानसिक रोग कारण निवारण	१०.००

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग एक वरदान	१०.००

श्यामजी गोकुल वर्मा

योग-साधना और प्राणायाम	१०.००

महिला-उपयोगी

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक कला	६.००
आधुनिक मिष्ठान कला	६.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	६.००
अचार मुरब्बे चटनी	६.००

जीवनियाँ

इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	१०.००

तकनीकी

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	१२.००
ट्रांजिस्टर गाइड	१२.००
ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	१०.००
टेलिविजन गाइड	१०.००

सन्तराय वत्स्य

स्वामी विवेकानन्द	१०.००
स्वामी रामतीर्थ	१०.००
रामकृष्ण परमहंस	१०.००

विविध

महाभारत		६.००
रामायण		६.००
पंचतन्त्र		६.००
हितोपदेश		६.००
चाणक्य नीति	संस्कृत-हिन्दी	१०.००
भर्तृहरिशतकम्	,,	१५.००
विक्रम वेताल	हिन्दी	६.००
सिंहासन बत्तीसी		६.००
एशियाई खेल		१२.००
जूडो आत्मरक्षा के लिए		१०.००
जूडो कुंग्फू कराटे		६.००
सफल व्यापारी कैसे बनें		१०.००

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास

अपने पराये		४.००
अकेली		४.००
चन्द्रनाथ		४.००
अनुराधा		४.००
परिणीता		४.००
बिन्दु का बेटा		४.००
वैकुण्ठ का दानपत्र		४.००
बड़ी दीदी		४.००
बिराज बहू		४.००
ब्राह्मण की बेटी		४.००
पंडित मोशाय		४.००
मँझली दीदी		४.००
देवदास		६.००
नया विधान		६.००
देहाती समाज		६.००
शुभदा		४.००
श्रीकान्त	(दो भाग)	३०.००
विप्रदास		१०.००
देना पावना		१५.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

FREE

पूर्वजों के मार्ग पर चल

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परिद्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ।।

यजुर्वेद ४ । २९

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आपके अनुग्रह से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग (येन) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रु-सेना वा दुःख देनेवाली भोग-क्रियाओं को (परिवृणक्ति) सब प्रकार से दूर करता और (वसु) सुख करनेवाले धन को (विन्दते) प्राप्त होता है, उस (अनेहसम्) हिंसारहित (स्वस्तिगाम्) सुखपूर्वक जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्रत्यपद्महि) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ।

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादि त्याग, विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्ममार्ग के प्रकाश के लिए ईश्वर की प्रार्थना, धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें ।

महर्षि दयानन्द की बोध-रात्रि के अवसर पर, गोविन्दराम हासानन्द फर्म के संस्थापक मेरे पूज्य पिता श्री गोविन्दराम जी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ और फिर प्रतिज्ञा करता हूँ कि उनके दिखाये मार्ग पर चलते हुए वैदिक साहित्य के प्रकाशन में वृद्धि करता रहूँगा। गत वर्ष स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली ग्यारह खण्डों का प्रकाशन मेरे लिए गौरव की बात रही है।

—विजय कुमार

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक ७] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [फरवरी १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

नीतिशास्त्र के प्रसंग

१. वेद में महत्त्वाकांक्षा

लेखक—पं० धर्मदेव जी मनीषी

अथर्ववेद के दूसरे काण्ड के ग्यारहवें सूक्त में बृहत्=महत्त्वाकांक्षा किस विध होती है, यह बताया है—

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥

तू दुष्ट क्रिया का दूषक है=विनाशक है। तू हत्या-साधनों का घातक है। तू वज्र का भी वज्र है, अतः कल्याण प्राप्त कर और अपने जैसों को लाँघ जा।

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥२॥

तू प्रगति है। तू विरोधियों के सामने आने में समर्थ है। तू विरोधियों पर आक्रमण करनेवाला है, अतः अपने समान लोगों से आगे बढ़ और कल्याण प्राप्त कर तथा करा।

प्रति तमभिचर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३॥

जो हम धार्मिक जनों से द्वेष करता है, वैर-विरोध करता है और तत्फल-स्वरूप जिससे हम धार्मिक लोग अप्रीति करते हैं, उसपर आक्रमण करते हैं, उस पर आक्रमण करने की पहल कर। इस उपाय से तू अपने जैसों से आगे बढ़ और कल्याण प्राप्त कर तथा करा।

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४॥

तू ज्ञानी है, तू तेजस्वी है दूसरों को तेज देनेवाला है, तू शरीर-रक्षक है, अतः तू समानों से आगे बढ़ और कल्याण प्राप्त कर तथा करा।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ।।५।।

तू शुक्र=वीर्यवान्, शीघ्रकारी एवं दीप्तिमय है। तू चमकनेवाला है। तू स्वः असि=उत्तम स्थितिवाला है। तू ज्योति=प्रकाशस्वरूप है, अतः तू अपने समानों से आगे वढ़ और कल्याण प्राप्त कर तथा करा।

क्या यह सब महत्त्वाकांक्षा के बिना सम्भव है ? वेद की शिक्षाओं को धारण करनेवाला ही कह सकता है—

मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ।।—अथर्व० ३।५।२

हे पालकश्रेष्ठ ! मुझमें क्षात्रशक्ति है, वह मुझमें धन-सम्पत्ति धारण कर रही है। इस क्षात्रशक्ति के कारण मैं राष्ट्र के अभिवर्ग में अपना होकर उत्तम बन जाऊँ। जो मनुष्य वेद की इन शिक्षाओं को जीवन में धारण कर लेता है, वह भगवान् से प्रार्थना करता है—

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ।।—अथर्व० १६।३।१
नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ।।—अथर्व० १६।४।१

मैं हितरमणीय पदार्थों का सिरमौर हूँ, अतएव मैं अपने जैसों का शिरोमणि बनूँ।।

मैं हितरमणीय पदार्थों का केन्द्र हूँ, अतएव मैं अपने जैसों का नाभिकेन्द्र बनूँ।।

वेद का तो उद्देश्य ही मनुष्य को ऊपर उठाना है, जैसाकि ऋग्वेद ८।१।६ में कहा है—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम् ।

हे पुरुष ! तेरा कर्त्तव्य ऊपर जाना है न कि नीचे गिरना।

जब एक साधारण मनुष्य के लिए वेद उद्यानं=ऊपर जाने, उठने का उपदेश कर रहा है तो राष्ट्र-कर्मियों के लिए कल्पना करना कुछ कठिन नहीं है।

राष्ट्र-सेवा करनेवालों के प्रति वेद का जो उपदेश है उसे देखिए और फिर विचारिए। वेद कहता है—

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ।।
—अथर्व० १९।३७।३

तुझे ऊर्जे=जीवन के लिए, बल के लिए, ओज के लिए, सह=सामर्थ्य के लिए, शत्रुओं को दबाने के लिए और सम्पूर्ण आयु राष्ट्र के लिए आदेश करता

हूँ, प्रेरित करता हूँ।

भगवान् के उपदेश अत्यन्त स्पष्ट होते हैं। उसमें सन्देह का अवकाश नहीं होता। जैसे इस मन्त्र में राष्ट्रभृत्य के लिए तेजस्विता धारण करने का उपदेश है इस भाँति अन्यत्र भी वेद में कहा है—

उच्छ्रयस्व महते सौभगाय।

'महान् सौभाग्य के लिए महत्त्वाकांक्षी बन।'

स्वतन्त्रता, स्वाधीनता, निर्भयता के अतिरिक्त और बड़ा सौभाग्य इस जगत् में क्या हो सकता है!

वेद के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह मनुष्यों को वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ने, ऊपर चढ़ने का उपदेश देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य-जन्म सबसे उत्कृष्ट है। किसी अन्य प्राणिसमुदाय में वाचा-शक्ति नहीं है। वाणी और ज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस वाणी का माहात्म्य है कि मनुष्य ने पाठशालाएँ, विद्यालय, महाविद्यालय, विभिन्न संस्थाएँ स्थापित कर रखी हैं। वाणी के साथ सहज सम्बन्ध ज्ञान-गौरव का है। मनुष्य नित्य नये-नये आविष्कार करके अपने तथा अन्य प्राणियों के सुख-समृद्धि का हेतु बन रहा है। मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा ही आगे बढ़ने में काम आती है।

२. रामायण में रामराज्य

रामचन्द्र जी का राज्य इतना श्रेष्ठ और आदर्श था कि वहाँ न तो विधवाओं का करुणक्रन्दन था, न सर्प जैसी प्रवृत्तिवाले शठपुरुषों का भय। राज्य-भर में चोरों, डाकुओं और लुटेरों का निशान तक नहीं था। दूसरों के धन को लेने की बात तो दूर रही, कोई छूता तक नहीं था। राम के शासनकाल में किसी वृद्ध ने बालक का मृतक-संस्कार नहीं किया। राम-राज्य में सब अपने-अपने वर्णानुसार धर्मकृत्य करते थे, इसलिए सदा सब प्रसन्न रहते थे। प्रजा के लोग एक-दूसरे को सताते नहीं थे। राम के राज्य में युवकों की आयु दीर्घ होती थी। मनुष्य पुत्रों से युक्त थे। अयोध्यावासी सब रोग और शोक से रहित दीखते थे। राम के राज्य में वृक्ष सदा फूलते-फलते रहते थे। वर्षा यथासमय होती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी लोभी नहीं था। सब लोग अपने-अपने कार्यों में संतुष्ट रहते थे। श्री रामचन्द्र के राज्य में सारी प्रजा सत्यपरायण थी, झूठ से सदा दूर रहती थी, सब लोग धर्मपरायण थे। रामचन्द्र जी ने सब मर्यादाओं का पालन किया। उन्होंने किसी भी मर्यादा को भंग नहीं किया, इसी कारण वे मर्यादा-पुरुषोत्तम कहे जाते थे।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का जीवनचरित युग-युगों से भारत के मानव को प्रेरित करता आया है। उनकी पितृभक्ति, सेवाभावना, दानवी वृत्तियों को समाप्त करने की उद्दाम कामना और मोह से विरक्ति अपनी उपमा आप ही है। एक आदर्श मनुष्य कैसा होना चाहिए, उसकी वृत्तियाँ कैसी होनी चाहिएँ, इस सबका आदर्श चित्रण वाल्मीकि रामायण में पद-पद पर मिलता है। आधुनिक युग में महात्मा गांधी ने भारत में जिस आदर्श राज्य की कल्पना की थी, उसे राम-राज्य का नाम दिया था। रामराज्य एक आदर्श राज्य के प्रतीकरूप में ही कहा गया था। भारत में धर्म, सत्य, ज्ञान और आदर्शों का प्रवाह बहाने के लिए राम सर्वोत्तम साधन है। राम-राम का सम्बोधन ग्राम-ग्राम में प्रचलित है अत: 'राम' के आदर्शों को जीवन में ढालने के लिए उनके चरित्र का पारायण एकमात्र प्रभावशाली प्रकार है। मानव-जीवन-परिवर्तन के लिए राम, आदर्शों के ज्योति-स्तम्भ राम, असुर-संहारक राम, राज्य का त्यागनेवाले राम, भाई के भक्त, पिता के आज्ञाकारी, पत्नी के अनन्य भक्त राम हमारे आदर्श प्रतीक बनें यह हमारी कामना है। हम राम की छाया में चल सकें। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन आदर्श बनने का मार्गदर्शन है। उनका शौर्य, तप, त्याग, मातृ-पितृ-भक्ति, कर्त्तव्य-पालन, अधर्म-समाप्ति की भावना, सभी के लिए ज्योति-स्तम्भ के समान है। जब तक धरती पर सूर्य, चन्द्र, तारागण रहेंगे तब तक श्री राम का इतिहास स्वर्णपृष्ठों पर अंकित होगा। रामायण में कहा है—

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ।।—अरण्यकाण्ड ६।३०

धर्म से ही धन, सुख तथा सब मनोवांछित पदार्थ प्राप्त होते हैं। इस संसार में धर्म ही सार वस्तु है।

३. योगिराज श्रीकृष्ण का उपदेश

श्रीकृष्ण जी के विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज अपने ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश के एकादश समुल्लास में अपनी सम्मति लिखते हैं—

"देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है जिसमें कोई अधर्म का आचरण, श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवतवाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाए हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुनाके

अन्य मतवाले श्रीकृष्ण जी की बहुत-सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती?"

श्रीकृष्ण उवाच—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

श्रीकृष्ण बोले—हे पृथापुत्र अर्जुन! नपुंसकता को मत प्राप्त हो। यह तुझमें, तेरे लिए युक्त नहीं है। हे शत्रुओं को तपानेवाले, तुच्छ हृदय की दुर्बलता को छोड़कर उठ।

अर्जुन उवाच—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥

अर्जुन बोले—हे शत्रु-नाशक एवं मधुनाशक कृष्ण! मैं संग्राम में पूजा के योग्य भीष्म और द्रोण के साथ बाणों से कैसे लड़ूँगा?

श्रीकृष्ण उवाच—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

श्रीकृष्ण बोले—शरीरधारी के इस शरीर में जैसे बालकपन, जवानी और बुढ़ापा आते हैं, उसी तरह अन्य देह की प्राप्ति होती है। इस विषय में बुद्धिमान् मोह नहीं करता।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

नष्ट न होनेवाले, 'इन्द्रियों के' ज्ञान से दूर, नित्य तो आत्मा है; देहधारी के ये शरीर विनाशी कहे हैं, फिर तो इनका नाश अवश्य होगा, इसलिए युद्ध करो।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

जो इसे मारनेवाला जानता है और जो इसे मारा हुआ मानता है, वे दोनों नहीं जानते। न यह मारता है और न मारा जाता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही॥

जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़कर और नये पहनता है, वैसे ही

शरीरधारी पुराने शरीरों को छोड़कर और नयों में प्रवेश करता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

इसे शस्त्र नहीं काटते, इसे अग्नि नहीं जलाती, इसे जल नहीं गलाता और वायु इसे नहीं सुखाता।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।

मेरी तो निश्चित सम्मति यही है कि यह आत्मा सबके शरीर में सदा अमर है, इसलिए तुझे सब प्राणियों का शोक नहीं करना चाहिए।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।

और अपने धर्म को भी देखकर डोलना नहीं चाहिए, क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्म के अनुकूल युद्ध से दूसरा श्रेष्ठ कर्म नहीं है।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।

अब यदि तू इस धर्म के अनुकूल संग्राम को नहीं करेगा तो अपने धर्म और यश को त्यागकर पाप को प्राप्त करेगा।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।।

और लोग तेरे चिरस्थायी अपयश का कीर्तन किया करेंगे और श्रेष्ठ पुरुष का अपयश मौत से बढ़कर है।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः।।

यदि तू मारा गया तो स्वर्ग को प्राप्त करेगा और यदि जीत गया तो पृथिवी का भोग करेगा। इसलिए हे कुन्तीपुत्र! युद्ध के लिए निश्चय करके उठ।

यह ऊपर की बात हमने सांसारिक दृष्टि से कही है। तुम जिस भावना के अधिकारी हो, वह यह है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समझकर फिर युद्ध के लिए तैयार हो। इस तरह तुझे पाप न लगेगा।

यहाँ यह संक्षेप से योगिराज श्रीकृष्ण का अर्जुन को उपदेश है। गीता के

अनासक्त कर्मयोगमय मार्ग को झोपड़ी-झोपड़ी तक पहुँचाओ। कृष्ण ने राज-नीति द्वारा विश्व का कल्याण करना चाहा परन्तु राजनीति अधूरी है। राजनीति कहती है 'यथा राजा तथा प्रजा'। परन्तु राजनीति से पहले ब्रह्मनीति है। ब्रह्म-नीति कहती है—'यथा प्रजा तथा राजा'। जिस प्रजा का मस्तिष्क विद्या द्वारा परिष्कृत तथा अन्तःकरण सदाचार की शिक्षा से पवित्र हो चुका हो वही ठीक राजा का चुनाव कर सकती है, नहीं तो भ्रष्टमति प्रजा भ्रष्टाचारी शासक को चुनकर और भ्रष्टाचारी होकर एक दिन नष्ट हो जाती है। इसलिए वेद ने कहा है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना।।—यजुर्वेद २०।२५

जहाँ ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति दोनों परस्पर एक-दूसरे की समर्थक होकर चलती हैं, उस पुण्य देश को मैं जान जाऊँ जहाँ व्रताग्नि सम्पन्न होती है।

४. महात्मा विदुर की नीति-वार्ता

धर्मराज युधिष्ठिर ने प्रति-संदेश के साथ संजय को महाराज धृतराष्ट्र के पास भेजा। संजय ने उनके पास आकर उनको बहुत खरी-खोटी सुनाई, और यह कहकर कि युधिष्ठिर का सन्देश कल सभा में सुनाऊँगा, वह चला गया। धृतराष्ट्र को चिन्ता ने घेर लिया कि कल संजय आकर न जाने क्या कहेगा? इसीलिए महाराज धृतराष्ट्र को रातभर नींद नहीं आई। महाभारत में इस प्रकरण को इसी कारण 'प्रजागरपर्व' कहा गया है, जिसका अर्थ यही है कि अच्छी तरह से जागते रहने का पर्व। इसी चिन्ता में बैठे-बैठे उनको सारी रात बीत गई। सवेरा हुआ। द्वारपाल को बुलाकर उन्होंने विदुर को बुला लाने को कहा। दूत के द्वारा इस प्रकार निवेदित किये जाने पर राजभवन के द्वार पर आकर विदुरजी ने द्वारपाल से कहा—हे द्वारपाल! महाराज धृतराष्ट्र से जाकर कहो कि मैं विदुर आ गया हूँ। इसके बाद विदुर ने महाराज धृतराष्ट्र के राजभवन में प्रवेश करके चिन्ता करते हुए राजा धृतराष्ट्र से हाथ जोड़कर यह बात कही—हे महाराज! आपकी आज्ञा के अनुसार यह विदुर आ गया है। यदि मेरे करने योग्य कोई कार्य हो तो मैं उसे करने के लिए तैयार हूँ। मुझको बतलाइए। इसपर धृतराष्ट्र बोले—

संजयो विदुर प्राज्ञो गर्हयित्वा च मां गतः।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति।।
तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम्।।

हे विदुर ! कल संजय आया था और मेरी निन्दा करके चला गया। आज सभा के बीच में वह युधिष्ठिर, जो अजातशत्रु (जिसका कोई दुश्मन न हो) कहे जाते हैं, का सन्देश सुनाएगा। उस कुरुश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर का सन्देश मैंने अभी नहीं सुना है, इसलिए उसकी याद मेरे शरीर को जलाती रही है और इसी कारण मुझे रातभर नींद नहीं आई। जागने पर भी मेरी देह जल रही है। इस समय तुम जिस बात में मेरा कल्याण देखते हो, हे विदुर, वही बात तुम मुझे बतलाओ। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि तुम धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र में निपुण हो। तब विदुरजी ने कहा—

राजलक्षणसम्पन्नस्त्रैलोकस्याधिपो भवेत्।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र! युधिष्ठिरः॥
आनृशस्यादनुक्रोशाद् धर्मात् सत्यात् पराक्रमात्।
गुरुत्वात् त्वयि सम्प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते॥
दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा।
एतैरैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि॥

हे धृतराष्ट्र ! जो राजाओं के सभी लक्षणों से युक्त है और जो तीनों लोकों का स्वामी हो सकने में समर्थ है, वह आपका प्रेष्य (अनुगामी) है, उसी युधिष्ठिर को आपने अपने घर से निकाल दिया है। हे धृतराष्ट्र ! जो अहिंसक, दयालु और धर्मात्मा है, जो सत्यवादी और पराक्रमशाली है, वह आपके बड़प्पन का खयाल करते हुए सभी दुःखों को सहन कर रहा है। दुर्योधन, सौबल, कर्ण और दुःशासन, इन सबको राज्य का भार सौंपकर तुम किस प्रकार की विभूतियों की इच्छा करते हो ? अर्थात् पापी और अधर्मी हाथों में राज्यलक्ष्मी नहीं ठहर सकती, उससे न तुम्हें कुछ कीर्ति ही मिलेगी और न कुछ ऐश्वर्य ही। इससे आगे महात्मा विदुरजी पण्डित के लक्षण कहते हैं जिससे सिद्ध हो जाए कि दुर्योधन, कर्ण आदि विद्वान् नहीं हैं—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्धान एतत् पण्डितलक्षणम्।
क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥
यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते॥
यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते॥

शास्त्र के अनुसार आत्म-तत्त्व को जानना, अपने बल को विचारकर किसी कार्य में प्रवृत्त होना, सबकी बात सहन करने की शक्ति और धर्म में स्थिर श्रद्धा रखना, ये सभी बातें जिस पुरुष को उसके पुरुषार्थ से नहीं गिरातीं अर्थात् जो व्यक्ति इन सबका समुचित आचरण करता है वही पण्डित कहलाता है। जो व्यक्ति अच्छे कार्यों का, जो कार्य प्रशंसनीय हैं, उनका आचरण करता है और जो निन्दनीय कार्यों के पास नहीं फटकता, जो अनास्तिक अर्थात् आस्तिक—परमात्मा की सत्ता में विश्वास रखता है वही पण्डित कहा जाता है। यही पण्डित होने का लक्षण है। क्रोध, आनन्द, दर्प—घमण्ड, लज्जा, अविनय और अपने को पूज्य समझने की भावना, यह सभी चीजें जिस व्यक्ति को पुरुषार्थ से च्युत नहीं करतीं अर्थात् जो कभी इनके वश में होकर अनर्थ का आचरण नहीं करने लगता वही पण्डित कहा जाता है। जिसके कार्य को, जिसकी इच्छा को और जिसके निश्चित विचार को दूसरे लोग नहीं जान पाते, केवल उस कार्य के सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर उसके परिणाम को ही जान पाते हैं, वही व्यक्ति पण्डित कहा जाता है। जिसके काम में जाड़ा-गर्मी, डर-प्रेम, पैसे का होना या न होना, ये सभी चीजें कोई भी विघ्न नहीं डाल पाती हैं, वही पण्डित कहा जाता है अर्थात् पण्डित को ये द्वन्द्व चंचल नहीं कर पाते। जो किसी मनुष्य की बात को समझ तो तुरन्त ही जाता है, पर बात पक्की करने के लिए तथा उसके विषय में अधिक-से-अधिक जानने के लिए अधिक समय तक उस बात को सुनता रहता है, जो व्यक्ति किसी कार्य को खूब अच्छी तरह से मतलब समझ लेने पर शुरू करता है, केवल इच्छा के बल पर ही किसी काम को जैसा मन ने चाहा वैसा नहीं करने लग जाता, जो पुरुष बिना विशेषरूप से पूछे जाने पर किसी दूसरे की बात में नहीं बोलता है, वही पण्डित होता है। बस ये ही सारे ज्ञानवान् पण्डितों के प्रधान लक्षण बतलाये जाते हैं। जो पुरुष पण्डितों जैसी बुद्धि रखते हैं, वे कभी उस चीज को नहीं चाहते, जो न मिल सकने योग्य है। बीती हुई या नष्ट हुई चीज के लिए चिन्ता भी नहीं करते हैं, और वे बड़ी-से-बड़ी विपदाओं में फँस जाने पर भी कभी मोह का सहारा नहीं लेते हैं। जो धारावाही रूप से बिना रुके बोल सकता है, जो चित्र-विचित्र कथाओं को कह सकता है, जो नाना तर्कों में प्रवीण, जो प्रतिभाशाली है और जो एकदम ही जबानी ग्रन्थ को सुना सकता है, वही पण्डित कहा जाता है। जिसका शास्त्र-ज्ञान बुद्धि के बल पर चलता है और जिसकी बुद्धि शास्त्र का अनुसरण करके आचरण करती है और जो पुरुष शिष्ट पुरुषों के आचरण का उल्लंघन नहीं करता, उसी को पण्डित की उपाधि मिलती है।

महात्मा विदुरजी पण्डित के लक्षण बताकर मूर्ख के लक्षण भी राजा धृतराष्ट्र को सुनाते हैं—

अश्रुतश्च समुन्नदो दरिद्रश्च महामना।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः।।
अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम्।।
अनाहूतः प्र विशति अपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमाः।।
एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन्नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव।।

(महाभारत, प्रजागरपर्व)

जो शास्त्रों को बिना पढ़े ही अभिमान करता है, निर्धन होकर भी बड़ी बात की इच्छा करता है और जो पुरुष बिना काम किये ही धन को पाना चाहता है, उसे ही पण्डित लोग मूर्ख कहा करते हैं। जो शत्रुओं से सलाह करता है, जो अपने मित्र से कपट और वैर रखता है, और सदा उसकी बुराई करता है, जो बुरे कामों को प्रारम्भ करता है, उस पुरुष को मूर्ख बुद्धिवाला बतलाया गया है। मूढ़ चित्तवाला अधम मनुष्य बिना बुलाए ही भीतर चला आता है, बिना पूछे ही बात बोलता है तथा अविश्वसनीय मनुष्य पर भी विश्वास करता है। हे राजन् धृतराष्ट्र! जिस तरह से लोग समुद्र में नाव या जहाज से पार जाते हैं उसी तरह भवसागर को पार कर स्वर्ग को जाने के लिए सत्य एक सीढ़ी है। दूसरी कोई भी चीज नहीं है जो व्यक्ति का उद्धार कर सके। तुम उस सत्य को ही नहीं समझ पा रहे हो। इस प्रकार कहते हुए अन्त में महात्मा विदुर ने कहा—

य आत्मनापत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।
अनन्ततेजाः सुमना समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते।।
वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः।
त्वयैव बालाः वर्धिताः शिक्षिताश्च तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय।।
प्रदायैषामुचितं तात! राज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः।
स देवानां नापि च मानुषाणां भविष्यसि त्वर्कणीयो नरेन्द्र।।

(महाभारत, प्रजागरपर्व)

जो स्वयं कोई बुरा काम हो जाने पर अपने-आप ही लज्जित हो जाता है, वह मनुष्य सम्पूर्ण संसार में गुरु के समान पूज्य समझा जाता है। वह मनुष्य अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है। उसका चित्त सदैव प्रफुल्ल और सावधान रहता है और वह पुरुष सूर्य की तरह प्रकाशित होता है। अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट्र! शाप के द्वारा दग्ध हो जानेवाले राजा पाण्डु के पाँच पुत्र इन्द्रों के समान ही प्रतापी और पराक्रमी हैं। तुमने ही बचपन में इन पाँचों का लालन-पालन किया है। तुम्हारे द्वारा ये इतने बड़े हुए हैं। तुम्हींने उनको पढ़ाया और लिखाया है। यही कारण है कि वे तुम्हारी

आज्ञा का पालन करते हैं। कुछ दुर्योधन के कारण वे वन में थोड़े रहे हैं—इसीलिए हे तात ! इन लोगों का उचित हिस्सा (आधा राज्य) देकर अपने पुत्रों के साथ सुखी होकर प्रसन्नचित्त होइए। हे महाराज ! ऐसा करने पर अर्थात् युधिष्ठिर आदि को उनका उचित हिस्सा देकर तुम फिर न तो देवताओं के और न मनुष्यों के, किसी के भी तर्कणीय न बनोगे। मतलब यह कि तुम उनको उनके राज्य का हिस्सा दे दोगे तो कोई भी तुमपर शंका न करेगा।

५. धर्मराज युधिष्ठिर को महर्षि नारद का उपदेश

यह महाभारत के सभापर्व का पंचम अध्याय है। इसका प्रसंग इस प्रकार है। खाण्डव वन का दहन करते समय अर्जुन ने उसमें रहनेवाले मय दानव का प्राणत्राण किया। कृतज्ञ मय ने अर्जुन का प्रत्युपकार करना चाहा, किन्तु आर्यवीर अर्जुन ने उत्तर दिया—

कृतमेव त्वया सर्वं स्वस्ति गच्छ महासुर।
प्रीतिमान् भव मे नित्यं प्रीतिमन्तो वयं च ते।।

हे महासुर-महाप्राण ! आपने सब-कुछ कर दिया, आनन्द से जाइए, आप हमसे सदा प्रीति रखिए, हमारी आपपर सदा प्रीति रहेगी।

किन्तु मय ने प्रत्युपकार के लिए बहुत आग्रह किया और कहा कि मैं दानवों का विश्वकर्मा हूँ। उसके इस आग्रह से गृहीत होकर अर्जुन ने कहा—

प्राणकृच्छ्राद्विमुक्तं त्वमात्मानं मन्यसे मया।
एवं गते न शक्ष्यामि किञ्चित्कारयितुं त्वया।।
न चापि तव संकल्पं मोघमिच्छामि दानव।
कृष्णस्य क्रियतां किंचित् तथा प्रतिकृतं मयि।।

आप अपने-आपको मेरे द्वारा प्राण संकट से छुड़वाया हुआ मानते हो, ऐसी दशा में मैं तो आपसे कुछ करा नहीं सकता। किन्तु, हे दानव ! आपके संकल्प को भी विफल नहीं होने देना चाहता, अतः आप श्रीकृष्ण जी के लिए कुछ कर दीजिए, इस भाँति मेरे प्रति आपका प्रत्युपकार हो जाएगा।

मय की प्रेरणा पर प्रत्युत्पन्नमति कृष्णजी ने कहा—आप कुछ करना चाहते हैं तो महाराज युधिष्ठिर के लिए ऐसी सभा=प्रासाद बना दीजिए जो अनुपम हो। मय ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण जी का वचन पालन करते हुए विमान समान प्रासाद बना दिया। राजा युधिष्ठिर ने उसे यथेष्ट पुरस्कार दिया। इस सभा को बनने में चौदह मास से अधिक लगे थे। राजा युधिष्ठिर ने दस हजार ब्राह्मणों को भोजन कराके नये भवन में प्रवेश किया। ब्राह्मणों को पुष्कल दान-दक्षिणा भी दी।

यह शालाप्रवेश-संस्कार धूमधाम से सम्पन्न कराके बैठे ही थे कि निखिल विद्या-निष्णात नारद मुनि आ पहुँचे। मुनि ने राजा से राजप्रबन्ध-सम्बन्धी कुछ प्रश्न किये। उनमें नीति-विषयक प्रायः सकल तत्त्व आ गए हैं। उनका यहाँ संक्षेप से वर्णन किया जाएगा।

नारद उवाच—

कच्चिदर्थाश्च कल्पन्ते धर्मे च रमते मनः।
सुखानि चानुभूयन्ते मनश्च न विहन्यते॥
कच्चिदाचरितं पूर्वैर्नरदेव पितामहैः।
वर्तसे वृत्तिमक्षुद्रां धर्मार्थसहितां त्रिषु॥ इत्यादि॥

आपके धन तो सफल होते हैं, और धर्म में भी आपका मन लगता है न? सुखों का अनुभव होता है न? और मन ऊब तो नहीं जाता? अपने पूर्वज बाप-दादों के आचरित कार्यों में, हे राजन्! उत्तम, मध्यम, अधम पुरुषों के प्रति धर्म और अर्थ से युक्त उदार व्यवहार का बर्ताव तो करते हो न? क्या अर्थ (लोभ) के द्वारा धर्म का घात तो नहीं करते हो, अथवा धर्म के द्वारा अर्थ का विघात तो नहीं करते हो? अथवा प्रीतिपूर्ण काम के द्वारा धर्म और अर्थ दोनों का नाश तो नहीं करते हो? हे विजयिश्रेष्ठ! हे सदावरद! कालज्ञ होकर, समय का विभाग करके धर्म, अर्थ तथा काम का सेवन तो करते हो न?

कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः।
कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति सदा युधि॥
कच्चिन्नैको बहूनर्थान्सर्वशः साम्परायिकान्।
अनुशास्ति यथाकाम कामात्मा शासनातिगः॥इत्यादि॥

प्रधानमन्त्री आदि सभी कुलीन तथा अनुरागी तो हैं न? क्या तेरे कार्यों के लिए वे सदा प्राण त्यागने में तत्पर रहते हैं? कहीं कोई संग्रामादि-सम्बन्धी अनेक कार्यों को कोई अकेला स्वार्थी, शासन का उल्लंघकारी होकर यथेच्छ तो नहीं चलाता है? अपने पुरुषार्थ से कर्त्तव्य का उत्तमता से करनेवाला पुरुष अधिक मान अथवा अधिक वेतन तथा भत्ता प्राप्त करता है न? तुम विद्याविनीत, ज्ञानविशारद मनुष्यों का यथायोग्य और उनके गुण के अनुसार दान द्वारा सत्कार करते हो न? हे भरतश्रेष्ठ! तुम, तुम्हारे लिए मृत्यु को प्राप्त हुए अथवा संकट को प्राप्त हुए मनुष्यों के परिवारों का पालन, भरण-पोषण करते हो न? हे पार्थ! क्या तुम भय के कारण अथवा क्षीण होने के कारण शरणागत शत्रु को तथा युद्ध में हारे हुए का पुत्र के समान पालन करते हो? इत्यादि।

इस प्रकार प्रश्नों के पश्चात् कुरुश्रेष्ठ महात्मा राजा युधिष्ठिर ने उस ब्राह्मण-श्रेष्ठ की बातें सुनकर अभिवादन (चरण-स्पर्शपूर्वक प्रणाम) करके प्रसन्न होकर

देवरूप नारद को कहा—

एवं करिष्यामि यथा त्वयोक्तं
प्रज्ञा हि मे भूय एवाभिवृद्धा ।।
उक्त्वा तथा चैव चकार राजा
लेभे महीसागरमेखलां च ।।

महाराज ! जैसा आपने कहा है मैं वैसा ही करूँगा। आपके उपदेश से मेरी बुद्धि और अधिक बढ़ी है। यह कहकर राजा ने किया भी वैसा ही। इससे राजा ने सागराम्बरा पृथिवी प्राप्त की।

६. पण्डित कणिक की कुटिल नीति

पाण्डुपुत्रों के बढ़े हुए यश को सुनकर धृतराष्ट्र के हृदय में दाह पैदा हो गया और वह लगातार सोचने लगा कि किस तरह पाण्डुपुत्रों का यश हटकर मेरे पुत्रों का मान बढ़े? जब उसे कोई उपाय न सूझा तो उसने कुटिल नीति के पण्डित कणिक मन्त्री को अपना दुःख कहा। इसके उत्तर में कणिक ने जो विचार कहे वे कणिक-नीति के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका कुछ सार हम पाठकों को सुनाते हैं। कणिक ने कहा—शत्रु के छिद्र सदा ढूँढता रहे, अपने छिद्रों को प्रकट न होने दे। वैरी का नाश कभी अधूरा न करे किन्तु जड़मूल से उसका नाश करे अन्यथा वही शत्रु इस प्रकार दुःख देता है, जैसे अधूरा निकला हुआ देह का काँटा। यदि अन्धा या बहरा बनने से काम बनता हो तो अन्धा तथा बहरा बन जाना चाहिए। यदि विश्वास देने से शत्रु मरे तो शिकारी की तरह विश्वास में लाकर वध कर देना चाहिए।

कणिक के दुर्मन्त्र—

अग्न्याधानेन यज्ञेन काषायेण जटाजिनैः।
लोकान् विश्वासयित्वैव ततो लुंपयेद्यथा वृकः ।।
अनाम्य फलितां शाखां पक्वं पक्वं प्रशातयेत् ।
फलार्थोयं समारम्भो लोके पुंसा विपश्चिताम् ।।
वदेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः ।
ततः प्रत्यागते काले भिद्याद् घटमिवाश्मनि ।।

अग्निहोत्री, यज्ञकर्ता, भगवे वस्त्र पहनकर, जटा बढ़ा, मृगछाला ओढ़, लोगों को बिश्वास में लाकर, मौके पर बाघ की तरह झपट पड़े। फलदार वृक्ष को नमाकर, पक्के-पक्के फल सब उतार ले, क्योंकि फल के लिए ही संसार का यत्न

है। मौका देखकर शत्रु को सिर पर उठा ले, पर अपना दाव देखकर ऐसा फेंके जैसे पत्थर पर मिट्टी का घड़ा। शत्रु पर दया कभी न करे, चाहे वह दयापात्र भी हो। भीरु को भय से, शूर को हाथ जोड़कर, लोभी को धन देकर, सम या न्यून को बल से नाश करे। शत्रु के पक्ष में खड़ा हुआ पुत्र हो, सखा हो, भाई, पिता व गुरु हो, शत्रु समान हो नाश कर देना चाहिए। चाहे शत्रु पर प्रहार करना हो या प्रहार कर चुके हो, सदा मीठा बोलो। अपने हाथ से शत्रु का सिर काटकर भी ऊपर से दया दिखानी चाहिए, शोक भी करना चाहिए तथा रोने तक लग जाना चाहिए।

वाचाभृशं विनीतः स्याद्धृदयेन तथा क्षुरः।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात्सृष्टो रौद्रण कर्मणा।।

वाणी से सदा मीठा रहे और हृदय से छुरे की तरह काटनेवाला। रौद्र कर्म करता हुआ भी हँसता-सा दिखाई दे। आप किसी पर विश्वास न लाये, दूसरों को विश्वास में ले आये।

जासूसी कर्म—शत्रु वा मित्र का कर्म जानने के लिए अच्छी प्रकार परीक्षा किये पुरुष या स्त्री चार-कर्म (जासूसी-दल) में नियुक्त करने चाहिएँ। पाखण्डी तथा तापसों के वेष में या धर्मोपदेशक बनाकर दूसरे राज्यों में जासूस (गुप्तचर) भेजने चाहिएँ। वगीचों, विहार-स्थलों, देवता-मन्दिरों और जंगल की छबीलों, मदिरापान आदि के स्थानों, गलियों-कूचों, हर प्रकार के जनसमूह-स्थानों, समाजों, बड़े चौरस्तों पर गुप्तचरों को निश्चित करे तथा कूप, तालाब, नदी, पर्वत, वन, उपवन तथा सब तीर्थों में गुप्त दूतों को जय-प्राप्ति के लिए नियत करे। यह कुटिल नीति सुना मन्त्री ने कहा, महाराज! आपके भतीजे इस समय अपने प्रभाव से देश में दृढ़ हो रहे हैं। आप उपर्युक्त नीति-उपायों से अपनी रक्षा करें।

मालूम देता है यह कणिक किसी अनार्य या म्लेच्छ देश का वासी होगा, क्योंकि यह नीति आर्यावर्तीय न होकर पश्चिमी भासती है। शिवमस्तु।

७. कौटिलीय राजधर्म

विद्याओं का निरूपण

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।।

(कौटिलीये अर्थशास्त्रे अधि० १, अ० २)

आन्वीक्षिकी (अध्यात्मविद्या अथवा हेतुविद्या), त्रयी (ऋक्, यजुः तथा सामवेदात्मक), वार्ता (कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्यात्मक विद्या) और दण्डनीति

(राजविद्या) ये चार प्रकार की विद्याएँ होती हैं, किन्तु मनु के मतानुयायी तीन ही प्रकार की विद्याओं को मानते हैं, जैसे त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, क्योंकि उन्होंने आन्वीक्षिकी को त्रयी विद्या के अन्तर्गत माना है। आचार्य बृहस्पति के अनुयायी वार्ता और दण्ड ये दो ही विद्याएँ मानते हैं, क्योंकि लोकयात्रा के विज्ञ लोकायतिक (नास्तिक) त्रयी विद्या को आवरणमात्र अर्थात् नास्तिकता आदि निन्दाओं से अपनी रक्षा करने का एक साधन समझते हैं। इसलिए उनका कहना है कि त्रयी को एक स्वतन्त्र विद्या मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। शुक्राचार्य के अनुयायी केवल दण्डनीति को ही विद्या मानते हैं। उनके मतों से उपर्युक्त तीनों विद्याओं का समावेश दण्डनीति में हो जाता है, क्योंकि भली-भाँति राज्य-व्यवस्था चलने पर सब विद्याओं के व्यवहार की स्वतःसिद्धि हो जाती है। किन्तु—

चतस्र एव विद्या इति कौटिल्यः।
ताभिर्धर्माधर्मौ यद् विद्यात्तद् विद्यानां विद्यात्वम्॥

—कौटि० अर्थ० अधि० १, अ० २

आचार्य कौटिल्य (चाणक्य) उपर्युक्त आन्वीक्षिकी आदि चारों विद्याओं को मानते हैं, क्योंकि सब विद्याओं का विद्यात्व इसी बात में है कि उनसे धर्म-अधर्म का ज्ञान हो। अतएव इन चारों विद्याओं के बिना न धर्म-अधर्म का और न इहलोक तथा परलोक की उन्नति के साधनों का ही ज्ञान हो सकता है।

आचार्य चाणक्य आन्वीक्षिकी विद्या का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि सांख्य-शास्त्र, योगशास्त्र तथा लोकायतशास्त्र ये तीनों आन्वीक्षिकी विद्या के अन्तर्गत माने जाते हैं। त्रयी विद्या में धर्म-अधर्म का ही मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। वार्ता विद्या में अर्थ और अनर्थ का निरूपण किया है। दण्डनीति में न्याय और अन्याय की विवेचना की गई है। आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता इन विद्याओं का मूलाधार दण्ड ही है। समस्त प्राणियों का योगक्षेम सम्पन्न करनेवाला दण्ड विनय अर्थात् शिक्षा के आधार पर टिका रहता है, क्योंकि—

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुंक्ते सर्वभूतहिते रतः॥

—अधि० १, अ० ६

विद्या में सुशिक्षित प्रजा को भी शिक्षित बनाने और सबके कल्याण में संलग्न राजा ही एकच्छत्रा पृथिवी का भोग करने में समर्थ होता है।

षड् रिपुओं का त्याग

जो राजा शास्त्रविहित नियमों के विपरीत आचरण करता है और इन्द्रियों को वश में नहीं रखता, वह यदि चारों समुद्रपर्यन्त फैली पृथिवी का सम्राट् हो तो भी शीघ्र नष्ट हो जाता है। जैसे भोजवंशीय राजा दाण्डक्य और विदेहाधिपति

राजा कराल ये दोनों काम के वशीभूत होकर अपने बान्धवों तथा समस्त राज्य के साथ नष्ट हो गए। क्रोध के वशीभूत होकर राजा जनमेजय किसी ब्राह्मण पर प्रहार करने गया तो वह उसके शाप से नष्ट हो गया। इसी तरह राजा तालजंघ भृगुवंशियों पर क्रोध करके विनष्ट हो गया था। लोभ के वशीभूत होकर पुरुरवा तथा सौवीरदेशाधीश अजबिन्दु ने चारों वर्णों की प्रजा को सता-सताकर अत्यधिक धन का अपहरण किया और अन्त में प्रजा के कोप से नष्ट हो गए। अभिमानवश रावण राम की पत्नी सीता को न लौटाकर और दुर्योधन पाण्डवों को उनका हिस्सा न देकर दोनों ही नष्ट हो गए। मद के वशीभूत होकर समस्त प्रजा को अपमानित करनेवाला राजा डम्भोद्भव नारायण के हाथों और हैहयाधिपति राजा अर्जुन परशुराम के हाथों मारा गया। हर्ष के वशीभूत असुर वातापी महर्षि अगस्त्य को अत्यधिक दुःख देकर तथा द्वैपायन व्यासदेव को व्यथित करके यादव-समुदाय नष्ट हो गया था। ऊपर गिनाये हुए तथा अन्यान्य राजे भी काम, क्रोध आदि शत्रुओं के वशीभूत होकर इन्द्रियों पर काबू पाने में असमर्थ होने के कारण बन्धु-बान्धवों और राज्यसमेत नष्ट हो चुके हैं। इसके विपरीत काम-क्रोधादि षड् रिपुओं पर विजय प्राप्त करके जमदग्नितनय परशुराम, राजा अम्बरीष और नाभाग चिरकाल तक पृथिवी का भोग करने में समर्थ हुए थे।

सचिवों की आवश्यकता

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ।।

—कौटिलीये अर्थशास्त्रे अधि० १, अ० ७

राज्य का कार्य सहायक की सहायता से ही चलता है, वैसे ही अकेला राजा राज्य का दुरूह कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता, अतएव राजा को चाहिए कि वह सचिवों को अवश्य नियुक्त करे और उनकी बात ध्यान से सुने।

आगे सचिव (मन्त्री) के गुण, गुप्तचरों के भेद, मन्त्रणा के अंग आदि विषयों का वर्णन करते हैं—

मन्त्री के गुण

१. राजा के ही देश में उत्पन्न हो, २. उत्तम कुल में जायमान हो, ३. जो अपने को तथा औरों को बुराई से दूर रख सके, ४. जो शिल्प तथा संगीत आदि में पारंगत हो, ५. जो अर्थशास्त्ररूपी सूक्ष्म दृष्टि से सम्पन्न हो, ६. जो प्रखर बुद्धिमान् ७. प्राचीन घटनाओं की स्मरणशक्ति से युक्त, ८. शीघ्र कार्य पूर्ण करने में समर्थ, ९. वाक्य-कुशल, १०. किसी भी विषय को भलीभाँति व्यक्त करने के साहस से सम्पन्न, ११. युक्तियों तथा तर्कों द्वारा अपनी बात समझाने में

समर्थ, १२. उत्साही, १३. प्रभावशाली, १४. कष्ट-सहिष्णु, १५. पवित्र आचरण वाला, १६. स्नेही, १७. राजा अथवा स्वामी के प्रति भक्तिवान् १८. शीलवान्, १९. बलवान्, २०. आरोग्यवान्, २१. धैर्यवान्, २२. गर्वरहित, २३. चपलता-शून्य, २४. सौम्य आकृति, और २५. शत्रुत्वभाव से रहित हो, वह मनुष्य ही प्रधानमन्त्री बनने योग्य होता है। जिनमें उपर्युक्त गुणों में से एक चतुर्थांश गुण कम हों, वे निम्न श्रेणी के मन्त्री माने जाते हैं।

गुप्तचरों में भेद

गुप्तचर विविध प्रकार के होते हैं, जैसे—कापटिक (कपटवृत्ति छात्र), उदास्थित (उदासीन संन्यासी), गृहपति (गृहस्थ), वैदिहक (वणिक्), तापस (तपस्वी), सत्री (विविध शास्त्रों को पढ़नेवालों के रूप में विख्यात गुप्तचर), तीक्ष्ण (शरीर को कुछ न समझनेवाले साहसी पुरुष), रसद (विष देनेवाले लोग), और भिक्षुकी (संन्यासिनी) आदि।

पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राजा राजोपजीविनाम्।
जानीयुः शौचमित्येताः पंच संस्थाः प्रकीर्तिताः॥

—कौटि० अर्थ० अधि० १, अ० ११

राजा द्वारा दान-मान से पूजित गुप्तचर अमात्यादि राजोपजीवियों की परीक्षा करते रहें। कापटिकादि पाँच प्रकार के गुप्तचर 'संस्था' भी कहलाते हैं, क्योंकि राजा का काम करने के लिए एक स्थान पर बैठे-ही-बैठे वे सारे राज्य पर दृष्टि रखते हैं।

मन्त्रणा के पाँच अंग

१. कार्य आरम्भ करने का उपाय, जैसे दुर्ग आदि की रचना या परराज्य में सन्धि-विग्रह तथा दूतादि भेजने के विषय में, २. कार्यकुशल मनुष्य तथा सुवर्ण-सम्पत्ति आदि के विषय में, ३. कार्य-निष्पत्ति के लिए उपयोगी देश-काल के विभाग के विषय में, ४. किसी कार्य में उपस्थित विघ्न के प्रतिकारार्थ उपाय-चिन्तन, एवं ५. कार्यसिद्धि-विषयक विवेचना, ये ही मन्त्रणा के पाँच अंग होते हैं। राजा अगर चाहे तो एक-एक मन्त्री से अलग-अलग अथवा सबको जुटाकर एकसाथ मन्त्रणा करे। उन मन्त्रियों के मतभेद को भी राजा युक्तिपूर्वक मालूम कर ले। जब कार्य का निश्चय हो जाए तो उसे करने में देरी न करे। बहुत समय तक किसी बात पर विचार ही न करता रहे। राजा ऐसे लोगों के साथ कदापि विचार न करे, जिनका अपकार कर चुका हो अथवा जो लोग उनके सम्पर्क में रहते हों।

सचिवों की संख्या

मनु के मतावलम्बियों का कहना है कि बारह मन्त्रियों की मन्त्रिपरिषद् होनी चाहिए। बृहस्पति के मतावलम्बी सोलह तथा शुक्राचार्य के मतानुयायी बीस मन्त्रियों की परिषद् बनाने को कहते हैं। किन्तु आचार्य कौटिल्य का मत है कि जैसी सामर्थ्य हो, तदनुसार मन्त्रियों की संख्या निर्धारित करें। मन्त्रिपरिषद् के मन्त्री राजा के स्वपक्ष तथा परपक्षगत कार्य के विषय में चिन्तन करते रहें। जो कार्य आरम्भ नहीं हुआ हो, राजा उसका प्रारम्भ करे। जिसका आरम्भ हो चुका हो, उसके संचालन की व्यवस्था करे। जो कार्य पूर्ण हो चुका हो, उसमें विशेषता लाए। इसी प्रकार वह करणीय कार्यों को अपनी आज्ञा से संलग्न कराये। जो मन्त्री समीप हों उनसे प्रत्यक्ष बात करे और जो दूर हों उनसे पत्र द्वारा परामर्श करे।

दूत के गुण

मन्त्रणा का विषय निर्धारित हो जाने के बाद दूतप्रेषण-कार्य की विवेचना होना आवश्यक है। दूत तीन तरह के होते हैं—१. निसृष्टार्थ, २. परिमितार्थ, और ३. शासनहर। जो दूत पूर्वोक्त अमात्य-गुण से सर्वथा सम्पन्न हो वह 'निसृष्टार्थ' दूत कहलाता है। जिस दूत में अमात्य गुण की केवल एक-चौथाई कमी हो उसे 'परिमितार्थ' दूत कहते हैं। जिस दूत में अमात्य-गुण का अर्धांश हो उसे 'शासनहर' दूत कहना चाहिए।

दूत के कर्त्तव्य

अपने स्वामी का संदेश शत्रु के पास पहुँचाना और उसका उत्तर अपने प्रभु के पास भेजना, पूर्वकाल में की हुई सन्धियों का पालन करना, अवसर मिलने पर अथने राजा का प्रताप प्रदर्शित करना, मित्रों का अधिकाधिक संग्रह, जो लोग फूट सकते हों उन्हें फोड़ना, शत्रु के मित्रों में भेद डालना, शत्रु की सेना और गुप्तचरों को अपने राज्य के बाहर करना, शत्रु के बन्धु-बान्धवों तथा रत्नों का अपहरण, गुप्तचरों में संवादों का समुचित संग्रह, शत्रु की कमजोरी देखते ही पराक्रम प्रदर्शित करना, सन्धि के अनुसार कैदियों को छुड़ाना तथा औपनिषदिक उपायों से मारण आदि का प्रयोग करना।

स्वदूतैः कारयेदेतत्परदूतांश्च रक्षयेत्।
प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः।।

राजा अपने दूतों द्वारा इन कामों को सम्पन्न कराये और शत्रु के दूतों पर कड़ी दृष्टि रखे। शत्रु के दूत का अन्य दूतों, गुप्तचरों, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रक्षकों द्वारा बराबर पता लगाता रहे।

८. आचार्य विष्णुशर्मा का नीतिशास्त्र

इस प्रकार सुना जाता है कि दक्षिण देश में महिलारोप्य नाम का नगर था। वहाँ समस्त याचकों के लिए कल्पवृक्ष के समान, उच्चतम राजाओं की मुकुट-मणियों के किरणसमूह से पूजित चरणयुगवाला और समग्र कलाओं का पारदर्शी अमरशक्ति नाम का राजा था। उसके परम मूर्ख तीन पुत्र हुए जिनके नाम थे—बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनन्तशक्ति। उन पुत्रों को शास्त्र से विमुख देखकर राजा ने मन्त्रियों को बुलाकर कहा—यह तो आप लोगों को विदित ही है कि ये मेरे पुत्र शास्त्रज्ञान से विमुख तथा विवेकशून्य हैं। इसलिए इन्हें देखते हुए मुझे यह विशाल राज्य भी आनन्द नहीं देता। किसी ने ठीक ही कहा है—

अजातमृतमूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौ वरम्।
यतस्तौ स्वल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्॥

उत्पन्न ही नहीं हुए, उत्पन्न होकर मर गए, एवं मूर्ख, इन तीन पुत्रों में से उत्पन्न ही न हुए और उत्पन्न होकर मर गए ये दोनों अच्छे हैं, क्योंकि वे अत्यन्त अल्प दुःख देनेवाले होते हैं, किन्तु अन्तिम मूर्ख पुत्र तो जीवनपर्यन्त सन्ताप ही देता रहता है।

इसलिए जिस प्रकार इनकी बुद्धि का विकास हो वैसा कोई उपाय आप करें। यहाँ पर मेरे द्वारा दी हुई जीविका को भोगते हुए पाँच सौ विद्वान् रहते हैं। अतएव जिस प्रकार मेरा मनोरथ सिद्ध हो वैसा उद्योग करें। उनमें से एक मन्त्री ने कहा—'राजन्! बारह वर्ष में व्याकरणशास्त्र का अध्ययन होता है, तत्पश्चात् मनु आदि के धर्मशास्त्र, चाणक्यादि के अर्थशास्त्र, वात्स्यायनादि के कामशास्त्र, तदनन्तर धर्म, अर्थ और कामशास्त्र पढ़े जाते हैं। उन सबके पढ़ने के अनन्तर ही ज्ञान होता है।' इसके अनन्तर उनमें से सुमति नामक एक मन्त्री ने कहा—'यह मानव-जीवन अनित्य है और शब्दशास्त्र (व्याकरण) का ज्ञान अधिक समय के अनन्तर होता है। इसलिए इनके बोध के लिए किसी संक्षिप्त शास्त्र का विचार कीजिए, क्योंकि कहा भी है—

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं स्वल्पं तथाऽऽयुर्बहवश्च विघ्नाः।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

शब्दशास्त्र (व्याकरण) का निश्चित कहीं पार नहीं, अवस्था थोड़ी और विघ्न अत्यधिक हैं। इसलिए सार (तत्त्व) को ग्रहण कर असार (निस्तत्त्व) का वैसे ही परित्याग कर देना चाहिए जैसे हंस जल से दूध निकाल लेते और जल त्याग देते हैं।

यहाँ अपनी विद्वन्मण्डली में समस्त शास्त्रों का पारगामी और छात्रों की मण्डली में यशस्वी विष्णुशर्मा नाम का एक ब्राह्मण है, उसे इन पुत्रों को आप सौंप

दें। वह अवश्य इनको शीघ्र ही ज्ञानवान् बना देगा।' राजा ने यह बात सुनकर विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा—'भगवन् ! मुझपर अनुग्रह करने के लिए आप मेरे इन पुत्रों को शीघ्र अर्थशास्त्र में जिस प्रकार हो सके उस प्रकार असाधारण विद्वान् बना दीजिए। इसके बदले में आपको सौ गाँव का मालिक बना दूँगा।' तब विष्णुशर्मा ने राजा से कहा—'राजन् ! मेरे सत्यवचन सुनिए। मैं सौ गाँव लेकर भी विद्या-विक्रय नहीं करता, तथापि आपके इन पुत्रों को यदि छः महीने में नीतिशास्त्र का ज्ञाता न बना दूँ तो मैं अपना नाम त्याग दूँगा। बहुत कहने से क्या लाभ ? आप सिंहनाद सुनें। धन मिल जाने की अभिलाषा से मैं ऐसा नहीं कहता, क्योंकि अस्सी वर्ष की अवस्था तक समस्त इन्द्रियों के भोगों से निःस्पृह हो गया हूँ अतः मुझे धन से कोई प्रयोजन नहीं है, किन्तु आपकी प्रार्थना-सिद्धि के निमित्त मैं सरस्वती-विनोद करूँगा, अतः आप आज के दिन का नाम लिख लीजिए। यदि मैं छः महीने में आपके पुत्रों को विद्या में असाधारण ज्ञाता न बना दूँ तो भगवान् मुझे स्वर्ग न दिखाये।'

इसके अनन्तर ब्राह्मण की इस असम्भव प्रतिज्ञा को सुनकर राजा मन्त्रियों-सहित अत्यधिक प्रसन्न हो आश्चर्ययुक्त हुआ और उन राजकुमारों को उन्हें समर्पित कर राजा अत्यन्त संतुष्ट हुआ। विष्णुशर्मा ने भी उन कुमारों को ले जाकर उनके निमित्त मित्रभेद, मित्रसंप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक इन पाँच तन्त्रों की रचना कर उन्हें पढ़ाया। वे राजकुमार भी उन तन्त्रों को पढ़कर छः महीने में जैसा कहा था, असाधारण ज्ञाता हो गये। उसी दिन से यह पंचतन्त्र नामक नीतिशास्त्र का ग्रन्थ बालकों को ज्ञानप्राप्ति के लिए संसार में प्रसिद्ध हुआ। अधिक क्या ?

अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं शृणोति च।
न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन॥

जो इस नीतिशास्त्र का नित्य अध्ययन करता है अथवा सुनता है वह देवराज इन्द्र से भी कभी पराजित नहीं होता।

९. कामन्दकीय नीतिसार

(शत्रु-विजय के सात उपाय)

कामन्दकीय नीतिसार में कहा है—

साम दामं च दण्डं च भेदं चेति चतुष्टयम्।
मायोपेक्षेन्द्रजालं च सप्तोपायाः प्रकीर्तिताः॥ (का० १७/३)

१—(साम) शत्रु को मीठे वचनों से बहकाना। २—(दाम) शत्रु को लालच

देना। ३—(दण्ड) दण्ड देना। ४—(भेद) शत्रु में फूट डालना। ५—(माया) शत्रु को फँसाने के लिए मायाजाल फैलाना। ६—(उपेक्षा) शत्रु की उपेक्षा करना। ७—(इन्द्रजाल)। ये सात विजय-प्राप्ति के उपाय बतलाये गये हैं। इन सातों की क्रमश: व्याख्या इस प्रकार है—

साम

परस्परोपकाराणां कीर्त्तनं गुणकर्मसु।
सम्बन्धस्य समाख्यनमायत्याः सम्प्रकाशनम्॥
वाचा पेशलया साधुं तवाहमिति चार्पणम्।
इति सामप्रयोगज्ञैः साम पञ्चविधं स्मृतम्॥

गुण और कर्मों में परस्पर उपकारों का कीर्त्तन, सम्बन्ध का आख्यान, आगामी समय में कार्य प्रकाश करना, मनोहर मीठी वाणी, 'मैं तुम्हारा हूँ' इस प्रकार अपने को अर्पण कर देना—इस प्रकार साम के प्रयोग जाननेवालों ने पाँच प्रकार का साम कहा है।

दाम

यः सम्प्राप्तधनोत्सर्ग उत्तमाधममध्यमः।
प्रतिदानं तथा तस्य गृहीतस्यानुमोदनम्॥
द्रव्यादानमपूर्वं च स्वयं ग्राहप्रवर्तनम्।
देवस्य प्रतिमोक्षं च दानं पञ्चविधं स्मृतम्॥

जिसको दान देना है उसी से उत्तम, अधम, मध्यम जो धन प्राप्त हुआ है उसको ज्यों-का-त्यों लौटा देना, जो अपने शत्रु ने लिया है उसका अनुमोदन करना कि आपने अच्छा किया, अपूर्व द्रव्य जिसका सम्बन्ध नहीं ऐसे द्रव्य का ग्रहण कराना, अपने राज्य से वह कुछ ग्रहण कर ले इस हेतु में उसको प्रवृत्त करना, और जो कुछ कर ग्रहण किया है उसमें से छोड़ देना, इस प्रकार यह पाँच प्रकार का दाम कहा है।

दण्ड

वधोऽर्थहरणं चैव परिक्लेशस्तथैव च।
इति दण्डविधानज्ञैर्दण्डोऽपि त्रिविधः स्मृतः॥
विषेणोपनिषद्योगैः शस्त्रेणोद्वर्तनेन वा।
तथोपांशु नयेद् दण्डं यथान्यो न विभावयेत्॥

वध कर देना, धन हरण कर लेना, काया को विशेष कष्ट देना, यह दण्ड के ज्ञाताओं ने तीन प्रकार का दण्ड वर्णन किया है। विष वा उपनिषद् के योग से, शस्त्र-प्रयोग वा किसी वस्तु के उबटन से पीड़ा पहुँचाकर, जिनसे कोई न जाने ऐसा उनको दण्ड दे।

भेद

स्नेहरागापनयनं सहर्षोत्पादनं तथा ।
सन्तर्जनं च भेदज्ञैर्भेदस्तु त्रिविधः स्मृतः ।।
आत्मनो विषयमिव कुर्वन्दद्यात्समीहितम् ।
जलवत्पर्वतांछत्रून् भिन्द्यादनुपलक्षितः ।।
भेदं कुर्वीत यत्नेन मन्त्र्यमात्यपुरोधसाम् ।
तेषु भिन्नेषु भेदो हि युवराजे तथोर्जिते ।।
अमात्यो युवराजश्च भुजावेतौ महीपतेः ।
मन्त्री नेत्रं हि भिन्नेऽस्मिन्नैकस्मिन्नापि तद्विधः।।

स्नेह-राग का दूर कर देना, हर्ष उत्पन्न कराना तथा भड़कना यह तीन प्रकार का भेद, भेद के जाननेवालों ने कहा है। अपने वश में करने के लिए मन-इच्छित दूसरे को देना चाहिए। जैसे जल-भेद भीतर ही भीतर पर्वत को तोड़ता है, इस प्रकार शत्रु के न जानते उनमें भेद करा दे। मन्त्री, अमात्य और पुरोहितों का भेद यत्नपूर्वक करे, उनके भेद से बड़ा भेद होता है। इनमें भी युवराज का भेद महाभेद कहलाता है। अमात्य और युवराज ये दोनों राजा की भुजाएँ हैं और मन्त्री नेत्र, एक के भी न होने से राजा विकलांग हो जाता है।

माया

कामतो रूपधारित्वं शस्त्रास्त्राश्माम्बुवर्षणम् ।
तमोनिलीनता चैव इति माया च मानुषी ।।
जघान कीचकं भीम आश्रितः स्त्रीस्वरूपताम् ।
चिरं प्रच्छन्नरूपोऽभूद्दिव्यया मायया नलः ।।

जैसी इच्छा हो वैसा रूप धारण कर लेना, अस्त्र-अस्त्र, पत्थर, जल का वर्षाना, अन्धकार में लीन हो जाना, यह सब मानुषी माया है। देखो स्त्री का रूप धारण कर भीम ने कीचक को मार डाला और दिव्य माया से राजा नल बहुत काल तक अपना रूप छिपाये सारथी के रूप में राजा ऋतुपर्ण के स्थान में रहा।

उपेक्षा

अन्याये व्यसने युद्धे प्रवृत्तस्यानिवारणम् ।
इत्युपेक्षार्थकुशलैरुपेक्षा त्रिविधा स्मृता ।।

अन्याय में, व्यसन में, युद्ध में प्रवृत्त हुए का निवारण न करना, उपेक्षा में कुशल पुरुषों ने यह तीन प्रकार की उपेक्षा कही हैं।

इन्द्रजाल

मेघान्धकारवृष्ट्यग्निपर्वताद्भुतदर्शनम् ।
दूरस्थानां च सैन्यानां दर्शनं ध्वजशालिनाम् ।।

छिन्नपाटितभिन्नानां सांस्कृतानां च दर्शनम् ।
इतीन्द्रजालं द्विषतो भीत्यर्थमुपकल्पयेत् ।।

मेघ, अन्धकार, वृष्टि, अग्नि, पर्वत तथा अद्‌भुत दर्शन और दूरस्थित ध्वजा-पताका-संयुक्त सेना का दर्शन होना, छिन्न-भिन्न-पाटित (विदारण) और संस्कृत वस्तु का दिखाना, यह इन्द्रजाल-विद्या शत्रुओं को भय दिखाने के लिए कल्पना करें।

अन्त में नीतिकार इन उपर्युक्त सात साधनों के शत्रुओं पर प्रयोग किये जाने के सम्बन्ध में अपनी अनुमति देता हुआ लिखता है—

इत्याद्युपायान्निपुणं नयज्ञो, विनिक्षपेच्छत्रुबले निजे वा ।
निरभ्युपायो नियतं प्रयाणं, विचेष्टमानोऽन्ध इवाभ्युपैति ।।

नीति के जाननेवाले को यह सम्पूर्ण उपाय शत्रु की सेना वा अपने द्रोहियों में प्रयोग करने चाहिएँ और यदि ये उपाय न किये जाएँ और वैसे ही चढ़ाई की जाये तो उसकी चेष्टा अन्धे के समान होती है। (क्रमशः)

१९वीं शती के अन्तिम और २०वीं शती के प्रथम चरण का सांस्कृतिक सर्वेक्षण

"स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली"

प्रो॰ विजयेन्द्र स्नातक

भारत में राजनैतिक पुनर्जागरण और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की लहर उन्नीसवीं शती के प्रथम चरण में आई और उसका व्यापक प्रभाव इस शताब्दी के अन्तिम चरण में ही लक्षित हुआ। इस शताब्दी के राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षितिज अपने भीतर उन सब परिवर्तनों को समेटे हुए हैं जिनमें जन-जीवन को आन्दोलित और उद्वेलित करने की अद्भुत शक्ति निहित होती है। इस शताब्दी में भारत में अनेक मेधावी, प्रतिभाशाली, तेजस्वी, एवं जातीय अस्मिता के आग्रही व्यक्ति उत्पन्न हुए जो अपने राष्ट्रीय उद्धार के कार्यों की छाप भारत के इतिहास में छोड़ गये हैं। इन्हीं तेजस्वी और मेधावी महापुरुषों में स्वामी श्रद्धानन्द की गणना सम्मानपूर्वक की जाती है।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भारत के धार्मिक क्षेत्र में जो कार्य किये उनका प्रभाव समाज और राजनीति पर भी पड़ा। सन् १९७५ में आर्यसमाज की स्थापना के बाद उत्तर भारत में सामाजिक क्रांति का ज्वार उमड़ पड़ा और उस प्रवाह में अनेक महानुभाव शामिल हो गये। स्वामी श्रद्धानन्द भी उनमें से एक प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् पुरुष थे जो स्वामी दयानन्द के उपदेशों से प्रभावित होकर अपने परिवार की रूढ़िवादिता को छोड़कर प्रगतिशील विचारों के साथ आर्यसमाज के सदस्य बने थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्यसमाज की नियमित सदस्यता तो बहुत बाद में स्वीकार की, किन्तु स्वामी दयानन्द के प्रति भक्ति-भावना का उदय उन्हें अपनी युवावस्था में ही हो गया था। शैशवावस्था में इनका नाम मुन्शीराम था। इनके पिता उत्तरप्रदेश में पुलिस की नौकरी में थे और उत्तर प्रदेश के बनारस, बरेली, बदायूं, मथुरा, बुलन्दशहर आदि अनेक नगरों में शहर-कोतवाल आदि उच्च पदों पर रहे थे। बाल मुन्शीराम की स्कूली शिक्षा पिता के स्थान-परिवर्तन के कारण एक जगह पर व्यवस्थित रूप से नहीं हो

सकी। पुलिस-विभाग में इनके पिता की अच्छी प्रतिष्ठा थी, इसलिए बालक मुंशी-राम को सुख-सुविधाओं का तो कोई अभाव नहीं था, किन्तु शिक्षा के प्रति मुंशी-राम के मन में उत्साह नहीं था। पिता के संस्कार सनातनी, पौराणिक परम्परा के थे। मूर्तिपूजा, व्रत, उपवास आदि रूढ़ियों में उनकी आस्था थी। बालक मुंशी-राम का परिवेश घर में तो पिता के साथ था, किन्तु घर से बाहर वह अपने को नास्तिक कहने में गर्व का अनुभव करता था। नास्तिकता के साथ खान-पान में भी वह किसी प्रकार के निषेध को नहीं मानता था। मांस-मदिरा आदि सेवन में रुचि होने के कारण वह एक सीमा तक उच्छृंखल स्वभाव का हो गया था। पाठ्य-पुस्तकों में उसकी रुचि नहीं थी। अंग्रेजी के उपन्यास-साहित्य में गहरी रुचि होने से अंग्रेजी भाषा और साहित्य का उसने अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया था। बालक मुन्शीराम ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया उसका मानसिक क्षितिज भी विस्तृत होता गया। वह लाला मुंशीराम से महाशय मुंशीराम, महात्मा मुंशीराम और अन्त में स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान का भाजन बना।

इसी महापुरुष, महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सम्पूर्ण गाथा ग्यारह खण्डों में संकलित "स्वामी श्रद्धानन्द ग्रंथावली" है। यह ग्रंथावली स्वामी जी के निर्वाण के बासठ वर्ष बाद प्रकाशित हुई है। इसका पहला खंड "कल्याण मार्ग का पथिक" शीर्षक से इस ग्रंथमाला में है। यह ग्रंथ संवत् १९८१ विक्रमी में ज्ञानमंडल काशी से प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः यह ग्रंथ स्वामी जी की अपनी आत्मकथा है जो उन्होंने अपने जीवन की पैंतीस वर्षों की घटनाओं के आधार पर स्वयं लिखी थी। इस आत्मकथा में स्वामी जी ने अपने जीवन की उन घटनाओं का बड़े स्पष्ट रूप में वर्णन किया है जिन्हें सामान्यतः मनुष्य अपनी नैतिक दुर्बलता मानकर छिपाया करता है। निस्सन्देह यह एक वास्तविक सच्ची आत्मकथा है जिसमें न तो आत्म-गोपन है और न पर-छिद्रा-न्वेषण का दोष। ऐसी वस्तुपरक आत्मकथा लिखना बड़े साहस और संयम का काम है। कल्याण-मार्ग का पथिक बननेवाला सच्चा साधक ही ऐसी आत्मकथा लिख सकता है। "स्वामी श्रद्धानन्द ग्रंथावली" में इसे प्रथम खंड के रूप में रखकर सम्पादक महोदय ने सूझ-बूझ का अच्छा परिचय दिया है। इस आत्मकथा तथा अन्य रचनाओं के आधार पर ग्यारहवें खंड में सम्पादक महोदय ने स्वामी जी की जीवनी प्रस्तुत की है। जीवनी को पढ़ने से विदित हुआ कि जो तथ्य आत्मकथा में नहीं थे उनको अन्य स्रोतों से एकत्र कर जीवनी को प्रामाणिक बनाया गया है। यह भी एक उत्तम कोटि की जीवनी है। सम्पादकों का श्रम इसे लिखकर सार्थक हुआ है।

ग्रंथमाला के द्वितीय खंड में स्वामी श्रद्धानन्द जी के समय-समय पर दिये गए प्रवचन और उपदेश संकलित हैं। लाला मुन्शीराम ने सन् १८८९ ई० में जालंधर

से "सद्धर्म प्रचारक" नाम से एक साप्ताहिक पत्र उर्दू में निकाला था किन्तु कुछ काल बाद उसे हिन्दी में प्रकाशित करना शुरू किया। इस साप्ताहिक पत्र में मुंशीराम जी अपने स्वाध्याय के विषयों का चयन कर लेखरूप में इन्हें प्रकाशित करते थे। वेद, उपनिषद्, मनुस्मृति, गीता आदि विषयों पर जो लेख और भाषण मुंशीराम जी ने लिखे थे वे इस द्वितीय खंड में सम्पादित कर प्रकाशित किये गए हैं। इन्हें पढ़कर मुन्शीराम जी की स्वाध्याय-प्रियता और विषय-प्रतिपादन-क्षमता का अच्छा परिचय मिलता है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त की बड़ी सटीक व्याख्या इस खंड में उपलब्ध होती है।

तीसरा खंड शोध की दृष्टि से पठनीय है। स्वामी दयानन्दकृत सत्यार्थ-प्रकाश के मूल संस्करण और परवर्ती संस्करणों में किये गए परिवर्तनों पर गवेषणात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। आर्यों के नित्य कर्म, संध्या-वन्दन आदि पर विस्तारपूर्वक दृष्टि-निक्षेप है। ईसाई मत और आर्यसमाज के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में ईसाई धर्म की त्रुटियों और अनर्गल मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ खंड में स्वामी जी लिखित पं० लेखराम की जीवनी को ही प्रस्तुत किया गया है। पं० लेखराम को एक मुसलमान ने मार डाला था। उनके शहीद होने से आर्य जगत् में जो धार्मिक उत्तेजना का वातावरण उत्पन्न हुआ उसका सुन्दर चित्र इस जीवनी में अंकित हुआ है। इस खंड की दूसरी विशेषता है स्वामी जी के जेल-जीवन के अनुभव। सन् १९२२ में अमृतसर के गुरुद्वारा के समीप की "गुरु का बाग" की भूमि को लेकर सिखों और सरकार के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ। सिखों ने अहिंसात्मक आन्दोलन का आह्वान किया। इस आह्वान पर स्वामी श्रद्धानन्द ने सिखों का पक्ष लिया और गुरु का बाग परिसर में जाकर जनता को सम्बोधित किया। उनके जोशीले भाषण से सरकार नाराज हुई और स्वामी जी को सोलह मास के कारावास का दंड घोषित कर दिया। स्वामी जी चार मास अमृतसर तथा मियाँवाली जेल में रहे। जेल-जीवन के बड़े प्रेरणाप्रद अनुभव इस सन्दर्भ में लिखे गए हैं। आज का सिखसमाज स्वामी जी के सौहार्द-पूर्ण भाईचारे से अनभिज्ञ है।

पंचम खंड एक प्रामाणिक राजनैतिक दस्तावेज है। इसमें स्वामी जी के राजनैतिक विचार तथा राष्ट्रप्रेम की पूरी झलक मिलती है। कांग्रेस की स्थापना के तीन वर्ष बाद स्वामी जी कांग्रेस के सम्पर्क में आए और उसे राष्ट्रहित की संस्था मानकर उसके सक्रिय सदस्य बने। इन खण्ड में "इनसाइड कांग्रेस" शीर्षक से प्रकाशित स्वामी जी की पुस्तक समाविष्ट है। इस खंड में स्वामी जी के कांग्रेस-सम्पर्क की तीस वर्ष की कटु-तिक्त अनुभवी कहानी है जो आज के सन्दर्भ में पठनीय एवं मननीय है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की प्रतिमूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द ने

दिल्ली की ऐतिहासिक जामा मस्जिद की व्याख्यान-वेदी पर खड़े होकर मुस्लिम जनसमूह को सम्बोधित किया था। रोलैट एक्ट के समय दिल्ली की हड़ताल और उसे दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार की गोरखा सैनिक जवानों के आगे अपनी छाती खोलकर खड़े होनेवाले स्वामी श्रद्धानन्द के अपूर्व देश-प्रेम और साहस की कहानी है। इस प्रकरण को पढ़कर आज हमारे नवयुवकों को देशभक्ति की शिक्षा लेनी चाहिए। राजनीति और राष्ट्रप्रेम का रिश्ता आज टूट गया है। उसे सही परिप्रेक्ष्य में देखना हो तो पाठक इस खंड को मनोयोगपूर्वक पढ़ें।

खंड छह में वेद और आर्यसमाज-विषयक लेख हैं। इसके साथ ही मातृभाषा के उद्धार के विषय में स्वामी जी ने जो प्रयत्न किये वे आधुनिक युग में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दी माध्यम से विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध सबसे पहले गुरुकुल-कांगड़ी में स्वामी जी के निर्देशन में ही प्रारम्भ हुआ। विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का आज से पिचहत्तर वर्ष पूर्व स्वामी जी ने ही प्रकाशन कराया था। सन् १९१३ ई० को भागलपुर में चतुर्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष-पद उन्हें हिन्दी। सेवा के कारण ही प्रदान किया गया था। इस अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रभाषा हिन्दी और नागरी लिपि की महत्ता पर जो विचार स्वामी जी ने व्यक्त किये थे. आज भी प्रासंगिक और उपादेय हैं।

स्वामी जी ने अछूतोद्धार की दिशा में जो कार्य किया वह 'जाति के दीनों को मत भूलो' शीर्षक से इस खंड में संकलित है। उन दिनों ईसाई पादरी अछूत कही जानेवाली जातियों के लोगों को नाना प्रकार के प्रलोभन देकर ईसाई बना रहे थे, स्वामी जी ने उन दीनों को अपनाकर ईसाई होने से बचाया। गोपालकृष्ण गोखले का एक मार्मिक संस्मरण भी इसी खण्ड में संकलित है। सप्तम खण्ड में सद्धर्म-प्रचारक अखबार पर चलाये गए मानहानि के अभियोग की कहानी है। यह कहानी रोचक होने के साथ एक सत्य को उजागर करनेवाली भी है।

आठवें खण्ड में सम्पादक महोदय ने स्वामी श्रद्धानन्द के लेखों तथा प्रवचनों को 'जीवन-सन्देश' शीर्षक से एकत्र किया है। उर्दू भाषा में लिखा स्वामी जी का अधिकांश साहित्य ''कुलियाते संन्यासी'' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है, उसे नागरी लिपि में इस खण्ड में प्रस्तुत किया गया है। खण्ड नौ में तीन शीर्षक हैं—'आशा की उषा', 'युगविधाता तत्त्ववेत्ता दयानन्द' और 'पत्र-व्यवहार'। इस खण्ड की सामग्री के संकलनकर्ता, अनुवादक और सम्पादक श्री राजेन्द्र जिज्ञासु हैं। पत्र-व्यवहार-विषयक सामग्री में महात्मा गांधी के साथ स्वामी जी का पत्राचार तत्कालीन भारतीय राजनीति और समाज पर प्रकाश डालनेवाला है। इसमें कुछ पत्र अंग्रेजी भाषा में भी हैं। निश्चिय ही यह दुर्लभ सामग्री है और इसे संकलित करने के लिए राजेन्द्र जिज्ञासु बधाई के पात्र हैं।

खण्ड दस में संपादक महोदय ने आर्यसमाज-विषयक कुछ अति दुर्लभ सामग्री

जुटाई है। उस समय भारतीय संस्कृति और सभ्यता का पक्ष लेना अपराध था। सेना में एक मुसलमान धार्मिक विचार का सिपाही था। उसे लोग आर्यसमाजी कहने लगे और लेफ्टिनेंट से उस जमादार की शिकायत कर दी। कमांडिंग अफसर ने उस मुस्लिम जमादार को बुलाकर डाँटा और कहा, "बदमाश आर्यसमाजी, तू अपने अफसर से गुस्ताखी से बोलते हो।" जमादार ने उत्तर दिया, "हुजूर, मैं तो मुसलमान हूँ।" इस उत्तर को सुनकर कर्नल बोला, "अच्छा तो तुम मुसलमान आर्यसमाजी हो।" इसी प्रकार उन दिनों अनेक स्पष्टवादी सज्जन सिखों को भी आर्यसमाजी कहा जाता था। प्रारम्भ के दिनों में तो कई सिख सज्जन आर्यसमाज के मन्त्री और प्रधान पद पर भी आसीन रहे थे। आज पंजाब में हिन्दू और सिख दो पृथक् जाति बन गई हैं जो आज से पचास वर्ष पूर्व एक ही घर की सन्तान थीं।

"स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली" के ग्यारह खण्डों के अनुशीलन से पाठक के मन पर पहला प्रभाव पड़ता है कि स्वामी जी का जीवन विविध प्रकार के अनुभवों से परिपूर्ण था। निर्भीकता, दृढ़ता, कर्त्तव्यपरायणता, आत्मविश्वास और आस्तिकता उनके जीवन के संबल थे। इन्हीं गुणों के आधार पर उन्होंने अपनी युवावस्था की दुर्बलताओं पर विजय पाई थी और इन्हीं गुणों के द्वारा वे 'महात्मा' पद के अधिकारी बने थे। दूसरा प्रभाव जो ज्ञानवर्धक है, पचास वर्ष के भारत की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक हलचल की आभ्यन्तर जानकारी है। यह ग्रन्थावली इतिहास नहीं है किन्तु इतिवृत्त के अनेक सूत्र इसमें अनुस्यूत हैं जिनमें अर्धशती का सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिवेश प्रत्यक्ष होता है। तीसरा प्रभाव आर्यसमाज की तात्कालिक शक्ति और क्षमता से सम्बन्ध रखता है। आर्यसमाज अपने स्थापना-काल से पचपन वर्ष तक देश की एक सर्वोच्च शक्तिशाली धार्मिक एवं सामाजिक संस्था रही है। भारत की राजनीति को भी उसने प्रभावित किया है और उच्च-कोटि के दूरदर्शी राजनेता दिये हैं। भारत की वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान जिस निष्ठा और आस्था से आर्यसमाज ने किया वैसा पचास वर्षों में कोई और संस्था नहीं कर सकी। भारतीय कांग्रेस को भी प्रचार के अनेक कार्य आर्यसमाज ने दिये इसका ब्यौरा भी इस ग्रन्थावली में सुलभ है। सम्पादक महोदय ने प्रांजल भाषा और रंजक शैली में इसे संकलित किया है। अनेक लुप्त प्रसंग, घटना, व्यक्ति, संस्था आदि पर इस ग्रन्थावली के प्रकाशन से प्रकाश पड़ा है। सम्पादक और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। □

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

पुरुषार्थी को ही सुख

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥

—यजुर्वेद ३।४७

पदार्थ—जो मनुष्य लोग (मयोभुवा) सत्यप्रिय मंगल करनेवाली (वाचा) वेदवाणी व अपनी वाणी के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर संगी होकर (कर्मकृतः) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अभीष्ट कर्म को (अक्रन्) करते हैं, वे (देवेभ्यः) विद्वान् वा उत्तम-उत्तम गुण, सुखों के लिये (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा) अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्ण सुखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़कर पुरुषार्थ ही में निरन्तर रहकर, मूर्खपन को छोड़कर वेद-विद्या से शुद्ध की हुई वाणी के साथ सदा वर्तें और परस्पर प्रीति करके एक-दूसरे का सहाय करें। जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वे ही अच्छे-अच्छे सुखयुक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं। अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते।

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

।। ओ३म् ।।

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक ८]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [मार्च १९८८

सम्पा० : विजयकुमार   आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

(गतांक से आगे)

नीतिशास्त्र के प्रसंग

लेखक—पं० **धर्मदेव मनीषी**

१०. विद्याप्रिय राजा भोज

राजा भोज ने अपनी धारा नगरी में इस प्रकार घोषणा की थी—

विप्रोऽपि यो भवेन्मूर्खः स पुराद् बहिरस्तु मे।
कुम्भकारोऽपि यो विद्वान् स तिष्ठतु पुरे मम।।

ब्राह्मण भी यदि मूर्ख है तो वह मेरी नगरी से बाहर निकल जाए और यदि कोई कुम्हार भी विद्वान् है तो मेरे नगर में निवास करे।

इसी आदेश के कारण धारा नगरी में कोई मूर्ख नहीं रह पाया था। महाराजा भोज के इस महत्त्वपूर्ण आदेश से विश्व के समस्त शासकों एवं विचारकों को प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए। राजा भोज का राज्य कैसा था यह भोजप्रबन्ध ग्रन्थ से कुछ श्लोकों द्वारा दर्शाया जाता है—

कविषु वादिषु भोगिषु देहिषु, द्रविणवत्सु सतामुपकारिषु ।
धनिषु धन्विषु धर्मधनेष्वपि, क्षितितले नहि भोजसमो नृपः ।।

कवियों, वक्ताओं, भोगशीलों, शरीरधारियों, अर्थपतियों, सत्पुरुषों के प्रति उपकारियों, धनिकों, धनुर्धरों तथा धार्मिकों में भी पृथिवी पर भोज के समान दूसरा राजा नहीं है।

अभ्युद्धृता वसुमती दलितो रिपूरः, क्रोडी कृता बलवता बलिराजलक्ष्मीः।
एकत्र जन्मनि कृतं तदनेन यूना, जन्मत्रये यदकरोत्पुरुषः पुराणः ।।

अत्यन्त शक्तिशाली राजा भोज ने दुष्टों से पृथिवी का उद्धार किया, शत्रुओं की छाती चीर डाली, और बलवान् राजाओं की राजलक्ष्मी को अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार इस युवक ने वे कार्य एक ही जन्म में पूर्ण कर दिये

जिन्हें पुरुषों ने तीन जन्म धारण करके पूर्ण किया था।

मेरौ मन्दरकन्दरासु हिमवत्सानौ महेन्द्राचले।
कैलासस्य शिलातलेषु मलयप्राग्भारभागेष्वपि।।
सह्याद्रावपि तेषु तेषु बहुशो भोजश्रुतं ते मया।
लोकालोकविचारचारणगणैरुद्गीयमानं यशः।।

भोज नरेश ! जो चारण लोग लोकालोक स्थान में भी जा सकते हैं, उनके द्वारा गाया जाता हुआ तुम्हारा यश, सुमेरु पर्वत पर, मन्द्राचल की गुफाओं में, हिमालय की चोटियों पर, महेन्द्र पर्वत पर, कैलास की शिलाओं पर, मलयाचल की चोटियों पर, सह्य पर्वत पर तथा अन्य सभी स्थानों पर बहुत बार मैंने सुना है।

नागो भाति मदेन कं जलरुहैः पूर्णेन्दुना शर्वरी,
शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम्।
वाणी व्याकरणेन हंसमिथुनैर्वापीः सभा पण्डितैः,
सत्पुत्रेण कुलं त्वया वसुमती लोकत्रयं भानुना।।

हाथी मद से, जल कमलों से, रात्रि पूर्ण चन्द्रमा से, नारी शील से, घोड़ा वेग से, भवन नित्य होते रहनेवाले उत्सवों से, वाणी व्याकरण से, वापी हंसयुगलों से, सभा पण्डितों से, कुल अच्छे पुत्र से, पृथ्वी राजा से तथा तीनों लोक सूर्य से शोभित होते हैं।

ये उपरिलिखित श्लोक शाकल्य, कालिदास, मल्लिनाथ कवियों के हैं।

राजा भोज जब गुरुकुल में अध्ययन करते थे तब उनके चाचा मुंज को राज्य का मोह आ गया। वे बालक भोज का वध करने के उपाय सोचने लगे। अपने मन्त्री को उन्होंने आज्ञा दी कि भोज का सिर काटकर मेरे सामने लाओ। जब बालक भोज को पता लगा तब अपने वध से पहले अंगूठे के रक्त से ताड़पत्र पर उसने अपना सन्देश इस प्रकार लिखा—

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो यात ! भूपते।
नैकेनापि समंगता वसुमती मुंजस्त्वया यास्यति।।

सतयुग का आभूषणस्वरूप मान्धाता चला गया। जिन्होंने समुद्र पर पुल बाँधा था, वह रावण-विनाशक श्री राम भी अब कहाँ है ? हे राजन् ! युधिष्ठिर आदि राजा स्वर्ग सिधार गये, यह पृथिवी उनमें से किसी के भी साथ नहीं गई, परन्तु हे मुंज ! अब मालूम पड़ता है कि तुम्हारे मर जाने पर यह पृथिवी तुम्हारे साथ अवश्य जाएगी।

इस श्लोक से आज के नामधारी नेताओं को शिक्षा लेनी चाहिए। अस्तु।

राजा भोज ने एक बार अपने मुख्यमन्त्री से कहा कि इस पण्डित को मकान दो। सम्पूर्ण नगर खोजने पर भी मन्त्री को कोई मूर्ख नहीं मिला जिसे निकालकर उसका घर विद्वान् को दिया जा सके। सब ओर घूम-फिरकर मन्त्री ने किसी जुलाहे से कहा—'अरे जुलाहे, घर से निकल! तेरे घर में विद्वान् आकर रहेंगे।' जुलाहे ने राजभवन में आकर प्रणाम करके कहा—'महाराज! आपका मन्त्री मुझे मूर्ख बताकर घर से निकाल रहा है, अब तुम ही देख लो कि मैं मूर्ख हूँ या पण्डित—

काव्यं करोमि नहि चारुतरं करोमि, यत्नात् करोमि यदि चारुतरं करोमि।
भूपालमौलिमणिमण्डितपादपीठ, हे साहसांक! कवयामि वयामि यामि ॥

प्रणाम करनेवाले राजाओं के मुकुटों की मणियों की कान्ति से रंजित चरण-वाले साहसी राजन्! मैं कविता तो करता हूँ लेकिन सुन्दर नहीं कर पाता। यदि सुन्दर कविता बनाऊँ तो मुझे उसमें बहुत देर लगती है। अब तुम्हीं बताओ कि मैं कविता करूँ या कपड़ा बुनूं या तुम्हारा नगर छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर चला जाऊँ?'

इस श्लोक में 'कवयामि, वयामि, यामि' इन तीन क्रिया-पदों में एक-एक अक्षर कम करके अर्थ बदल देने में कवि ने वास्तव में पाण्डित्य की पराकाष्ठा ही प्रदर्शित कर दी है। निश्चय ही यह श्लोक विश्व-साहित्य में अद्वितीय है।

इस प्रकार राजा भोज के राज्य में जुलाहे भी महाविद्वान् होते थे।

वीर-प्रसविनी भारत-वसुन्धरा जिन नररत्नों को जन्म देने के कारण रत्न-गर्भा कहलाती है, महाराजाधिराज भोज उन्हीं में से एक थे। कला और कोमलता के उपासक उस महामानव ने वैभव में डूबे रहने पर भी राष्ट्र-सेवा से मुख नहीं मोड़ा। आततायी धर्मान्ध लुटेरे महमूद गजनवी ने जब पंजाब-नरेश अनन्दपाल पर चढ़ाई की तो अन्य आर्यराजाओं के साथ महाराजा भोज ने भी सदल-बल वहाँ पहुँचकर महमूद गजनवी के दाँत खट्टे किये।

उन्हें भारतवर्ष की अखण्डता पर दृढ़ विश्वास था, इसीलिए स्वयं मालवे में रहते हुए भी उन्होंने सुदूरवर्ती प्रान्तों में कई महत्त्वपूर्ण स्थान बनवाये। यह व्यव-हार उनके हृदय की विशालता का द्योतक है।

महान् विद्या-व्यसनी महाराजा भोज ने चिकित्सा, ज्योतिष, अलंकार, शिल्प, योग, राजनीति, काव्य, नाटक, धर्म आदि विभिन्न विषयों पर ३४ के लगभग प्रामाणिक ग्रन्थ लिखकर जहाँ अपने अगाध पाण्डित्य का परिचय दिया वहाँ छोटे-छोटे सभी प्रकार के विद्वानों को आश्रय देकर उनका आदर-सत्कार करके देश के धनपतियों को धन के सदुपयोग एवं लक्ष्मी की सच्ची पूजा का मार्ग दिखाकर अनुकरणीय आदर्श भी उपस्थित किया। हमारे नेता उनका अनुसरण करके कृत-कृत्य हों।

११. महाराज भर्तृहरि की सारगर्भित नीतियाँ

किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि महाराज भर्तृहरि को अपनी महारानी का अनुचित व्यवहार देखकर जो विरक्ति उत्पंन्न हुई उसने वैराग्य का रूप धारण कर लिया जिसके परिणास्वरूप वे अपने महान् वैभव को छोड़कर वन में चले गये; गुरु गोरखनाथ से दीक्षा ली। उनके नीति के कुछ श्लोक निम्न हैं—

विपत्ति में धैर्य रक्खो

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्यपटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

विपत्ति के समय धैर्य, अधिक उन्नति पर भी शान्ति, सभा में बोलने की पटुता, संग्राम में पराक्रम-प्रदर्शन, यश प्राप्त करने की विशेष रुचि एवं वेद पढ़ने में अनुरक्ति— ये सभी विशेषताएँ सज्जनों में पाई जाती हैं।

विद्याविहीन पशु-तुल्य हैं

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं।
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः॥

विद्या ही पुरुष का सुन्दर स्वरूप और उसकी अत्यन्त गुप्त सम्पत्ति है। विद्या भोग्य पदार्थों को देनेवाली है, कीर्ति तथा सुख को प्रदान करती है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विद्या विदेश जाने पर बन्धु की तरह सहायता करती है। वही सबसे बड़ा देवता है। राजाओं के यहाँ धन की पूजा न होकर विद्या की ही पूजा होती है। इसीलिए विद्या से हीन मनुष्य पशु ही है।

राजा के ६ गुण

आज्ञा, कीर्तिः, पालनं ब्राह्मणानां, दानं, भोगो, मित्रसंरक्षणं च।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण॥

जिनमें शासन करना, यश उपलब्ध करना, विप्रों का परिपालन करना, दान देना, सम्पत्ति का उपभोग करना तथा मित्रों की रक्षा करना—ये छह गुण नहीं उनके राजाश्रय में रहना बेकार है।

वाणी महान् आभूषण है

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः ।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।।

मानव को न तो बाजूबन्दरूपी गहने ही शोभित करते हैं, न चन्द्रमा की भांति चमकनेवाले मोतियों के हार, न स्नान, न चन्दन, न कपूर आदि के लेपन, न फूल और न सँवारे हुए बाल ही मनुष्य की शोभा बढ़ाते हैं। केवल शुद्ध वाणी ही मनुष्य को सर्वदा विभूषित करती है।

धीर न्यायपथ नहीं छोड़ते

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

धैर्यशील मनुष्यों की नीति में कुशल विद्वान् निन्दा करें या प्रशंसा, इच्छानुसार सम्पत्ति आवे अथवा दूर चली जावे, आज ही मृत्यु हो जाए या कालान्तर में हो, परन्तु धीर जन न्यायोचित मार्ग से नहीं हटते।

भर्तृहरि जी के रचित 'नीति शतक' में सभी प्रकार की नीतियों का समावेश है। चारों आश्रम, विद्वान्, मूर्ख, सज्जन, दुष्ट, मित्र, शत्रु, स्त्री, बालक, वृद्ध सभी के विषय में नीति का उपदेश भरा पड़ा है। कर्म और धैर्य की प्रशंसा में जो कुछ लिखा गया है वह अध्ययन के योग्य है; जिन दृष्टान्तों और उदाहरणों का समावेश है, वे भी अत्यन्त महत्त्व के और मननीय हैं। राजसी ठाठ-बाट में पले एवं कांचन-कामिनी-युक्त ऐश्वर्य से सम्पन्न पृथिवीपति महाराज भर्तृहरि का नाम लोकप्रसिद्ध है।

१२. "वीरो महानमरतां भजते प्रतापः"
(वीर राणा प्रताप अब भी अमर है)

भारत के सूर्य महाराणा प्रतापसिंह का जन्म सन् १५४७ में उदयसिंह के घर हुआ। पिताजी की मृत्यु के बाद आपको ही मेवाड़ का सिंहासन मिला। उन दिनों अकबर ने मेवाड़ पर अधिकार कर रखा था। आपने सिंहासन पर बैठते ही प्रण किया कि 'जब तक मैं मुगलों से मेवाड़ को स्वतन्त्र न करा लूं तब तक मैं जमीन पर सोऊँगा और चाँदी के बर्तनों में भोजन नहीं करूँगा।'

एक बार अकबर के सेनापति मानसिंह के आने पर आपने उस देश-द्रोही के

साथ भोजन नहीं किया जिससे वह जलभुन गया। अकबर के कान भरे गये। अकबर ने बड़ी भारी सेना देकर हल्दी घाटी के मैदान में प्रतापसिंह के विरुद्ध मानसिंह को भेजा। हल्दी घाटी के मैदान में भयंकर युद्ध हुआ। मुट्ठीभर राजपूत देश की रक्षा करते-करते बलिदान हो गये। मानसिंह भी घायल हुआ। युद्ध में राणा प्रताप ने सिंह का रूप धारण कर लिया। मुगलों में भगदड़ मची। राणा प्रताप को संकट में घिरा देखकर झाला ने प्रताप का भेष बना लिया। प्रताप का पीछा दो मुगलों ने किया परन्तु शक्तिसिंह ने उसको मार गिराया। दोनों बिछुड़े भाई गले मिले।

प्रताप ने अकबर के सब हमले बेकार कर दिये। अन्त में अकबर ने गाँव जलाने शुरू किये। कुओं में भी विष मिलाया। राजपूतों ने यह सब-कुछ सहन किया परन्तु अधीनता स्वीकार न की। दो बार सेठ भामाशाह ने सेना एकत्र करने के लिए धन दिया। अन्त में राजपूतों की सेना एकत्र कर राणा ने प्रतिज्ञा पूरी की। मरते-मरते भी इस वीर ने अपने सेनापतियों को देश की रक्षा करने का आदेश दिया।

महाराणा प्रताप के विषय में कुछ पद्यों का संकलन किया है—

वीरः स लोहपुरुषः शतकेऽजनिष्ट
मेवाडमध्यमथ षोडशके शुभेऽह्नि।
जातानि तत्र सुमहोत्सवमङ्गलानि
चित्तौडराज्य उदयाख्यपुरेऽतिरम्ये ॥१॥

वह वीर लौहपुरुष राणा प्रताप मेवाड़ प्रदेश के मध्य चित्तौड़ राज्यान्तर्गत उदयपुर नगर में १६वीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ।

योऽसौ बले च खलु भीमसमो धृतौ तु
भीष्मो युधिष्ठिरसमश्च शमे नये च।
शान्त्याः सुमेरुरथ धर्मसुसेतुरार्यो
वीरो महानमरतां भजते प्रतापः ॥२॥

वह आर्य वीर राणा प्रताप बल में भीम के तुल्य, धैर्य में भीष्म के तुल्य, शान्तिनीति में युधिष्ठिर के समान था और शान्ति का सुमेरु पर्वत, धर्म का सेतु था। वह अब भी अमर है ॥२॥

राजाऽक्बरः कपटनीतिनटोऽतिधूर्तो
वीरं प्रतापनृपतिं विविधैरुपायैः।
सामादिभिर्न हि शशाक वशं विधातुं
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥३॥

अतिधूर्त राजा अकबर कपटनीति का नट बना सामादि अनेक उपायों से

भी राणा प्रताप को वश में न कर सका; ठीक है—धीर पुरुष अपने न्याय-मार्ग से कभी च्युत नहीं होते ।।३।।

हल्दी-प्रदेश-समरे विजयाभिकामाः
शूरा नृपस्य यवनीयबले प्रविष्टाः ।
प्राणैः पणैर्युयुधिरेऽग्निरिव प्रदीप्ता
युद्धं तु विस्मयकरं समभूदरीणाम् ।।४।।

हल्दी घाटी के युद्ध में विजयेच्छु शूरवीर शत्रु की सेना में घुसकर आग की तरह देदीप्यमान प्राणों की बाजी लगाये युद्ध कर रहे थे। शत्रुदल के साथ युद्ध आश्चर्यजनक था ।।४।।

वीरस्य तस्य सुमतेः नृपतेः सुनीतिं
दक्षाः सुधीरपुरुषा अवबोधयन्ते ।
जानाति पण्डितजनो ननु पण्डितस्य
पाण्डित्यनीतिमितरे तु मुधा वदन्ति ।।५।।

उस वीर पुरुष की सुनीति को धीर दक्ष पुरुष ही जानते हैं। पण्डित के गुणों को पण्डित ही जानता है। हम पाण्डित्य की नीति को जानते हैं—यह डींग मारनेवाले व्यर्थ बकवाद करते हैं ।।५।।

१३. गुरु समर्थ रामदास जी का उपदेश

एक बार शिवाजी ने एक दानपत्र पर सारा राज्य गुरुजी की भेंट कर दिया। गुरु ने कहा हमें राज्य की क्या जरूरत? तू ही प्रधान बनकर राज सँभाल और देखना, यह राज्य तुम्हारे लिए नहीं है, जनता के लिए है। तुम निष्काम कर्म करो। सचमुच राज्य का कार्य बड़े जोखिम का है। राजा-मन्त्री को मिलकर काम करना चाहिए। राजनीति और धर्मनीति एक ही बात है। सब लोगों को राजी रखना, भले-बुरे की खूब जाँच करना, नीति का त्याग न करना, लालच में कभी न फँसना, सदा सावधान रहना, ऐसा करोगे तो सफल होगे ।।१।।

पत्र, पुष्प, फल, बीज, पाषाण और कौड़ियों की मालाएँ सूत से गूँथी जाती हैं। स्फटिक, जहरमुहरा, काष्ठ, चन्दन, धातु, रत्न आदि की मालाएँ, जालियाँ, चन्दोवे आदि सूत से ही गूँथे जाते हैं ।।२।।

सूत यदि न हो तो काम नहीं चल सकता (इसी प्रकार आत्मा से सम्पूर्ण जगत् गूँथा हुआ है) परन्तु आत्मा के लिए सूत का दृष्टान्त पूरा-पूरा नहीं लगता ।। ३ ।।

क्योंकि सूत तो गुरिया के बीच में ही रहता है और आत्मा सर्वांग में समान

रूप से व्याप्त[1] रहता है ।।४।।

इसके सिवाय आत्मा स्वभावतः चपल है और सूत जड़ एवं निश्चल है। अतएव यह उपमा नहीं लगती ।।५।।

अनेक कटोरों में जल का भाग भरा रहता है, ईखों में भी रस भरा होता है, परन्तु रस और उसका बकला कुछ एक नहीं है ।।६।।

इसी प्रकार देही (आत्मा) और देह (अनात्मा) दोनों भिन्न-भिन्न हैं और इन दोनों से भिन्न निरंजन और निरुपम परमात्मा है ।।७।।

राजा से लेकर रंक तक सब मनुष्य ही हैं, पर सबको एक ही समान कैसे कह सकते हैं ? ।।८।।

देव, दानव, मानव, नीचयोनि, हीनजीव, पापी, सुकृति आदि बहुत-से हैं ।।९।।

एक ही अंश से जगत् चलता है पर सामर्थ्य सबकी अलग है; एक के साथ से रौरव नरक मिलता है।।१०।।

शक्कर और मिट्टी दोनों पृथिवी के अंश हैं पर मिट्टी नहीं खाई जा सकती। विष क्या जल नहीं है ? पर वह बुरी चीज है ।।११।।

पुण्यात्मा और पापात्मा दोनों में 'आत्मा' लगी है; इसी तरह कोई साधु है, कोई भोंदू है, पर सबकी मर्यादा अलग-अलग है, वह छूट नहीं सकती ।।१२।।

यह बात सच है कि सबका अन्तरात्मा एक ही है, पर डोम को साथ में नहीं लिया जा सकता। पण्डित और लौंडे एक कैसे हो सकते हैं ? ।।१३।।

मनुष्य और गधे, राजहंस और मुर्गे, राजा और बन्दर एक कैसे हो सकते हैं ? ।।१४।।

भागीरथी का जल भी आप (पानी) है, मोरी और गढ़े का जल भी आप (पानी) है, परन्तु मैला पानी थोड़ा भी नहीं पिया जा सकता ।।१५।।

इस कारण पहले तो आचार शुद्ध, फिर विचार शुद्ध, वीतराग और सुबुद्ध होना चाहिए ।।१६।।

शूरों को छोड़कर यदि डरपोकों की भर्ती की जाए तो युद्ध के अवसर पर अवश्य हार होगी । श्रीमान् को छोड़कर दरिद्री की सेवा में क्या हाल होगा ? ।।१७।।

यह सत्य है कि एक ही पानी से सब हुआ है, पर देखकर सेवन करना चाहिए, एक तरफ से सभी सेवन करना मूर्खता है ।।१८।।

पानी से ही अन्न हुआ है और अन्न का वमन हो जाता है, पर वमन का भोजन नहीं किया जा सकता ।।१९।।

---

१. आत्मा एकदेशी है, सर्वव्यापक नहीं है। शरीर में एक स्थान में ही रहता है।
—सम्पादक

इसी प्रकार निन्दनीय बात को छोड़ देना चाहिए और प्रशंसनीय बात को हृदय में रखना चाहिए तथा सत्कीर्ति से भूमण्डल को भर देना चाहिए ॥२०॥

उत्तम को उत्तम अच्छा लगता है, निकृष्ट को वह अच्छा नहीं लगता, इसीलिए ईश्वर ने उनको अभागी बना रखा है ॥२१॥

सारा अभागीपन छोड़ देना चाहिए, उत्तम लक्षण ग्रहण करना चाहिए, ईश-कथा, पुराण आदि श्रवण, नीति-न्याय आदि का स्वीकार करना चाहिए ॥२२॥

विवेकपूर्वक चलना चलना चाहिए, सब लोगों को राजी रखना चाहिए और धीरे-धीरे सबको पुण्यात्मा बनाते रहना चाहिए ॥२३॥

जैसे बालक के साथ उसकी ही चाल से चलना पड़ता है और जैसे उसको रुचता है वैसे ही धीरे-धीरे लोगों को सिखलाकर चतुर बनाना चाहिए ॥२४॥

सत्य तो यह है कि सबका मन रखना चाहिए। यही सब चतुरता के लक्षण हैं। जो चतुर है वह चतुरों के अन्य अंग जानता है, अन्य लोग पागल हैं ॥२५॥

परन्तु पागल को 'पागल' भी न कहना चाहिए, मर्म के घात की बात कभी न बोलनी चाहिए, तभी निःस्पृह पुरुष 'दिग्विजय' कर सकता है ॥२६॥

अनेक स्थलों में अनेक अवसरों को जानकर यथोचित व्रर्ताव करना चाहिए और प्राणिमात्र का अन्तरंग (अभिन्नहृदय, मित्र) हो जाना चाहिए ॥ २७॥

एक-दूसरे को राजी न रखने से सभी को तकलीफ होती है। एक-दूसरे का मन तोड़ने से कुशल नहीं होती ॥२८॥

अतएव जो सबका मन प्रसन्न रखता है वही सच्चा महन्त है और उसी की ओर सब लोग आकर्षित होते हैं ॥२९॥

(दास बोध का १३वाँ दशक, दसवाँ समास)

जो ज्ञानी और उदास हैं तथा जिसे समुदाय एकत्र करने का उत्साह है, उसे अखण्ड रीति से एकान्त-सेवन करना चाहिए ॥१॥ क्योंकि एकान्त में तजवीज़ें मालूम होती हैं, अखण्ड चेष्टाएँ सूझती हैं और प्राणिमात्र की स्थिति तथा गति मालूम हो जाती है ॥२॥ यदि वह चेष्टा ही न करेगा तो कुछ भी न मालूम होगा। हाँ, जो दिवालिया होता है वह जमा-खर्च अवश्य नहीं देखता ॥३॥ कोई धन-दौलत कमाते हैं और कोई अपने पास का माल भी गँवा बैठते हैं। ये सब उद्योग की बातें हैं ॥४॥ मन की बात समझ लेने से अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं रहती ॥५॥ एक स्थान में बहुत रहने से लोग ढिलाई करने लगते हैं, अति परिचय से अवज्ञा होती है, अतएव एक जगह बहुत न रहकर विश्रान्ति लेते रहना चाहिए ॥६॥ आलस्य से सारा "कारबार" डूब जाता है, और समुदाय का उद्देश्य पूरा नहीं होता ॥७॥ अतएव उपासना के अनेक कार्य, नित्य नियम के साथ, लोगों के पीछे लगा देने चाहिएँ। ऐसा करने से उन्हें अन्य कृत्रिम कर्मों के

करने का मौका ही न मिलेगा ।।८।। जान-बूझकर चोर को भण्डारी बनाना चाहिए, परन्तु दोष को देखते ही उसे सँभालना भी चाहिए और धीरे-धीरे उसकी मूर्खता दूर करनी चाहिए ।।९।। ये सारी अनुभव की बातें हैं। किसी प्राणी को दुःख न होने पावे, परन्तु राजनीति में सारे लोगों को फाँस लेना चाहिए ।।१०।। नष्ट पुरुष के लिए नष्ट की योजना कर देनी चाहिए और वाचाल से वाचाल को भिड़ा देना चाहिए, पर अपने ऊपर विकल्प का जाल न आने देना चाहिए ।।११।। काँटे से काँटा निकालना चाहिए, पर मालूम न होने देना चाहिए। कलहकर्त्ता की पदवी न आने देनी चाहिए ।।१२।। गुप्तरीति से किसी को मालूम न होते हुए जो काम किया जाता है वह तत्काल सिद्धि को प्राप्त होता है, गचपच में पड़ने से वही काम विशेष खूबी के साथ नहीं होता ।।१३।। किसी का यश सुनकर उसके विषय में प्रीति होनी चाहिए, उसे देखकर वह प्रीति और भी दृढ़ होनी चाहिए तथा अति परिचय होने पर उसकी सेवा करनी चाहिए ।।१४।। कोई भी काम हो, वह करने से होता है, इसलिए ढीलेपन से न रहना चाहिए ।।१५।। जो दूसरे पर विश्वास करता है उसका कारबार डूब जाता है, अतएव वास्तव में योग्य पुरुष वही है, जो स्वयं कष्ट उठाते हुए आत्मविश्वास रखकर अपना काम सँभालता है ।।१६।। सबको सब बातें न मालूम होने देना चाहिए क्योंकि ऐसा होने से उन बातों का महत्त्व नहीं रहता ।।१७।। मुख्य सूत्र हाथ में लेना चाहिए, जो कुछ करना हो वह सब जन-समुदाय के द्वारा करवाना चाहिए। अनेक राजनैतिक गूढ़ प्रश्नों का हल करना चाहिए ।।१८।। वाचाल, पहलवान और कलहकर्त्ताओं को भी अपने हाथ में रखना चाहिए। परन्तु ऐसा न हो जाए कि सारे दुर्जन-ही-दुर्जन 'राजकरण' में भर जाएँ ।।१९।। विरोधियों को भेद से पकड़ में लाना चाहिए और उनको रगड़कर पीस डालना चाहिए, पर पीछे से उन्हें सँभाल लेना चाहिए, बिल्कुल नष्ट न कर देना चाहिए ।।२०।। दुष्ट-दुर्जनों से डर जाने पर 'राजकरण' (राजनीति) का महत्त्व नहीं रहता, किन्तु बुरी-भली सब बातें खुल जाती हैं ।।२१।। मनुष्य-समुदाय तो बड़ा चाहिए ही, परन्तु आक्रमण-शक्ति भी दृढ़ चाहिए; यह भी ध्यान में रहे कि मूढ बनाकर समुदाय एकत्र करके फिर अड़-बाजी न करना चाहिए ।।२२।। दुर्जन प्राणियों को अपने मन ही मन में जान लेना चाहिए पर उनके विषय में कुछ प्रकट न करना चाहिए। इसके विरुद्ध, उन्हें महत्त्व देकर सज्जन की तरह उनकी विनती करनी चाहिए और मौका देखकर अपना बदला लेना चाहिए ।।२३।। लोगों में दुर्जन के प्रकट हो जाने पर बहुत ही खट-खटें मचती हैं, इसलिए उस मार्ग को ही नष्ट कर देना चाहिए ।।२४।। ऐसा परामर्श का पक्षपाती धर्मात्मा राजा होना चाहिए कि शत्रु-सेना को देखते ही रणशूरों की भुजाएँ फड़कने लगें ।।२५।। उसको देखते ही दुर्जनों की छाती दहल उठती है। वह अनुभव के हथकण्डे चलाता है और उसके द्वारा उपद्रव तथा

पाखण्ड सहज ही नष्ट हो जाते हैं ।।२६।। यह सब धूर्तपन चाणाक्षता के काम हैं। राजनैतिक विषयों में दृढ़ता चाहिए। ढीलेपन के भ्रम में न पड़ना चाहिए ।।२७।। जो चतुर राजनीतिज्ञ होता है वह कहीं भी दीख पड़ता है, पर ठौर-ठौर में उसी की बातें होती रहती हैं और अपने वाग्विलास (लच्छेदार भाषण) से वह सारी सृष्टि को मोहित कर लेता है ।।२८।।

भोंदू के साथ भोंदू लगा देना चाहिए, हूस के साथ हूस को भिड़ाना चाहिए, और मूढ के सामने दूसरा मूढ खड़ा कर देना चाहिए ।।२९।।

लट्ठ का सामना लट्ठ से ही करा देना चाहिए, उद्धत के लिए उद्धत चाहिए और नटखट के सामने नटखट की ही आवश्यकता है ।।३०।।

जैसे को तैसा जब मिलता है तभी किसी संस्था की महत्ता दीख पड़ती है। इतना सब हो रहा है, तथापि यह पता न लगना चाहिए कि इन सब बातों का कर्त्ता कहाँ है ।।३१।।

(दास बोध का ११वाँ दशक, नवाँ समास समाप्त)

१४. "वीरोऽमरः स जयतात् शिवराजवीरः"

(वह शिवाजी सदा विजयी व अमर रहे)

शिवाजी १० अप्रैल १६२७ ई० को शिवनेर के दुर्ग में पैदा हुए। शिवाजी के पिता का नाम शाहजी भौंसला था।

शिवाजी का पालन-पोषण उसकी माता जीजाबाई की देख-रेख में हुआ। उसने शिवाजी के हृदय में देश-प्रेम तथा हिन्दू धर्म का भाव कूट-कूटकर भर दिया था। शिवाजी ने दादा काण्डदेव से अस्त्रविद्या और गुरु रामदास से राजनीति की शिक्षा प्राप्त की थी।

शिवाजी ने १९ वर्ष की आयु में तोरण नामक दुर्ग जीत लिया। फिर उसने राजगढ़, पुरन्धर, रायगढ़ आदि अन्य दुर्गों को जीत लिया।

मुगल प्रदेश हाथ से जाता देख औरंगजेब ने शिवाजी के विरुद्ध अपने मामा शाइस्ताखाँ को भेजा, किन्तु शिवाजी ने अचानक हमला बोल दिया और शाइस्ताखाँ ने मुश्किल से प्राण बचाये। कदम-कदम पर मुगलों को हराता हुआ यह वीर सन् १६८० में ५३ वर्ष की आयु में रायगढ़ के स्थान पर स्वर्ग सिधार गया।

वीर शिवाजी के विषय में कुछ पद्यों का संकलन प्रस्तुत है—

श्री विक्रमस्य शतके शुभषोडशान्ते, जातः शिवश्चतुरशीत्यधिकेशुभेऽब्दे।
श्री शाहमित्रभवने शिवनेरिदुर्गे, दुर्गो ह्यसौ गिरिसमोऽस्ति महासुराष्ट्रे ।।१।।

शिवाजी विक्रमीय १७वीं शताब्दी में ८४वें वर्ष (१६८४) में शिवनेरि किले

में (श्री शाहमित्र के भवन में) उत्पन्न हुए, जो किला महाराष्ट्र प्रदेश में पर्वत के समान सुदृढ़ था ॥१॥

'जीजा'-सुतोऽग्निरिव दीप्तियुतोऽत्युदारः सिंहोपमां वपुषि साहसतामुपेतः।
रौद्रीं तनुं परिदधद् धृतशूलपाणिर्दस्योर्दलेन सह संयुयुधे रणेषु ॥२॥

जीजाबाई का पुत्र अग्नि की तरह चमकता हुआ उदारवीर शिवाजी सिंह की उपमा को प्राप्त हुआ अपना भयंकर रूप बना त्रिशूल हाथ में लिये शत्रुदल के साथ अनेक युद्धों में भिड़ता था ॥२॥

सद्धर्मसेतुरभवद् नृपनीतिदक्षो, धैर्ये तु यो हिमगिरिः समुदात्तवृत्तः।
यो भारतीय सुसंस्कृति मेरुदण्डो, वीरोऽमरः स जयतात् शिवराजवीरः ॥३॥

जो शिवाजी सद्धर्म का सेतु था, नीतिदक्ष था, धैर्य में हिमाचल के तुल्य था, सच्चरित्र था, भारतीय परम्परागत संस्कृति का मेरुदण्ड था, वह शिवाजी सदा से विजयी व अमर रहे ॥६॥

श्रीवीरसिंहशिवराजकृपाणभीतश्चौरंगजेब-नपृतिर्न जहौ स्वहर्म्यम्।
रात्रिं दिवं त्वधिगृहं निवसंस्त्रसन् सः, खादन् पिबन्नपि चलंश्च ददर्श शैवम् ॥

सिंहरूप शिवाजी की कृपाण से भयभीत राजा औरंगजेब महल को नहीं छोड़ता था। दिन-रात घर में रहता हुआ बड़ा व्याकुल था। खाता-पीता-चलता सामने (स्वप्नवत्) वीर शिवाजी को ही देखता था ॥

राज्ञः शिवस्व शुभशासनकालमध्ये, जातो न कोऽपि पुरुषो विषयानुरागी।
सर्वे जना निजनिजेप्सित कार्यसिद्धो, सिद्धिं गता गतभया मुदिता बभूवुः ॥५॥

महाराज शिवाजी के शासनकाल में कोई विषयानुरागी नहीं था। सब प्रजा अपने कार्यों की सफलता में लगी हुई थी तथा निर्भय और मुदित-मन थी ॥५॥

१५. महर्षि दयानन्द का राजधर्म

१. राजा (चक्रवर्ती)

चक्रवर्ती शब्द का क्या अर्थ है? जो एक भूगोलभर में अपनी राजनीतिरूप आज्ञा को चलाने में समर्थ हो। (दयानन्द)

चक्रवर्ती राज्य का यह अभिप्राय नहीं कि किसी देश का स्वराज्य नष्ट किया जावे, परन्तु भूगोलभर के सब राष्ट्र मिलकर अपना एक चक्रवर्ती राजा चयन करें। प्रत्येक राष्ट्र में मतमतान्तर के आग्रह से रहित राज्य होना चाहिए। ऋषि दयानन्द ने नित्यकर्म प्रातः-सायं सन्ध्या के मन्त्रों में जहाँ अदीनः, स्वतन्त्र होने की बात कही, वहाँ स्वप्न में भी प्रातः-सायं चक्रवर्ती राज्य की स्थापना नहीं भूले। 'प्रजया पशुभिः ब्रह्मवर्चसेन' का अर्थ आर्याभिविनय २।१ में इस प्रकार

किया है—हे प्रजापते ! मुझको (प्रजया) अच्छी प्रजा पुत्रादि (पशुभिः) हस्ति, अश्व, गवादि पशु (ब्रह्म) सर्वोत्कृष्ट विद्या और (वर्चसेन) चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परम सुखकारक है उसको शीघ्र प्राप्त करे।

सृष्टि से लेके पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे, क्योंकि कौरव-पाण्डव पर्यन्त यहाँ के राज्य और राज्यशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चले थे।

महाराजा युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ और महाभारत-युद्ध पर्यन्त यहाँ के राज्याधीन सब राज्य थे। सुनो—चीन का भगदत्त, अमेरिका का बभ्रुवाहन, यूरुप देश का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के सदृश आँखवाला जिसको यूनान कह आये और ईरान का शल्य आदि सब राजा राजसूययज्ञ और महाभारत-युद्ध में आज्ञानुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे, तब रावण भी यहाँ के अधीन था, जब रामचन्द्र के समय में विरुद्ध हो गया तो उसको रामचन्द्र ने दण्ड देकर राज्य से नष्ट कर उसके भाई विभीषण को राज्य दिया था।

सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा, आर्यकुल में ही हुए थे। अब इसके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहाँ सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, ननक्तु, शर्याति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त, भरत, सार्वभौम सब भूमि में प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाओं के नाम लिखे हैं वैसे स्वायम्भवादि चक्रवर्ती राजाओं के नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रन्थों में लिखे हैं। इसको मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का कम है। (स० प्र० ११)

२. मन्त्री

स्वराज्य, स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जाननेवाले, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित सात वा आठ उत्तम धार्मिक चतुर सचिव अर्थात् मन्त्री करे। (स० प्र० ६)

सचिव दो प्रकार के होते हैं—१. धी सचिव। २. कर्म सचिव। धी सचिव दो प्रकार के होते हैं। पूर्ण अमात्य-सम्पत् से युक्त मन्त्री तथा स्वल्प अमात्य-सम्पत् से युक्त अमात्य कहलाते हैं, जिनको एक-एक अध्यक्षीय विभाग सौंपा जाता है। मन्त्री द्वारा कर्म पर नियुक्ति को कर्म सचिव कहते हैं।

राजा दशरथ की सभा में भी आठ मन्त्री थे। उनके नाम ये हैं—१. धृति, २. जयन्त, ३. विजय, ४. सिद्धार्थ, ५. अर्थसाधक, ६. अशोक, ७. मन्त्रपाल, ८. सुमन्त्र।

अमेरिका के मन्त्रिमण्डल में दस से अधिक सदस्य नहीं होते हैं जबकि

अमेरिका का क्षेत्रफल भारतवर्ष से दुगुना है। भारतवर्ष में मन्त्रियों की भरमार है और मन्त्रिमण्डल बढ़ता ही जा रहा है।

३. अध्यक्ष

उस राजकार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों को सभा नियत करे।

(स० प्र० ६)

दिक्पाल—दिशाओं का पालन करनेवाले दिक्पाल कहलाते हैं। प्राचीनकाल में आर्यों के राज्य में आठ दिक्पाल हुआ करते थे। दिक्पाल विभागों के अध्यक्ष होते थे। राजा में आठों दिक्पालों की शक्ति होती थी।

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः।। मनु० ७/७

उनके नाम ये हैं–१. इन्द्र, ३. वरुण, ३. यम(धर्मराज), ४. कुबेर, ५. अग्नि, ६. वायु, ७. नैर्ऋति (सोम), ८. ईश (अर्क)। दिक्पालों की यह कल्पनामात्र ही नहीं है, तथ्य ही है। एक बार देवासुर-संग्राम में जब देवता हार गये तो असुरों ने क्रमशः आठों दिक्पालों के स्थान पर अपने-अपने दिक्पाल नियुक्त किये—१. जिम्भक, २. महिष, ३. कालनेमि, ४. कच्छ, ५. निमि, ६. नमुचि, ७. मेघ, ८. शुम्भ।

१. इन्द्र (शासनाध्यक्ष)

परराष्ट्र, गृह, खाद्य, कृषि, वाणिज्य, उद्योग, संचार, परिवहन, रेल, बिजली, खान, ईंधन आदि विभागों का स्वामी।

यह सर्वश्रेष्ठ विभाग है **'इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः'** सारा उत्तरदायित्व इसी विभाग पर है।

२. वरुण (जलाध्यक्ष)

(सिंचाई विभाग का स्वामी वरुणोऽपामधिपतिः) खेती के लिए पानी के साधन की अत्यन्त आवश्यकता है। धरती माता, और पानी पिता के समान है। राज्य की ओर से खेती के लिए समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

यज्ञादि के द्वारा वर्षा कराने का आविष्कार होना चाहिए। **"निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु।"** जब-जब हम पानी चाहें तब बादल वर्षा करें। ऋषि दयानन्द ने कहा था कि 'वन के वृक्षों की रक्षा से बहुत वर्षा होती है' (यजुर्वेद १२।२३)। वन शब्द का अर्थ ही पानी है। वनस्पति अर्थात् पानी की रक्षा करनेवाली, अतः वनस्पति की रक्षा राज्य की ओर से होनी चाहिए। **'वृक्षो वै पशुपतिः'** वनस्पति ही पशुपति है अर्थात् वृक्षों से ही पशुओं की रक्षा होती है तथा **'पशुर्वै प्रजापतिः'**

पशु ही प्रजापति है अर्थात् पशुओं से प्रजा की रक्षा होती है। पशु और वृक्ष ये दो ही प्रजा की रक्षा के साधन हैं। वृक्षों से फल तथा पशुओं से दुग्ध तथा दोनों से आच्छादन प्राप्त होते हैं, अतः वृक्ष और पशुओं की हिंसा न करके सर्वथा रक्षा करनी चाहिए।

३. यम (न्यायाध्यक्ष, विविध विभागों का अध्यक्ष)

"जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है वहाँ अधर्म में चार विभाग हो जाते हैं—उनमें से एक अधर्म का कर्ता, दूसरा साक्षी, तीसरा सभासद् और चौथा पाप अधर्मी सभा के सभापति राजा को प्राप्त होता है। जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड, और मान्य के योग्य का मान्य होता है वहाँ राजा और सब सभासद् पाप के रहित हो जाते हैं, पाप का कर्ता ही पाप को प्राप्त होता है।" (स० प्र० ६)

४. कुबेर (धनाध्यक्ष, वित्त आर्थिक विभाग का स्वामी)

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिन्। वार्षिक कर आप्त पुरुषों के द्वारा ग्रहण करे। (स० प्र० ६)

जो यथार्थ वक्ता, धर्मात्मा, सबके सुख के लिए प्रयत्न करता है, उसी को आप्त कहते हैं। (स० प्र०) जैसे जोंक, बछड़ा और भँवरा थोड़ा-थोड़ा योग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं वैसे राजा प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर लेवे। अति लोभ से अपने व दूसरों के सुख के मूल को उच्छिन्न अर्थात् नष्ट कदापि न करे, क्योंकि जो व्यवहार और सुख के मूल का छेदन करता है वह अपने को और उनको पीड़ा देता है। (स० प्र० ६)

५. अग्नि (कर्माध्यक्ष)

(शिक्षा, सांस्कृतिक, योजना, श्रम, नियोजन, आदि विभागों का स्वामी)

'अग्निर्भूतानामधिपतिः' इस विभाग द्वारा भूत अर्थात् प्राणियों को शिक्षा देकर संस्कृति का उपासक बनाना है। ब्रह्मचर्यावस्था को समाप्त करके प्रत्येक को गुरुकुल में आचार्य द्वारा प्राप्त वर्ण में श्रम देकर नियुक्त करना होता है। पुरोहित का कार्य भी इसी विभाग द्वारा होता है। **'दृष्टरि व्यवहाराणां पुरोधास्तु पुरोहितः'।**

पुरोहित—पुरोहित और ऋत्विज का स्वीकार इसलिए करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहे अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात-दिन राजकार्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना। (स० प्र० ६)

६. वायु (विज्ञानाध्यक्ष)

(वैज्ञानिक शोध, आणविक शक्ति, सूचना, प्रसार आदि विभागों का स्वामी)

'अर्थवेद' कि जिसको शिल्प-विद्या कहते हैं उसको पदार्थ-गुण-विज्ञान, क्रिया-कौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण, पृथिवी से लेके आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीखके अर्थ अर्थात् ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है, उस विद्या को सीखके दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र, सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित अंक, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या हैं इसको यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया यन्त्रकला आदि को सीखें। (स० प्र० ३)

७. नैर्ऋति (स्वास्थ्याध्यक्ष)

इसी को मनु ने सोम कहा है, **'सोम ओषधीनां पतिः'** सोम ओषधियों का पति है।

राजा को चाहिए कि दो प्रकार के वैद्य रखे। एक तो सुगन्धादि पदार्थों के होम से वायु, वर्षा-जल, और ओषधियों को शुद्ध करें। दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोगरहित रखें। इस कार्य के बिना संसार में सार्वजनिक सुख नहीं हो सकता। (यजु० ११।३८ द० भा०)

'आयुर्वेद' अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि-मुनिप्रणीत वैद्यक शास्त्र है उसको अर्थ, क्रिया, शास्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुणज्ञानपूर्वक पढ़ें-पढ़ावें। (स० प्र० ३)

८. ईश (सेनाध्यक्ष)

(प्रतिरक्षा विभाग का स्वामी)

यह तो पशु-पक्षियों का भी स्वभाव है कि जब कोई उनके घर आदि को छीन लेने की इच्छा करता है तब यथाशक्ति युद्ध करते अर्थात् लड़ते ही हैं। (संस्कृत-वाक्य प्रबोध)

युद्ध-कर्म में चार वीर अवश्य हों। उनमें से एक तो वैद्यक शास्त्र की क्रियाओं में चतुर सबकी रक्षा करनेवाले वैद्य, दूसरा सब वीरों को हर्ष देनेवाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करनेहारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करनेवाला हो। तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है। (यजु० ७।४४ दयानन्दभाष्य)

'धनुर्वेद' अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है इसके दो भेद एक निज राजपुरुष-सम्बन्धी और दूसरा प्रजा-सम्बन्धी होता है। राजकार्य में सभा, सेना के अध्यक्ष शस्त्रास्त्र विद्या, नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है उसको यथावत् सीखें। (स० प्र० ३)

जितने भी स्त्री-पुरुष हों वे सब शस्त्र का अभ्यास करें (ऋग्वेद १।१७।४)

इस प्रकार संक्षेप से वेदानुसार ऋषि दयानन्द की राजनीति का वर्णन किया।

१६. हृद्यं सुपद्यं कुसुमांजलिमर्पयामि

(मैं विनयपूर्वक सुन्दर पुष्पांजलि समर्पित करता हूँ)

यैर्धीरवीर पुरुषैः प्रणरक्षकैर्हि
मग्नारिजालजलधौ निजमातृभूमिः।
उद्धारिता धृतवराहवरेण्यरूपैः,
तेषां सुचारुचरितानि सदा स्मरामः॥

जिन दृढ़प्रतिज्ञ और धीर-वीर पुरुषों ने वराहरूप धारण कर शत्रुजालरूपी समुद्र में डूबी हुई अपनी मातृभूमि को उभारा, उन महापुरुषों के सच्चरित्रों को हम सदा स्मरण करते हैं॥ १॥

राणाप्रतापसदृशः सुभटो न कोऽपि
वीरो महान् समभवन्न भविष्यतीति।
योऽसौ विहाय धन-पुत्र-कलत्र-भोगान्
बभ्राम कन्दफलभुग् गिरिकन्दरासु॥ २॥

राणा प्रताप के समान कोई वीर योद्धा न हुआ, न होगा। जो धन, पुत्र, कलत्र आदि को छोड़कर केवल कन्द-मूल-फल खाता पहाड़ों की गुफाओं में भटकता फिरता रहा॥ २॥

श्री वीरसिंह शिवराजसमोऽद्य वीरो
भूतो भविष्यति न भारत भूमिभागे।
यश्चार्यधर्ममथ संस्कृतिमार्यजातेः
प्राणैः पणैः परिरक्ष स गाथकीर्तिः॥ ३॥

इस भारतभूमि पर वीर पुरुषों में सिंहरूप महाराजा शिवाजी के समान न कोई हुआ, न आगे होगा, जिस यशस्वी वीर ने आर्यधर्म तथा संस्कृति की प्राणों की बाजी लगाकर रक्षा की॥ ३॥

धन्यः स भाग्यमलसूनुरतीवधीरो
वीरो हकीकत इहाऽसमये स्वदेशे।
प्राणान् जहौ भारतभू-बलिदानवेद्यां
यन्नाम विस्मृतिपथं न कदापि यायात्॥ ४॥

वह भागमल का सुपुत्र वीर हकीकतराय धन्य है जिसने भारत की बलिदान-वेदी पर अपने प्राण धर्म-हेतु बचपन में न्यौछावर कर दिये, जिसका नाम संसार

कभी नहीं भूलेगा ॥ ४ ॥

यदि श्रीदयानन्द आर्यो न भूतः
स्वदेशे स्थितिः स्यान्न साध्वी नराणाम् ।
जनाः स्वीयलक्ष्यच्युता ज्ञानहीना,
न वेदादि शिक्षारताः स्युर्धरायाम् ॥ ५ ॥

यदि महर्षि दयानन्द जी न होते तो इस आयावर्त्त देश के मनुष्यों की स्थिति अच्छी न होती और हम अपने लक्ष्य से च्युत, ज्ञान से हीन और वेदादि शिक्षा से वंचित ही होते। भारत पर ऋषि के बहुत उपकार हैं ॥ ५ ॥

श्री भगतसिंह-सुखदेव-पटेलमुख्याः
श्री चन्द्रशेखर-यतीन्द्र-सुभाषवीराः ।
अन्येऽपि ये निजतनूं व्यजहुः परार्थं
को विस्मरिष्यति कृतज्ञजनः समस्तान् ॥ ६॥

वीर भगतसिंह, सुखदेव, सरदार पटेल, श्री चन्द्रशेखर, यतीन्द्रनाथ, वीर सुभाष तथा और जिन वीर पुरुषों ने देश के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिये उनके सच्चरित्रों को कौन कृतज्ञ पुरुष स्मरण नहीं करेगा !

यैः धर्मवीरपुरुषैर्निजदेशहेतो-
स्त्यक्तं समस्तनिजजीवनमार्यवीरैः ।
तेषामहं सविनयं स्मृतिपुण्यतीर्थे
हृद्यं सुपद्यं कुसुमाञ्जलिमर्पयामि ॥ ७ ॥

जिन धर्मवीर पुरुषों ने अपने देश के लिए अपना समस्त जीवन न्यौछावर कर दिया उनकी स्मृतिरूपी पुण्यतीर्थ में विनयपूर्वक मैं सुन्दर पुष्पाञ्जलि समर्पित करता हूँ ॥ ७ ॥ [समाप्त]

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	५०.००
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	प्रेस में
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

श्रीकृष्ण चरित	२५.००
श्याम जी कृष्ण वर्मा	२४.००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	२५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (सम्पादित) ग्यारह खण्ड	६६०.००

By Swami Satya Prakash Sarasvati

Founders of Sciences in Ancient India Two Volumes	500.00
Coinage in Ancient India Two Volumes	600.00
Critical Study of Brahmagupta and His works	350.00
Geomatry in Ancient India	350.00
God and His Divine Love	5.00

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली चार खण्ड	२४०.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश	३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय	४५.००
सत्यार्थ सरस्वती	२५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष	६.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा	५०.००
मैं ब्रह्म हूँ	४.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा	४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप	३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा	६.००
ईशोपनिषद्	४.५०

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	६.००

प्रो० विष्णदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप	४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो	४.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	६.००

सुरेशचन्द वेदालंकार

महकते फूल	१०.००
ईश्वर का स्वरूप	१५.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य	२.५०
प्राणायाम विधि	२.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप	५.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम	३५.००
संध्या विनय	८.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा	३५.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	१.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका	४.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००

घर का वैद्य

लेखक : सुनील शर्मा

प्याज	३.५०
लहसुन	३.५०
गन्ना	३.५०
नीम	३.५०
सिरस	३.५०
तुलसी	३.५०
आँवला	३.५०
नींबू	३.५०
पीपल	३.५०
आक	३.५०
गाजर	३.५०
मूली	३.५०
अदरक	३.५०
हल्दी	३.५०
बरगद	३.५०
दूध-घी	३.५०
दही-मट्ठा	३.५०
हींग	३.५०
नमक	३.५०
बेल	३.५०

बाल साहित्य

बाल शिक्षा दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	२.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	२.५०
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	०.७५
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	२.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	२.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	२.५०
नतिक शिक्षा	सप्तम	२.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम	२.५०
नैतिक शिक्षा	नवम	३.००
नैतिक शिक्षा	दशम	३.००

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत)	६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

डॉ० मनोहरलाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००

सन्तराम वत्स्य

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महाबली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	५.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	५.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह (पुरस्कृत)	६.००
ज्ञान की कहानियाँ (पुरस्कृत)	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेटं मार्डन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
ारणागत की रक्षा (वेदों ,,)	६.००
ीति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणों की कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइबल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रंथों ,,)	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेड़ों वाली	८.००
राजा-रानी की कहानी	८.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

हास्य-व्यंग्य

माडर्न शादी	३.००
हँसो हँसाओ	५.००
हास परिहास	५.००

विविध लेखक

भक्त बालक	६.००
पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हम सब राम-रहीम के बेटे	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	६.००
ऋतुगीत	६.००
सफलता की राह	५.००
उन्नति की राह	५.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें	६.००
अवसर को पहचानो	६.००
अपने आपको पहचानिये	६.००
आप सफल कैसे हों	६.००
उन्नति कैसे करें	६.००
धन कुबेर कैसे बनें	६.००

स्वास्थ्य और योग

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	६.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशु पालन	१२.००
हृदय-रोग कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार

लेखक—**श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती**

स्वामीजी की अँग्रेजी पुस्तक 'Founders of Sciences in Ancient India' का सारे विश्व में स्वागत हुआ है और उसके कई संस्करण हो चुके हैं। यह हिन्दी संस्करण अब पुनः छप रहा है। इसमें निम्न विषय सम्मिलित हैं :

१. **अथर्वन्** : अग्नि के पहले आविष्कारक
२. **अग्नि के** द्वारा यन्त्र साधनों का आविष्कार
३. **दीर्घतमस्** : वैदिक संवत् के आविष्कर्ता
४. **गार्ग्य** द्वारा नक्षत्रों का पहली बार संख्यान
५. **भरद्वाज** द्वारा प्रथम वनस्पति गोष्ठी का सभापतित्व
६. **आत्रेय पुनर्वसु** और उनकी चिकित्सापीठ
७. **सुश्रुत** : शल्य चिकित्सा के पिता
८. **कणाद** : यथार्थवाद, कारणवाद और परमाणु सिद्धान्त के पहले प्रतिपादक
९. **मेधातिथि** : अंकों को पहले-पहल परार्ध तक पहुँचाने वाले
१०. **आर्यभट्** द्वारा बीजगणित का शिलारोपण
११. **लगध** : ज्योतिष को युक्ति संगत करने वाले प्रथम ऋषि
१२. **लाटदेव और श्रीषेण** द्वारा भारत में ग्रीक ज्योतिष का सूत्रपात
१३. **बौधायन** : सबसे पहला महान् ज्यामितिज्ञ

यह महान् ग्रन्थ 'वेदप्रकाश साइज' में ६२५ पृष्ठों का होगा। बढ़िया कागज़, मजबूत जिल्द, मूल्य ४००/- होगा। पुस्तक मई के अन्त तक छपकर तैयार होगी। ३० मई तक 'प्रकाशन से पूर्व' अग्रिम ग्राहक बनने पर मात्र रु० १५०/- में। आज ही १५०.०० भेजकर ग्राहक बनें। थोड़ी ही प्रतियाँ प्रकाशित की जा रही हैं।

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक ६]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [अप्रैल १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

क्रान्तिकारी महर्षि दयानन्द

प्रो० रामविचार, एम० ए०, दयानन्द कॉलेज, हिसार

महर्षि दयानन्द जी एक क्रान्तिकारी महापुरुष थे। उन्होंने विश्व के धार्मिक और दार्शनिक जगत् में एक क्रान्ति उपस्थित की। उनकी यह क्रान्ति कोई सशस्त्र क्रान्ति नहीं थी, अपितु वैचारिक क्रान्ति थी। उनकी यह क्रान्ति खण्डनात्मक ही नहीं थी, परन्तु मण्डनात्मक थी। उनकी इस वैचारिक क्रान्ति ने विश्व के धार्मिक जगत् को हिला दिया, धार्मिक नेताओं के मस्तिष्क को झंझोड़ दिया। उन्हें अपनी धार्मिक मान्यताओं के विषय में पुर्नविचार करना पड़ा। उन्हें अपनी मान्यताओं के लिए नए तर्क उपस्थित करने पड़े। विज्ञान-विरुद्ध और तर्क के विपरीत उनकी धारणाएँ धराशायी हो गईं। दुराग्रह और हठ के कारण एवं बिरादरी के बन्धनों कारण भले ही वे वैदिक धर्म में प्रविष्ट न हो पाए हों, परन्तु उनके मस्तिष्क एक बार अवश्य हिल गये।

क्रान्तिकारी दयानन्द की सबसे बड़ी देन धर्म के साथ सृष्टिक्रम को जोड़ने की है। महर्षि के आगमन से पूर्व धर्म के नाम पर जो कुछ भी कहा जाता था, उसे परमसत्य समझकर स्वीकार कर लिया जाता था। महर्षि ने इस धारणा के विरुद्ध विद्रोह किया। जिन आश्चयकर्मों (मोजज़ात) को धर्म-गुरुओं की महानता का सूचक ठहराया जाता है और जिन्हें उनके बड़प्पन का कारण बताया जाता है, क्रान्तिकारी दयानन्द ने उन्हें ढकोसला कहा। मूसा का पत्थर पर डंडा मारना और पत्थर से झरनों का निकलना, मूसा का नील नदी में डंडा मारना और नील नदी का बीच में सूख जाना, ईसा का मृतकों को जीवित करना, ईसा का बिना बाप के उत्पन्न होना, मुहम्मद साहिब का चाँद के दो टुकड़े कर देना, महावीर स्वामी

का अंगूठे से पृथिवी को दबाना और शेषनाग का हिल जाना, कर्ण का कान से उत्पन्न होना, सीता का धरती से उत्पन्न होना, हनुमान जी का सूरज को निगल जाना, श्री कृष्ण का पर्वत को अंगुली पर उठा लेना, ध्रुवभक्त का अग्नि में न जलना, गुरु नानक का हाथ के संकेत से पर्वत को रोक देना, मक्के की मस्जिद को घुमा देना इत्यादि सभी मतमतान्तरों की बातों को (जिनपर उनके मताव-लम्बी बहुत गर्व करते हैं) सृष्टिक्रम के विपरीत कहकर उन्हें मिथ्या ठहराया। ये सभी घटनाएँ अपने धर्मगुरुओं के महत्त्व को बढ़ाने और लोगों को आश्चर्य-चकित करके उन्हें श्रद्धायुक्त करने के लिए हैं। महर्षि ने लोगों के मस्तिष्क को झंझोड़कर यह सिद्ध किया कि किसी भी महापुरुष की श्रेष्ठता उसके आचरण में है, न कि सृष्टि-नियमों को तोड़ने से उनका महापुरुषत्व बनता है।

महर्षि ने धर्म को कर्मप्रधान बताया और विश्वास की प्रधानता का बलपूर्वक खण्डन किया। मनुष्य को मोक्ष उसके सत्कर्मों से प्राप्त होता है, किसी व्यक्ति-विशेष पर ईमान अथवा विश्वास लाने से नहीं। इस उद्घोषणा से उन्होंने पुत्रवाद, दूतवाद, तथागतवाद, गुरुवाद और अवतारवाद की जड़ें काट दीं। ईसा ईश्वर का पुत्र है, उसपर ईमान लाने से ही मुक्ति प्राप्त होगी, महर्षि ने इस धारणा का बल-पूर्वक खण्डन किया। यदि ईसा ही ईश्वर का पुत्र है तो अन्य मनुष्य किसके पुत्र हैं ? यदि शुद्धाचरण के कारण ईसा ईश्वर का पुत्र है तो अन्य शुद्धाचारी ईश्वर के पुत्र क्यों नहीं हैं ? पुत्रवाद का सिद्धान्त चलाकर ईसाइयों ने ईसा को अनुचित महत्त्व प्रदान किया। हजरत मुहम्मद ने अपने को ईश्वर का दूत घोषित किया। आज से १४०० वर्ष पहले ही ईश्वर को दूत भेजने की क्या आवश्यकता पड़ी ? हजरत मुहम्मद से पहले जो लोग थे, उन्हें ईश्वर ने अपने दूत और अपने संदेश से क्यों वंचित रखा ? यदि पहले दूत (पैगम्बर) आए थे तो मुहम्मद को दूत क्यों बनाया ? क्या पहले दूतों को सन्देश देने में कोई भूल-चूक रह गई थी जिसकी पूर्ति ईश्वर ने मुहम्मद द्वारा की ? इस प्रकार के तर्कों को उपस्थित करके क्रान्तिकारी दयानन्द ने दूतवाद का भी घोर खण्डन किया। दूतवाद का सिद्धान्त चलाकर मुहम्मद ने अपने महत्त्व को बढ़ाया। इसी प्रकार 'बुद्धं शरणं गच्छामि' कहकर बौद्धों ने महातमा बुद्ध का अनुचित महत्त्व बढ़ाया। महर्षि ने गुरुवाद का भी बल-पूर्वक खण्डन किया। गुरु केवल ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग को बतलाता है, यदि वह उच्चकोटि का साधक और सिद्ध पुरुष हो तो। इसी नाते से गुरु का सम्मान करना है। इससे अधिक कुछ नहीं। गुरु को ईश्वर के समकक्ष अथवा ईश्वर से अधिक नहीं समझना है, जैसाकि एक प्रसिद्ध श्लोक हिन्दुओं में प्रचलित है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः

—गुरु गीता के गुरुमाहात्म्य प्रकरण का श्लोक १६

गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु देव है, गुरु महेश्वर है, गुरु ही श्रेष्ठ ब्रह्म है, इसलिए श्री गुरु को नमस्कार है। इस प्रकार के श्लोकों को घड़कर गुरु के अनुचित महत्त्व को बढ़ावा दिया गया है। सन्त कबीर ने भी कहा है—

> गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय,
> बलिहारी उन गुरु की, जिन गोबिन्द दियो मिलाय।

यहाँ सन्त कबीर ने गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्त्व दिया है। इसी प्रकार क्रान्तिकारी दयानन्द ने अवतारवाद का भी खण्डन किया। अवतारवाद ने भी ईश्वर-पूजा का ह्रास किया है। अवतारवाद का सहारा लेकर अपनी पूजा कराने-वालों ने अपने महत्त्व को बढ़ाया है। अवतारवाद के पक्ष में दो ही युक्तियाँ दी जाती हैं। भक्तों के उद्धार के लिए और दुष्टों के संहार के लिए ईश्वर अवतार का रूप धारण करता है। महर्षि ने इन युक्तियों का घोर खण्डन किया। दुष्टों का विनाश तो ईश्वर उनमें कोई रोग उत्पन्न करके भी कर सकता है। उसे इस काम के लिए शरीर धारण करने की क्या आवश्यकता है?

पुत्रवाद, दूतवाद, तथागतवाद, गुरुवाद और अवतारवाद का दुष्परिणाम यह निकला कि व्यक्तियों की पूजा तो बढ़ गई, परन्तु ईश्वर की पूजा घट गई। ईश्वर की उपासना के मार्ग में ये व्यक्ति बाधक हो गए। आत्मा और परमात्मा में सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए महर्षि दयानन्द ने इन अभिकर्त्ताओं को रास्ते से हटा दिया। विश्व के धार्मिक जगत् में महर्षि की यह अद्‌भुत क्रान्ति थी।

इन व्यक्तियों के कारण ईश्वर की प्रतिष्ठा भी घट गई। आज कोई व्यक्ति उक्त व्याख्यात पुरुषों को गाली दे दे तो तलवारें चल पड़ेंगी, परन्तु ईश्वर को यदि कोई गाली दे दे तो किसी मतावलम्बी को कोई आपत्ति नहीं होती। इन व्यक्ति-विशेषों को आत्मा और परमात्मा के बीच में से हटाने के कारण महर्षि ने ईश्वर की प्रतिष्ठा और उपासना की पुष्टि की।

इसी क्रान्ति की दिशा में महर्षि ने एक और पग बढ़ाते हुए कहा कि ये तथा-कथित ईश्वर-पुत्र, ईश्वर-दूत, तथागत, गुरु और अवतारों पर विश्वास किसी भी जीवात्मा को मुक्ति नहीं दिला सकता। जीवात्मा को मुक्ति उनके कर्मों से ही मिलेगी। किसी भी व्यक्ति-विशेष पर विश्वास लाने से मुक्ति नहीं मिलेगी, जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है—

> न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सनमान एति
> अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशति।

अथर्व १२ : ३ : ४८

उस ईश्वर की न्याय-व्यवस्था में न तो कोई दोष है, न ही किसी प्रकार का कोई सहारा वहाँ काम करता है, न मित्रों द्वारा कोई व्यवहार वहाँ चलता है।

तुम्हारा कर्मरूपी पात्र बिना किसी कमी और बढ़ोतरी के रखा हुआ है। पका हुआ अन्न जैसे पकानेवाले को प्राप्त होता है (वैसे ही कर्मों का फल तुम्हें प्राप्त होता है)। इस प्रकार कर्म ही मनुष्य की मुक्ति के कारण हैं। किसी की संस्तुति (सिफारिश) ईश्वर की न्याय-व्यवस्था में काम नहीं करती। ये व्यक्ति कोई मुक्तिदाता नहीं हैं। मुक्तिदाता तो मनुष्य के अपने सत्कर्म हैं। महर्षि दयानन्द जी की संसार के धार्मिक क्षेत्र में यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि ईश्वरदूत, ईश्वर-पुत्र, तथागत और अवतारों के अभाव में मनुष्य-समाज का पथ-प्रदर्शक कौन हो? इसका उत्तर देते हुए महर्षि ने कहा कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। मनुष्यों को वेद की शिक्षा पर आचरण करना चाहिए। वेदरूपी ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव सृष्टि के आरम्भ में होता है। परमात्मा जिस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, वनस्पतियाँ, ओषधियाँ, जलचर, नभचर और भूचर प्राणियों को उत्पन्न करता है, वैसे ही सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा सब प्राणियों के कल्याण के लिए वेदज्ञान प्रदान करता है। इसी वेदज्ञान का आश्रय लेकर सब मनुष्यों को चलना चाहिए। यह वेदज्ञान ही मनुष्य-मात्र का पथ-प्रदर्शक है। यह वेदज्ञान ही ईश्वरीय ज्ञान है। ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी महर्षि ने यह रखी कि वह आदि-सृष्टि में ही प्रादुर्भूत होता है। सृष्टि के आरम्भ के अनन्तर जो ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान के नाम से माने जाते हैं, वे ईश्वरीय ज्ञान नहीं कहला सकते। महर्षि ने तर्क दिया कि पहले ईश्वरीय ज्ञान में क्या त्रुटि रह जाती है जो ईश्वर पुनः अपना ज्ञान देता है? यदि भूल जाता है तो मनुष्यों के समान अल्पज्ञ है। यदि नहीं भूलता तो दोबारा ज्ञान क्यों देता है? अतः सृष्टि के आदि में ईश्वरीय ज्ञान प्रकट होता है। इस दृष्टि से ज़बूर, तौरेत, बाइबिल और कुरआन ईश्वरीय ज्ञान नहीं ठहरते। वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है, यह महर्षि की धार्मिक जगत् में क्रान्ति है। महर्षि ने ईश्वरीय ज्ञान की तीन कसौटियाँ बताई हैं। पहली कसौटी यह है कि उसमें ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार ईश्वर का वर्णन हो। दूसरे, उसमें वर्णित ज्ञान सृष्टिक्रम के अनुकूल हो। तीसरे, उसका उपदेश आप्तों और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध न हो। इन तीनों कसौटियों पर केवल वेद ही खरे उतरते हैं। तौरेत, बाइबिल और कुरआन में ईश्वर का वर्णन उनके गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार नहीं है। उनमें कई बातें सृष्टिक्रम के विपरीत हैं। उनकी कई बातें आप्त और पवित्रात्मा के व्यवहार के विरुद्ध हैं। अतः वे ग्रंथ ईश्वरीय ज्ञान के अन्तर्गत नहीं आते। ईश्वरीय ज्ञान वेद को आदिसृष्टि में प्रादुर्भूत होने के सिद्धान्त को स्थापित करके और ईश्वरीय ज्ञान की कसौटियों का निर्धारण करके महर्षि ने संसार के धार्मिक जगत् में एक बहुत बड़ी क्रान्ति की और दूत-वाद, पुत्रवाद, तथागतवाद और अवतारवाद के भवनों को धराशायी कर दिया।

वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानकर और आदिसृष्टि में प्रकाशित मानकर महर्षि ने अवतारवाद, तथागतवाद, पुत्रवाद और दूतवाद का खण्डन तो किया ही, परन्तु वेद के विषय में कुछ और क्रान्तिकारी धारणाएँ भी उपस्थित कीं। उनसे पहले ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों को वेदों का भाग माना जाता था, परन्तु महर्षि ने यह धारणा स्थापित की कि वेद पृथक् हैं, ब्राह्मणग्रन्थ पृथक् हैं और उपनिषद् पृथक् हैं। वेद तो ईश्वरीय ज्ञान है। ब्राह्मणग्रन्थ वेद-मन्त्रों की व्याख्याएँ हैं। उपनिषदों में ब्रह्मविद्या और अध्यात्मविद्या का प्रतिपादन किया गया है। ब्राह्मण और उपनिषद् तो वेदों की व्याख्याएँ हैं। वेदों के विषय में क्रान्तिकारी दयानन्द ने एक और धारणा दी कि वेदों में इतिहास नहीं है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। ईश्वर का ज्ञान नित्य और अनादि है। इतिहास अनित्य होता है। यदि वेदों में इतिहास माना जाए तो वेद नित्य नहीं कहे जा सकते। वेद के विषय में जो यह भ्रान्ति फैलाई गई थी और जिसको महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी ने अपने धर्मों का मुख्य आधार बनाया कि वेद यज्ञ में हिंसा का प्रतिपादन करता है, महर्षि ने इस धारणा का बलपूर्वक खण्डन किया। उन्होंने कहा कि यज्ञ का एक नाम अध्वर है। अध्वर उसे कहते हैं कि जिसमें हिंसा न हो। जब यज्ञ का नाम अध्वर है तो उसमें हिंसा कैसे हो सकती है? वेद में कहा गया है—

यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद् देवेषु गच्छति।

निरुक्त में भी यही कहा गया है 'अध्वर इति यज्ञ नाम'। यज्ञ का एक नाम अध्वर भी है और अध्वर का अर्थ है जो हिंसारहित हो। इस प्रकार यज्ञ पर हिंसा का जो कलंक था, उस कलंक से यज्ञ को छुड़ानेवाले क्रान्तिकारी दयानन्द थे। वेदों के विषय में एक और भ्रान्ति फैलाई गई थी कि ये केवल कर्म-प्रतिपादक हैं अर्थात् इनमें केवल कर्मकाण्ड का विधान किया गया है, इनमें और कुछ नहीं। परन्तु महर्षि ने यह सिद्ध किया कि ये सर्वज्ञान-प्रसारक हैं। वेद सब सत्यविद्याओं के ग्रन्थ हैं। वेद में यदि केवल कर्मकाण्ड का ही वर्णन हो तो वेद सब विद्याओं के ग्रन्थ नहीं हो सकते। वेदमन्त्रों की व्याख्या के सन्दर्भ में महर्षि ने प्रकरणज्ञान की बात कही। वैदिक भाषा के अनेक शब्द हैं जिनके कई अर्थ होते हैं। प्रकरण के अनुसार उनके अर्थ बदलते रहते हैं। जहाँ सृष्टि की उत्पत्ति, कर्त्ता व धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता का प्रकरण हो वहाँ इन्द्र शब्द का अर्थ परमात्मा है। जहाँ इच्छा, द्वेष और प्रयत्न का प्रसंग हो, वहाँ इन्द्र का अर्थ आत्मा होता है। इस प्रकार जहाँ सब प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले का प्रकरण हो वहाँ भू का अर्थ परमात्मा करना चाहिए। जहाँ उत्पन्न किये हुए पदार्थों का प्रकरण हो वहाँ विराट् और भू के अर्थ विशाल संसार और पृथिवी के हैं। प्रकरण का ध्यान

न रखते हुए पाश्चात्य विद्वानों ने वेद के अर्थ करते हुए बहुत अनर्थ किए हैं। महर्षि की देन है कि उन्होंने वेदों के अर्थ करते हुए प्रकरण की महत्ता पर बल दिया।

ईश्वर (जिसका वर्णन ईश्वरीय ज्ञान से पहले होना चाहिए था, परन्तु व्यक्तिवाद के समाधान के खण्डन के कारण इसका वर्णन पीछे किया जा रहा है) के गुणों के विषय में भी महर्षि ने अद्‌भुत क्रान्ति उपस्थित की। महर्षि ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में जहाँ ईश्वर के गुण गिनाए वहाँ उसे निराकार भी कहा है। महर्षि ने वेद के आधार पर यह सिद्ध किया कि ईश्वर निराकार ही है। ईश्वर साकार नहीं हो सकता। वह मनुष्य के रूप को धारण नहीं कर सकता। वह निराकार है और निराकार ही रहता है। वह सर्वव्यापक है; शरीर धारण करके वह सीमित नहीं हो सकता। यदि वह माता की उदरदरी से उत्पन्न हो तो उसे मृत्यु का ग्रास भी बनना पड़ेगा। परन्तु ईश्वर तो जन्म-मरण के चक्र में ही नहीं पड़ता। यदि वह जन्म ले तो जीवात्मा के सभी गुण, कर्म, स्वभाव उसमें घटित होंगे। इस प्रकार ईश्वर का ईश्वरत्व ही नष्ट हो जाएगा। जब ईश्वर साकार रूप धारण ही नहीं कर सकता तो अवतारवाद का प्रश्न ही नहीं उठता। अवतारवाद के न होने पर ईश्वर के स्थान पर मनुष्य-पूजा भी नहीं पनप सकती। महर्षि ने ईश्वर के सम्बन्ध में निराकारवाद की स्थापना करके एक अद्‌भुत क्रान्ति की। निराकारवाद के साथ महर्षि ने ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता के विषय में भी एक अद्‌भुत धारणा उपस्थित की। महर्षि से पूर्व ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता से यह अर्थ ग्रहण किया जाता था कि वह जो चाहे सो कर सकता है। महर्षि ने कहा कि ईश्वर के भी कुछ नियम हैं। ईश्वर अपने नियमों में रहता है। स्वनिर्धारित सृष्टि-नियमों का वह उल्लंघन नहीं करता। ईश्वर के न्याय और दया को लेकर भी उन्होंने एक क्रान्ति की। उन्होंने लिखा है कि ईश्वर के न्याय और दया में नाममात्र का अन्तर है। ईश्वर के न्याय में ही दया निहित होती है। वह न्याय कर के (जीवों को उनके कर्मानुसार दण्ड देकर) जीवों को उनके दुष्कर्मों और दुःखों से बचाता है और दूसरों को भी उन दुष्कर्मियों के होनेवाले दुःखों से बचाता है। इस प्रकार न्याय और दया एक ही अर्थ के सूचक हैं। महर्षि की इस विचारधारा ने संसार के धार्मिक जगत् में एक अद्‌भुत क्रान्ति उपस्थित की।

ईश्वर के नामों को लेकर पौराणिक जगत् में बहुत वादविवाद था। महर्षि ने इस वादविवाद को समाप्त कर दिया। उन्होंने यह कहा कि ईश्वर के नाम तीनों लिंगों में हैं। गुरु, आचार्य, विष्णु, शिव, ये ईश्वर के पुंल्लिंगसूचक नाम हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, देवी, इत्यादि नाम स्त्रीलिंगसूचक हैं। अन्न और जल इत्यादि नाम नपुंसकलिंगसूचक हैं। सगुण और निर्गुण शब्दों पर पौराणिक

जगत् में बहुत विवाद प्रचलित था। उनसे पूर्व सगुण शब्द से साकार और निर्गुण शब्द से निराकार ईश्वर का ग्रहण किया जाता था। क्रान्तिकारी दयानन्द ने इन दोनों में समन्वय स्थापित किया। उन्होंने कहा कि ईश्वर निराकार होते हुए भी सगुण और निर्गुण है। न्याय और सद्धर्म आदि गुणों के होने से वह सगुण और अन्याय, अधर्म, पक्षपात और अपवित्रता आदि गुणों के न होने से वह निर्गुण है। महर्षि ने इस प्रकार एक नयी व्याख्या देकर एक नया दृष्टिकोण दिया।

महर्षि ने वेद के आधार पर एकेश्वरवाद की स्थापना की। संसार के वर्तमान सम्प्रदायों में इस्लाम को एकेश्वरवाद पर बड़ा अभिमान है। परन्तु इस्लामी एकेश्वरवाद वैदिक धर्म के एकेश्वरवाद के आगे तुच्छ है। क्रान्तिकारी दयानन्द ने ईश्वर को सजातीय ब्रह्म, विजातीय ब्रह्म और स्वगत भेदों से रहित माना है। सजातीय ब्रह्म से अभिप्राय ऐसे ब्रह्म से है जो गुणों में ईश्वर के समान हो। इस्लाम ने खुदा के तुल्य ऐसा ईश्वर तो स्वीकार नहीं किया, परन्तु शैतान की सत्ता को स्वीकार करके विजातीय ब्रह्म मान लिया है। विजातीय ब्रह्म से अभिप्राय ऐसी सत्ता से है जो अवगुणों में ईश्वर के तुल्य हो। कुरआन का कथित शैतान अवगुणों में ईश्वर के तुल्य नहीं, अपितु उससे अधिक शक्तिशाली है। वह अब तक संसार में बुराई फैला रहा है, परन्तु खुदा उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सका। कुरआन के अनुसार उसने आदम और हव्वा को पथभ्रष्ट कर दिया, परन्तु ईश्वर उसको कोई दण्ड नहीं दे सका। इसका अर्थ यह निकला कि बुराई की सत्ता शैतान अर्थात् विजातीय ब्रह्म खुदा से अधिक शक्तिशाली है। अतः इस्लामी एकेश्वरवाद वैदिक धर्म के एकेश्वरवाद के समक्ष नहीं टिक सकता। दूसरे, ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कर लेने पर भी इस्लाम में ईश्वरदूत (पैगम्बर मुहम्मद) पर ईमान लाना आवश्यक है। केवल ईश्वर पर ईमान लाने से बात नहीं बनती जब तक रसूल (भेजे हुए) पर ईमान न लाया जाए। मानो एकेश्वरवाद में पैगम्बर को साझी मान लिया गया है। यह पैगम्बर भी सजातीय ब्रह्म का ही रूप धारण कर गया है। क्रान्तिकारी दयानन्द ने जो एकेश्वरवाद की व्याख्या की, उस जैसा एकेश्वरवाद संसार के किसी मत के पास नहीं है।

ईश्वरोपासना के क्षेत्र में भी महर्षि ने एक नया दृष्टिकोण दिया। ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना का मनुष्य को यह फल प्राप्त नहीं होता कि उसके कर्म क्षमा कर दिये जाएँ। कर्मों का फल तो मनुष्य को भुगतना ही पड़ता है। ईश्वर की स्तुति का फल यह है कि भक्त का ईश्वर के प्रति प्रेम बढ़ता है। ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार भक्त अपने गुण, कर्म और स्वभाव को सुधारता है। प्रार्थना से प्रार्थी को निरभिमानता, उत्साह और सहाय की प्राप्ति होती है। उपासना से साधक को ईश्वर का साक्षात्कार होता है। क्रान्तिकारी दयानन्द ने केवल एक ईश्वर की उपासना पर बल दिया और देवोपासना का

निषेध किया। देवता दो प्रकार के होते हैं—जड़ देवता और चेतन देवता। महर्षि ने जड़ देवता तेंतीस माने हैं, परन्तु उन्हें उपासना के योग्य नहीं माना। पंच महाभूत, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की उपासना का कहीं विधान नहीं किया। इस प्रकार जितने भी धर्मात्मा और जितेन्द्रिय पुरुष हैं, माता, पिता, आचार्य, अतिथि—ये सब चेतन देव हैं। इनकी भी उपासना करने का विचार महर्षि ने नहीं किया। इस प्रकार श्रीराम, श्रीकृष्ण, हनुमान, शिव, नारायण आदि की पूजा का कहीं भी विधान नहीं किया। इसी नियम के अधीन महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, हजरत मुहम्मद, ईसा, मूसा, जर्तुश्त इत्यादि जितने भी संसार में विख्यात पुरुष हुए हैं, उनकी उपासना का इस नियम के आधार पर निषेध ठहरता है। अतः वेद के आधार पर महर्षि ने एकेश्वरोपासना का जो स्वरूप उपस्थित किया, वह विश्व के धार्मिक जगत् में एक अद्भुत क्रान्ति है। इस ईश्वरोपासना में जड़-पूजा और मनुष्य-पूजा का कोई स्थान नहीं।

क्रान्तिकारी दयानन्द ने वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण, कर्म, स्वभाव को स्वीकार किया। इस सिद्धान्त ने विश्व के हिन्दू जगत् में एक बहुत बड़ी क्रान्ति उपस्थित की। जीवात्मा कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था में बँधकर जन्म लेता है। वह ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हो, क्षत्रिय-कुल में, वैश्य-कुल में, अथवा शूद्र-कुल में उत्पन्न हो, उसकी यह उत्पत्ति उसके कर्मानुसार ही होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-कुल में जो उत्पन्न हो गया, वह ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व और वैश्यत्व के गुणों के अभाव में भी जीवनभर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही रहेगा। शूद्रकुल में जो उत्पन्न हो गया है वह चाहे कितना भी गुणसम्पन्न हो, वह शूद्र ही रहेगा। क्रान्तिकारी दयानन्द ने यह कहा कि मनुष्य का जन्म तो पिछले कर्मानुसार होता है परन्तु आगे के लिए मनुष्य की उन्नति एवं अवनति उसके हाथ में है। यदि वह ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व और वैश्यत्व को धारण नहीं कर पाता तो वह शूद्रत्व को प्राप्त होता है। यदि एक शूद्र उपर्युक्त गुणों को धारण कर लेता है तो वह शूद्र से ब्राह्मण बन सकता है। इस प्रकार सवर्ण-कुल में उत्पन्न अवर्ण व्यक्ति बन सकता है और अवर्ण-कुल में उत्पन्न व्यक्ति सवर्ण बन सकता है। गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर वर्णव्यवस्था की पुष्टि करना हिन्दू जगत् में महर्षि दयानन्द की अद्भुत क्रान्ति है।

महर्षि ने सभी आर्य ऋषियों के स्वर में स्वर मिलाकर यह कहा कि वेद ईश्वरीय वाणी है और उसके पढ़ने-सुनने का अधिकार सभी पुरुषों और स्त्रियों को है। वेद केवल हिन्दुओं के लिए ही नहीं, अपितु सारे प्राणिमात्र के लिए हैं। वे केवल सवर्ण हिन्दुओं के लिए ही नहीं, अपितु शूद्रों के लिए भी हैं। जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, अन्न, वनस्पतियाँ और ओषधियाँ सभी प्राणिमात्र के लिए हैं, वैसे वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सभी

मनुष्यों के अधिकार-क्षेत्र में है। प्रकृति के सभी वरदान सभी मनुष्यों के लिए समान हैं, अत: ईश्वरीय ज्ञान वेद भी सभी के लिए समान है। महर्षि ने वेद से ही अपनी मान्यता को सिद्ध किया—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।

—यजु० २६:२

ईश्वर कहता है कि जिस प्रकार मैं लोगों के लिए अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने भृत्य, स्त्री अथवा अतिशूद्र के लिए भी वेदों का उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो। महर्षि ने वेद का ज्ञान समस्त मनुष्य मात्र के लिए ही समझा था। महर्षि ने शूद्रों और स्त्रियों को वेद का बराबर अधिकार दिया। मध्यकालीन आचार्यों ने शूद्रों और स्त्रियों के लिए जो वेदज्ञान का निषेध कर दिया था, क्रान्तिकारी दयानन्द ने उनका घोर खण्डन किया। विश्व के हिन्दू-जगत् में महर्षि की यह अद्‌भुत क्रान्ति थी। वेद-विद्या की शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों का मानवर्धन, सामाजिक न्याय, शिक्षाधिकार और पुरुषों के तुल्य स्त्रियों को स्थान दिलाने में क्रान्तिकारी दयानन्द ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, वह अविस्मरणीय है।

दार्शनिक जगत् में महर्षि ने एक क्रान्तिकारी दर्शन दिया जिसका नाम है त्रैतवाद। महर्षि ने वेद और शास्त्रों के आधार पर यह धारणा स्थिर की कि परमात्मा, आत्मा और प्रकृति तीन अनादि पदार्थ हैं। आजकल के दार्शनिक इस प्रयत्न में हैं कि सृष्टि के एक ही आदिकारण की खोज की जाए। नास्तिक वैज्ञानिक उसे प्रकृति की संज्ञा देते हैं। इस्लाम, ईसाइयत और भारतीय नवीन वेदान्ती ईश्वर अथवा ब्रह्म को सृष्टि का आदिकारण स्वीकार करते हैं। जैन-मतावलम्बी जीव और प्रकृति दो तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। महर्षि ने त्रैतवाद की स्थापना की। उन्होंने ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन अनादि तत्त्वों को स्वीकार किया है। ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति करता है। उत्पादक के बिना उत्पत्ति नहीं हो सकती। नियामक के बिना नियम, व्यवस्थापक के बिना व्यवस्था, अनुशासक के बिना अनुशासन और प्रबन्धक के बिना प्रबन्ध की सम्भावना नहीं हो सकती। इसलिए सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करना आवश्यक है। संसार किनके लिए बनाया गया है? कर्मों के कर्त्ता कौन हैं? कर्मों के फल-भोक्ता कौन हैं? वे आत्माएँ हैं। इसी प्रकार यह भौतिक संसार जिससे बना है वह अनादि पदार्थ प्रकृति है, क्योंकि प्रकृति के बिना यह भौतिक संसार नहीं बन सकता। वस्तुतः त्रैतवाद ही व्यावहारिक दर्शन है। जो लोग केवल ब्रह्म को ही सृष्टि का आदिकारण स्वीकार करते हैं उनके सम्मुख दो प्रश्न हैं। पहला प्रश्न

यह कि जड़ प्रकृति भी यदि ब्रह्म का अंश है तो ब्रह्म में जड़ता भी माननी होगी, जबकि ब्रह्म में जड़ता है ही नहीं। यदि आत्माओं को परमात्मा का अंश माना जाए तो परमात्मा के सभी गुण आत्माओं में होने चाहिएं, परन्तु परमात्मा के सभी गुण आत्माओं में दिखाई नहीं देते। अत: एक ही तत्त्व को सृष्टि का आदि-कारण स्वीकार करना कृत्रिम और हवाई दर्शन है। व्यावहारिक दर्शन तो केवल त्रैतवाद है, जिसे दर्शन ही नहीं समझा जाता। दर्शन के क्षेत्र में महर्षि की यह अद्भुत क्रान्ति है।

महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी और शॉपनहार ने यह विचार दिया कि संसार दुःखों का घर है। इसके विपरीत महर्षि ने यह विचारधारा दी कि संसार में सुख और दुःख दोनों विद्यमान हैं। संसार में सुख की अधिकता है और दुःख की न्यूनता है। क्रान्तिकारी दयानन्द ने ये तर्क उपस्थित किये कि यदि यह संसार दुःखरूप हो तो किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिए। संसार में जीवों की प्रवृत्ति दीखती है, इसलिए संसार दुःखरूप नहीं हो सकता। यदि ये दुःखवादी संसार को दुःखरूप मानते हैं तो खान-पानादि करना और पथ्य तथा ओषध्यादि सेवन करके शरीर-रक्षण करने में प्रवृत्त होकर सुख क्यों मानते हो ? यदि यह कहें कि हम प्रवृत्त तो होते हैं, परन्तु इसको दुःख ही मानते हैं तो यह कथन ही सम्भव नहीं, क्योंकि जीव सुख जानकर ही प्रवृत्त होते हैं, और दुःख जानके निवृत्त होते हैं। दूसरा तर्क यह दिया कि संसार में धर्मक्रिया, विद्या, सत्संगादि श्रेष्ठ व्यवहार सुखकारक हैं, इनको कोई भी विद्वान् दुःख का चिह्न नहीं मान सकता। तीसरी युक्ति यह दी है कि प्राणी फिर मरना क्यों नहीं चाहते ? क्यों सभी जीने के इच्छुक हैं ? एक और युक्ति यह है कि ईश्वर ने अपने पुत्रों के लिए संसार को दुःखरूप क्यों बनाया ? क्या वह अपने पुत्रों को दुःखी देखना चाहता है ? क्रान्ति-कारी दयानन्द ने इसीलिए संसार में सुख की अधिकता मानी है और दुःख की कमी मानी है।

क्रान्तिकारी दयानन्द समन्वयवादी भी थे। संसार में कुछ आचार्यों ने प्रवृत्ति-वाद का ही प्रचार किया है और कुछ ने निवृत्तिवाद का। क्रान्तिकारी और समन्वयवादी दयानन्द ने प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय किया। शरीर की पुष्टि, अर्थोपार्जन, गृहस्थधर्म, और आवश्यकता के लिए कुछ संग्रह—यही प्रवृत्ति-मार्ग है। महर्षि ने इस प्रवृत्ति का खण्डन नहीं किया, अपितु गृहस्थ की महिमा को स्थापित किया। जिनमें आजन्म वैराग्य न हो वे ब्रह्मचर्य से गृहस्थ का पालन करते हुए वानप्रस्थ और संन्यास की दीक्षा लें। जिनमें गृहस्थ की प्रवृत्ति न हो, वे ब्रह्मचर्य से सीधा संन्यास ले लें। परन्तु जिनमें गृहस्थ की प्रवृत्ति हो, वे गृहस्था-श्रम में प्रवेश करें। इस प्रकार क्रान्तिकारी दयानन्द ने केवल ब्रह्मचर्य और संन्यास की ही महिमा को स्थापित नहीं किया, अपितु गृहस्थ की महत्ता

का प्रतिपादन करके उन्होंने प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय किया। यह मानो चारों आश्रमों का भी समन्वय है, जो महर्षि ने उपस्थित किया। उन्होंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में भी समन्वय स्थापित किया। कई धर्माचार्यों ने केवल धर्म और मोक्ष की बात कही है, अर्थ और काम को सर्वथा उपेक्षित कर दिया। उन आचार्यों का यह एकांगी दृष्टिकोण था। कार्ल मार्क्स ने केवल अर्थ का चिन्तन किया, धर्म और मोक्ष को छोड़ दिया। फ्रायड ने भी काम का चिंतन किया, धर्म और मोक्ष को छोड़ दिया। परन्तु क्रान्तिकारी दयानन्द ने ऋषियों के स्वर में स्वर मिलाकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—जीवन के चारों लक्ष्यों की बात कही है। क्रान्तिकारी दयानन्द ने ज्ञान, कर्म और उपासना में भी समन्वय स्थापित किया। उनका कहना है कि केवल ज्ञान से मोक्ष-प्राप्ति नहीं होती, केवल कर्म से भी मोक्ष-प्राप्ति नहीं हो सकती, केवल उपासना से भी मोक्ष नहीं मिलता। जब इन तीनों का समन्वय होता है तो तभी मोक्ष की प्राप्ति है। पूर्ववर्ती प्राचार्यों में किसी ने ज्ञान को ही मोक्ष का साधन बताया, किसी ने कर्म को ही मोक्ष का साधन बताया तो किसी ने उपासना को। परन्तु क्रान्तिकारी दयानन्द ने ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों को ही मुक्ति का साधन बताया। क्रान्तिकारी दयानन्द ने ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व में समन्वय स्थापित किया। केवल बुद्धिजीवियों के आधार पर कोई भी देश सुरक्षित नहीं रह सकता जब तक कि उसके साथ भुजा-बल न हो। यह भुजाबल किसी भी देश के क्षत्रिय होते हैं। क्षात्र-बल भी किसी भी राष्ट्र के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि ब्राह्म बल। इस प्रकार क्रान्तिकारी दयानन्द ने ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व में समन्वय उपस्थित किया है।

अंग्रेज विद्वानों ने एक यह भ्रान्ति भी फैलाई हुई थी कि छः शास्त्रों में अविरोध नहीं अपितु विरोध है। क्रान्तिकारी दयानन्द ने यह सिद्ध किया कि छः दर्शनों में विरोध नहीं है, अपितु एक-एक विषय को लेकर एक-एक दर्शन में उसकी व्याख्या की गई है। न्याय में यह बताया गया है कि उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता। वैशेषिक में काल की व्याख्या की गई है। योग में विद्या, ज्ञान और विचार की व्याख्या की गई है। सांख्य में प्रकृति के तत्त्वों की व्याख्या की गई है। वेदान्त में सृष्टि के रचयिता ब्रह्म की व्याख्या की गई है। मीमांसा में कर्म की व्याख्या की है। इस प्रकार छः दर्शन सृष्टि के निर्माण के लिए आवश्यक इन कारणों की व्याख्या करते हैं। यह विरोध नहीं, अपितु अविरोध है। विरोध वहाँ होता है, जहाँ परस्पर विरुद्ध बात कही जाए। जहाँ एक विषय की पूर्ति में बातें कहीं जाएँ, वहाँ अविरोध होता है।

क्रान्तिकारी दयानन्द ने स्वर्ग और नरक की परिभाषा ही बदल दी। उन्होंने यह कहा कि स्वर्ग और नरक किसी विशेष स्थान पर नहीं हैं। यह संसार ही स्वर्ग है और यह संसार ही नरक है। जीवन की सुखदायी अवस्था ही स्वर्ग है और

जीवन की दुःखमयी अवस्था ही नरक है। स्वर्ग नाम सुख का है और नरक नाम दुःख का है। किसी स्थल-विशेष का नाम न स्वर्ग है, न नरक। श्रीपुर, गोलोक, शिवपुर, मोक्षशिला, कैलास, वैकुण्ठ, चौथा आसमान तथा सातवाँ आसमान आदि स्थान विभिन्न मतावलम्बियों द्वारा स्वर्ग के लिए निर्धारित किये गए हैं। इन कल्पित स्थानों पर स्वर्ग मानने की धारणा पर क्रान्तिकारी दयानन्द ने कई आक्षेप किये हैं जिनमें से कुछ-एक यहाँ गिनाए जाते हैं। इन तथाकथित स्वर्गों के स्थान सीमित हैं। इन सीमित स्थानों में अनन्त आत्माएँ कैसे समा पाएँगी? स्थान-विशेष पर स्वर्ग माननेवालों का एक मत यह भी है कि ये मुक्त आत्माएँ सदा के लिए वहाँ आनन्दोपभोग करेंगी। क्रान्तिकारी दयानन्द की यह आपत्ति है कि जब आत्माओं के कर्म सीमित हैं तो उन्हें अनन्त सुख-दुःख कैसे प्राप्त होगा? क्या यह ईश्वर का अन्याय नहीं है कि वह सीमित कर्मों का अनन्त फल दे? महर्षि की तीसरी आपत्ति यह है कि क्या जीवों में अनन्त सुख और अनन्त दुःख को सहने का सामर्थ्य है? उनकी चौथी आपत्ति यह है कि स्वर्ग में मिलेगा क्या? स्वर्ग के माननेवालों ने ऐसा माना है कि वहाँ दूध, फल, शहद और अन्य सुखदायक पदार्थ मिलेंगे। इस्लाम ने वहाँ स्त्रियों और लड़कों का झाँसा दिया है। एक और अपनी सिद्धान्तों के विरोध में बात कही है कि वहाँ शराब भी पीने को मिलेगी। क्रान्तिकारी दयानन्द का कहना है कि ये वस्तुएँ तो संसार में ही सुलभ हैं, फिर स्वर्ग की विशेषता क्या हुई? वे आत्माएँ शरीर-सहित सुखों का उपभोग करेंगी। क्या भौतिक शरीरों में इतना सामर्थ्य हो सकता है कि वे सदा के लिए सुख को भोग सकें? जब शरीर होंगे तो शारीरिक रोग, जन्म और मृत्यु भी वहाँ होंगे। तो फिर वह स्वर्ग क्या हुआ? वह तो संसार के तुल्य ही एक स्थान हुआ। एक ही स्थान पर जीवों का बँधकर रहना तो बन्धन हो गया, यह मोक्ष कैसा? क्रान्तिकारी दयानन्द ने मोक्ष की और ही परिभाषा दी है। वे कहते हैं कि ईश्वर के आनन्द को प्राप्त करना ही मोक्ष है। भौतिक पदार्थों का सुख मोक्ष नहीं है। वे मुक्त आत्माएँ अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमती और शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखती हैं। सांसारिक सुख सामान्य स्वर्ग है और परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द-विशेष स्वर्ग कहलाता है। परमेश्वर की प्राप्ति से यही आनन्द मोक्ष है। महर्षि ने मोक्ष के विषय में वेद के आधार पर एक ऐसी धारणा दी जो मत-मतान्तरों को चौंका देनेवाली थी। महर्षि ने कहा है कि मोक्ष के पश्चात् भी जीवात्मा की जन्म-मरण के रूप में पुनरावृत्ति होती है, क्योंकि सीमित कर्मों का अनन्त फल नहीं मिल सकता। वेद का प्रमाण देते हुए महर्षि ने कहा—

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

—ऋ १ : २४ : २

हम स्वप्रकाशस्वरूप अनादि सदामुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हमें मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। वेद-मन्त्र के आधार पर महर्षि ने सिद्ध किया कि मोक्ष के पश्चात् भी पुनरावृत्ति होती है।

महर्षि ने जादू, टोना, अन्धविश्वास और पाखण्ड का भरपूर खण्डन किया। भूत, प्रेत, राक्षस, पिशाच और देवदूत नामक अदृश्य जातियों के प्रति मनुष्यों का जो विश्वास बना हुआ था, क्रान्तिकारी दयानन्द ने उसका भरपूर खण्डन किया। जादू, टोना और जन्त्र-मन्त्र आदि में कुछ सत्यता नहीं है, अपितु दूसरे के मस्तिष्क को विकृत और दूषित करने के ये मिथ्या ढंग गढ़े गए हैं। भूत, प्रेत, डाकिनी और पिशाचिनी आदि व्यक्ति को चिपटनेवाली बातें भी मिथ्या हैं। ये वास्तव में सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोग होते हैं। वैद्यक विद्या के ज्ञान के अभाव के कारण इन रोगों के होने पर मूर्ख इसे भूत-प्रेत आदि का चिमटना कहते हैं। इनका इलाज डोरा, धागा और मन्त्र नहीं, अपितु इनका इलाज योग्य चिकित्सकों की चिकित्सा है। महर्षि ने प्रेत, भूत, राक्षस, पिशाच और देवदूतों (फरिश्तों) की सत्ता से भी इन्कार किया। उन्होंने बताया कि शव को प्रेत कहते हैं। शव को जब श्मशान में फूंक दिया जाता है तो उसे भूत(वह अब नहीं है, पहले था) कहते हैं। राक्षस कोई जाति-विशेष नहीं है, अपितु समाज के दुष्ट व्यक्ति अर्थात् चोर, डाकू, घातक और लम्पट आदि व्यक्तियों को राक्षस कहते हैं। पिशाच नाम की कोई जाति नहीं होती अपितु मांसाहारियों को पिशाच कहते हैं। ईश्वर को देवदूतों (फरिश्तों) की कोई आवश्यकता नहीं होती। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है अतः उसे सृष्टि-कार्यों में सहायकों की आवश्यकता नहीं होती। यदि कहा जाए कि ईश्वर ने अपनी उपासना के लिए देवदूतों (फरिश्तों) का निर्माण किया है तो भी बात ठीक सिद्ध नहीं होती, क्योंकि ईश्वर को उपासना कराने की कोई आवश्यकता नहीं। जीवात्माएँ तो अपनी मुक्ति के लिए ईश्वर की उपासना करती हैं। उन्होंने अन्धविश्वास अर्थात् विना सोचे-समझे अथवा विना सत्य के आधार पर परीक्षण किये विश्वास का घोर खण्डन किया। उन्होंने पाखण्ड और आडम्बर अर्थात् वास्तविकता कुछ हो और दिखावा कुछ हो, इसका घोर विरोध किया। इस प्रकार धर्म के नाम पर जो नकली सिक्का चल रहा था, उन्होंने उसका घोर खण्डन किया।

महर्षि ने सत्कर्मों को मुक्ति का आधार बताते हुए तीर्थों और व्रतों की परिभाषा बदल दी। पहले जलस्थानादि को तीर्थ माना जाता था; परन्तु महर्षि ने तीर्थ की परिभाषा करते हुए कहा—"जनाः यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" अर्थात् मनुष्य जिनसे तरते हैं, वही तीर्थ है। ये जलस्थान तो मनुष्यों को डुबोनेवाले हैं। माता-पिता की सेवा, वृद्धजनों का सत्कार, परोपकार, इन्द्रियनिग्रह, सत्संग, सत्यभाषण,

विद्या, योगाभ्यास आदि को तीर्थ माना है। ये सभी सद्‌गुण मनुष्यों का उद्धार करनेवाले हैं, यही उनको भवसागर से तारनेवाले हैं। इसी प्रकार महर्षि ने व्रतों की परिभाषा और स्वरूप को बदल दिया। धर्म के नाम पर भूखे रहने का नाम व्रत नहीं है, अपितु नैतिकता के गुणों को प्रतिज्ञापूर्वक निभाने का नाम व्रत है। महर्षि ने तीर्थों और व्रतों की परिभाषा करके मनुष्यों के नैतिक और चारित्रिक पक्ष पर बल दिया। इसी नैतिकता से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है। यही नैतिकता ही दूसरे शब्दों में शुभकर्म कहलाती है। साथ-ही-साथ महर्षि ने कर्मों का ग्रहों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं माना है। ग्रह-उपग्रह सभी मनुष्यों के लिए समान हैं। सूर्य का प्रकाश और उष्णता सभी मनुष्यों के लिए समान हैं। चाँद की चाँदनी और शीतलता सभी मनुष्यों के लिए समान हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों-उपग्रहों के विषय में भी समझना चाहिए। महर्षि ने यह कहा कि कर्मों का सम्बन्ध आत्माओं के साथ है, ग्रहों के साथ नहीं। इसके साथ ही उन्होंने जन्मपत्री का भी निषेध किया। कोई व्यक्ति भी परोक्ष-वक्ता नहीं हो सकता, अतः जन्मपत्री को भ्रामक माना है। मनुष्यों को अपने कर्मों का फल अवश्यमेव मिलना है तो फिर ज्योतिषियों को हाथ दिखाने का क्या लाभ ? परोक्षज्ञ न होने के कारण कई बार ज्योतिषियों की बातें बहुत भ्रान्तियाँ उत्पन्न करती हैं और मिथ्या सिद्ध होती हैं। अतः महर्षि ने ज्योतिषियों को हाथ दिखाने और उनसे जन्मपत्री बनवाने का निषेध किया है।

महर्षि ने वैदिक धर्म के उज्ज्वल स्वरूप को उपस्थित किया, वैदिक धर्म की विचारधारा को सुन्दर और सुनिश्चित रूप प्रदान किया। आर्य जाति अभिवादन के शब्द को खो चुकी थी। उन्होंने वैदिक वाङ्मय के आधार पर अभिवादन का एक निश्चित शब्द 'नमस्ते' प्रदान किया। गायत्री मन्त्र केवल ब्राह्मणों की सम्पत्ति बनकर रह गया था। महर्षि ने गायत्री मन्त्र का अधिकार चारों वर्णों को दिया। सन्ध्या के मन्त्रों में ऋषियों के नाम डालकर सन्ध्या के स्वरूप को विकृत कर दिया गया था, क्योंकि ईश्वर की उपासना में मनुष्यों का स्मरण तो ईश्वरोपासना में मनुष्यों की उपासना को मिलाना है। क्रान्तिकारी दयानन्द ने सन्ध्या को परिष्कृत एवं परिमार्जित करके विशुद्ध ईश्वरोपासना पर बल दिया। सोलह संस्कारों का शुद्ध रूप विश्व के सामने उपस्थित किया। ये सब बातें उनकी क्रान्ति की द्योतक हैं।

मध्यकाल में भारतीय ब्राह्मणों ने समुद्र के पार जाने पर प्रतिबन्ध घोषित कर दिया। उनका कथन था कि समुद्र पार जाने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है। क्रान्तिकारी दयानन्द ने इन सब युक्तियों की धज्जियाँ उड़ा दीं। उन्होंने कहा कि समुद्र-पार जाने से धर्म भ्रष्ट नहीं होता, अपितु अधर्म का आचरण करने से धर्म भ्रष्ट होता है। यदि भारत में रहकर भी कोई अधर्म का आचरण करता है तो धर्म भ्रष्ट

हो जाता है और यदि कोई विदेश में रहकर धर्म का आचरण करता है तो धार्मिक ही रहता है। महर्षि की यह घोषणा थी कि भारत में रहने से ही कोई धार्मिक नहीं होता अथवा समुद्र पार करने और विदेश में रहने से कोई धर्मभ्रष्ट नहीं होता।

अंग्रेजों ने भारतीय इतिहास में एक बहुत बड़ी भ्रान्ति फैलाई कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं थे अपितु बाहर से आये थे। क्रान्तिकारी दयानन्द ने यह विचारधारा दी कि आर्य इसी देश के निवासी थे, वे बाहर से नहीं आए थे। इस देश का पहला नाम आर्यावर्त्त है। मनुस्मृति के प्रमाणों को देते हुए उन्होंने इस तथ्य की पुष्टि की है—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यवर्तं प्रचक्षते॥

—मनु० २ : २२, १७

जिसके पूर्व में समुद्र है और पश्चिम में समुद्र है, जो हिमालय और विन्ध्याचल दोनों पर्वतों के बीच में है, जो सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच में है, देवों के द्वारा निर्मित उस भूभाग को आर्यावर्त्त कहा जाता है। विन्ध्याचल की जो पर्वत-शृंखलाएँ सुदूर दक्षिण के तटवर्ती क्षेत्रों तक चली गई हैं, उनसे घिरा हुआ सभी क्षेत्र आर्यावर्त्त कहलाता है, केवल उत्तरी भारत नहीं।

राजनीति के क्षेत्र में भी महर्षि ने कुछ अद्भुत धारणाएँ दीं। उनकी धारणा के अनुसार राजा अर्थात् शासक को कभी सर्वाधिकार नहीं देना चाहिए। सर्वाधिकारी राजा प्रजा को ऐसे खा जाता है जैसे सिंह अन्य पशुओं को मार डालते हैं। शासक के अधीन सभा, सभा के अधीन शासक, शासक और सभा प्रजा के अधीन और प्रजा राजसभा के अधीन रहे। इस प्रकार महर्षि निरंकुश शासन के विरोधी थे। महर्षि ने वेद के आधार पर तीन सभाओं—राजार्य सभा, धर्मार्य सभा और विद्यार्य सभा का वर्णन किया है। धर्मार्य सभा का उद्देश्य लोगों के चरित्र-निर्माण की ओर ध्यान देना है। नैतिकता की ओर ध्यान देना सरकार का परम कर्त्तव्य है, क्योंकि नैतिकता के बिना कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। महर्षि कठोर दण्ड-व्यवस्था के पक्षपाती थे। जितनी कठोर दण्ड-व्यवस्था होगी, राष्ट्र में उतने ही कम अपराध होंगे। कराधान इस प्रकार हो कि प्रजा बोझ अनुभव न करे। सारे संसार की एक अन्तःराष्ट्रीय सरकार की योजना भी महर्षि ने दी है।

क्रान्तिकारी दयानन्द वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन करके और अन्य मतमतान्तरों के ग्रन्थों का अध्ययन करके इस परिणाम पर पहुँचे कि वैदिक धर्म

ही सारे मतमतान्तरों से श्रेष्ठ है। उसकी तुलना में कोई भी मत नहीं ठहर सकता। अन्य मतमतान्तरों में जो सत्य है वह सब वेद से लिया हुआ है और जो असत्य है वह सब उनके घर का है। ग्यारहवें समुल्लास में भारतीय मतमतान्तरों का, बारहवें में जैन, बौद्ध, चारवाक का, तेरहवें समुल्लास में तौरेत और बाइबिल का और चौदहवें में इस्लाम और कुरआन का खण्डन करके उन्होंने यह सिद्ध किया कि संसार का कोई भी मतमतान्तर वैदिक धर्म का मुकाबिला नहीं कर सकता। वैदिक धर्म संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। □

परमेश्वर

वह परमेश्वर अपने संरक्षण में सबकी रक्षा करता है, सबका मार्गदर्शन करता है। सबसे प्रीति करता है, सब-कुछ जाननेवाला सर्वज्ञ, सबमें प्रविष्ट सर्व-व्यापक, सबको श्रुतिज्ञान देनेवाला, सबका स्वामी, सबको कर्मानुसार सब पदार्थ देनेवाला; इच्छा, क्रिया और प्राप्ति की प्रेरणा करनेवाला है। सबको दीप्ति और तृप्ति प्रदान कर आगे बढ़ाकर उन्नत करना चाहता है, इसलिए सदा सबको आलिंगन किये रहता है। किन्तु न्यायकारी और सर्वशक्तिमान् होने से दुष्टों और पापियों से सुखों को छीनता भी रहता है, उन्हें दुःख भी प्रदान करता है। ये सब अर्थ उसके 'ओम्' नाम से प्रकट होते हैं, इसलिए उसका यही नाम सबसे मुख्य और निज माना जाता है। इसलिए यजुर्वेद ४०-१७ में उसे आकाश की तरह व्यापक, निर्लिप्त और अस्तित्वमात्र माना गया है (ओम् खं ब्रह्म)।

अद्वितीय, एक

वह परमेश्वर एक और अद्वितीय है। सम्राडेको विराजति। अथ० ६-३-३। न द्वितीयो न तृतीयः। अथ० १३-४-१६। उससे पहले कुछ भी न था, यस्माज्जातं न पुरा किञ्चनैव। यजुः ३२-५। वह कार्यरूप में दृश्यमान इस ब्रह्माण्ड का अद्वितीय शासक है। स विश्वस्य करुणस्येश एकः। ऋक् १-१००-७। वही इसका अज और स्वयंभू स्वामी है, भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। ऋक् १०-१७१-१। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः। यजुः ४०-८।

उसके समान कोई नहीं

उस परमेश्वर से बड़ा और श्रेष्ठ होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, उसके समान भी कोई नहीं है, यह स्थापना परमात्मा ने स्वयं वेद की ऋचा ४-३०-१ में साधक के मुख से कराई है—

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥

इसीके साथ साधक स्वात्मानुभूति से कहता है कि आपके अतिरिक्त किसी के पास इतना पवित्र और विशाल ऐश्वर्य का भण्डार भी नहीं है, जो सारे ब्रह्मांड के जीवमात्र को सुख प्रदान कर सके और उनका पालन-पोषण कर सके। आपसे श्रेष्ठ प्राप्तव्य कुछ भी नहीं है, इसलिए मुझे तो आपकी प्राप्ति और आपके दर्शन के सिवाय किसी वस्तु की चाह नहीं है—

नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता। —ऋक् ८-६६-१३
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्योऽस्ति पिता चन। —ऋक् ७-३२-१९

अनेक गुण, अनेक नाम

उस परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनन्त हैं। इसलिए एक होते हुए भी उसके अनन्त नाम हैं। वह सबका मार्गदर्शन करके सबको आगे ले जाता है, प्रत्येक पदार्थ और प्राणी के श्वेत और कृष्णरूप को जानता है, जगत् को गति और गन्ध प्रदान करता है, सबको आह्लादित और आनन्दित करता है। शुद्ध स्वरूप, सर्वव्यापक, सबका स्वामी है। इसलिए वास्तव में वही ब्रह्म है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः॥ —यजुः ३२-१

वह परमैश्वर्यवान् है, सबका मित्र है, सबका नियन्त्रण करता है, सबका मार्गदर्शन करता है, इसलिए उसे इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। वह सबको प्रकाश और ताप देता है, सबका नियमन करता है, सारे अन्तरिक्ष में व्याप्त है, इसलिए उसको अग्नि, यम और मातरिश्वा भी कहते हैं। वह सबका उत्तम रूप से पालन-पूरण करता है और समय आने पर प्रलय-अवस्था में सबको निगल जाता है, इसलिए वह दिव्यगुणों से सम्पन्न सुपर्ण और गरुत्मान् है। वास्तव में सत्ता रूप से वह एक है, किन्तु उसके बहुत-से रूप देखकर उसे अनेक नामों से पुकारते हैं—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

—ऋक् १-१६४-४६

वही हम सबका रक्षक और उत्पादक है, विश्व के सब भुवनों का ज्ञाता और विधाता है। सब देवों के नामों को धारण करनेवाला वही एक है। भुवनों में उठनेवाले सभी प्रश्नों का समाधान उसीको जानकर होता है—

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥

—ऋक् १०-८२-३

अथर्ववेद में ब्रह्म को त्रिपाद् कहा है, अर्थात् अस्तित्व-चेतना और आनन्द-मय सच्चिदानन्द ब्रह्म, अपने एक भाग को सृष्टि-निर्माण के समय तीन अंशों—ईश्वर-जीव-प्रकृति—में विभक्त करके त्रिपाद् बन जाता है। इस त्रिपाद् ब्रह्म से ही अनन्तरूपों को धारण करनेवाले इस ब्रह्माण्ड जगत् का प्रादुर्भाव होता है।

आरम्भ में केवल ब्रह्म था, ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्। अथर्व० ४-१-१। यस्माज्जातं न पुरा किञ्चनास। यजु: ३२-५। इसका एक पाद इस जगत् में प्रकट होता है। इसके तीन पाद तो फिर भी अज्ञात और रहस्यमय बने रहते हैं। पादोऽस्येहाभवत्पुनः। त्रिपादस्यामृतं दिवि। ऋक् १०-९०-४। इस जगत् में प्रकट होने-वाला ब्रह्म का एक पाद ही तीन भागों में विभक्त होकर अनेक रूपों का निर्माण करता है। त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे। अथर्व० ९-१०-१९।

त्रिपाद् ब्रह्म के सृष्टिकर्त्ता, धर्ता, संहर्ता रूप को ज्येष्ठब्रह्म कहते हैं। वही रूप सबके लिए नमस्य है (एक नव नमस्यो विक्ष्वीड्यः अथ० २-२-१)। तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।

प्राणि-शरीर में पृथक्-पृथक् प्रकट होनेवाले प्रत्यक्ष ब्रह्म को 'इदं ब्रह्म' कहते हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला यही बृहत् शक्ति-सम्पन्न है, जो अणुबम को बनाता है, लोक-लोकान्तर में भ्रमण करता है। तस्माद्वै विद्वान् पुरुषम् 'इदं ब्रह्म' इति मन्यते। अथ० ११-८-३२।

प्रकृति से सर्वप्रथम महत् उत्पन्न होता है, इसलिए उसके साहचर्य से प्रकृति को महद् ब्रह्म कहते हैं (इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति। अथ०१-३२-१)

इस प्रकार विश्व में दृश्यमान प्राणिमात्र के चक्षु, मुख, बाहु और पाद उसी ब्रह्मपुरुष के हैं। 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः। ऋक् १०-९०-१, २, ३।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥

—ऋक् १०-८१-३

वह ब्रह्म ही इस विश्व का रूप धारण करता है, और अपने को सहस्रों रूपों में प्रकट करता है—

स इदं विश्वमभवत्स आभवत्। —अथर्व ७-१-१
एकं यदंगमकृणोत् सहस्रधा। —अथर्व १०-७-९

परमात्मा का स्वरूप

परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव अनन्त होने से, जैसे उसके नाम अनन्त हैं, वैसे उनका स्वरूप भी अनन्तरूप है। उसके सम्पूर्ण स्वरूप का पूरी तरह कभी वर्णन सम्भव नहीं है। फिर भी प्राचीन ऋषियों ने अपनी अनुभूति और मति के अनुसार, उसका जो स्वरूप वर्णन किया है, उसका यत्किंचित् यहाँ दिग्दर्शन करने का प्रयत्न किया जाता है।

सत्

ऋक् १०-१२९ में वर्णित १. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्। २. आनीदवातं स्वधया तदेकम्। ३. तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास। ४. तपसस्तन्महिनाजायतैकम्। उसके अनिर्वचनीय अस्तित्वरूप होने का स्पष्ट निर्देश है। इससे यह भी प्रकट होता है कि सृष्टि से पूर्व (भूत) और प्रलय के बाद (भविष्य) तथा वर्तमान में सदा विद्यमान होने से त्रिकालावाधित एकमात्र सत् वही है।

चित्

अस्तित्व के साथ-साथ वह चैतन्यरूप है। जड़ पदार्थों अर्थात् वृक्ष-वनस्पति, हिमवान् पर्वतों, रसप्रवाहित नदियों से पूरित समुद्रों, सूर्य-चन्द्र-तारक-मण्डित द्युलोक और अनेकविध चित्र-विचित्र सृष्टि से विभूषित पृथिवी में जो आकर्षण और शोभा दृष्टिगोचर होती है, वह सब उसी चेतनस्वरूप की प्रसुप्त चेतना के कारण है।

स चेत्ता देवता पदम्। ऋक् १-२२-५। वह स्वयं चेतनस्वरूप है, और अपनी सम्पूर्ण सृष्टि में भी इस चेतना को अनुस्यूत किये हुए है। जड़-से-जड़ पाषाण में भी चेतना उपस्थित होती है, चाहे वह बिलकुल प्रसुप्त होने से दिखाई न दे, क्योंकि चेतना के बिना पदार्थ में शोभा और आकर्षण नहीं हो सकते।

वह चेतना का अधिपति है। वही मुझे पवित्र और आकर्षक बनाए। चित्पतिर्मा पुनातु। यजुः ४-४। चेतना के बिना आनन्दानुभूति सम्भव नहीं, इसीलिए चित्तिं जुहोमि मनसा। यजुः ४-७८ में चेतना को ग्रहण करने का संकल्प किया जाता है।

आनन्द

वह परमेश्वर चित् होने के साथ मोद-(आनन्द)-मय है। आनन्दरूप होने से आनन्द का सागर है, और इसीलिए चित् और आनन्द को देने में समर्थ होने से एकमात्र वही प्राप्त करने योग्य—पदम् है। स चेत्ता देवता पदम्। ऋक् १-२२-५

'मृडाद्गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः। अथर्व २-२-२ में उस

अद्वितीय भुवनपति को ही एकमात्र नमस्कार-योग्य माना है, क्योंकि वह गन्धर्व-चेतना को धारण करनेवाला और सुशेवाः—उत्तम सुख-आनन्द का देनेवाला है। व्यक्ति वही पदार्थ देता है, जो उसके पास हो। वह चिदानन्द है, इसीलिए इन दोनों की वर्षा करनेवाला वृषभ है।

वही आनन्दस्वरूप, अपने आनन्द की वर्षा से सबको आह्लादित करनेवाला चन्द्रमा है (तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। यजुः ३२-१)।

भक्त-साधकों का कल्पित रूप

भक्त-साधक अपने संस्कार, अनुभव और परिस्थिति के अनुरूप उस परमात्मा की अनेकविध कल्पना करता है।

१. संसार के दुःखों से संतप्त होकर प्यास से व्याकुल हुआ साधक उसकी कल्पना रेगिस्तान में दूर से दिखाई देनेवाले जलगृह (प्याऊ) के रूप में करता है। उसे लगता है, जैसे प्याऊ पर पहुँचकर प्यासे की प्यास बुझ जाती है, गर्मी शान्त हो जाती है और तृप्ति अनुभव होती है, वैसे उसके समीप पहुँचकर मेरी भी दर्शनरूपी प्यास और दुःखों के सन्ताप की गर्मी शान्त हो जाएगी, और तृप्ति का सन्तोष-सुख मिलेगा—मय इवापो न तृष्यते बभूथ। ऋक् १-१७६-६

धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन्।—ऋक् १०-४-१

२. इस संसार की यात्रा पर आया हुआ साधक संसार के झंझटों के बोझ से दबा हुआ, और चलते-चलते थकान से चूर हुआ यात्री, उसकी कल्पना रथ के रूप में करता है, क्योंकि रथ में पहुँचकर उसे बोझ से भी छुटकारा मिल जाएगा और चलने की थकान भी नहीं होगी—

पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः। —ऋक् १-५४-३

३. संसार की पीड़ा से जराजीर्ण साधक, उसकी सहारा देनेवाली लाठी के रूप में कल्पना करता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर और मन दोनों से जीर्ण होने पर, इस स्थिति में तेरे सिवाय कोई दिखाई नहीं देता जो वृद्ध की लाठी का काम दे सके—

आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते। उश्मसि त्वा सधस्थ आ॥

—ऋक् ८-४५-२०

४. अबोध बालक हर आवश्यकता पर जैसे अपने पिता को पुकारता है वैसे ही अपने को अक्षम और असहाय समझनेवाला साधक उसे पिता के रूप में याद करता है—पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व। —ऋक्० ७-५४-२

नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च नः। —ऋक् ७-३२-१९

५. भगवान् अतिथि बनने की इच्छा से सबके द्वार खटखटाता रहता है।

जो उसके लिए अपने द्वार खोल देता है, उसके घर में प्रविष्ट होकर वह आवश्यक उपदेश और सलाह देता है एवं उपचार करता है। इसी प्रकार अतिथियों से मार्गदर्शन और उपचार पाये हुए पड़ोसियों को देखकर यह साधक भी उपस्थित अतिथियों में प्रभुदर्शन की कल्पना करने लगता है—

स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहे गृहे वने वने शिश्रिये तक्ववीरिव।
जनं जनं जन्यो नातिमन्यते विश आ क्षेति विश्यो विशं विशम्॥

—ऋक् १०-९१-२

यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत्॥

—ऋक् ४-४-१०

६. वह परमेश्वर सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होने से प्रत्येक भक्त, उपासक और साधक के मनोभावों और मनःस्थिति को जानता है। जब उपयुक्त अवसर आता है तो वह चुपचाप बिलकुल अनजाने में ही साधक के मन में प्रवेश कर जाता है। यहाँ उपमा भी अद्‌भुत दी है—जैसे, जार (यार) अपनी चहेती स्त्री के पास चुपचाप पहुँच जाता है, या बाज अपने शिकार पक्षी पर जैसे चुपचाप आ बैठता है, वैसे ही यह अपने मानव-भक्तों के हृदय में विराजमान हो जाता है—

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति। गच्छञ्जारो न योषितम्॥

—ऋक् ९-३८-४

सर्वसाधक

वह परमात्मा प्रत्येक की साधना को पूरा करता है। मनोयोग से किये जाने-वाले कर्म सम्पूर्ण होते हैं, क्योंकि बुद्धि और कर्म का तालमेल उसी की कृपा का परिणाम है। कोई कितना ही बुद्धिमान् और कोई कितना ही कर्मवीर हो, यदि उसकी कृपा न हो तो उनमें सामञ्जस्य और सहयोग के अभाव के कारण कोई कार्य सिद्ध नहीं होता—

यस्माद‍ृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्च न।
स धीनां योगमिन्वति॥ —ऋक् १-१८-७

सर्वाधार—स्कम्भ और काल

वह परमात्मा ही सर्वाधार है। स्थान और स्कम्भ के बिना जैसे मकान नहीं रह सकता, वैसे ही आकाशरूप स्थान (स्पेस) और स्कम्भ के बिना यह जगत् नहीं टिक सकता है। इसलिए परमात्मा को स्कम्भ कहा गया है। यह आकाश परमेश्वर का ही स्कम्भरूप है। इसलिए ब्रह्म को आकाश के समान कहा गया

—(ओम् खं ब्रह्म)। अथर्व १०-७-३० में 'सर्वं स्कम्भे प्रतिष्ठितम्' कहा है। परमेश्वर का स्कम्भरूप, आधुनिक विज्ञान की परिभाषा में स्पेस-स्थानीय है। स्कम्भ या आकाश ब्रह्म का ही रूप है।

स्कम्भ की तरह से काल भी परमात्मा का दूसरा सर्वाधाररूप है। जैसे आकाश स्थान की दृष्टि से सर्वव्यापक है, वैसे ही काल, समय की दृष्टि से सर्व-व्यापक है। किसी भी पदार्थ की अस्तित्वरूप में, समय और स्थान के बिना कल्पना नहीं की जा सकती है।

इसलिए जब आकाश या स्कम्भ का वर्णन होता है तो उसे सर्वाधार सबसे प्रथम कहा जाता है, और जब काल का वर्णन होता है तो उसे सर्वाधार सबका स्वामी कहा जाता है—कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः। अथ० १९-५३-८। कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम्। अथ० १९-५३-९

इस प्रकार चाहे आकाश (स्कम्भ) कहो, चाहे काल (समय) कहो, चाहे अस्तित्व (सत्) कहो, चाहे सौंदर्य (चित्) कहो, चाहे(आनन्द) कहो, बात एक ही है। ये सब रूप और इसी प्रकार अनन्त रूप उसी परमात्मा के हैं—तदाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव। अथर्व १०-८-११।

परमेश्वर की मित्रता

वह परमात्मा प्राणिमात्र का चैतन्य की समानता के कारण सखा है। सबको बिना किसी भेदभाव के सुख पहुँचाना चाहता है। उसने यह घोषणा की हुई है कि मेरे किसी भी सखा के पास जिस पदार्थ की कमी होगी, उसे मैं पूरा करूँगा।

उसके पास हर प्रकार के ऐश्वर्य का अटूट भण्डार है, इसलिए वह अपने सखाओं को इस भवसागर से पार उतारने की इच्छा से, सबके अन्दर स्थित रहकर उन्हें कर्त्तव्यबोध और समयानुसार कर्म करने की प्रेरणा और मति देता रहता है, किन्तु अत्यन्त घनिष्ठता के कारण उसकी कौन मानता है?

१. मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः। —ऋक् १-१८७-३
२. ददामि तद्यत्ते अदत्तोऽस्ति युज्यस्ते सप्तपदः सखाऽस्मि।
—अथर्व० ५-११-१०
३. यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। —ऋक् ४-१७-१८
४. सखीयतामविता बोधि सखा। —ऋक् १-४-१०
५. सखायो स हि नः प्रमतिर्मही। —ऋक् ६-४५-४

मित्र बनने के उपाय

यद्यपि सभी साधक स्तोता उसे अपना मित्र बनाना चाहते हैं, और अपनी उसके मित्रों में गणना करते हैं, किन्तु उसने अपना मित्र बनाने की कुछ कसौटियाँ

बना रक्खी हैं। इनमें से कोई भी गुण न होने पर वह किसी को अपना मित्र नहीं बनाता। उसकी मुख्य कसौटियाँ निम्न हैं—

(क) इन्द्रो मुनीनां सखा। —ऋक् ८-१७-१४।

वह ज्ञान की साधना में लगे मननशील विद्वानों को अपने कार्य में लगा सखा मानता है।

(ख) अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्, नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः।
—ऋक् १०-४२-४

जो व्यक्ति उसके निमित्त अर्थात् लोकसेवा में किसी भी प्रकार सहयोग (हविः) प्रदान करता है, उसे वह अपना मित्र बनाता है। वह किसी प्रकार का सवन (उत्पादन) न करनेवाले परमुखापेक्षी निकम्मे की मित्रता नहीं पसन्द करता है।

(ग) यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।
—ऋक् ५-४४-१४

जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य कर्म के प्रति सदा जागरूक रहता है, यह सर्वोत्पादक और सबको सुख-शान्ति देनेवाला सोम, उससे कहता है कि तू किसी तरह चिन्ता मत कर क्योंकि मैं तेरा सच्चा मित्र हूँ, और मैं तेरे मस्तिष्क-चक्र में ही घर बनाकर निवास किये हुए हूँ।

(घ) इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।
—ऋक् ४-३३-११

परिश्रमी जन ही मित्र, सूर्य आदि के रक्षण को प्राप्त करते हैं, क्योंकि ये प्राकृतिक दिव्य शक्तियाँ, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए घोर परिश्रम करके पूरी तरह से थके बिना, उसकी मित्रवत् सहायता नहीं करती हैं।

स्मरणीय तथ्य

यद्यपि कुछ तथ्य ऐसे हैं, जिन्हें सब अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी उनपर ध्यान देने की परम आवश्यकता है—

१. यस्तित्याज सचिविदं सखायं। न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्।
—ऋक्० १०-७१-६

जो मनुष्य अपने साथ रहनेवाले मित्र का परित्याग कर देता है, उसे फिर कोई दूसरा पुण्यकर्मोंवाले मार्ग पर प्रवृत्त नहीं कर सकता है। और जो अपने घनिष्ठ मित्र की चेतावनी की उपेक्षा करने लग जायेगा, उसे सन्मार्ग पर कौन चला सकता है!

२. सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन्।
अधूर्षन्त स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥
—ऋक् ५-१२-५

आपकी मित्रता में रहनेवाले सामान्यतया दूसरों का कल्याण ही करते हैं, लेकिन कभी-कभी उनमें भी मतिवैपरीत्य उत्पन्न हो जाता है। वे सत्यवादी और सदाचारी व्यक्तियों के प्रति कुटिल वचन बोलने, और असद्व्यवहार करने लगते हैं; तब वे दुष्ट और दुराचारी हो जाते हैं और अपने वचनों और कर्मों से समाज की दृष्टि में पतित हो जाते हैं।

३. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्रमिनाति संगिरम्।
—ऋक् ९-८६-१६

जो मनुष्य परमेश्वर के, अपने आचरण से सखा बने रहते हैं, वह ऐश्वर्य-शाली सखा, ऐश्वर्य-प्राप्ति में सतत प्रयत्नशील अपने सखा के हृदय में, प्रेरणारूप से अवश्य प्रकट होता है; उनके किसी व्रत को अपूर्ण नहीं रहने देता। उनकी आन-बान की रक्षा के लिए किसी-न-किसी रूप में अवश्य सहायता करता है।

४. य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः।
गमत् स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥ —ऋक् ८-१-२७
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्। —ऋक् ८-३३-९

वह महान् और शक्तिशाली परमात्मा अपने व्रतों और ऋतों के पालन में अद्वितीय है। यदि उसका सखा या स्तोता उसे किसी भी अवस्था में बुलाता है, और वह पुकार उसके कानों तक पहुँच जाती है, तो वह अवश्य आता है। अपने सखा की पुकार की कभी उपेक्षा नहीं करता, किसी-न-किसी रूप में अवश्य सहायता करता है। किन्तु हम ऐसे कृतघ्न हैं कि उसकी प्रतिज्ञा पर पूरी तरह विश्वास नहीं कर पाते; दूसरों के द्वार खटखटाने लगते हैं, या निराश होकर बैठ जाते हैं।

५. त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक्। —ऋक् ८-९७-७
सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये। —ऋक् ३-९-१
सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम। —ऋक् ७-२१-९

तू ही हमारा रक्षक, पालक और वर्धक है, और इसीलिए तू ही सदा स्मरणीय और प्रापणीय मित्र है। तू हमसे कभी पराङ्मुख न होना। हम मर्त्य-मानव तेरे सखा हैं। अपनी रक्षा, संभरण और वृद्धि के लिए तुझ देव का ही वरण करते हैं। हमारा प्रयत्न तो यही है कि हम सदा तेरे सखा बने रहें। तू भी कृपा करके, अपराध हो जाने पर उपेक्षा कर देना, किन्तु अपनी मित्रता से पृथक् मत करना।

६. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते । —ऋक् १-११-२

सखे सखायमभ्याववृत्स्व-शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि । —ऋक् ४-१-३

हे परमैश्वर्यशालिन् तथा सर्वशक्तिमन् सखे ! आप अपने सखा के हृदय में सर्वथा और सदा वर्तमान रहो, जिससे वह सदा सब तरह से निर्भय रह सके। किसी भय के कारण कर्त्तव्य-पथ से च्युत न हो सके। हे दर्शनीय, आप संताप और दुःखों को नष्ट करनेवाले हैं, इसलिए अपने सखा के शरीर और मन, दोनों में शान्ति की वर्षा कीजिए।

७. तवेद्धि सख्यमस्तृतम् । —ऋक् १-१५-५

न हि रिष्येत्त्वावतः सखा । —ऋक् १-९१-८

सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् । —ऋक् ३-३१-८

मा नो अग्न सख्या पित्र्याणि प्रमर्षिष्ठाः । —ऋक् १-७१-१०

सुमित्रः सोम नो भव । —ऋक् १-९१-१२

सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव । —ऋक् ९-१०५-५

यह सर्वविदित है—तेरी मित्रता अमोघ है। तेरे मित्र को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। मित्र अपने मित्र को पाप से छुड़ाता है। इसलिए यदि हमसे कोई पाप या अपराध हो जाए, तो भी पैतृक मित्रता का खयाल रखना और हमारी उपेक्षा मत करना। हे आनन्दप्रद प्रभो ! आप तो हमारे मित्र ही बने रहना। जैसे मित्र मित्र की समृद्धि और दीप्ति चाहता है, वैसे ही आप हमारे लिए जो भी वरेण्य और हितकर है वह करते रहना।

परमेश्वर का हृद्य रूप

परमेश्वर को अपने लिए कोई कामना नहीं। वह अत्यन्त धीर है, बड़े-से-बड़े भयंकर प्राकृतिक उत्पात, और उनसे होनेवाले महाविनाश से भी वह विचलित नहीं होता। वह स्वयंभू है, न उसका कोई पिता है न माता है। वह आनन्दस्वरूप होने से सदा सब प्रकार से तृप्त है। वह पूर्ण है, उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं। सृष्टि की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, किन्तु स्वयं किसी भी तरह जीर्ण न होनेवाले धीर परमात्मा को जानकर ही ज्ञानी मृत्यु से निर्भय हो जाता है। मृत्यु से निर्भय होना ही मुक्ति है—

अकामो धीर अमृतः स्वयंभूः रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥
—अथर्व १०-८-४४

वह कवि, मनीषी, सर्वज्ञ है। सर्वत्र व्याप्त होने से सर्वव्यापक है। सबका पराभव करने में समर्थ होने से सर्वशक्तिमान् है। स्वयंभू होने से अनादि और

पुराणपुरुष है। अपनी मित्रभूत सनातन प्रजाओं के हित की कामना से, उनके कर्मानुसार उनके लिए उपादेय पदार्थों का विधान तथा निर्माण करता रहता है। इतना सब-कुछ करते हुए भी कर्मों से अस्पृष्ट शुक्र, अशरीरी, अकाम अतएव किसी प्रकार के पापलेश से सर्वथा मुक्त शुद्धस्वरूप है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ् शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥
—यजु० ४०-८

उस परमात्मा की कार्यप्रणाली महिमामयी है। उसकी प्रशस्तियाँ पूर्ण हैं। उसकी कितनी ही प्रशंसा कर दी जाए, वह उससे कभी अधिक नहीं हो पाती। उसकी प्रेरणा, दया, मित्रता तथा सुख की वर्षा में कभी कमी नहीं आती।

सभी सुभगों के आगार उस प्रभु से सभी प्रकार के सौभाग्य सर्वदा उसी प्रकार प्रकट होते रहते हैं, जैसे प्रातःकाल पक्षी वृक्ष से उड़कर इधर-उधर विचरने लगते हैं।

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः। नास्य क्षीयन्त ऊतयः॥
—ऋक् ६-४५-३

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वियन्ति। वनिनो न वयाः॥ —ऋक् ६-१३-१

वेद का आदेश

परमेश्वर द्वारा हृदय में प्रकाशित ज्ञान द्वारा सामान्य जन को प्रेरणा देने की दृष्टि से, पूर्व-ऋषियों ने वेद के शब्दों में निम्न आदेश दिया है—

तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो—तमसो विहन्ता। —ऋक् १-१७३-५
सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि। —ऋक् ३-५१-३
य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः।
—ऋक् ६-४५-१६
अभि प्र गोपतिं गिरा इन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥
—ऋक् ८-६९-४

तुम उस ऐश्वर्यशाली भगवान् की ही स्तुति किया करो, जो सत्स्वरूप, सब दुःखों को दूर करनेवाला और अज्ञानान्धकार का विनाशक है।

हे साधको! तुम अभिमान का विनाश करनेवाले, और सत्य को सहन करने का सामर्थ्य प्रदान करनेवाले की स्तुति किया करो।

जो मनुष्यमात्र के शुभ-अशुभ कर्मों का द्रष्टा, संकल्पमात्र से सुखों की वर्षा करनेवाला, अद्वितीय रक्षक और पति है, केवल उसीकी स्तुति किया करो।

वह सबको सत्य और यथार्थ की प्रेरणा करनेवाला, सदाचारी जनों का

रक्षक, सम्पूर्ण ज्ञान का स्वामी है। उसे तुम जिस रूप में अपने लिए उपादेय समझते हो, उसी रूप में उस अनन्त रूपों और ऐश्वर्यवाले प्रभु की अर्चना किया करो अर्थात् अपनी स्तुति के अनुरूप कर्मों से उसका पूजन किया करो।

इस आदेश के उपरान्त

भक्त, सखा, साधक कहता है कि मैं तो आपको अन्न से भी अधिक स्वादिष्ट और मधुर अन्न की तरह स्वीकार कर ग्रहण करता हूँ। आप मुझे अन्न की तरह पुष्ट करके मेरी रक्षा और वृद्धि कीजिए—

स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे। अस्माकमविता भव।

—ऋक् १-१८७-२

आप मुझे प्रकाश दीजिए, सुख दीजिए और सब प्रकार के सौभाग्य प्रदान करके, वर्तमान स्थिति से बेहतर (बृहत्तर) स्थिति में पहुँचाइए।

सना ज्योतिः सना स्वर्विश्वा च सोम सौभगा। अथा नो वस्यसस्कृधि॥

—ऋक् ९-४-२

और अन्त में

परमेश्वर ने सलाह दी है कि यदि तुम मुझे अपना सच्चा सखा मानते हो तो किसी दूसरे की न प्रशंसा किया करो, न उनसे किसी चीज की प्रार्थना किया करो। दूसरों की स्तुति-प्रार्थना से तुम्हें निराशा और परिणामतः दुःख ही होगा—

मा चिदन्यद्विशंसत सखायो मा रिषण्यत। —ऋक् ८-१-१ □

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	५०.००
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्त	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	प्रेस में
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	१.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका	४.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००

घर का वैद्य
लेखक : सुनील शर्मा

प्याज	३.५०
लहसुन	३.५०
गन्ना	३.५०
नीम	३.५०
सिरस	३.५०
तुलसी	३.५०
आँवला	३.५०
नींबू	३.५०
पीपल	३.५०
आक	३.५०
गाजर	३.५०
मूली	३.५०
अदरक	३.५०
हल्दी	३.५०
बरगद	३.५०
दूध-घी	३.५०
दही-मट्ठा	३.५०
हींग	३.५०
नमक	३.५०
बेल	३.५०
अनाज	३.५०
साग सब्जी	३.५०
फिटकरी	३.५०
शहद	३.५०

बाल साहित्य

बाल शिक्षा दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	२.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	२.५०
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	०.७५
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	२.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	२.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	२.५०
नतिक शिक्षा	सप्तम	२.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम	२.५०
नैतिक शिक्षा	नवम	३.००
नैतिक शिक्षा	दशम	३.००

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत)	६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

डॉ० मनोहरलाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

हा ! सुभद्रा बहिन जी

स्व० श्री गोविन्दराम जी की बड़ी पुत्री श्रीमती सुभद्रा बहिन जी का २० एप्रिल १९८८ को बड़ौदा में देहावसान हो गया ।

श्रीमती सुभद्रा बहिन जी का जन्म १९२१ की जन्माष्टमी को कलकत्ता में हुआ । उनकी शिक्षा-दीक्षा आर्य कन्या विद्यालय बड़ौदा में हुई । स्नातकीय उपाधि पाने के बाद उनका विवाह गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक श्री नित्यानन्द वेदालंकार से हुआ, जिनके आग्रह पर पुनः पढ़ाई आरम्भ की । क्रमशः मैट्रिक, एफ० ए०, बी०ए०, बी०टी०, एम० ए० और पी-एच० डी० की परीक्षाएँ दीं । १९५६ से अध्यापन आरम्भ किया और कन्या महाविद्यालय पोरबन्दर एवं गार्डा कॉलेज नवसारी में अपनी अमिट छाप छोड़ी । सुयोग्य माता-पिता की सन्तान भी होनहार निकली ।

उनकी दो सन्तानें हैं : चिरंजीव अरुण और चिरंजीव अशोक । अरुण जी एन० डी० ए० से शिक्षित होकर वायु-सेना में चले गए और अशोक जी गुरुकुल सूपा में शिक्षा पाकर उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका चले गए ।

सुभद्रा बहिन जी बड़ी मिलनसार, भावुक और सामाजिक महिला थीं । मुंशी प्रेमचन्द के औपन्यासिक मूल्यांकन में उनकी लेखनी का जादू सम्मोहित कर लेता है । अपने शिष्य-शिष्याओं में उनका स्नेहिल व्यक्तित्व ममतापूर्ण होने के कारण सदैव आदरणीय रहा ।

सुभद्रा बहिन जी के विछोह से हमारे परिवार को अपूरणीय क्षति पहुँची है ।

—**विजयकुमार (भाई)**

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक १०] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [मई १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

क्रमागत—दिसम्बर १९८६ से आगे

स्वामी वेदानन्द तीर्थ

जीवन-चरित

(लेखक—श्री सत्यानन्द शास्त्री, एम० ए०)

पुनः काशी में

बाबू शिवप्रसाद गुप्त पुश्तैनी रईस थे। नगर के संभ्रान्त कुलों में उनके कुल की गणना होती थी। पुश्तों से लक्ष्मी देवी की उनके कुल पर असीम कृपा थी। व्यापार, जमींदारी और साहुकारे से अनवरत प्राप्त हो रहे विपुल धन से इस कुल की निरन्तर समृद्धि हो रही थी; व्यृद्धि का कभी अवसर न आया था। इस समृद्धि ने उन्हें उद्धत न किया था, फलों से लदे वृक्ष की न्याईं विनम्र ही बनाया था। दया, धर्म और दान की अविरत परम्परा को इस कुल के अवतंस आगे ही आगे बढ़ाते चले आ रहे थे, विच्छृंखल न होने देते थे। ईश्वरभक्ति और दीन-पालन में इस कुल की कुलांगनाएँ भी अग्रगन्ता गिनी जाती थीं। घर पर आया कोई भी याचक खाली हाथ न लौटता था। किं बहुना, सारी काशी में इस कुल का सर्वत्र यशोगान होता था, कभी किसी के मुख से अपयश न सुना था।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त के चचा बाबू मोतीचन्द गुप्त बड़े लोकप्रिय व्यक्ति थे। उनका निवास-स्थान 'मोती झील' काशी में एक महत्त्वपूर्ण स्थल था। सारे शहर की गतिविधियाँ इसीके इर्द-गिर्द केन्द्रित होती थीं। बाबू मोतीचन्द

गुप्त के जनसाधारण में परिवृद्ध प्रभाव को देखते हुए तत्कालीन अंग्रेजी सरकार ने उन्हें 'राजा' के खिताब से अलंकृत किया था। इसी कारण सरकारी हलकों में उनका बड़ा असरो-रसूख था। सूबे का गवर्नर तक भी मिलने पर राजा मोतीचन्द गुप्त को कुर्सी पेश करता था।

इसके विपरीत बाबू शिवप्रसाद गुप्त शताब्दी के आरम्भ में उदय हो रहे राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रगन्ता समझे जाते थे। बरसों तक वह 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' के कोषाध्यक्ष रहे। उनके ही कार्यकाल में एक करोड़ का तिलक स्वराज्य फण्ड उत्साहपूर्वक एकत्र किया गया। कहते हैं इस फण्ड को पूरा करने के लिए गांधी जी द्वारा निर्धारित की गई अन्तिम तिथि के दिन जितनी रकम अभी और एकत्रित की जानी शेष थी, गुप्त जी ने अपने पास से जमा कराकर घोषणा कर दी कि तिलक स्वराज्य फण्ड पूरा हो गया है। ऐसा करने में मसलहत यह थी कि बापू द्वारा इसकी पूर्त्ति के निमित्त अनशन करने की नौबत न आये।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त के कोई लड़का न था। प्रभु ने उन्हें एक कन्या ही दी थी। गुप्त जी कुल की विपुल सम्पदा के तीसरे हिस्से के हकदार थे। सम्पत्ति के बँटवारे में उन्हें अपने हिस्से की प्रभूत धनराशि और सम्पदा प्राप्त हुई थी। कन्या का कारज सम्पन्न करने के बाद उन्हें कहते सुना गया—"सम्पदे, आज तक तू मेरे बुजुर्गों को खाती रही है। मैं तुझे ऐसा न करने दूंगा। तुझे पता होना चाहिए कि किस कर्कश के साथ अब तेरा पाला पड़ा है। अबकी बार बच न पायेगी। मैं तो तुझे निश्शेष करके छोड़ूंगा।" उनके नजदीकी दोस्तों का कहना है कि अपनी अपार धनराशि को खुले दिल से सार्वजनिक कार्यों में व्यय करके गुप्त जी ने यह बात अक्षरश: सत्य कर दिखाई।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त की सत्प्रेरणा से परिवार की ओर से उनके स्वर्गीय चचा बाबू मंगलाप्रसाद गुप्त की स्मृति में 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक निधि' स्थापित करने के लिए एक अच्छी-खासी मोटी रकम पृथक् रख दी गई। इस निधि की आय से प्रतिवर्ष बारह सौ रुपया पारितोषिक के रूप में राष्ट्रभाषा के उस लेखक को दिया जाता था जिसकी कृति उस वर्ष सर्वोत्कृष्ट निर्णीत होती थी।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त के पुरुषार्थ से गांधी जी के आह्वान पर सरकारी स्कूल-कॉलेज छोड़ देनेवाले छात्रों की पढ़ाई जारी रखने के लिए 'काशी विद्यापीठ' की स्थापना की गई। स्मरण रहे कि जीवन-पर्यन्त गुप्त जी ही इस विद्यापीठ का सम्पूर्ण वहन करते रहे।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त का मूर्तिपूजा में विश्वास न था। वह चाहते थे कि देशवासियों की इस प्रवृत्ति को नया मोड़ देकर उनमें देशभक्ति का संचार किया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने पास से लाखों रुपये लगाकर काशी में 'भारत माता का मन्दिर' निर्माण करवाया। यहाँ यह बताना

अप्रासंगिक न होगा कि 'भारत माता का मन्दिर' कोई मन्दिर न था। वह तो संगमरमर का धरती पर फैला हुआ अविभाजित भारत का एक अति सुन्दर और विशाल मानचित्र मात्र था। यह मानचित्र अपने-आप में इतना भव्य, आकर्षक और ज्ञानवर्द्धक था कि देश-विदेश से खिंचे आये हजारों पर्यटक प्रतिदिन उसे देखने आते और देखकर हिन्दुस्तान की विशालता और महानता से सराबोर होकर अश-अश करते अपने घरों को लौटते थे।

हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध दैनिक 'आज' को बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने ही आरम्भ किया था। काशी से प्रकाशित होनेवाला यह हिन्दी दैनिक देशीय भाषाओं में उन दिनों प्रकाशित किये जा रहे अन्य दैनिकों की तरह का कोई साधारण दैनिक न था। इसका आकार-प्रकार, साज-सज्जा, कागज, छपाई और पाठ्य-सामग्री उन दिनों छपनेवाले अंग्रेजी दैनिक की टक्कर के होते थे; सम्पादक-मण्डल के सदस्य भी अंग्रेजी दैनिकों के सम्पादकों के स्तर के ही अनुभवी और उच्चशिक्षण प्राप्त थे; उनको दिया गया पारिश्रमिक भी उतना ही अधिक था जितना अंग्रेजी दैनिकों के सम्पादक-मण्डलों के सदस्यों का। स्मरण रहे कि कि दैनिक 'आज' के प्रथम सम्पादक भारतरत्न डॉ० भगवान दास के सुपुत्र श्री श्रीप्रकाश थे जो बाद में देश के आजाद हो जाने पर पाकिस्तान में भारत के राजदूत भी नियुक्त हुए। दैनिक 'आज' को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए गुप्त जी ने अपने पास से लाखों रुपये व्यय किये थे। अत्यन्त हर्ष की बात है कि राष्ट्रभाषा का यह दैनिक 'आज' आज भी पूरी शानो-शौकत से शाया हो रहा है; जमाने के थपेड़ों का शिकार हो विलुप्त नहीं हो गया।

गुप्त परिवार की शुभ्र ख्याति के आलोक में स्वामी दयानन्द तीर्थ का रहन-सहन, भोजनाच्छादन और पठन-पाठन स्वतः प्रशस्त होता गया। उठने-बैठने और रहने के लिए बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने अपने आवास में ही दो कमरे पृथक् करवा स्वामी जी के निजी प्रयोग के लिए निश्चित कर दिये थे। इन कमरों में और किसी का कोई दखल न था। जहाँ तक उनकी भोजन की समस्या का सम्बन्ध है, स्वामी जी जब काशी में होते तो गुप्त जी के यहाँ ही भोजन करते। घर के महाराज को गुप्त जी का कड़ा आदेश था कि स्वामी जी के खाने-पीने का विशेष ध्यान रखे। खाद्य अथवा पेय, जो कुछ भी और जैसा भी वह चाहें सिद्ध कर अविलम्ब उनकी सेवा में पहुँचाया जाए; इसमें किसी प्रकार की लापरवाही नहीं होनी चाहिए। स्वामी जी के पास यदि कोई अभ्यागत आता था तो उसे भी भोजन स्वामी जी के साथ कराया जाता था। पहनने के लिए कपड़े-लत्ते, लेखन-सामग्री और पुस्तकें आदि भी स्वामी जी को गुप्त परिवार की ओर से ही दी जाती थीं।

काशी का बच्चा-बच्चा जानता था कि स्वामी दयानन्द तीर्थ विचारों से दृढ़

आर्यसमाजी हैं। किन्तु कट्टर-से-कट्टर लकीर का फकीर सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू भी उनको आदर की दृष्टि से देखता था। उनकी सौम्य मूर्ति और भव्याकृति के सामने लोगों का मस्तक स्वतः झुक जाता था। मिलने-जुलने और बातचीत करने का उनका ढंग इतना आकर्षक था कि सम्पर्क में आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति बलात् अनुभव करने लगता कि स्वामी जी तो मेरे अपने ही आत्मीय हैं। स्वामी जी महाराज संन्यासी थे, उनका कषाय वेश ही हिन्दूमात्र के लिए श्रद्धास्पद था; संन्यासियों में भी वह दसनामी संन्यासी थे, साधुओं में जिनका दर्जा सबसे ऊँचा गिना जाता है। इतना ही नहीं, दसनामी संन्यासियों में भी वह 'तीर्थ'* उपाधिधारी दण्डी संन्यासी थे, जिन्हें दसनामी संन्यासी भी पूजार्ह मानते हैं। बाबू शिवप्रसाद गुप्त के परिवार द्वारा सम्भाव्य संन्यासी होने के नाते काशी के लोग स्वामी जी को और भी सम्मान देते थे।

स्वामी दयानन्द तीर्थ जिस किसी विद्वान् से पढ़ाने के लिए प्रार्थना करते, वह अपना अहोभाग्य समझ तुरन्त पाठ देने के लिए रजामन्द हो जाता। इतना होने पर भी एतद्विषयक उनकी अभ्यर्थना को ठुकराने की यदि कहीं से कोई आशंका हो सकती थी वह भी निम्नलिखित घटना के बाद जाती रही।

एक दिन स्वामी दयानन्द तीर्थ साहित्य-शिरोमणि पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल की पीठिका पर प्रवर्तमान पाठों में सम्मिलित होने के लिए पहुँचे ही थे कि एक ईसाई पादरी भी वहाँ आ उपस्थित हुआ। उस पादरी के पास संस्कृत भाषा में अनूदित बाइबल की कुछ प्रतियाँ थीं। वह बाइबल की एक प्रति शुक्ल जी को भेंट करने के इरादे से वहाँ आया था। बाइबल भेंट करते समय बातचीत के दौरान उसके मुख से योगिराज कृष्ण की शान में अनजाने कुछ ऐसे शब्द निकल गये जो शुक्ल जी को अप्रिय लगे। इन शब्दों को सुन पास खड़े स्वामी दयानन्द तीर्थ को क्रोध आ गया। आग-बबूला हो वह कड़ककर कहने लगे—"पादरी

---

* संन्यासियों के तीर्थ, आश्रम, सरस्वती, पुरी, भारती, वन, आरण्य, गिरि, पर्वत तथा सागर, ये दस नाम हैं। पहले केवल ब्राह्मणों को ही संन्यास का अधिकारी माना जाता था। तब सभी संन्यासियों को दण्डी बनाया जाता था। जब से ब्राह्मणेतरों को भी संन्यास दिया जाने लगा तब से तीर्थ, आश्रम, और सरस्वती नामा संन्यास के अधिकारी ब्राह्मण ही रहे। उन्हें ही संन्यास-दीक्षा के समय दण्ड धारण करा दण्डी बनाया जाता है। पुरी, भारती, वन, आरण्य, गिरि, पर्वत और सागर नामा संन्यास के ब्राह्मण-अब्राह्मण सभी पात्र माने जाने लगे। उन्हें संन्यास-दीक्षा के समय दण्ड धारण नहीं कराया जाता। स्मरण रहे कि 'तीर्थ' उपाधिधारी संन्यासी गुजरात प्रदेश में स्वामी शंकराचार्य द्वारा स्थापित शारदा पीठ से सम्बन्धित होते हैं।

महोदय, श्री कृष्ण जी की शान में ऐसी हल्की बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिए। कुमारी के पेट से पैदा हुए अबोध बालक पर विश्वास लानेवाले ईसाई लोग भगवान् कृष्ण की महिमा क्या जानें? कृष्ण भगवान् कितने ऊँचे इन्सान थे, कान खोलकर सुनो! धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के आरम्भ में जब प्रश्न उठा कि सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वपूज्य व्यक्ति कौन है जिसे अर्घ्य दिया जाए? पता है कुरुकुल-श्रेष्ठ भीष्म पितामह ने उस वक्त क्या कहा था? पितामह की उस वक्त दो टूक राय थी—

'नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्ट: केशवादृते,
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्री: कीर्त्तिर्बुद्धिरुत्तमा।
सन्नति: श्रीर्धृतिस्तुष्टि: पुष्टिश्च नियताच्युते ॥

निश्चय ही श्री कृष्ण दान, दक्षता, शास्त्रज्ञान, वीरता, शालीनता, कीर्ति, बुद्धि, विनम्रता, शोभा, धैर्य, सन्तोष और शारीरिक बल में संसारभर के पुरुषों में सबसे बढ़कर हैं। कौन है जो उनकी होड़ कर सके? श्री कृष्ण से बढ़कर इस सत्कार के योग्य और कोई दूसरा है ही नहीं।' ऐसे सिरमौर महापुरुष की शान में ऐसी लचर बात कहते हुए तुम्हें शर्म आनी चाहिए।"

स्वामी जी द्वारा की गई कड़ी आलोचना का उत्तर देने के लिए पादरी ने कहना आरम्भ किया—"स्वामी साहिब, क्या कृष्ण जी द्वारा युवा गोपियों के साथ रासलीला रचाना तुम ठीक समझते हो और…।" पादरी बेचारा अपना वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि स्वामी जी उसे घूरते हुए तमककर बोले—"अरे! छाज तो बोले छलनी क्या बोले जिसमें नौ सौ छेद? तनिक बताओ तो सही, आज के वैज्ञानिक युग में तुम्हारे धर्म के अतिरिक्त क्या कोई कुमारी माता के पेट से पिता के साथ संयोग के बिना बच्चा पैदा होने की बात सोच भी सकता है? और तुम हो कि उस असम्भव बात को तथ्य मानकर उस अबोध बालक को बाँस पर चढ़ाए खुदा का बेटा बता रहे हो और हर खासो-आम को उस पर ईमान लाने के लिए उकसा रहे हो! तनिक बताओ तो, क्या खुदा दुनिया से उठ गया है जो उसके तथाकथित बेटे 'ईसा मसीह' पर विश्वास लाया जाए? हिन्दुस्तान में तो बाप के मरने के बाद ही बेटे पर विश्वास किया जाता है, जीते जी नहीं।"

स्वामी दयानन्द तीर्थ की इस भर्त्सना को सुन बेचारा पादरी सहम गया। उनकी खरी-खरी बेबाक बातों का उत्तर देने की भला उसमें ताब कहाँ? भौंचक्का-सा हो मुँह बाये कुछ देर तक वह वहाँ खड़ा रहा और फिर मौका पा दुम दबा भाग निकला। पादरी महोदय को खिसयाना हो नौ-दो-ग्यारह होते देख साहित्य-शिरोमणि पण्डित देवी प्रसाद शुक्ल अति प्रसन्न हुए। पीठ थपथपाते हुए उन्होंने स्वामी जी को भूरि-भूरि साधुवाद कहा।

निर्भीक संन्यासी की यह सिंह-गर्जना तत्काल काशी में गूंज उठी। स्वामी जी की निश्शंकता और वाक्-चातुर्य की चर्चा सर्वत्र होने लगी। स्वामी दयानन्द तीर्थ अब जिधर से भी गुजरते, लोग उन्हें सिर आँखों पर बैठाने के लिए तैयार होते।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त पढ़े-लिखे नई रोशनी के व्यक्ति थे। राजनीति और साहित्य से उनको विशेष लगाव था। सार्वजनिक कार्यों में गहरी अभिरुचि रखते थे। बाप-दादा से चली आ रही धन-सम्पदा इतनी थी कि रोजी-रोटी कमाने की उन्हें कोई चिन्ता न थी। पढ़ने-लिखने के लिए उनके पास पर्याप्त फुर्सत थी। देश-विदेश में चल रहे आन्दोलनों की पूरी जानकारी प्राप्त करना उन्हें अभीष्ट था। इसी कारण नई-नई पुस्तकें पढ़ने का खूब शौक था। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी में प्रकाशित उपयोगी पुस्तकों की जानकारी स्थानीय पुस्तक-विक्रेता उन्हें देते रहते थे। समाचारपत्रों और मेगजीनों से भी उन्हें यह जानकारी मिलती रहती थी। धन की उनके पास कोई कमी न थी। दिल के उदार थे। पुस्तकों पर बे-दरेग पैसा व्यय करते थे। नित्य नई-नई पुस्तकें खरीदी जातीं। कुछ आद्यो-पान्त पढ़ ली जातीं और कुछ इधर-उधर पन्ने उलटाकर विहंगम दृष्टि से देख ली जातीं। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में उनके पास अपनी खरीदी हुई उत्तम पुस्तकों का अच्छा-खासा संग्रह हो गया। गुप्त जी ने एक लाइब्रेरियन नियुक्त कर इस संग्रह को निजी लाइब्रेरी का रूप दे दिया। इस लाइब्रेरी का प्रयोग परिवार के सदस्यों और गुप्त जी के इष्ट मित्रों तक ही सीमित था। सन् १९१७ में जब स्वामी दयानन्द तीर्थ गुप्त जी के पास आये तो यह लाइब्रेरी पर्याप्त विकसित हो चुकी थी। हिन्दी-अंग्रेजी की पुस्तकों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य की प्रत्येक विधा के मुख्य-मुख्य विषयों की प्रायः सभी 'स्टेण्डर्ड' किताबें वहाँ उपलब्ध थीं। स्वामी जी को गुप्त जी की संरक्षता से जो सबसे बड़ा और दूर-गामी लाभ पहुँचा, वह था इस लाइब्रेरी को बिना किसी रोक-टोक के अपनी रुचि और आवश्यकतानुसार प्रयोग करने की सुविधा प्राप्त होना। इसी सुविधा का ही परिणाम था कि स्वामी जी पाँच वर्ष के थोड़े-से काल में, जो उन्होंने गुप्त जी के यहाँ गुजारा, इतना विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सके। स्वामी जी जिस विषय को भी गुरुमुख से दिन में पढ़कर आते, रात को पाठ विचारते समय तत्सम्बन्धी सारे सहायक ग्रन्थों को, जो इस लाइब्रेरी में उपलब्ध होते अथवा अन्यत्र कहीं से प्राप्त किये जा सकते, लेकर पढ़ डालते, फलतः सम्पूर्ण विषय पूरी तरह मथा जाता और सारभूत तत्त्व भली प्रकार हृदयंगम हो जाता। गुप्त जी का लाइब्रेरियन को स्थायी आदेश था कि स्वामी जी को जिस पुस्तक की आवश्यकता हो, यदि वह लाइब्रेरी में है तो दे दी जाए, और यदि नहीं है तो खरीदकर अविलम्ब उन्हें उपलब्ध कराई जाए। यह भी गुप्त जी ने कह रखा

था कि यदि स्वामी जी लाइब्रेरी से पुस्तक लेकर लौटाना न चाहें, अपने प्रयोग के लिए स्थायी रूप में रखना चाहें तो उस पुस्तक की नई प्रति खरीदकर उन्हें दे दी जाए और लाइब्रेरी की प्रति उनसे लेकर यथास्थान रख दी जाए। कुछ समय व्यतीत होने पर गुप्त जी ने लाइब्रेरियन को यह संकेत भी दिया कि स्वामी जी यदि कोई पुस्तक माँगें और वह पुस्तक लाइब्रेरी में न हो तो उस पुस्तक की दो प्रतियाँ मोल लेकर एक स्वामी जी को अपने प्रयोग के लिए भेंट कर दी जाए और दूसरी लाइब्रेरी में रख दी जाए। स्वामी जी ने लगभग पाँच वर्ष तक गुप्त जी के यहाँ कयाम किया। इन पाँच वर्षों में जो-जो भी विषय उन्होंने गुरुमुख से पढ़े, तत्सम्बन्धी जितनी 'स्टैण्डर्ड' पुस्तकें उस समय मार्केट में उपलब्ध थीं वे सारी-की-सारी गुप्तजी द्वारा इस लाइब्रेरी के माध्यम से खरीदकर स्वामी जी को भेंट कर दी गईं।

इस प्रकार बाबू शिवप्रसाद गुप्त के यहाँ रहते हुए नई-नई पुस्तकों को खरीदकर पढ़ने की जो आदत स्वामी दयानन्द तीर्थ की बनी, वह आगे चलकर कम नहीं हुई, बढ़ती ही चली गई। स्वामी जी का स्वभाव ही बन गया था कि जो पुस्तक वह उपयोगी समझते, झट खरीद लेते और पढ़ना आरम्भ कर देते; छोड़ते तब जब सम्पूर्ण पढ़ ली जाती। प्रत्येक विषय को गहरी दृष्टि से अनुशीलन करने की जो प्रवृत्ति काशीवास के समय स्वामी जी में जागृत हुई वह आत्मसात् हो उनके जीवन का अंग बन गई। हमारे विचार में स्वामी जी ने जितनी पुस्तकें खरीदकर पढ़ीं, उतनी भारतवर्ष में किसी ने खरीदकर नहीं पढ़ी होंगी। ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं जिन्होंने स्वामी जी से अधिक पुस्तकें क्रीत की हों; यह भी सम्भव है कि कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने पुस्तकालय आदि से लेकर इतनी पुस्तकें पढ़ी हों जितनी स्वामी जी न पढ़ पाए हों, किन्तु स्वयं खरीदकर इतनी पुस्तकें पढ़ डालनेवाला और कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता। 'स्वामी जी सचमुच किताबों के कीड़े थे' यदि यह कहा जाए तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। जिन लोगों ने डिंगा* जिला गुजरात (पाकिस्तान), उपदेशक विद्यालय गुरुदत्त भवन

---

* स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ को पुस्तकें खरीदने और पढ़ने का ही शौक न था, वह खरीदी हुई पुस्तकों को अवश्य पढ़ते और फिर सम्भालकर भी रखते थे। सन् १९३४ में जब मैं स्वामी जी के चरणों में संस्कृत पढ़ने के लिए डिंगा जिला गुजरात (पाकिस्तान) में उपस्थित हुआ, उस समय उनके पास पुस्तकों का एक विशाल भण्डार मौजूद था। ये पुस्तकें विषयवार सम्भालकर छोटे-बड़े अठारह ट्रंकों में एक जुदा कमरे में रखी हुई थीं। उस कमरे में और कुछ न था, पुस्तकों के वे ट्रंक ही वहाँ पंक्तियों में जुदा-जुदा रखे हुए थे। प्रत्येक ट्रंक में पुस्तकें करीने से जचाई हुई थीं और हर ट्रंक में फिनाइल

(लाहौर), वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार), खेड़ा खुर्द (दिल्ली राज्य) में स्वामी जी की पुस्तकों के विशाल भण्डार देखे हैं—निस्सन्देह ये सब पुस्तकें स्वामी जी ने उपयोगी समझ स्वयं खरीदी थीं अथवा विशेष प्रयास कर हस्तगत की थीं और पढ़ी भी थीं—हमारी उपयुक्त धारणा की पुष्टि करेंगे।

गुरुकुल कांगड़ी से काशी पहुँचने के बाद दूसरे ही दिन स्वामी दयानन्द तीर्थ श्री पण्डित तिवाड़ी जी की पीठिका पर गये। वहाँ उस समय कौमुदी के उत्तरार्द्ध का पाठ चल रहा था। उन्होंने श्री तिवाड़ी जी को सिर झुकाकर प्रणाम किया और विद्यार्थियों की पंक्ति में जाकर बैठ गए। पाठ समाप्त होने पर श्री पण्डित तिवाड़ी जी ने उन्हें अपने पास बुलाया और कहने लगे—"स्वामिन्, प्रथमदृष्ट्या तुम्हें देखकर ऐसा लगा कि कषाय वेशधारी यह कोई पूर्वपरिचित-सा ही चेहरा है। बाद में मस्तिष्क पर तनिक जोर देने पर स्मरण हो आया, ओ हो, यह तो मेरा पुराना विद्यार्थी 'दयानन्द' ही है। कहो वत्स, कैसे हो?" स्वामी जी ने श्री पण्डित तिवाड़ी जी को दण्डी स्वामी जयानन्द तीर्थ से अपने कषाय वेश धारण करने का वृत्तान्त सुनाया और बताया कि गुरुवर्य ने संन्यास-दीक्षा देते समय मुझे दयानन्द तीर्थ नाम दिया है। "कैसे आना हुआ" यह पूछे जाने पर स्वामी जी ने उत्तर दिया—"आगे और व्याकरण पढ़ने की इच्छा लेकर श्रीचरणों में उपस्थित हुआ हूँ।" इस पर "अति शोभनम्" कहते हुए श्री पण्डित तिवाड़ी जी ने सहमति प्रकट की और सुझाव दिया कि—"हमारे यहाँ मध्याह्न में महाभाष्य का जो पाठ चलता है, उसे श्रवण करना तुम्हारे लिए ठीक रहेगा।" बातचीत के दौरान स्वामी जी के मुख से यह जानकर कि उनके रहने और खाने-पीने आदि की व्यवस्था बाबू शिवप्रसाद गुप्त के यहाँ है श्री पण्डित तिवाड़ी जी बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद स्वामीजी प्रतिदिन महाभाष्य का पाठ श्रवण करने

की गोलियाँ भी डाली हुई थीं ताकि पुस्तकों को कीड़ा न लगे। पढ़ाते समय अथवा लेख आदि लिखते समय सन्दर्भ आदि देखने के लिए जब किसी पुस्तक की आवश्यकता पड़ती तो उस कमरे की चाबी मुझे देकर स्वामी जी आदेश करते—"फलाँ पंक्ति में फलाँ नम्बर पर रखे ट्रंक के भीतर फलाँ-फलाँ कतार में फलाँ नम्बर पर रखी अमुक पुस्तक ले आओ।" यह ब्यौरा अचूक होता। मुझ जैसा अनभिज्ञ और अनभ्यस्त व्यक्ति भी इस ब्यौरे के निर्देशों पर चलता हुआ वांछित ग्रंथ ढूँढकर लाने में सफल रहता। इन पंक्तियों को यहाँ लिखने से मेरा आशय स्वामी जी की पुस्तकों के प्रति प्रतिबद्धता दर्शाना मात्र है। पुस्तकों के प्रति यह सौहार्द्र जिसने स्वामी जी के व्यक्तित्व और पाण्डित्य को भावी जीवन में चार चाँद लगाये, सचमुच बाबू शिवप्रसाद गुप्त की अबाध उदारता के कारण ही विकसित हो पाया।

के लिए श्री पण्डित तिवाड़ीजी की सेवा में उपस्थित होते रहे। स्मरण रहे कि उन दिनों सम्पूर्ण महाभाष्य पढ़ने का रिवाज न था। विद्यार्थिगण महाभाष्य के नवाह्निक भाग (आरम्भ के नौ आह्निकों) को ही पढ़ने में अभिरुचि रखते थे। इस कारण श्री पण्डित तिवाड़ी जी के यहाँ भी महाभाष्य का पारायण नवाह्निक-समाप्ति पर अवसित हो जाता था, आगे न चलता था। श्री पण्डित तिवाड़ी जी की पीठिका पर जब नवाह्निक-पारायण समाप्त हो गया तो स्वामी दयानन्द तीर्थ को जो सम्पूर्ण महाभाष्य पढ़ना चाहते थे, अवशिष्ट महाभाष्य पढ़ने के लिए श्री पण्डित हरिनारायण त्रिवेदी की सेवा में जाना पड़ा। श्री त्रिवेदी जी उन दिनों श्री अपारनाथ की पाठशाला में पढ़ाया करते थे।

दो वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द तीर्थ ब्रह्मचारी दयानन्द के रूप में पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय से न्याय, वैशेषिक और योग इन तीनों दर्शनों का अध्ययन कर चुके थे। सांख्यदर्शन और वेदान्तदर्शन को भी वह सहायक पुस्तकों के माध्यम से अच्छी प्रकार अवगाह चुके थे। मीमांसादर्शन का विषय अधिक विस्तृत और दुरूह होने के कारण अछूता रह गया था। अब पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय काशी में निवास न करते थे, इसलिए स्वामी जी को इन तीनों (सांख्य, वेदान्त और मीमांसा) दर्शनों का ज्ञान-उपार्जन करने के लिए अन्य पीठिकाओं की ओर उन्मुख होना पड़ा। सांख्यदर्शन का पारायण स्वामी जी ने सम्भवतः श्री पण्डित अम्बादास शास्त्री (महाराष्ट्रीय) के चरणों में बैठकर किया। हाँ, यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि वेदान्तदर्शन के गूढ़ रहस्यों का तात्त्विक ज्ञान उन्होंने काशी में उस समय के अनुपम विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित लक्ष्मणदत्त शास्त्री (दाक्षिणात्य द्रविड़) से उपार्जित किया। श्री पण्डित फणी-भूषण तर्कवागीश (बंगदेशीय) और श्री पण्डित अम्बादास शास्त्री (महाराष्ट्रीय) की पीठिकाओं में स्वामी जी नव्य न्याय के प्रवर्त्तमान पाठों को श्रवण करने के लिए जाया करते थे। स्वामी जी ने मीमांसा-दर्शन के गूढ़ रहस्य काशी में अपने समय के अद्वितीय मीमांसक श्री पण्डित चिन्न स्वामी शास्त्री(दाक्षिणात्य तामिल) के मुखारविन्द से पूरे तीन वर्ष लगाकर प्राप्त किये। साहित्य-शिरोमणि श्री पण्डित देवी प्रसाद शुक्ला संस्कृत साहित्य के काशी में अद्वितीय विद्वान् थे। उनके बुद्धि-वैभव के क्या कहने! एक ही श्लोक के अनेकों अर्थ कर वह बड़े-बड़ों को चकित कर देते थे। स्वामी जी ने संस्कृत साहित्य की शिक्षा (काव्य, नाटक, अलंकारादि के ग्रन्थों का विशेष अध्ययन) श्री शुक्ल जी के चरणों में बैठकर ही प्राप्त की। यहाँ यह बता देना भी अप्रासंगिक न होगा कि स्वामी जी को आर्य-जगत् में विद्या के स्रोत समझे जाने वाले श्री पण्डित काशीनाथ के चरणों में बैठ शास्त्राध्ययन करने का भी गौरव प्राप्त था।

स्वामी दयानन्द तीर्थ को विद्या-प्राप्ति की बड़ी चाह थी। वह जो विषय भी

पढ़ना आरम्भ करते बड़ी लगन और मेहनत से पढ़ते थे, कभी आलस्य न करते थे। "सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्। सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥" विदुरनीति की इस शिक्षा को उन्होंने पूरी तरह हृदयंगम किया हुआ था। वह पाठ आरम्भ होने से सदा पहले पहुँचते, कभी नागा न करते, न कभी देर ही होने देते; दत्तचित्त हो गुरुमुख से निकलती शब्द-श्रेणी को सुनते रहते, समझ न आने पर तत्काल निस्संकोच हो सारवान् शंका उठाते; जब तक शंका निवृत्त न हो जाती जिज्ञासा जारी रखते; समझ आने पर ही संतुष्ट हो मौन होते; अपने स्थान पर पहुँच पढ़ा हुआ पाठ अवश्य विचारते; विचारते समय उपलब्ध सहायक ग्रन्थों का अवलोकन भी करते; जहाँ संगति न बैठती उस स्थल को अगले दिन गुरुवर्य से पुनः समझने का प्रयत्न करते। स्वामी जी की स्मरणशक्ति अद्भुत थी, याद किये हुए मन्त्र, सूत्र, श्लोक, पंक्तियाँ आदि वर्षों तक स्मरण रहतीं, भूलती न थीं। सभी गुरुजन उनकी ऊहा से प्रसन्न हो उन द्वारा उठाई गई शंकाओं का उत्तर देते समय कभी झुँझलाते न थे, कारण यह कि उनकी शंकाएँ ऊलजलूल न होतीं, सार लिये हुए होतीं। स्वामी जी बड़ों के प्रति—विशेषकर अपने गुरुजनों के प्रति—बड़ा विनम्रभाव रखते। सभी गुरुजन उन-से अति प्रसन्न थे, उनके बुद्धि-कौशल और सद्व्यवहार की सब प्रशंसा करते। गुरुजनों के आशीर्वाद से स्वामी जी का अध्ययन सहजगति से सुविधापूर्वक निर्विघ्नतया अग्रसर होता गया। कहीं कोई विघ्न-बाधा उत्पन्न नहीं हुई।

स्वामी दयानन्द तीर्थ ने इस बार काशी में पाँच वर्ष तक कयाम किया। उन दिनों वह बहुत सवेरे उठते, शौच आदि से निवृत्त हो स्नान करते, तदनन्तर आसन जमा प्राणायाम करते और योगारूढ़ हो जाते; योगसाधना से निवृत्त हो थोड़ा-सा व्यायाम करते और निम्नलिखित पारायणों को एक-एक करके सम्पन्न करना आरम्भ कर देते—(क) वेद पारायण (मूल वेदों के क्रमशः कुछ-एक पन्नों को ऊँचे स्वर से नित्य-प्रति बाँचना), (ख) षड्दर्शन पारायण (छहों दर्शनों के क्रमशः कतिपय पन्नों का प्रतिदिन पाठ करना ताकि सूत्र कण्ठस्थ हो जायें), (ग) निघण्टु पारायण (महर्षि यास्ककृत निघण्टु के क्रमशः कतिपय पन्नों को ऊँचे स्वर से बाँचना,) (घ) वेदभाष्य पारायण (महर्षि दयानन्दकृत वेद-भाष्य के क्रमशः कुछ पन्नों का प्रतिदिन अध्ययन करना)। स्मरण रहे कि स्वामी जी इन पारायणों को बड़ा महत्त्व देते थे और इनके सम्पादन में कभी नागा न होने देते थे। उपर्युक्त पारायणों की समाप्ति के पश्चात् स्वामी जी प्रातराश कर (गाय का दूध पी) पूर्व-निश्चित कार्यक्रमानुसार विविध विद्यापीठों में प्रवर्तमान पाठों को श्रवण करने चले जाते। दोपहर को अपने स्थान पर आ वह भोजन करते और फिर कुछ समय के लिए विश्राम भी। विश्राम करने के बाद वह पुनः पूर्व-निश्चित कार्यक्रमानुसार कतिपय अन्य विद्यापीठों में प्रवर्तमान पाठों में सम्मिलित होने के

लिए चले जाते और सायं होने पर ही अपने स्थान पर लौटते; स्थान पर पहुँचने के कुछ समय बाद मुँह-हाथ धो वह संध्या करते और भोजनालय में भोजन करने के लिए चले जाते। भोजन के अनन्तर वह कुछ देर चहलकदमी करते और फिर दिन में पढ़े पाठों को विचारने लग जाते। ज्योंही दस बजते, वह गायत्री जाप में निमग्न हो जाते और निद्रा आने पर सो जाते। इस दैनिक कार्यक्रम के अतिरिक्त अनध्याय के दिन वह मनुस्मृति और उपनिषदों आदि का अनुशीलन करते।

हम पहले लिख आये हैं कि आर्यसमाजी विद्यार्थियों के लिए उन दिनों काशी का वातावरण अनुकूल न था। अहम्मन्य लकीर के फकीर सनातनी विद्वान् उन्हें पढ़ाने के लिए तैयार न होते थे। यदि सौभाग्यवश किसी पाठशाला में उनके अध्ययन का प्रबन्ध हो भी जाता तो उनके आवास, भोजनाच्छादन और पुस्तकों आदि की व्यवस्था करना दुष्कर होता था। क्षेत्रों के पोंगापन्थी प्रबन्धक अपने यहाँ उन्हें स्थान देने के लिए राजी न होते थे। न ही किसी प्रकार की आर्थिक सहायता ही कहीं से उन्हें मिल पाती थी। स्वामी दयानन्द तीर्थ स्वयं इन कठिनाइयों के भुक्तभोगी रह चुके थे। सर्वसुविधासम्पन्न विद्यार्थी-जीवन व्यतीत करते हुए अब वह अपने अन्य साथियों को इस विपन्न दशा में देख बड़े दुःखी होते। कुछ दिनों पश्चात् एक बड़ी आयु का सच्चरित आर्य विद्यार्थी ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द से उनका सहचर्य हो गया। ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द पण्डित विष्णुदत्त के सहारे विद्योपार्जन करने यहाँ आए थे। पण्डित विष्णुदत्त के काशी से बाहर चले जाने के बाद उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। जन्मना मुसलमान होने के कारण वह किसी भी क्षेत्र में स्थान न पा सके। इसी कारण उनका अध्ययन अस्त-व्यस्त होता रहा। ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द यद्यपि पढ़ाई में अधिक मेधावी सिद्ध न हुए किन्तु व्यवहारकुशल, दृढ़संकल्पी और साफ-सुथरी आदतों के होने के कारण स्वामी दयानन्द तीर्थ के स्नेहपात्र हो गए। कुछ ही दिनों में दोनों में खूब घनिष्टता हो गई। ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द के सुझाव पर स्वामी जी ने संस्कृत पढ़नेवाले आर्य विद्यार्थियों के लिए रहने और खाने-पीने की व्यवस्था करने का बीड़ा उठाया। बाबू शिवप्रसाद गुप्त और उनके परिचित जनों के सौजन्य से उन्होंने एक मकान किराये पर लिया और उसका "आर्य छात्रावास" नाम रख अपने सम्पर्क में आनेवाले जरूरतमन्द आर्यसमाजी विद्यार्थियों के आवास और भोजन की वहाँ व्यवस्था कर दी। इस आवास का आर्थिक बोझ स्वामी जी स्वयं वहन करते थे और प्रबन्ध की जिम्मेदारी ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द पर थी। दस विद्यार्थियों तक के रहने और खाने-पीने की व्यवस्था यहाँ की गई थी। कुछ समय के बाद ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द ने स्वामी जी से संन्यास-दीक्षा ले ली और स्वामी विज्ञानानन्द के रूप में 'आर्य छात्रावास' को अपनी देख-रेख में चलाते रहे। यह छात्रावास सन् १९२२ तक सुव्यवस्थित रूप से चलता रहा। तदनन्तर जब स्वामी दयानन्द तीर्थ, जो

उस समय तक स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ के नाम से मशहूर हो चुके थे, रावलपिण्डी चले गए तो यह छात्रावास भी बन्द हो गया। स्वामी अनन्तानन्द सरस्वती, स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती, पण्डित बुद्धदेव मीरपुरी, पण्डित प्रियरत्न आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि तीर्थ), श्री महेशप्रसाद मौलवी फाजिल तथा अन्य कई-एक आर्यसमाजी छात्र, जिन्होंने बड़े होकर आर्यसमाज की आयुभर सेवा की, समय-समय पर इस छात्रावास से लाभान्वित होते रहे।

अब की बार काशीवास के दौरान स्वामी दयानन्द तीर्थ स्थानीय आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में शामिल होने की तीव्र इच्छा रखते हुए भी बहुत कम अवसरों पर ऐसा कर पाये। कारण यह था कि रविवार, जिस दिन ये सत्संग सम्पन्न होते, उन्हें पाठ लेने के लिए विविध विद्यापीठों पर जाना होता था। पाठों में अनुपस्थित होना उन्हें अभीष्ट न था। अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्या तथा त्योहारों के रोज जब अनध्याय होता, वह प्राय: काशी के बाहर आर्यसमाजों के उत्सवादि कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए चले जाते। स्मरण रहे कि स्वामी जी ने वर्षों पहले ब्रह्मचारी दयानन्द के रूप में ही वैदिक धर्म के प्रचारार्थ व्याख्यान आदि देने आरम्भ कर दिये थे। उस समय उनके व्याख्यान साधारण होते, लोगों पर उनका अधिक प्रभाव न पड़ता। संन्यास ले लेने के पश्चात् उनकी वाणी में ओजस्विता का संचार हुआ और जगह-जगह से उन्हें व्याख्यान देने के लिए बुलाया जाने लगा। इस सम्बन्ध में आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ अपने संस्मरणों में लिखते हैं—"...काशी गए, वहीं अध्ययन करते रहे, अच्छा अध्ययन किया वहाँ दो-तीन वर्ष में; फिर धीरे-धीरे कार्य-क्षेत्र में उतरे, स्वाध्यायशील बड़े थे। उनको स्वाध्यायशीलता ने ही बनाया। पहले-पहले समाजों में जाते थे तो साधारणतया बोलते थे, फिर संन्यास-दीक्षा के पश्चात् न जाने कहाँ से उनकी वाचा फूटी कि धड़ाके से बोलने लगे और प्रभावशाली कथावाचक बने। इनके प्रवचन बड़े ही मनोहर होते थे। वक्ता भी बड़े ऊँचे तप के थे, शास्त्रार्थ की युक्ति ऐसी जानते थे कि आर्यसमाज का कोई पौराणिक विरोधी उनके सामने ठहर नहीं सकता था। कभी-कभी शास्त्रार्थ में बड़े कठोर रहते थे, किन्तु समाप्ति मधुरता से करते थे।"

काशी के आसपास वैदिक धर्म-प्रचारार्थ की गई यात्राओं से स्वामी दयानन्द तीर्थ की विद्या और वाग्मिता की चर्चा आर्यजगत् में सर्वत्र होने लगी। उन्हें अब दूर-दूर से व्याख्यान देने के लिए बुलाया जाने लगा। इन यात्राओं के दौरान स्वामी जी का कई-एक ऐसे सज्जनों से परिचय हुआ जिन्होंने अपने कार्य से भावी जीवन में आर्य-जगत् में खूब नाम कमाया। श्री महेशप्रसाद से उनका मेल एक ऐसी ही यात्रा के दौरान हुआ। श्री महेशप्रसाद उन दिनों मुसाफिर विद्यालय आगरा में पढ़ा करते थे। उनकी इच्छा थी कि वह भी काशी जाकर

संस्कृत पढ़ें। स्वामी जी ने उनका पथ-प्रदर्शन किया और सहायता करने का भी आश्वासन दिया। कुछ समय के बाद श्री महेशप्रसाद काशी आकर संस्कृत पढ़ने लगे। उनकी उर्दू, फारसी और अरबी में स्वाभाविक रुचि को देखते हुए स्वामी जी ने श्री महेशप्रसाद को परामर्श दिया कि वह अरबी भाषा का विद्वान् बनें और उसी माध्यम से आर्यसमाज की सेवा करें। स्वामी जी की यह बात श्री महेशप्रसाद के दिल में घर कर गई। उन्होंने बनारस में संस्कृत पढ़ते-पढ़ते अरबी का अध्ययन निजी तौर पर जारी रखा और कुछ समय के पश्चात् पंजाब विश्वविद्यालय से अरबी की सर्वोच्च परीक्षा 'मौलवी फाजिल' पर्याप्त ऊँचे अंक लेकर पास की। दैव योग से हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में कुछ समय के बाद अरबी के प्राध्यापक की एक आसामी रिक्त हुई। उपर्युक्त अर्हताओं से अलंकृत होने के कारण श्री महेशप्रसाद मौलवी फाजिल इस आसामी के लिए चुन लिये गये।

यह बताया जा चुका है कि मुलतान-वास के दौरान स्वामी दयानन्द तीर्थ ने अरबी जबान सीखना आरम्भ कर दिया था। श्री महेशप्रसाद के साहचर्य से उनके इस प्रयास को बल मिला और उन्होंने इस दिशा में और अधिक प्रगति की। भावी जीवन में स्वामी जी ने पहले रावलपिण्डी में रहते समय और बाद में लाहौर में उपदेशक विद्यालय के मुख्याध्यापक के रूप में अरबी साहित्य का—विशेषकर कुरान शरीफ* और हदीसों का—गहरा अनुशीलन किया था।

काशी में रहते हुए स्वामी दयानन्द तीर्थ ने बाइबल का स्वाध्याय भी आरम्भ कर दिया था। ऐसा जान पड़ता है कि अंग्रेजी बाइबल का अनुशीलन करते समय उन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया कि विवादास्पद स्थलों का मूल बाइबल में क्या रूप है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें अंग्रेजी अनुवाद में आये लेटिन और ग्रीक के मुहावरों के उद्गमों की खोज करनी पड़ी। इसी खोज के फलस्वरूप उन्हें फ्रेंच, लेटिन और ग्रीक भाषाओं का कार्यसाधक ज्ञान अपने-आप प्राप्त हो गया। इसी दिशा में और आगे खोज करने के विचार से कालान्तर में उन्होंने हिब्रू भाषा

---

* जिन लोगों ने सटिप्पण स्थूलाक्षर सत्यार्थप्रकाश में चौदहवें समुल्लास पर स्वामी जी द्वारा लिखी गई टिप्पणियों को गौर से पढ़ा है अथवा इसी प्रकाशन के प्रथम संस्करण की भूमिकारूप लिखे गए उनके प्रबन्ध 'कुछ टिप्पणी के विषय में' का अनुशीलन किया है, वे इस बात की पुष्टि करेंगे कि स्वामी जी अरबी साहित्य के अपने गहरे अनुशीलन के बल पर यह साबित करने में सफल रहे हैं कि—"अहले-इस्लाम ने सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशन के पश्चात् कुरान शरीफ की विवादास्पद आयतों की जो नई-नई 'तहवीलें' (अर्थपरिवर्तन) की हैं वे महर्षि द्वारा उठाये गए आक्षेपों से बचने के असफल प्रयास-मात्र ही हैं।"

जिसमें मूल बाइबल लिखी हुई है, भी सीखी।*

स्वामी दयानन्द तीर्थ एक दिन श्री पण्डित तिवाड़ी जी की पीठिका से सह-पाठियों के साथ अपने निवास-स्थान की ओर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने स्थान-स्थान पर बहुत बड़े-बड़े पोस्टर लगे देखे। इन पोस्टरों का शीर्षक था 'ज्योतिष का चमत्कार'। काशी के एक बहुत बड़े नामी राजज्योतिषी ने अपनी दुकान का 'प्रोपेगण्डा' करने के लिए ये पोस्टर लगवाये थे। देखने में पोस्टर बड़े भव्य थे और भाषा भी उनकी बड़ी हृदयस्पर्शी थी। स्वामी जी और उनके साथियों ने इन पोस्टरों को पढ़ा। स्वामी जी को फलित ज्योतिष पर विश्वास तो था ही नहीं। पता नहीं उनके मन में उस समय क्या आया, जेब से पेंसिल निकाल उन्होंने एक पोस्टर पर लिख दिया 'आज अपराह्न में ज्योतिषी जी को जेल होगी'। फिर क्या था! स्वामी जी के साथियों ने जो भी पोस्टर सामने आया ये ही शब्द उस पर लिखने आरम्भ कर दिये। इस प्रकार सैंकड़ों पोस्टरों पर यह भविष्यवाणी अनायास अंकित हो गई।

प्रभु की लीला देखिये! ज्योतिषी महोदय ने एक सज्जन की पत्री देख उसे बताया था कि तुम्हारे इस बार लड़का होगा। आसामी मोटी थी। पहले चार लड़कियाँ हो चुकी थीं। पति-पत्नी से पत्री-दिखाई के पाँच सौ रुपये ऐंठ लिये थे। हुई लड़की। निराश पिता ने चार सौ बीस का मुकद्दमा बना ज्योतिषी महोदय को गिरफ्तार करा दिया। अपराह्न में सचमुच ज्योतिषी महोदय गिरफ्तार हो हवालात के सींखचों के पीछे से झाँक रहे थे।

राजज्योतिषी की गिरफ्तारी की खबर आग की तरह सारे शहर में फैल गई। जब स्वामी जी को इस बात का पता लगा तो वह भी ज्योतिषी महोदय को देखने के लिए पुलिस स्टेशन पर पहुँचे। हवालात के सींखचों में से झाँकते हुए ज्योतिषी से उन्होंने पूछा—"भैया, औरों का भविष्य देखते-देखते अपना भविष्य देखना भूल गये? तनिक अपने पोस्टरों पर लिखी हमारी भविष्यवाणी ही यदि पढ़ ली होती तो कम-से-कम इस जिल्लत से तो बच जाते? कल की प्रभु जाने!"

गिरफ्तारी से पहले ज्योतिषी महोदय को पता लग गया था कि स्वामी जी और उनके साथियों ने उसके पोस्टरों पर जो लिखा था वह सच साबित होने जा रहा है। वह ज्योतिषी भी स्वामी जी को जानता था। लज्जित होते हुए उसने

* सटिप्पण स्थूलाक्षर सत्यार्थप्रकाश में तेरहवें समुल्लास पर स्वामी जी द्वारा लिखी गई टिप्पणियों को पढ़कर अथवा इसी प्रकाशन के प्रथम संस्करण में छपे उनके प्रबन्ध 'कुछ टिप्पणी के विषय में' का अनुशीलन कर पाठकगण उनके बाइबल-सम्बन्धी गहरे अनुशीलन और गम्भीर गवेषणा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते।

स्वामी जी की बात का उत्तर तो क्या देना था, आँख उठाकर उनकी ओर देखने का साहस भी न कर सका।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सन् १९१९ में सारे देश में इनफ्लुएंजा फूट निकला। बनारस के लोग भी इसके प्रकोप से अतिपीड़ित हुए। कोई घर ऐसा न था जहाँ दो-चार व्यक्ति इस रोग से आक्रान्त न थे। अपने बन्धु-बान्धवों से बहुत दूर आकर संस्कृत अध्ययन करनेवाले निराश्रितप्राय विद्यार्थियों पर इसकी मार अधिक थी। स्वामी दयानन्द तीर्थ ने 'आर्य छात्रावास' के अपने साथियों को साथ लेकर लोगों की इस महामारी में खूब सेवा की। कलकत्ते के एक कैमिस्ट का 'इनफ्लुएंजा मिक्स्चर' इस रोग की अचूक औषध सिद्ध हुआ। उस मिक्स्चर का हिन्दू विश्वविद्यालय के एक रसायन-शास्त्री ने विश्लेषण कर पता लगाया कि इसमें कौन-कौन-सी ओषधियाँ और रसायन पड़ते हैं। फिर उस कलकतिया कैमिस्ट की अनुमति लेकर बनारस में ही इस मिक्स्चर का प्रचुर मात्रा में उत्पादन करा रोगियों के लाभार्थ इसे घर-घर मुफ्त बँटवाया गया। स्वामी दयानन्द तीर्थ ने इस कार्य में खूब पुरुषार्थ प्रदर्शित किया।

इस प्रकार स्वामी जी जब बनारस में इनफ्लुएंजा-पीड़ितों की सेवा में लगे हुए थे तो एक दिन अचानक उन्हें खबर मिली कि गुरुकुल चोहा भक्तां जिला रावलपिण्डी (पाकिस्तान) के विद्यार्थी भी अपने आचार्य पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय की देख-रेख में आसपास के मुस्लिमबहुल ग्रामों में इनफ्लुएंजा-पीड़ितों की बड़ी सतर्कता से देखभाल कर रहे हैं जिससे आर्यसमाज गैरों की नजरों में बड़ा लोकप्रिय होता जा रहा है। इसके पश्चात् कतिपय दिनों के अन्तर से स्वामी जी को गुरुकुल चोहा भक्तां से एक पुराने सहयोगी का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि आसपास के देहात में इनफ्लुएंजा का प्रकोप कम हो गया है, किन्तु लोगों की सेवा करते-करते गुरुकुल के अध्यापकगण और सारे-के-सारे विद्यार्थी इस रोग से ग्रसे गए हैं; हालत इतनी खराब है कि रोगियों को पानी देने के लिए भी कोई स्वस्थ व्यक्ति यहाँ नहीं है। स्मरण रहे कि सन् १९१६ में संन्यास-दीक्षा लेने से पहले स्वामी जी ब्रह्मचारी दयानन्द के रूप में आचार्य पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय के बुलाने पर कुछ दिनों के लिए इस गुरुकुल में कार्यरत रह चुके थे। उन दिनों उनका वहाँ के कतिपय अध्यापकों और विद्यार्थियों से सौहार्द्र हो गया था। इस पत्र को पढ़कर पुराने सम्बन्धों को स्मरण करते हुए स्वामी जी ने तत्काल गुरुकुल जाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन कलकत्ता मेल में चौबीस घण्टे का सफर तय करके स्वामी दयानन्द तीर्थ सीधे गुज्जरखाँ स्टेशन पर जा उतरे। गुज्जरखाँ से मोटरलारी द्वारा कल्लर होते हुए तीसरे दिन दोपहर को वह चोहा भक्तां ग्राम पहुँच गये। वहाँ भक्त शिवदर्शन के घर भोजन कर कुछ देर आराम करने के बाद वह पैदल

गुरुकुल के लिए रवाना हो गए और रात पड़ने से पहले वहाँ पहुँच गये।

स्वामी दयानन्द तीर्थ को अचानक अपने मध्य में पा गुरुकुलवासी चकित हुए। आचार्य पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय अपने पुराने शिष्य को इस विपत्ति के समय अपनी सेवा में आया हुआ देख बड़े प्रसन्न हुए। स्वामी जी ने रोगाक्रान्त गुरुकुलवासियों की सेवा करने में कोई कसर उठा न रखी। दिन-रात जाग, दौड़-धूप कर सबकी देखभाल करते रहे। पूरा एक मास सेवा-सुश्रूषा और दवा-दारू करने के बाद जब सब गुरुजन और विद्यार्थी स्वास्थ्य-लाभ पा चुके तो रोग ने स्वामी जी को आ घेरा। एक सप्ताह रोग-शैया पर बलात् विश्राम कर इनफ्लुएंजा से मुक्त हो स्वामी जी ने आचार्य पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय से बनारस लौट जाने की अनुमति माँगी। आचार्य जी ने भी यह जानकर कि स्वामी जी की काशी में बाबू शिवप्रसाद गुप्त के यहाँ अधिक अच्छी देखभाल हो सकेगी उन्हें आशीर्वाद दे लौट जाने की अनुमति प्रदान की। (क्रमशः)

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली

इतिहासवेत्ता प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा संकलित व सम्पादित

प्रथम भाग : तपोनिधि महात्मा हंसराज और उनका युग

द्वितीय भाग : अमृत कलश

तृतीय भाग : अमृत वर्षा

चतुर्थ भाग : वेदामृत

८०० से अधिक पृष्ठ मूल्य २४०-००

आचार्य उदयवीर शास्त्री लिखते हैं—त्यागी, तपस्वी, धीर गम्भीर, स्थिरमति, दूरदर्शी, एषणाविहीन-आत्मा, महात्माजी जैसा चरितनायक और 'जिज्ञासु' जैसा कर्मठ चौमुखी जानकार लेखक यह मानो सोने में सुहागा की स्थिति बन गई है।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती लिखते हैं—यह साधु प्रवृत्ति का हंसराज आज यदि किसी विदेश में होता तो उसके एक-एक वाक्य को सम्भालकर रखने वाले साहित्यिकों की कमी न होती। राजेन्द्र जिज्ञासु का मैं आभार मानता हूँ जिनके प्रयास से चार खण्डों में हंसराज जी की जीवनी व वाणी जो कुछ हम सुरक्षित कर पाये, अब जनता को भेंट कर पाये हैं।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
निया में रहना किस तरह	७.००
नव-जीवन-गाथा	६.००
ु-भक्ति	५.००
हामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	५०.००
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	प्रेस में
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	१.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका	४.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००

घर का वैद्य
लेखक : सुनील शर्मा

प्याज	३.५०
लहसुन	३.५०
गन्ना	३.५०
नीम	३.५०
सिरस	३.५०
तुलसी	३.५०
आँवला	३.५०
नींबू	३.५०
पीपल	३.५०
आक	३.५०
गाजर	३.५०
मूली	३.५०
अदरक	३.५०
हल्दी	३.५०
बरगद	३.५०
दूध-घी	३.५०
दही-मट्ठा	३.५०
हींग	३.५०
नमक	३.५०
बेल	३.५०
अनाज	३.५०
साग सब्जी	३.५०
फिटकरी	३.५०
शहद	३.५०

बाल साहित्य

बाल शिक्षा दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	२.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	२.५०
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	०.७५
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	२.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	२.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	२.५०
नतिक शिक्षा	सप्तम	२.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम	२.५०
नैतिक शिक्षा	नवम	३.००
नैतिक शिक्षा	दशम	३.००

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत)	६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

डॉ० मनोहरलाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००

डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

श्रीकृष्ण चरित २५.००
श्याम जी कृष्ण वर्मा २४.००
आर्यसमाज विषयक
साहित्य परिचय २५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली
(सम्पादित) ग्यारह खण्ड ६६०.००

By Swami Satya Prakash Sarasvati

Founders of Sciences in Ancient India
Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India
Two Volumes 600.00
Critical Study of Brahmagupta and his works 350.00
Geomatry in Ancient India 350.00
God and His Divine Love 5.00

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली
चार खण्ड २४०.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश ३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००
सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा ५०.००
मैं ब्रह्म हूँ ४.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा ६.००
ईशोपनिषद् ४.५०

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय ६.००

प्रो० विष्णदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की
साधना व संघर्ष ६.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

महकते फूल १०.००
ईश्वर का स्वरूप १५.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य २.५०
प्राणायाम विधि २.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप ५.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ३५.००
संध्या विनय ८.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा ३५.००

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महाबली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	५.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	५.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह (पुरस्कृत)	६.००
ज्ञान की कहानियाँ (पुरस्कृत)	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेट मार्डन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
शरणागत की रक्षा (वेदों ,,)	६.००
कीर्ति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणों की कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइबल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रंथों ,,)	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेड़ों वाली	८.००
राजा-रानी की कहानी	८.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

हास्य-व्यंग्य

माडर्न शादी	३.००
हँसो हँसाओ	५.००
हास परिहास	५.००

भक्त बालक	६.००
पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हम सब राम-रहीम के बेटे	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	६.००
ऋतुगीत	६.००
सफलता की राह	५.००
उन्नति की राह	५.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें	६.००
अवसर को पहचानो	६.००
अपने आपको पहचानिये	६.००
आप सफल कैसे हों	६.००
उन्नति कैसे करें	६.००
धन कुबेर कैसे बनें	६.००

स्वास्थ्य और योग

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	६.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशु पालन	१२.००
हृदय-रोग कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

ईश्वर के मित्र को दुःख कहाँ

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यमाविथ ।। सामवेद १०८ ।।

पदार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन् ! वा भौतिक ! (त्वं, यस्य, सख्यम्,) आविथ) तू जिसकी अनुकूलता को प्राप्त होता है (सः) वह (तव) तेरी (वाजकर्मभिः) बलकारिणी (सुवीराभिः) सुन्दर वीर्यवती (ऊतिभिः) रक्षाओं से (प्र तरति) पार हो जाता है ।

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के मित्र हैं वे उसकी ओर से हुई वलवती, पराक्रम और पुरुषार्थवती रक्षाओं में सर्व दुःखों से पार हो जाते हैं ! उन्हें आत्मिक बल की सहायता मिलती है । और जो लोग अग्नि के मित्र हैं अर्थात् अनुकूल सेवी हैं वे भी [दुःखों से पार हो जाते हैं] ।

उसको हृदय में सींचो

आ व इन्द्र क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ।। सामवेद २१४ ।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर (वः) तुममें (शतक्रतुम्) अनन्त कर्मवाले (मंहिष्ठम्) अत्यन्त पूजनीय (इन्द्रम्) अपने आत्मा को (आसिञ्चे) सींचता हूँ । दृष्टान्त (यथा) जैसे (वाजयन्तः) अन्न की उत्पत्ति चाहनेवाले लोग (इन्दुभिः) जलों से (क्रिविम्) खेती को सींचते हैं तद्वत् ।

भावार्थः—जैसे अन्न-रस आदि देह-पुष्टि के लिए कृषक लोग खेत को जल से सींचते हैं, उसी प्रकार आत्मा की पुष्टि के लिए पूजनीय, अनन्त ज्ञान वा कर्म वाले परमात्मा से हमको हृदय सींचने चाहिएँ । इसलिए परमात्मा ने मनुष्य के हृदय को आत्मज्ञान का खेत बनाया है ।

।। ओ३म् ।।

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक ११] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [जून १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

गणित के जादू, चमत्कार व मनोरंजन

लेखक—**शिवपूजन कुशवाह**

गणित-विद्या आर्यावर्त्त की एक प्राचीन विद्या है। इसकी चर्चा वेदों में भी है।[1] यह एक कठिन विद्या है। बहुत-से छात्र गणित के कारण परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। यहाँ गणित के मनोरंजन, जादू आदि कुछ ऐसी पद्धतियाँ लिखी जाती हैं जिनसे मित्रों में मनोरंजन हो सकता है। इससे पूर्व मैंने 'जादू विद्या-रहस्य' में जादू के ३०० विभिन्न खेल, 'अद्‌भुत वैज्ञानिक जादू-कौशल में भौतिक विज्ञान के जादू व खेल और मनोवैज्ञानिक जादू-विद्या के चमत्कार' में सम्मोहन (मेस्मरेज्म), संवशीकरण (हिप्नॉटिज्म) व भूत-प्रेतों का विवेचन किया है। पाठकों ने इन पुस्तकों के अध्ययन में विशेष रुचि प्रदर्शित की है।

गणित की संख्या ९ का चमत्कार

(१) गणित में अंक ९ अद्‌भुत व चमत्कारक है। यह अंक लोगों को आश्चर्य में डाल देता है। किसी से कहो कि वह १० से ऊपर और १०० के नीचे कोई भी अंक मन में सोच ले और उन दोनों अंकों को जोड़कर ली हुई संख्या में से कम कर दे। यदि वह एक ओर का अंक बतलाता है तो आप दूसरी ओर का अंक बता सकते हैं।

उदाहरण—किसी ने ८५ लिया तो ८+५=१३ हुआ। ८५—१३=७२।

---

१. मासिक पत्रिका "वेदवाणी" वाराणसी, वर्ष ११, कार्तिक-मार्गशीर्ष, २०१५ वि० अंक १-२, पृष्ठ ७५ से ८२ तक में प्रकाशित मेरा 'वेदों में गणित विद्या' शीर्षक लेख।— लेखक

यदि वह दो कहता है तो आप ७ बता दें और ७ कहता है तो आप २ बता दें।

रहस्य—जो वह अंक बतावे उसे सदैव ९ में से कम कर दें तो दूसरी ओर का अंक ज्ञात हो जायेगा।

(२) १ से लेकर ९ तक अंक लो पर ८ छोड़ दो और उन्हें ९ से गुणा कर दो तो गुणनफल केवल एक-एक ही आयेगा। यथा—

```
१२३४५६७९
       ९
---------
१११११११११
```

(३) ९ से २ तक गिनती लिखकर ९ से गुणा करो तो गुणनफल केवल आठ-आठ ही आएगा। यथा—

```
 ९८७६५४३२
        ९
---------
८८८८८८८८८
```

(४) १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ किसी अंक की एक लम्बी पंक्ति बनानी हो तो ८ को छोड़कर उसमें उसी अंक का गुणा करो, जो आप संख्या चाहते हों। गुणनफल को ९ से गुणा करने पर आपकी इच्छानुसार उसी अंक की एक लम्बी पंक्ति बन जाएगी। यथा—

आप ६ भी पंक्ति चाहते हों तो—

```
१२३४५६७९            ७४०७४०७४
       ६                    ९
---------           ---------
७४०७४०७४            ६६६६६६६६६
```

(५) ९ की संख्या को किसी भी संख्या से गुणा किया जाए तो गुणनफल की संख्या के सब अंकों को जोड़ने से योग ९ ही होगा। यथा—

१५×९=१३५ हुआ। इसका जोड़ १+३+५=९ हुआ।

(६) यदि किसी बड़ी संख्या को ९ से गुणा किया जायेगा तो गुणनफल जो भी होगा वह ९ से सदैव बराबर कट जानेवाला होगा और गुणनफल का जोड़ भी ९ से कट जाएगा और उसका भी जोड़ ९ होगा। यथा—

५२१ की संख्या लो। ५२१×९=४६८९

इस संख्या का योग ४+६+८+९=२७ हुआ

यह भी २+७=९ ही हुआ।

(७) नौ की संख्या की यह विलक्षणता है कि उसके माध्यम से अनेक चमत्कारी गणित निकल आते हैं। आप किसी संख्या को ९ से कटनेवाले गुणक

से गुणा कर लीजिए और पुनः देखिए कि गुणनफल भी नौ से कटनेवाला ही होगा। यथा—

```
        ५६७८४३२
          ×३२४
  ─────────────
  १८३६८११९६८=५४=९
```

(८) हिन्दी या संस्कृत की वर्णमाला में दो भेद होते हैं—एक स्वर, दूसरा व्यंजन। 'अ' से 'अः' तक १२ अक्षर एवं 'क' से 'ह' तक ३३ व्यंजन बनते हैं। ये दोनों मिलकर ४५ हुए, जो ४+५=९ बनते हैं।

(९) ९ के अंक की 'ब्रह्म' के साथ समानता पर विचार कीजिए। 'ब्रह्म' में चार अक्षरों की समन्वय है--व=२३ (तेइसवाँ व्यंजन), र=२७, ह=३३, म=२५; इन चारों अक्षरों के अंकों का जोड़ १०८ होता है। मध्य का शून्य रिक्त समझकर १ और ८ दोनों अंकों को जोड़ने से ९ ही बनता है।

(१०) भगवान् की भक्ति नौ प्रकार की प्रसिद्ध है—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्य मात्मनिवेदनम्॥"

—श्रीमद्भागवत ७।५।२३

अर्थात्—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन।

(११) यज्ञोपवीत में ९ तन्तु होते हैं।

(१२) ग्रह नौ होते हैं—सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु व केतु।

(१३) रत्न नौ होते हैं—मोती, माणिक, वैदूर्य, गोमेद, हीरा, मूंगा, पद्म-राग, पन्ना, नीलम।

(१४) राजा विक्रमादित्य की सभा में नौ रत्न थे—धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वैतालभट्ट, घटखपर, कालिदास, वाराहमिहिर और वररुचि।

(१५) ब्राह्मण के नौ गुण—"शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्"। (गीता १८/५२)

(१६) मनुष्य को दिन व रात्रि में २१६०० श्वास आते-जाते हैं, यह भी २+१+६=९ का ही अंक बनता है।

(१७) महाभारत के १८ पर्व, गीता के १८ अध्याय, महाभारत का युद्ध १८ दिन होना, व्यास जी का १८ पुराणों की रचना तथा १८ ही उपपुराणों का उद्भव—ये सब कार्य नौ के ही महत्त्वसूचक हैं, क्योंकि सभी १+८=९ ही होते हैं।

(१८) नौ के पहाड़े को लिखते जाइए, वह कभी भी नौ से कम नहीं होगा।

यथा—नौ के दुगुने से प्रारम्भ किया तो १८ हुआ। इन दोनों का जोड़ १+८=९ हो गए। ९×३=२७, यह भी २+७=९ हुआ।

९=९

१८=१+८=९

२७=२+७=९

३६=३+६=९

४५=४+५=९

५४=५+४=९

६३=६+३=९

७२=७+२=९

८१=८+१=९

९०=९+०=९

नौ की इस विचित्रता पर मुग्ध होकर गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

"तुलसी राम सनेह करु, त्यागि सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नव, नव के लिखत पहार॥" —तुलसी सतसई

अर्थात्—तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार नौ का पहाड़ा लिखने से अंक नौ नहीं घटता है उसी प्रकार समस्त धर्मानुष्ठान छोड़कर राम से स्नेह करो।

सन्त तुलसीदास वैष्णव सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैतवादी थे और 'राम' को वे विष्णु का अवतार मानकर ही इस प्रकार कहते हैं। ऐसे राम तो सम्राट् दशरथ के सुपुत्र, एक राजकुमार और मर्यादा पुरुषोत्तम थे।

पुनः **"तुलसी अपने राम को भजन करौ निःसंक।**
आदि अंत निरवाहिए जैसे नव का अंक।"

(१९) आठ समान अंक के लिए गुण्य और गुणक संख्याएँ—

१३८३७×८०३

गुणक संख्या को, जो अंक प्राप्त करना हो, उससे गुणा करके गुण्य संख्या से गुणा कीजिए, जो अंक आप चाहते हैं वही अंक प्राप्त हो जाएगा। उदाहरण के लिए आठ के आठ समान अंक प्राप्त करने हैं तो संख्या है—

१३८३७

और इसे ८०३×८=६४२४—इस गुणक से गुणा करने पर सात के आठ समान अंक प्राप्त होंगे—

```
 १३८३७
  ६४२४
─────────
८८८,८८८,८८
```

(२०) आठ की भाँति छः समान अंक भी निकाले जा सकते हैं। इसी क्रम

से उसमें भी निश्चित संख्याओं को गुणक संख्या तैयार करके गुणा करने पर समान अंक आ जाते हैं।

छः समान अंकों के लिए गुण्य व गुणक संख्या—

१४४३×७७

और इसे ७७×६=४६२ इस गुणक से गुणा करने पर सात के छः समान अंक प्राप्त होंगे—

$$\begin{array}{r} १४४३ \\ ४६२ \\ \hline ६६,६६,६६ \end{array}$$

(२१) १४२८५७ एक संख्या है, इसे ३ से गुणा करना है तो १४२८५७ में से १ मिटाकर ७ के आगे लिख दो, बस ३ का गुणा हो गया। उत्तर आया ४२८५७१।

(२२) यदि किसी की कार की संख्या ३०२५ हो तो इसमें दो खण्ड कर लें, ३० और २५। इन दोनों का योगफल ५५ हुआ।

५५ का वर्ग अर्थात् ५५×५५=३०२५ उत्तर आ जाएगा।

(२३) १ से ९ तक गिनती लिखो। प्रथम तथा अन्तिम अंक के अतिरिक्त प्रत्येक अंक दो बार लिखो। अब दो-दो अंकों की अलग-अलग संख्याएँ लिखकर प्रत्येक संख्या में ९ जोड़ दो तो उसके अंक उलट जाएँगे। यदि उलटी हुई संख्याओं में से ९ घटाकर एक साथ लिख दिया जाए तो वही पुरानी संख्या बन जायेगी। यथा—

१२२३३४४५५६६७७८८९

$$\begin{array}{rrrrrrrr} १२ & २३ & ३४ & ४५ & ५६ & ६७ & ७८ & ८९ \\ ९ & ९ & ९ & ९ & ९ & ९ & ९ & ९ \\ \hline २१ & ३२ & ४३ & ५४ & ६५ & ७६ & ८७ & ९८ \end{array}$$

अब उलटी हुई संख्याओं में से ९ घटाकर एकसाथ लिख दें तो पुरानी संख्या बन जायेगी—

$$\begin{array}{rrrrrrrr} २१ & ३२ & ४३ & ५४ & ६५ & ७६ & ८७ & ९८ \\ ९ & ९ & ९ & ९ & ९ & ९ & ९ & ९ \\ \hline १२ & २३ & ३४ & ४५ & ५६ & ६७ & ७८ & ८९ \end{array}$$

इन छोटी संख्याओं को एक साथ लिखो—

१२२३३४४५५६६७७८८९

(२४) **सोची हुई संख्या बतलाना**—किसी से कोई संख्या मन में सोचने के लिए कहो। उसमें दो से गुणा करके ४ जोड़ दो, उसे ५ से गुणा करो। इस गुणनफल में १२ जोड़ दो और सम्पूर्ण योग को १० से गुणा कर दो। कुल योग

में से ३२० कम कर दो। अन्त में संख्या लेनेवाले से पूछो कि कुल कितना उत्तर आया। वह जितना बतावे उसमें अन्त के दो अंक हटा दो तो मन में ली हुई संख्या होगी। यथा—

ली हुई संख्या ८ है। दुगुना करने पर=१६, ४ जोड़ने पर २०, ५ से गुणा करने पर=१००, १२ जोड़ने पर=११२, १० से गुणा करने पर=११२०, ३२० कम करने पर=८००, अन्तिम दो शून्य हटाने पर ली हुई संख्या ८ बता दो।

(२५) **मन की संख्या बतलाना**—किसी से कहो कि मन में कोई संख्या सोचो, उसे दुगुना करो। गुणनफल के ३ जोड़ दो, जोड़ को १० से गुणा करो। गुणनफल में ७ जोड़ दो, जोड़ को ५ से गुणा करो। गुणनफल में से १८५ घटाकर शेष को १०० से भाग दो तो भजनफल मन में ली हुई संख्या होगी।

उदाहरण—किसी ने मन में ३ सोचा, २ से गुणा=६, ३ जोड़ो=९, १० से गुणा=९०, ७ जोड़ो=९७, ५ से गुणा करो=४८५, १८५ घटा दो=३००, १०० से भाग दो=भजनफल ३ होगा। यही ३ मन में ली हुई संख्या है।

(२६) किसी से १० से कम दो संख्याएँ सोचने को कहो। किसी एक संख्या को ५ से गुणा करे। गुणनफल में ९ जोड़ दे। जोड़ को दो से गुणा करे। गुणनफल में सोची हुई संख्या में दूसरी संख्या जोड़ दो, फिर उत्तर बतलाने के लिए कहो। उत्तर से घटाकर शेष संख्या के दोनों अंकों को बतला दो। यह सोची हुई संख्या होगी।

उदाहरण—सोची हुई संख्या ३२ है। एक संख्या को ५ से गुणा=(३×५)=१५
९ जोड़ दो=२४, २ से गुणा करो=४८
सोची हुई दूसरी संख्या २ जोड़ दो=५०
इसमें से १८ कम करो=३२; यही ३२ सोची हुई संख्या है।

(२७) **अंक ३७ का जादू**—३ का पहाड़ा लिखो और जब ३७ से गुणा करोगे तो अंकों की एक प्रकार की क्रमशः पंक्ति बनेगी।

उदाहरण—	३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७
	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७
	१११	२२२	३३३	४४४	५५५	६६६	७७७	८८८	९९९

(२८) ३ के पहाड़े को ३७ के गुणनफल के एक प्रकार के अंकों को जोड़ दो, पुनः ३ का पहाड़ा हो जाएगा।

उदाहरण—	१११	२२२	३३३	४४४	५५५	६६६	७७७	८८८	९९९
	३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७

(२९) **गुणनफल को सही देखने का काँटा**—

जिन अंकों से और जिससे गुणा करना है तथा जो गुणनफल आवे, उनको जोड़ते जाओ। जोड़ यदि ९ आवे तो ० हो जाएगा और ९ से जो अधिक हो तो ९

में से घटाकर काँटे पर लिख दो। आमने-सामने के अंकों को गुणा करके ९ से अधिक हो तो ९ से भाग दो और शेष अंक को लिख दो। यदि ९ हो तो ० लिख दो। अब उसी प्रकार गुणनफल के अंकों का जोड़कर काँटे की दाहिनी ओर लिख दो। यदि वाम व दक्षिण के ओर के अंक समान हों तो गुणनफल सही है। यदि विषम हो तो अशुद्ध है।

उदाहरण—

```
    ५६७८
      ८६
  ------
   ३४०६८
  ४५४२४
  ------
  ४८८३०८ सही है।
```

```
        ८
    ४       ४
काँटा
        ५
```

५+६=११−९=२, २+७=९=०=शेष ८ हुआ।

८+६=१४—९=५। अब ८×५=४०÷९=४ शेष रहा। वाम और ४ लिखो। पुनः गुणनफल में

४+८=१२—९=३; ३+८=११—९=२; २+३=५

५+०+८=१३—९=४। अब दक्षिण ओर ४ आया।

इस प्रकार गुणनफल नितान्त सही है। चाहे किसी प्रकार का गुणा हो इसी प्रकार से जाँच किया जाएगा।

(३०) किसी से १० से कम तीन संख्याएँ सोचने को कहो। वह किसी एक संख्या को दो से गुणा करे, गुणनफल में ३ जोड़ दे, जोड़ को ५ से गुणा करे। गुणनफल में दूसरी संख्या जोड़ दे। जोड़ को दो से गुणा करे। गुणनफल में ३ जोड़ दे। जोड़ को ५ से गुणा करे। गुणनफल में तीसरी संख्या जोड़ दे और जोड़ बतलावे। उत्तर से १६५ घटाने पर शेष संख्या तीनों सोची गई संख्याएँ होंगी।

उदाहरण—सोची हुई संख्या—३४५

एक संख्या में २ से गुणा=(३×२)=६

३ जोड़ दो=९, ५ से गुणा करो=४५

इसमें दूसरी संख्या जोड़ दो=(४५+४)=४९

२ से गुणा करो=९८, ३ जोड़ दो=१०१

५ से गुणा करो=५०५

तीसरी संख्या जोड़ो=(५०५+५)=५१०

१६५ घटाओ=३४५

यही ३४५ मन में ली हुई संख्या है।

(३१) ३५६७८५४×९९९९ से गुणा करो।

इसमें ९ चार बार आया है। इसलिए दी हुई संख्या के आए चार शून्य लिख-कर उसके नीचे दी हुई संख्या इस प्रकार लिखकर घटा दो कि संख्या का अन्तिम अन्तिम अंक (अर्थात् दाहिनी ओर का अन्तिम अंक) अन्तिम शून्य के नीचे हो। जो उत्तर आएगा वही गुणनफल होगा।

उदाहरण—दी हुई संख्या=३५६७८५४

इसके आगे चार शून्य लिखने पर=३५६७८५४००००

दी हुई संख्या को ऊपरवाली संख्या के नीचे—

=३५६७८५४००००

३५६७८५४ लिखकर घटाओ

३५६७४९७२१४६ गुणनफल

इसकी जाँच

३५६७८५४
९९९९
३२११०६८६
३२११०६८६
३२११०६८६
३२११०६८६
३५६७४९७२१४६

(३२) किसी से कुछ संख्या लिखने के लिए कहो और उसे बड़ी संख्या में छोटी संख्या को घटा देने के लिए कहो। यदि वह उत्तर में कोई अंक छिपाता है तो बतला दो।

उदाहरण— ८९५७६३

इनमें छोटी संख्या ३५६७८९

५३८९७४

इसमें किसी ने ७ छिपा लिया तो आप ७ बता सकते हैं।

नियम—जितना उत्तर है उसमें ७ छिपाने पर ५३८९४ हैं। इन अंकों को अंकों को जोड़ लो तो २९ होता है। यदि यह ९ से भाग देने से विभाजित हो जाता तो छिपाया हुआ अंक शून्य होता; पर वह विभाजित नहीं होता है तो २९ में कम-से-कम कौन-सा अंक जोड़ा जाय कि संख्या के अंकों का योगफल ९ में पूरा विभा-जित हो जाय।

२९+७=३६ इसमें ९ से भाग देने से पूरा-पूरा विभाजित हो जाता है। अतः छिपाई हुई संख्या ७ है।

(३३) किसी से मन में कोई संख्या सोचने के लिए कहो। उसमें दो से गुणा करे, उसमें १० जोड़कर उसका आधा कर दे और मन में सोची हुई संख्या को कम कर दे तो सदैव ५ ही शेष रहेगा।

उदाहरण—सोची हुई संख्या १५, २ से गुणा=३०

१० जोड़ो=४०, आधा करो=२०

सोची हुई संख्या कम करो २०—१५=५

(३४) बारह के आधे ७ हुए।

बारह को आधा करने से ६ होता है, ७ लाने की रीति यह है—

रोमन में XII लिखें। मध्य में से इसे काट दें या दो हिस्से कर दें तो XII बचेगा।

(३५) बारह में से तीन निकाल दें तो शेष कुछ न रहे। इसका हल इस प्रकार है—वर्ष के १२ मास में से ३ मास वर्षा ऋतु के निकाल दें तो शेष ९ मास सब व्यर्थ हैं।

(३६) ४५ में से ४५ कम करें तो शेष ४५ ही रहे।

उदाहरण—९८७६५४३२१ इनका जोड़ ४५ हुआ।

१२३४५६७८९ „ „ ४५ हुआ।

८६४१९७५३२ „ „ ४५ ही हुआ।

(३७) चार में पाँच जोड़ने पर दश होगा।

उत्तर—चार में पाँच जोड़ने पर=९ होता है। परन्तु जादू से १० हो सकता है। यथा—

पहले इस प्रकार।।।। चार खड़ी लकीरें खींचो। अब इनमें ५ लकीरें और मिलानी हैं। अब पहली खड़ी लकीर के सिरे पर एक पड़ी लकीर खींच दो तो वह अंग्रेजी भाषा का T 'टी' अक्षर बन जाएगा। पुनः दूसरी खड़ी लकीर के आगे तीन पड़ी लकीरें—दो ऊपर-नीचे के सिरों पर तथा एक मध्य में 'E' इस प्रकार यह अंग्रेजी भाषा का 'ई' अक्षर बनेगा। पुनः शेष दोनों लकीरों के मध्य में एक तिरछी लकीर ऊपर-नीचे से नीचे के सिरे को जोड़ती हुई खींच दो 'N, इस प्रकार यह अंग्रेजी भाषा का 'एन' अक्षर बनेगा। अब तीनों को एकत्रित करने पर 'TEN' अंग्रेजी का 'टेन'=१० बन जाएगा।

।।।।

=T E N

(३८) कोई भी संख्या मन में लो, उसे दुगुना करो, पुनः ४ जोड़ दो। जोड़ में २ का भाग दो और भागफल में से प्रथम ली हुई संख्या कम कर दो, शेष २ ही बचेंगे।

उदाहरण—जैसे १२ लिया। इसे दुगुना किया तो २४ हुआ। २४ में ४ जोड़ा

तो २८ हुआ। अब २८ में २ का भाग दिया तो भागफल १४ हुआ। अब १४ में सोची हुई संख्या १२ घटा तो शेष सदैव २ ही बचेगा।

(३९) कोई भी दो अंकों की संख्या लो, अर्थात् कोई भी ईकाई दहाई की संख्या। इन दो अंकों की संख्या में सदा दहाई का अंक इकाई से बड़ा होगा जिसमें दोनों अंकों को उलटने से दहाई के अंक में से इकाई का अंक घटाया जा सके।

इसी भांति सब संख्याओं में किया जाएगा। संख्या के दोनों अंकों को उलट दो, पहली संख्या में से यह उलटी हुई संख्या घटा दो। घटी हुई संख्या में जो बचे उसे फिर उलट दो और दोनों को जोड़ दो। इस क्रिया द्वारा किया हुआ जोड़ सदैव सब संख्याओं का ९९ हो जाएगा।

उदाहरण—

७५ संख्या ली, इसे उलटने से ५७ हुई।

५७ : ७५ में से ५७ घटा दिए।

१८ : इसे पुन: उलट दिया, ८१ हुए।

८१ पुन: दोनों को जोड़ दिया, ८१+१८

९९ उत्तर।

(४०) कुछ संख्याएँ अपने सभी पूर्ण भाजकों के जोड़ के बराबर होती हैं। ६ और २८ की ऐसी संख्याएँ हैं क्योंकि

६=१+२+३; २८=१+२+४+७+१४

ऐसी १२ संख्याओं का पता है जिनमें छ: के अन्तिम अंक २८ हैं और छ: में अन्तिम अंक ६ है। अन्य छ: संख्याएँ ये हैं—४९६; ८१२८, ३३५५०३३६; ८५८९८६९०५६; १३७४३८६९१३२८, २३०५८४३००८१३९९५२२१२८।

(४१) चार संख्याएँ ऐसी हैं जो अपने अंकों के घनों के जोड़ के समान हैं। ये १५३, ३७०, ३७१ और ४०७ है।

(४२) दश लाख से कम दो संख्याएँ १४२८५७ और २८५७१४ ऐसी हैं कि यदि उनके पूर्व के अंक उठाकर अन्तिम अंक के बाद में रख दिए जाएँ तो नई बनी संख्याएँ उनकी तीन गुनी होती हैं—

१४२८५७×३=४२८५७१;

२८५७१४×३=८५७१४२

(४३) कुछ संख्याएँ ऐसी हैं जो अपने वर्ग या किसी भी ऊँची घात की संख्या के अन्तिम अंकों में आ विराजती है। एक अंक वाली ऐसी संख्याएँ ०, १, ५, और ६ हैं। दो अंकोंवाली ऐसी संख्या २५ और ७६ हैं, क्योंकि २५ का वर्ग २५×२५=६२५ और ७६ का वर्ग=७६×७६=५७७६। तीन अंकों की ऐसी संख्याएँ ६२५ और ३७६ हैं। १६ अंकों की ऐसी संख्याएँ ६२५९९१८२१२८९०६२५ और ३७४२०८१७८७१०९३७६ हैं। इन संख्याओं के दाहिनी (इकाई

की) ओर से कितने भी अंक ले लो, इस प्रकार बनी संख्या भी उपर्युक्त गुण से सम्पन्न होगी।

(४४) मन में कोई दो अंक लेने के लिए कहो। पहले अंक को दुगुना करके ५ जोड़ दो। उसमें ५ से गुणा करके दूसरी संख्या जोड़ दो। उत्तर बतलाने पर सदैव २५ घटा दो तो मन में सोची हुई संख्या ज्ञात हो जाएगी।

उदाहरण—मन में सोची हुई संख्या=७८

पहले अंक का दुगुना=(७×२)=१४

५ जोड़ो=(१४+५)=१९;

५ से गुणा करो=(१९×५)=९५;

सोची हुई दूसरी संख्या जोड़ी=(९५+८)=१०३

२५ घटाओ=(१०३−२५)=७८

अतः ली हुई संख्या ७ और ८ है।

(४५) ३१२ और २२१ ऐसी संख्याएँ हैं कि इनका गुणनफल इन संख्याओं को उलट देने से बनी संख्याओं के गुणनफल का उलटा होता है—

३१२×२२१=६८९५२;

२१३×१२२=२५९८६

(४६) दो से अधिक संख्यावाली संख्या का वर्ग ज्ञात करना—

पद्धति—जो संख्या दी हुई है, उसकी इकाई के स्थान पर जो अंक है, वह संख्या में जोड़ो, और उसी अंक को पुनः दी हुई संख्या से घटाओ। जो उत्तर आए उनको गुणनफल में इकाई के स्थान पर के वर्ग को जोड़ देने पर दी हुई संख्या का वर्ग ज्ञात हो जाता है। यथा—

२३५ का वर्ग जानने के लिए

२३५ में इकाई की संख्या ५ जोड़ो और २३५ से ५ घटाओ, जो उत्तर आए उसके गुणनफल में ५ का वर्ग जोड़ देने पर २३५ का वर्ग हो जाएगा।

(२३५)^2=(२३५+५) २३५−५)+(५)^2

=२४०×२३०+२५

=५५२००+२५

=५५२२५

जाँच—(२३५)=२३५

२३५

———

११७५

७०५

४७०

———

५५२२५

(४७) आप १२३४५६७९ संख्या लिखें। इनमें से किसी व्यक्ति से उसकी प्रिय संख्या चुनने के लिए कहें। यदि वह अंक ४ चुनता है तो आप उसे ३६ से इनमें गुणा करने के लिए कहें तो गुणनफल के सभी अंक ही ४ आएँगे।

यथा—१२३४५६७९
            ३६
७४०७४०७४
३७०३७०३७
४४४४४४४४४

(४८) **घड़ी का समय बताना**—किसी व्यक्ति से कहो कि आपकी घड़ी में अभी क्या समय हुआ है, यह मैं बता सकता हूँ। प्रश्नकर्त्ता के तैयार होने पर इस प्रकार गणित करवाइए—

जितने बजे हैं, उनको ४ से गुणा करो, पुनः उसमें २६ जोड़ दो, पुनः उसको २०० से गुणा कर दो; फिर जो मिनट नम्बर है, उसमें ५ और जोड़ के उसमें मिला दें।

इस प्रकार गणित करवाकर सम्पूर्ण संख्या सुन लो। इकाई व दहाई की संख्या में से ५ निकालकर शेष को अलग रख लो, यही मिनट की संख्या होगी। अब सैकड़ा और सहस्र की संख्या में से ५२ निकालकर शेष संख्या को ८ से भाग दो, भागफल जो रहेगा उसे घण्टा की संख्या मानकर पूरा उत्तर दो कि आपकी घड़ी का समय…बजकर…मिनट हुए।

उदाहरण—३ बजकर १५ मिनट।

३×४=१२+२६=३८×२००=७६००
७६००+१५=७६१५+५=७६२०
७६२०−५=७६१५। १५ मिनट
७६−५२=२४÷८=३ बजे

इस प्रकार उत्तर हुआ ३ बजकर १५ मिनट।

(४९) **परिवार की सदस्य-संख्या बतलाना**—किसी व्यक्ति से कहिए कि वे अपने परिवार के सदस्यों की संख्या मन में सोच लें, मैं उनके मन की बात प्रकट कर दूँगा। प्रश्नकर्त्ता के तैयार होने पर इस प्रकार गणित करवाइये—जो संख्या मन में कल्पना की है उसमें ११ और जोड़ दो। पुनः ३ से गुणा करके १८ जोड़ दो। पुनः २ से गुणा करके ३ का भाग दो। पुनः ५ से गुणा करके ५ और जोड़ दो। इसके बाद पूरी संख्या को सुनकर अन्तिम अंक उड़ा दो, और शेष में जो संख्या बची है उसमें से १७ निकाल दो। अन्त में जो संख्या रहेगी वही उसके घर के सदस्यों की सोची हुई संख्या होगी।

उदाहरण—कल्पित सदस्य-संख्या १२।

१२+११=२३×३=६९+१८=८७×२=

१७४÷३=५८×५=२९०+५=२९५

अन्तिम अंक ५ उड़ा देने पर २९ रहे

२९—१७=१२

(५०) **हाथ में रही हुई वस्तु बतलाना**—दस-बीस व्यक्तियों के समूह में बैठे हुए किन्हीं नौ व्यक्तियों को कहिए कि वे अपनी अलग-अलग संख्या देकर किसी भी हाथ में मोती अथवा अन्य कोई दाने ले लें। मैं बता दूंगा कि किस संख्या के व्यक्ति के कौन-से हाथ में, कितने मोती अथवा कितने दाने हैं।

गणित इस प्रकार करावें—

व्यक्ति की संख्या को १० से गुणा करवा के उसमें २० जोड़ दें। पुनः दाहिना हाथ हो तो १ और बायाँ हाथ हो तो २ उसमें जोड़कर ५ और जोड़ दें। पुनः १०० से गुणा करके मोती के जितने दाने हों उनकी संख्या भी उसमें जोड़ दें।

इस प्रकार गणित कराकर पूरी संख्या सुन लें, और पुनः उसमें से २५०० कम करके देख लें कि दहाई तक संख्या दानों की होगी, सैकड़े की संख्या हाथ की और सहस्र की संख्या व्यक्ति की संख्या की सूचक होगी।

उदाहरण—व्यक्ति ८, हाथ २, दाने १२।

८×१०=८०+२०=१००+२=१०२+५=१०७

१०७×१००=१०७००+१२=१०७१२—२५००=८,२,१२

(५१) **पुस्तक-पृष्ठ और पंक्ति बतलाना**—पुस्तक की संख्या को ४ से गुणा कर दो, फिर १०० से गुणा करके पृष्ठ-संख्या जोड़कर उसमें ३ और जोड़ दो। पुनः १०० से गुणा करके पंक्ति की संख्या जोड़कर, उसमें २ जोड़ दो। अब सब जोड़ देखकर प्रथम चार अंक तक (अंक बायें से गिने जाते हैं) की संख्या में से ३०२ निकाल दो और शेष आगे की संख्या को ४ का भाग दो। इस प्रकार करने के बाद जो संख्या आपके पास रहेगी वह दहाई तक में पंक्ति, सहस्र तक में पृष्ठ, और बाद की (भागफल में आई हुई संख्या) पुस्तक के नम्बर की संख्या होगी।

उदाहरण—पुस्तक नम्बर ८, पृष्ठ १५, पंक्ति १३

८×४=३२×१००=३२००+१५=३२१५+३=३२१८×१००

=३२१८००+१३=३२१८१३+२=३२१८१५

अब पहले चार अंकों में से १८१५—३०२ घटाने पर=१५१३। अब पंक्ति संख्या १३ और पृष्ठ-संख्या १५ आ गई है। पुनः ३२ को ४ से भाग देने पर भागफल ८ आया, यही पुस्तक का नम्बर है।

(५२) **जन्म का वर्ष बतलाना**—किसी से कहो कि वह अपने जन्म का वर्ष मन में सोच ले। उस संख्या को ४ से गुणा करके १ मिला दो। पुनः १० से गुणा

करके ८ का भाग दो। पुन: भागफल सुनकर उसमें से १ कम करके ५ का भाग देने पर भागफल में वही वर्ष आ जाएगा जो उसने सोचा है।

उदाहरण—कल्पित वर्ष १९४८

१९४८×४=७७९२+१=७७९३×१०=७७९३०÷८
=९७४१—१=९७४०
९७४०÷५=१९४८, यही जन्म-वर्ष था।

(५३) **मन में सोची हुई संख्या बतलाना**—किसी से कहो कि १ से लेकर ९ तक के कोई भी तीन अंक अपने मन में सोच ले, उसे मैं प्रकट कर दूंगा।

पहले वाले अंक को १० से गुणा करो, फिर उसमें दूसरी संख्या मिला दो। २ से गुणा करके ९ जोड़ दो, उसे पुन: ५ से गुणा करके तीसरी संख्या जोड़ दो।

पुन: पूरी संख्या सुनकर उसमें से ४५ कम कर दो, वही मूल संख्या रह जाएगी जो सोची गई थी।

उदाहरण—कल्पित संख्या ३१८

=३×१०=३०+१=३१×२=६२+९=७१;
७१×५=३५५+८=३६३
=३६३—४५=३१८

(५४) प्रश्नकर्त्ता किसी कोष्ठक में कितने ही गोपनीय रूप में संख्या भरके रखें, किन्तु आप बता सकते हैं कि उसके कोष्ठक के मध्य कौन-सी संख्या लिखी हुई है।

प्रश्नकर्त्ता से कहो कि पाँच खाने का यन्त्र बनाए और उसमें अपनी इच्छानुसार संख्याएँ लिख दे। जैसे कि उसने बनाया है—

पहले इन्हें पूर्व-पश्चिम जोड़ लो।

७+३+५=१५

पुन: उत्तर-दक्षिण जोड़ लो—१४+३+८=२५

मध्य खाने को छोड़कर चारों खानों को जोड़ लो—

१४+७+८+५=३४

पहली दोनों गणनाओं (१५ और २५) को जोड़कर=४० उसमें से तीसरी गणना की संख्या (३४) को घटा देने पर ६ शेष बचा है, उसका आधा करके देख लो वही संख्या (३) उसके खाने के मध्य में लिखी मिलेगी।

(५५) १११, १११, १११ को यदि इन्हीं अंकों से गुणा किया जाए तो १२३४५६७८९८७६५४३२१ हो जाते हैं।

```
        १११ १११ १११
        १११ १११ १११
        ---------------
        १११११११११
       १११११११११
      १११११११११
     १११११११११
    १११११११११
   १११११११११
  १११११११११
 १११११११११
१११११११११
-----------------
१२३४५६७८९८७६५४३२१
```

(५६) ४२१,०५२,६३१,५७८,९४७,३६८ को एक सेकण्ड में दुगुना किया जा सकता है, बस अन्तिम अंक को पहले अंक के आगे लगा दीजिए।

उत्तर—८४२१०५२६३१५७८९४७३६

```
 ४२१०५२६३१५७८९४७३६८
                   २
---------------------
८४२१०५२६३१५७८९४७३६
```

(५७) रक्त, पानी से ६ गुणा गाढ़ा होता है।

(५८) यदि कोई बैंक ४ प्रतिशत सूद पर ऋण ले और ६ प्रतिशत सूद पर ऋण दे तो उसे ५० प्रतिशत लाभ होगा।

मित्र के पास कितने रुपये ?

बच्चो, तुम्हें एक ऐसा गणित का जादू बता रहा हूँ जिससे अपने किसी मित्र के बिना बताये ही तुम जान सकते हो कि उसके पास कितने रुपये हैं। पहले अपने मित्र से बोलो कि अपने मन में कुछ रुपये सोचे, फिर कहो कि उतने ही रुपये किसी मित्र से उधार लेकर उसमें जोड़ दे। उसके बाद तुम अपनी तरफ से चार रुपये उसको दो। फिर उससे कुल रुपयों में से आधे खर्च कर देने को कहो। अब शेष बचे रुपयों में जितना अपने मित्र से उधार लिया था, वह लौटा दे। तुम बिना बताये ही कह दो कि उसके पास दो रुपये बचे। वह चकित रह जाएगा।

यह गणित का जादू बहुत सरल है। मान लो कि तुम्हारा मित्र अपने मन में पांच रुपये सोचता रखता है, फिर उतना ही रुपया किसी और मित्र से उधार लेता है, यानी पांच और पाँच दस रुपये हुए। फिर तुमने चार रुपये दिये, सब मिलाकर चौदह रुपये हुए। उसमें तुम्हारा मित्र आधा यानी सात रुपये खर्च

कर देता है। फिर वह अपने मित्र से उधार लिये हुए पाँच रुपये लौटा देता है। अब उसके पास बचे दो रुपये, जो तुमने बिना उससे पूछे ही बता दिये।

इस गणित के जादू में यही ध्यान रखो कि जितने रुपये तुम दोगे, अन्त में तुम्हारे मित्र के पास तुम्हारे दिये हुए रुपयों का आधा ही बचेगा। जैसे कि तुमने चार रुपये दिये थे और अन्त में तुम्हारे मित्र के पास दो रुपये बचे। यदि तुम दस रुपये देते तो अन्त में उसके पास पाँच रुपये बचते, यदि बारह रुपये देते तो छः रुपये बचते, भले ही तुम्हारा मित्र कुछ भी संख्या सोचे। तुम जितना रुपया दोगे उसका आधा ही तुम्हारे मित्र के पास बचेगा।

लोक साहित्य में गणित

(१) "मेरी कोई बहनें नहीं, कोई भाई नहीं,
किन्तु उस व्यक्ति का पिता मेरे पिता का पुत्र है।"

स्पष्टीकरण—यदि बोलने वाले के, जैसा कि वह कहता है, न बहन है और न भाई, तब 'मेरे पिता का पुत्र' वह व्यक्ति स्वयं है। और, यदि 'उस व्यक्ति का पिता' 'मेरे पिता का पुत्र है' तब 'उस व्यक्ति का पिता' बोलनेवाला स्वयं है।

अतः 'वह व्यक्ति' बोलनेवाले का पुत्र है।

(२) एक परिवार के लोग एकत्रित होते हैं। इनमें एक दादा है, एक दादी है, दो पिता हैं, दो माँ हैं, चार बच्चे हैं, तीन पोते हैं, एक भाई है, दो बहनें हैं, दो पुत्र हैं, दो पुत्रियाँ हैं, एक ससुर है, एक सास है और एक बहू है।

परिवार में कुल कितने व्यक्ति हैं?

आप कहेंगे—२३।

नहीं, केवल ११

वहाँ दो लड़कियाँ हैं, एक लड़का है। उनका पिता है, उनकी माँ है। उनके पिता के पिता हैं, माँ हैं। उनकी माँ के पिता हैं, माँ हैं।

अब आप विचार करें तो पहेली समझ में आ जाएगी।

(३) "सास, पतोहू, ननद, भौजाई, तीन रोटियाँ बराबर कैसे खाईं?"

अर्थात्—३ रोटियाँ हैं और ४ स्त्रियाँ हैं तो इन्होंने बराबर-बराबर रोटियाँ किस प्रकार खाईं?

उत्तर—सास, पतोहू, ननद तीन ही स्त्रियाँ थीं, क्योंकि सास की पतोहू, ननद (सास की लड़की) की भौजाई लगी, इस प्रकार तीन ही होती हैं और उन्होंने बराबर-बराबर रोटियाँ खाईं।

(४) पिता, पुत्र, सार, बहनोई, मामा, भैने और न कोई।
एक नारी छः बरा पकाए, विधि-विधि पर से दुई-दुई जाए।

उत्तर—वास्तव में एक व्यक्ति (पिता) उसका पुत्र और साला तीन व्यक्ति

आपस में छः सम्बन्ध बतलाते हैं अर्थात् पिता का साला, पूत का मामा हुआ, साले का पिता बहनोई हुआ, पूत मामा का भैने हुआ, इस प्रकार तीनों ने दो-दो बरे खाए।

(५) 'हम माँ बेटी, तुम माँ बेटी, चलो बाग को जायें।
तीन नारंगी तोड़ कर, पूरी-पूरी खायें।'

उत्तर—यहाँ एक स्त्री अपनी बेटी और माँ के साथ जाती हुई माँ से बात करती है। वास्तव में वहाँ ३ ही स्त्रियाँ थीं जो सुनने में चार ज्ञात होती हैं।

(६) गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि ३६ से पीठ फेरने और ६३ से प्रेम करने के भाव लिये गए हैं, क्योंकि ३६ में अंक एक-दूसरे की ओर पीठ किए होते हैं और ६३ में अंक एक-दूसरे की ओर मुख किए होते हैं—

दोहा—"जगते रहु छत्तीस ह्वै राम चरण छातीन।
तुलसी देखु विचार हिय, है यह मतो प्रवीन।"

(७) महाकवि भूषण ने ४ अंक से शत्रु-नारियों की पतली कमर की उपमा दी है।

कवित्त— "सोंधे को अधार किसमिस जिनको अहार,
चार को सो अंक लंक चन्द सरमाती है।"
ऐसी अरि नारि सिवराज वीर तेरे त्रास,
पादन में छाले परे कन्दमूल खाती हैं।
ग्रीषम तपनि ऐसी तपनि न सुनि कान,
कंज कैसी कली बिन पानी मुरझाती है।
तोरि-तोरि आछे से पिछौरा सों निचोरि मुख,
कहै सब कहाँ पानी मुकतो में पाती हैं।

(८) कवि सूरदास की दृष्टिकूट में लिखा है—

"कहत किन परदेसी की बात।
मन्दिर अरथ अवधि हरि वदि गए हरि अहार चलि जात॥
नखत वेद ग्रह जोरि अरध करि को वरजे हमें खात।
रवि पञ्चम लै गए स्याम वन ताते जिय अकुलात॥
ससि रिपु वरष भानु रिपु जुग सम हररिपु फिरे किए घात।
सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीजत पछितात॥

[साहित्य लहरी]

गोपियाँ कृष्ण के वियोग में विष-भक्षण करना चाहती हैं। वे २७(नक्षत्र), ४ (वेद) और ९ (ग्रह) के योगफल ४० को आधा कर २० की संख्या से 'विष' लेती हैं।

(९) "पच्छी आवन कहि गयो, बीत्यो बाज अहार।
अजा भक्ष्य भेज्यो नहीं, दो दस करूँ अहार।"

अर्थात्—पति के पन्द्रह दिन कहकर जाने और महीना व्यतीत हो जाने पर भी पत्र न मिलने पर, पत्नी दस का दूना बीस से 'विष' निचोड़कर पान करना चाहती है।

(१०) "शिव के नेत्र नक्षत्रगण, लंकापति के सीस।
ता पर मोंकू राखिए, यह माँगूं बकसीस॥

अर्थात्—"भक्त भगवान् के या प्रेमी प्रेमिका के हृदय में स्थान चाहता है। इसके लिए वह ३ (शिव नेत्र), २७ (नक्षत्र) और १० (रावणमुख) के योगफल ४० से ४० सेर के मन बटखरे से मन (हृदय) तक पहुँचता है।

(११) इसी प्रकार २४ संख्या से २४ मास से दो वर्ष, फिर दुशाला पर पहुँच हुई है—"सारी जरी जरतारी लसै सिर चौबीस मास को घूँघट काढ़े।"

(१२) गोस्वामी तुलसीदास की "कवितावली" में संख्याओं का सम्बन्धित गुणों वाले पदार्थों के लिए प्रयोग मिलता है—

"सरजू वर तीरहि तीर फिरैं, रघुवीर सखा अरु वीर सवै।
धनुही कर तीर निषंग कसे, कटि पीत दुकूल नवीन सवै॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चार नौ तीन इकीस सवै।
मति भारति पंगु भई जो निहारी विचारी फिरी उपमा न पवै॥

शब्दार्थ—दस चार=१४ भुवन, या माधुर्य के दश गुण, प्रताप के चार गुण! नौ=९ खण्ड या ऐश्वर्य के नौ गुण; तीन=तीन लोक या प्रकृति के तीन गुण; इक्कीस=२१ ब्रह्माण्ड या यश के २१ गुण।

(१३) "तुलसी पति रति अंक सम, सकल साधना सून।
अंकरहित कछु हाथ नहि, सहित अंक दस गून॥"

स्पष्टीकरण—साधना की उपमा शून्य से दी गई है और भक्ति की अन्य अंकों से। जिस प्रकार अंकरहित शून्य मूल्यरहित होता है और अंकसहित दस गुणा मूल्य देता है, वैसे ही साधना भक्तिसहित ही सार्थक है।

(१४) 'रत्नाकर' ने 'उद्धव शतक' में संख्याओं के मुहावरों का प्रयोग किया है—"आए हो सिखाए वा **छतीसे**[1] छलिया के इतै
बीस बिसैं[2] ऊधो वीर बावन[3] कलाच ह्वै।
कहे रत्नाकर प्रपंच ना पसारौ गाढ़े,
बाढ़े पै रहोगे साढ़े बाइस[4] ही जाँच ह्वै।
प्रेम अरु जोग में है जोग छठे आठें[5] पर वो,
एक ह्वै रहै[6] क्यों दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन[7] पाँच तत्त्व[8] बहकि बतावत सो,
जैहे तीन तेरह[9] तिहारी तीन पाँच[10] ह्वै।"

अर्थ—१. छतीसे=चतुर, चालाक या निखिल-कला-विशारद (हरफन-

मौला)। २. बीस बिसै=निश्चय से। ३. बावन=वामनावतार। ४. साढ़े बाइस=अपूर्ण। ५. छठे आठै=सर्वथा विपरीत, शत्रुतापूर्ण। ६. एक ह्वै रहै=मिलना। ७. तीन गुन=सत्त्व, रज, तम। ८. पाँच तत्त्व=पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु। ९. तीन-तेरह=छिन्न-भिन्न। १०. तीन पाँच=तिकड़म।

अर्थ—"हे ऊधो! तुम निश्चय से उस निखिल-कला-विशारद वञ्चक-शिरोमणि द्वारा वामनावतार की कूद बनकर (छद्मवेशी) भेजे गए हो। गम्भीर प्रपंचों का विस्तार मत करो; चाहे कितना ही क्यों न बढ़ो, जाँच होने पर अपूर्ण ही रहोगे। प्रेम और योग में छठे और आठवें का अर्थात् सर्वथा विपरीत योग पड़ता है (दोनों में शाश्वत विरोध है)। हीरा और काँच एक नहीं हो सकते। जो तुम ज्ञानोपदेश देते हो (त्रिगुण और पंचतत्त्वों की व्याख्या करते हो) वह सब 'तिकड़म' (तीन-पाँच) छिन्न-भिन्न (तीन-तेरह) हो जाएगी।"

(१५) **दोहा**—कहत सबै बेंदी दिए, आकु दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिए, अगिनितु कढ़तु उदोतु॥

यहाँ रसिक-शिरोमणि महाकवि बिहारी स्त्री की बेंदी की उपमा शून्य से देते हैं जो उसकी शोभा को दश गुणा ही नहीं वरन् अगणित गुणा करती है।

(१६) श्री रघुनाथदास रामस्नेही **विश्रामसागर** के प्रह्लाद-चरित्र में लिखते हैं—

राम हमार ह्वै सचराचर जो नहि मानत यों लिख लीजै।
नाम के अच्छर चौगुन करि, पुनि पाँच मिलाई के द्वैगुन कीजै॥
आठ से भाग दिए रघुनाथ, बचे तेहि अंक हृदय मँह दीजै।
मोहूँ में राम हैं, तोहू में राम हैं, खंग में राम है, खंभ सुनीजै।"

यहाँ बालक प्रह्लाद द्वारा गणित से राम की व्यापकता का आभास कराया है। राम प्रत्येक वस्तु में हैं। किसी के नाम के अंकों को लेकर उसका चार गुना कर पाँच जोड़कर दूना कर फिर आठ से भाग देने पर राम नाम के दो अंक बचते हैं।

यथा—मनोहर=चार अंक का अक्षर है। अतः ४×४=१६;
१६+५=२१×२=४२÷८=५, शेष २
राम नाम के लिए दो शेष है।

(१७) कवि घनानन्द ने मन और छटाँक को सरसता से श्लेष में प्रयोग किया है—

अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नेकु सयानप बाक नहीं।
तहँ साँचे चले तजि आपनपो, झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो, इत एक ते दूसर आँक नहीं।
तुम कौन-सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

यों तो पिंगल शास्त्र जो काव्य का व्याकरण है साहित्य का गणित कहा सकता है, क्योंकि यह छन्द की लय के लिए उसकी मात्रा और गणों का विचार करता है। पर पिंगल के अन्तर्गत चित्रालंकार में साहित्य में रेखागणित के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ कमल बद्धोतर छन्द में आरम्भ से कई प्रश्न किए जाते हैं। अन्तिम चरण अन्तिम प्रश्न का उत्तर देता है। अन्तिम अक्षर को बीच में रखकर उत्तर चरण के शेष अक्षर उसके चारों ओर दलों के समान रखे जाने पर कमल का चित्र बनाते हैं जो उत्तरों की कुंजी है। यथा—

"कहा जगत आधार[1], कहा आधार प्रान कर[2]।
कहा बसत विधु मध्य[3], दीन बीनत कह घर पर[4]।
कहा करत तिय रुचि[5], कहा जाचत जाचकगन[6]।
कहाँ बसत मृगराज[7], कहा कागर को कारण[8]।
धीर वीर हरषत कहाँ[9], सेनापति आनन्दघन।
चारि वेद गावत कहा[10], अन्त एक माधव सरन।

उत्तर—१. अन्न; २. तन; ३. एन; ४. कन; ५. मान; ६. धन; ७. वन; ८. सन, ९. रन; १०. अन्त एक माधव सरन।

(१८) **कवि सेनापति** ने संख्याओं का श्लेष अर्थात् दो अर्थों में प्रयोग किया है। वही संख्याएँ एक बुढ़िया का वर्णन करती हैं और एक नवयौवना का भी।

कवित्त—"देखत नई है गिरि छतिया रहे हैं कुच,
निरखी निहारि आछे मुख में रदन है।
वरसनि सोरहैं नवासी एक अगरी है,
मंद ही चलति भरी जीवन मदन है।
केस मानो चौर तूल झलकत वाके बीच
पटके कपोल सोभा धरन बदन है।
देखियत सेनापति हरे लाल चीर वारी,
नारि बुढ़िया निदान वसति सदन है।" [कवित्त-रत्नाकर]

दूसरे पदांश के अर्थ—(१) वर्षों में १६ की है, नई है और चतुर है।

(२) वर्षों में वह नवासी (८९) से एक अधिक अर्थात् नव्वे (९०) की है।

(१९) "ग्रह नछत्र अरु वेद जासु घर ताहि कहा सारंग सम्हारे"=(जिसके घर में मणि है उसे दीपक की क्या आवश्यकता है)। इस पद में ग्रह, नक्षत्र और वेद शब्दों से क्रमशः ९ (ग्रह), २७ (नक्षत्र), और ४ (वेद) संख्याओं का बोध होता है। इनका योग ४० है और ४० सेर का मन होता है। अतः 'ग्रह नक्षत्र वेद' का अर्थ हुआ 'मन' फिर 'मन' और 'मणि' में ध्वनिसाम्य के आधार पर उसे 'मणि' का बोध कराया गया है।

(२०) संस्कृत का एकानेकोत्तर छन्द भी देखिए—

"रवेः कवेः किं समरस्यसारं, कृषिर्भयं किं कमदन्ति भृङ्गाः ?
सदा भयं ब्रह्मपदं च केषाम् । भागीरथीतीरसमाश्रितानाम् ।।"

अर्थात्—'रवि' (सूर्य) का सार क्या है ? उत्तर—भा=प्रकाश । कवि का सार क्या है ? गी=गिरा । समर का सार क्या है ? रथ । कृषि को किसका भय है ? ईति का । भौंरे क्या खाते है ? रस । सदा किसको भय है ? आश्रितों को । ब्रह्मपद किसको है ? भागीरथी-तीर पर पड़े रहनेवालों को ।

(२१) आधे मोती भू गिरे, शेष चतुर्थे भाय ।
छठे भाग मोरन चुने, सत्तर ले गए राय ।।"

उत्तर—३३६ मोती ।

(२२) रावण को 'दशानन' क्यों कहा जाता है ?

उत्तर—लोग यह समझते हैं कि रावण के दशमुख होने से वह 'दशानन' कहलाता था, पर यह बात नितान्त अशुद्ध है । रावण **चार वेद** (ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम व अथर्ववेद)+**छः शास्त्र** (सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, वेदान्त) का विद्वान् था इसलिए उसे 'दशानन' कहा जाता है। इस रहस्य को लोग नहीं समझते हैं इसलिए 'रावण' के 'दश मुखों' की कल्पना करते हैं ।

(२३) हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ।।६।३५।।

[प्रश्नोपनिषद्, तृतीय प्रश्न]

अर्थ—(हृदि) हृदय में (हि) निश्चय (एषः) यह (आत्मा) जीवात्मा रहता है । (अत्र) इस हृदय में (एतत्) यह (नाडीनाम्) नाड़ियों का (एकशतम्) । एक सौ एक का संघात है(तासाम्) उन १०१ में (एकैकस्याम्) एक-एक में(शतम्, शतम्) सौ-सौ भेद हैं (द्वासप्ततिः, द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडी सहस्राणि) फिर उनमें भी प्रत्येक शाखारूप नाड़ी के बहत्तर-बहत्तर सहस्र भेद (भवन्ति) होते हैं (आसु) इनमें (व्यानः) व्यान वायु (चरति) विचरता है ।

भावार्थ—हृदय में जो पुण्डरीकाकार स्थान है, जिसमें कि शरीर का अधिष्ठाता और इन्द्रियों का राजा आत्मा रहता है, उसके पास ही नाभिकमल से १०१ नाड़ियाँ निकलकर शरीर में फैलती हैं । पुनः उनमें से एक-एक की सौ-सौ शाखाएँ फूटती हैं जिनकी संख्या मिलकर १०१०० होती है। अब इन १०१०० में से प्रत्येक की ७२००० शाखाएँ होती हैं, जिनको गुणा करके ७२७२००००० हुई और पिछली मूल १०१ तथा १०१०० नाड़ी मिलाकर सब नाड़ियों की संख्या जो इस शरीर में फैली हुई हैं, ७२ करोड़ ७२ लाख १० सहस्र २०१ होती हैं । इन सब नाड़ियों में रुधिर का संचार करता हुआ व्यान वायु विचरता है ।

१०१×१००=१०१००

१०१००×७२०००=७२७२०००००

पिछली मूल १०१+१०१००=१०२०१

=कुल ७२७२०००००+१०२०१=७२,७२,१०,२०१ नाड़ियाँ

(२४) चार आना बकरी, आठ आना गाय।
चार रुपया भैंस बिकाय, बीसैं रुपया बीसैं जीव।

अर्थात्—बीस रुपया में बीस पशु क्रय करते हैं जिनका मूल्य उक्त प्रकार से है। इसका उत्तर है **तीन भैंस, पन्द्रह गाय,** और **दो बकरी**।

(२५) एक मन दाना चारि बाट। जितना तौलौ परै न घाट॥

उत्तर—१, ३, ९, २७ सेर के बाट।

(२६) स्याम बरन मुख उज्जर कित्ते ?
रावन सीस मदोदरि जित्ते।
हनुमान पिता करि लैहों,
तब राम पिता भरि दैहों॥

प्रश्न—उड़द का क्या भाव है ?

उत्तर—जितना रावण और मन्दोदरि का सिर है अर्थात् १०+१=११ सेर।

प्रश्न—पवन (हवा) में मैं फटककर (स्वच्छ कर) लूंगा।

उत्तर—तब राम-पिता (दशरथ=दश+रथ) के बराबर १० सेर दूंगा।

(क्रमशः)

प्राचीन भारत
के
वैज्ञानिक कर्णधार

['फाउँडर्स आव् साइँसेज़ इन एंशेण्ट इण्डिया' का हिन्दी अनुवाद]

(पुरस्कृत)

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

१९४७ में देश के स्वतन्त्र होने के अनन्तर देश में प्रादेशिक शासनों के अन्तर्गत बिहार में **बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्**, और उत्तर प्रदेश में **हिन्दी समिति** नामक अर्ध-सरकारी संस्थायें बनीं। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के अधिकारियों ने मुझे **वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा** पर कतिपय व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया। ये व्याख्यान पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। हिन्दी समिति के लिए मैंने **प्राचीन भारत में रसायन का विकास** नाम से एक बड़ा ग्रन्थ लिखा, जो १९६० ई० में प्रकाशित हुआ। इसके बाद मैंने एक बड़ा ग्रन्थ अंग्रेजी में Founders of Sciences in Ancient India नाम से लिखा, जिसका अंग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वानों में अच्छा स्वागत हुआ। भारतीय शासन ने इस अंग्रेजी ग्रन्थ को अपने उन मानक ग्रन्थों की सूची में स्थान दिया, जिनकी संस्तुति हिन्दी भाषा में अनुवाद किए जाने के लिए की गई थी। भारतीय लेखक का यही एक अंग्रेजी ग्रन्थ ऐसा था, जिसे

हिन्दी में अनुवाद के लिए मानक माना गया। फलतः "भारत सरकार, शिक्षा मन्त्रालय की मानक ग्रन्थों की प्रकाशन योजना" के अन्तर्गत इसके अनुवाद का कार्य मेरी देख-रेख में श्री राजेन्द्र द्विवेदी (विशेषाधिकारी, शिक्षा मन्त्रालय) और श्री ओमदत्त शर्मा को सौंपा गया। यह ग्रन्थ १९६७ में प्रकाशित हुआ था। लगभग दो दशकों से यह ग्रन्थ जनता को अनुपलब्ध था। प्रसन्नता की बात है कि दिल्ली के विख्यात प्रकाशक **गोविन्दराम हासानन्द** के सौजन्य से इस ग्रन्थ का नवीन पुनर्मुद्रण जनता को प्राप्त हो रहा है।

वैदिक काल से भारत में ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का प्रारम्भ होता है। वेद-संहिताओं से प्रेरणा प्राप्त करके वैदिक काल के ऋषियों ने अनेक शास्त्रों, विज्ञानों एवं वेदांगों और उपवेदों की नींव डाली थी। वैदिक मनीषियों के पुरुषार्थ-प्रेरक यथार्थवाद ने एक ऐसे समाज की परम्परा स्थापित की जिसके आधार पर आज का विकसित समाज खड़ा हो सका है। ६०० ईसवी तक भारत ने संसार के सभी प्रगतिशील देशों का नेतृत्व किया और परस्पर मिल-जुलकर ज्ञान के समस्त अंगों और उपांगों का विकास भी किया। यूनान, मिस्र, अरब, ईरान, मध्य एशियाई देश, चीन और भारत—सभी के पारस्परिक सहयोग इस विकास में सहायक हुए। विज्ञान का विकास जिस प्रकार आज सार्वभौम है, उसी प्रकार ईसा से ३००० वर्ष पूर्व भी था। इस विकास का लिखित सर्वमान्य इतिहास तो हमारे पास नहीं है, फिर भी परम्परा से जो सामग्री और वाङ्मय-साहित्य आज उपलब्ध है, उससे हम अपने पूर्व-इतिहास का कुछ अनुमान लगा सकते हैं। साहित्य और पुरातन सभ्यता के भग्नावशेष—अतीत के अध्ययन के हमारे दो सुलभ साधन हैं।

वैदिक संहिताओं में मंत्रों के प्रारम्भ में परम्परा से जिन ऋषियों की सूची हमें प्राप्त है, हम यह तो नहीं स्वीकार करते कि ऋचायें उनकी कृति थीं—किन्तु उन ऋचाओं के मर्म और रहस्यों का उन ऋषियों ने सर्वप्रथम उद्घाटन किया था। कुछ ऋचाओं का ऋषि अंगिरा है, अथर्वण है, इस अथर्वण और उसके सहयोगियों ने अग्नि का सर्वप्रथम मन्थन किया, और यज्ञों की परम्परा डाली। अग्नि के उपयोग के साथ-साथ अनेक आविष्कारों और अनुसन्धानों का प्रारम्भ हुआ। भारत में (केवल भारत में ही प्राचुर्य से और ईरान में भी कुछ-कुछ) इन्हीं यज्ञ-स्थलियों में बैठकर प्राचीन मनीषियों ने अनेक विज्ञानों की नींव डाली। ये यज्ञस्थलियाँ हमारी प्राथमिक कार्यशालाएँ, अनुसन्धानशालाएँ और वेधशालाएँ बनीं, जिनके माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हमने उत्तरोत्तर प्रगति की। यज्ञों के लिए जो पात्र विभिन्न क्रियाओं के निमित्त बने, वे ही हमारी आयुर्वेदशालाओं के उपकरणों में परिवर्तित हो गए, और ये गृहस्थलियों की पाठशाला के भी संभार और पात्र बने। विविध चक्र—चरखा-करघा, रथचक्र, कौलालचक्र,

सुदर्शनचक्र, इनकी नींव भी वैदिक युग में पड़ी। लम्बाई, चौड़ाई, तौल और काल की मापों का हमने प्रयोग सीखा। क्षुरा, चाकू, सूत और डोरी, और सुश्रुत काल के शल्य-यंत्र, कोल्हू, किसानी के हल, और खोदाई के उपकरण और उनके साथ-साथ खनिजों, धातुओं और मृदाओं का प्रयोग हमने सीखा। वनस्पतियों और ओषधियों से हमारा परिचय बढ़ा।

'प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार' इस ग्रन्थ में उस अमूल्य सामग्री का संकलन है, जो समय-समय पर हमारे विद्वानों ने अपने साहित्य में प्रस्तुत की थी। सर विलियम जोन्स के भारत में आगमन के बाद पश्चिमी विद्वानों को प्राचीन भारतीय वाङ्मय से परिचय हुआ। उन्होंने हमारे ग्रन्थों के यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद भी किए और हमारी संस्कृति का उन्होंने उदारता से अध्ययन किया। बीसवीं शती के प्रारम्भिक दशकों से ही भारतीय विद्वानों का भी ध्यान अपने देश की परम्पराओं के अध्ययन के प्रति गया। मेरे इस ग्रन्थ में उस सभी सामग्री का प्रचुरता से उपयोग है, जो मूलतः मुझसे पहले के अध्येताओं की प्रस्तुत की हुई है। मेरा तो इस संकलन में थोड़ा-सा ही योगदान है—प्रस्तुत करने का मेरा अपना ढंग है।

यजुर्वेद में एक मन्त्र है, जिसमें इकाई से लेकर परार्ध तक की गिनतियों का दशम पद्धति पर उल्लेख है। इस ऋचा का ऋषि मेधातिथि है। इसीलिए मेरे इस अध्याय का शीर्षक है—"मेधातिथि—अंकों को पहले-पहल परार्ध तक पहुँचाने वाले।" सबसे प्राचीन वेदांग ज्योतिष का लेखक **लगध** है, अतः ज्योतिषवाले अध्याय का शीर्षक है—"लगध—ज्योतिष को युक्ति-संगत बनाने वाले प्रथम ऋषि"। इसी प्रकार महर्षि बोधायन को मैंने सबसे पहला ज्यामितिज्ञ कहा है। जो प्रमेय युक्लिड की ज्यामिति में पाइथागोरस के नाम से प्रसिद्ध है, उसे मैं **बोधायन-प्रमेय** कहता हूँ।

शल्यशास्त्र के आदिजनक सुश्रुत समझे जा सकते हैं। के० एल० भिषग्रत्नजी ने सुश्रुत का जो अंग्रेजी अनुवाद किया है, उसमें शल्यकर्म-विषय की अच्छी विस्तृत भूमिका है। इस सम्बन्ध में मेरी समस्त सामग्री उनके ग्रन्थ से ही अविकल ली गई है। मैंने अपने पूर्ववर्ती गवेषक विद्वानों के अनेकानेक ग्रन्थों का उपयोग इस ग्रन्थ में किया है। उन सबका मैं आभारी हूँ। पाश्चात्य लेखकों की सामग्री का मैंने प्रचुर उपयोग किया है।

'प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार' शीर्षक यह ग्रन्थ मेरे ही लिखे अंग्रेजी ग्रन्थ—"**फाउंडर्स आव् साइंसेज इन एन्शेण्ट इण्डिया**" का ही हिन्दी अनुवाद है। मूल अंग्रेजी ग्रन्थ **गोविन्दराम हासानन्द** नई सड़क, दिल्ली ने बड़ी सजधज से पुनः प्रकाशित किया है। इस प्रकाशन-संस्थान के अध्यक्ष श्री विजयकुमार जी का

हम सबको आभार मानना चाहिए, जिनकी प्रेरणा से इस ग्रन्थ का पुनः मुद्रण अब सम्भव हुआ है।

विषय-सूची

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	५०.००
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	प्रेस में
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान १.००
त्रिकालजयी १०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना ५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम् ३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका १.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका ४.००
वैदिक संध्या ०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज) १.००

घर का वैद्य

लेखक : सुनील शर्मा

[illegible]ाज ३.५०
लहसुन ३.५०
गन्ना ३.५०
नीम ३.५०
सिरस ३.५०
तुलसी ३.५०
आँवला ३.५०
नींबू ३.५०
पीपल ३.५०
आक ३.५०
गाजर ३.५०
मूली ३.५०
अदरक ३.५०
हल्दी ३.५०
बरगद ३.५०
दूध-घी ३.५०
दही-मट्ठा ३.५०
हींग ३.५०
नमक ३.५०
बेल ३.५०
अनाज ३.५०
साग सब्जी ३.५०
फिटकरी ३.५०
शहद ३.५०

बाल साहित्य

बाल शिक्षा दर्शनानन्द १.००
वैदिक शिष्टाचार २.००

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द २.५०
स्वामी श्रद्धानन्द २.५०
गुरु विरजानन्द २.५०
पंडित लेखराम २.५०
स्वामी दर्शनानन्द १.५०
पंडित गुरुदत्त १.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम ०.७५
नैतिक शिक्षा द्वितीय ०.७५
नैतिक शिक्षा तृतीय २.००
नैतिक शिक्षा चतुर्थ २.००
नैतिक शिक्षा पंचम २.००
नैतिक शिक्षा षष्ठ २.५०
नतिक शिक्षा सप्तम २.५०
नैतिक शिक्षा अष्टम २.५०
नैतिक शिक्षा नवम ३.००
नैतिक शिक्षा दशम ३.००

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत) ६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ६.००
बाल गंगाधर तिलक ६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद ६.००
भगतसिंह ६.००

डॉ० मनोहरलाल

राजा भोज की कहानियाँ ६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ ६.००
शेखसादी की कहानियाँ ६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ ६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ ६.००

बाल एवं प्रौढ़ साहित्य

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक -1	6.00
आदर्श बालक -2	6.00

सन्तराम वत्स्य

लोक व्यवहर	5.00
संविधान की कहानी	10.00
भीष्म पितामह	6.00
वीर अर्जुन	6.00
महाबली भीम	6.00

यशपाल जैन

बोध कथाएँ	5.00
प्रेरक कथाएँ	5.00

श्यामचन्द्र कपूर

प्रत्येक का मूल्य 6.00

सच्चा सपूत	(जातक कथाएँ)
नंदिनी का वरदान	(रामायण की कथाएँ)
शरणागत की रक्षा	(वेद की कथाएँ)
कीर्ति का मार्ग	(महाभारत की कथाएँ)
सबसे बड़ा ज्ञानी	(उपनिषद् की कथाएँ)
फूलों की वर्षा	(पुराण की कथाएँ)
विश्वास का फल	(कुरान की कथाएँ)
जनता का प्यारा	(भागवत की कथाएँ)
सपने देखने वाला	(बाइबिल की कथाएँ)
आशा की ज्योति	(जैनग्रन्थों की कथाएँ)

पं० आनन्दकुमार

दो सूतरी पॉलटिक	25.00

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

इक्यावन कहानियाँ	110.00
एक और श्रीगणेश	22.00
अपने-अपने दायरे	30.00

सुमेधा

हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	6.00

विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद'

ऋतुगीत		6.00
पितृभक्त बालक	**शरण**	6.00
तपस्वी बालक	**लक्ष्मी**	6.00
ज्ञानी बालक	**प्रभात कुमार**	6.00
भक्त बालक	**संगीता**	6.00
ईमानदार बालक	**सुदेश शरण**	6.00

शिवकुमार गोयल

क्रांतिकारी सावरकर	6.00

शान्ति भट्टाचार्य

बलिदान की कहानियाँ	6.00

स्कूल, कॉलेज में खेले जाने योग्य

चिरंजीत के नाटक

हास्यमंच—हम-तुम	20.00
हास्यमंच—घर-दफ्तर	22.00
हास्यमंच—देश-विदेश	25.00
पाँच प्रहसन	25.00
मन्दिर की जोत	18.00
दादी माँ जागी	25.00
महाश्वेता (उपन्यास)	45.00
रतजगा	20.00

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

आर्यसमाज के मनस्वी विद्वान् श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने आर्य-वैदिक साहित्य लिखकर बड़ी सेवा की है। अभी हाल ही में उनकी कृतियों का संकलन करते हुए **श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी** को उनके लिखे **हिन्दी-शेक्सपियर** प्राप्त हुए।

'शेक्सपियर के नाटक'

३७ नाटकों के कथानक तीन भागों में मूल्य १५०.००

सुबोध पब्लिकेशन्स

२/३ बी, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

एक अति आवश्यक और महत्वपूर्ण सूचना

शतपथ ब्राह्मण

अनुवादक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

प्रकाशन आरम्भ

शतपथ ब्राह्मण वेदार्थ और कर्मकाण्ड का अत्यन्त प्रसिद्ध और अति प्राचीन ग्रन्थ है। इसकी रचना महर्षि याज्ञवल्क्य और शाण्डिल्य मुनि ने की है। मूल ग्रन्थ में १४ काण्ड हैं, १०० अध्याय और ७६२५ कण्डिकायें हैं। शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम काण्ड बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से विख्यात है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन हमारे लिए गौरव की बात है। इसके स्वाध्याय और संग्रह करने वाले भी अपने को गौरवान्वित समझेंगे।

इसके चार खण्ड होंगे। पहले खण्ड में शतपथ ब्राह्मण का सांस्कृतिक तथा समीक्षात्मक अध्ययन होगा। इसे श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने अंग्रेजी में लिखा है—A Critical and "Cultural Study of Sathpath Brahman".

बड़े आकार के ७५० पृष्ठ होंगे।

दूसरे, तीसरे, चौथे खण्ड में बायें पृष्ठ पर मूल पाठ होगा। इसे हम एल्बर्ट बेवर द्वारा सम्पादित, १८४९ में जर्मनी से प्रकाशित फोटो प्रोसेस द्वारा स्वर सहित प्रकाशित करेंगे। दायें पृष्ठ पर हिन्दी अनुवाद होगा श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत।

चारों खण्डों की पृष्ठ संख्या लगभग बड़े आकार में २७५० होगी। चारों खण्डों का मूल्य २५००.०० होगा।

प्रथम खण्ड (अंग्रेजी का) जो ग्राहक न लेना चाहेंगे उन्हें मूल तथा हिन्दी अनुवाद वाले तीन खण्ड १८००.०० के अग्रिम ग्राहक बनने पर रु० १०००.०० में प्राप्त हो जायेंगे। चारों खण्ड के अग्रिम ग्राहक बनने पर १५००.०० देने होंगे।

केवल एक सौ रुपये देकर आप इसके ग्राहक बन सकते हैं। शेष राशि पुस्तक प्रकाशित होने से पहले मँगा ली जायेगी।

बहुत थोड़ी प्रतियाँ ही छपेंगी। पीछे निराश होने से बचने के लिए आज ही, अभी ग्राहक बनकर अपनी प्रति आरक्षित करा लें।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३७, अंक १२] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [जुलाई १९८८

सम्पा० विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सम्पादकीय

'वेदप्रकाश' की वर्ष-समाप्ति

इस अंक के साथ 'वेदप्रकाश' अपने जीवन के ३७ वर्ष पूरे कर रहा है। अगस्त मास से इसका नया वर्ष प्रारम्भ होगा। हमारे पाठकों ने 'वेदप्रकाश' के सदस्य बनकर इसके प्रचार और प्रसार में जो रुचि दिखाई है, तदर्थ हम सभी के हार्दिक आभारी हैं। हम सभी ग्राहकों से निवेदन करते हैं कि वे वेदप्रकाश के लिए अपना वार्षिक मूल्य भेजते हुए एक अन्य ग्राहक बनाकर उनका मूल्य भी भेजें।

'वेदप्रकाश' का बृहद् विशेषांक

अगले वर्ष में प्रकाशित होनेवाला 'वेदप्रकाश' हमारा बृहद् विशेषांक होगा। इसके लेखक हैं आर्य जगत् के जाने-माने विद्वान् पंडित सुरेशचन्द्र जी वेदालंकार एम० ए०। प्रश्नोत्तर-शैली में अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्धक यह संग्रहणीय विशेषांक हम अपने पाठकों को अक्तूबर मास में देंगे। अंक सीमित संख्या में ही छपेगा, अतः अपना और अपने इष्ट-मित्रों का वार्षिक शुल्क **केवल १५ रुपये** शीघ्र भिजवाएँ। शुल्क न आने अथवा विलम्ब से आने पर हम **बृहद् विशेषांक भेजने में असमर्थ रहेंगे।**

वेदप्रकाश का हर अंक—एक विशेष अंक

हमारा प्रयास रहेगा कि वेदप्रकाश के प्रत्येक अंक को विशेषांक का रूप दें। हर अंक मे विशेष लेख हों।

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी की योजनाएँ—पिछले ३-४ वर्षों में मैंने प्रचार-यात्राएँ खूब कीं। सहस्रों व्याख्यान दिये और अपनी दिव्य प्रकाशन योजना के लिए सदस्य भी बनाए। इस प्रकाशन-योजना के ६४८ सदस्य बन चुके हैं। अभी कम-से-कम १५० सदस्य और बनाने हैं; परन्तु १ जनवरी से मैं प्रचार-यात्राएँ बन्द कर रहा हूँ। प्रचार-यात्राओं के कारण मेरा लेखन-कार्य रुक गया है। अब लेखनी उठानी है और जो ग्रन्थ प्रतीक्षा-सूची में हैं उन्हें पूर्ण करना है। मनुस्मृति, उपनिषद् और सामवेद-भाष्य—ये तीन कार्य तो बहुत शीघ्र ही करने हैं। अपनी षष्ठी-पूर्ति (साठ वर्ष पूर्ण होने) के उपलक्ष्य में सामवेद-भाष्य का एक अनूठा संस्करण निकालना चाहता हूँ। सन्ध्या, स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण की व्याख्याएँ लिखनी हैं। ये सारे कार्य समय और श्रम-साध्य हैं। इनकी व्याख्याएँ पुस्तकालय में बैठक लिखी जा सकती हैं, यात्राओं में नहीं, अतः इन ग्रन्थों के लिए अब देहली में बैठना है और इन सभी कार्यों को पूर्ण करना है।

चारों वेदों के शुद्धतम प्रकाशन—हमारे वेद जितने शुद्ध, भव्य और आकर्षक रूप में छपने चाहिए थे, वे नहीं छप सके। मुद्रण की अशुद्धियाँ तो हैं ही, साथ ही बाह्य साज-सज्जा भी उत्तम नहीं है। आर्यसमाजी और अन्य मतावलम्बी भवनों, स्कूलों, ईंट-पत्थरों के लिए तो दान देते हैं, परन्तु साहित्य के प्रति रुचि नहीं है। **सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते**—सारे दानों में ब्रह्मविद्या=वेद-विद्या का दान सर्वश्रेष्ठ है। यदि प्रत्येक आर्य और हिन्दू मात्र यह संकल्प कर ले कि मुझे अपने घर में वेद रखने ही हैं तो वेदों के शुद्धतम और भव्य एवं दिव्य संस्करण निकाले जा सकते हैं।

वेदों के प्रति हमारी उदासीनता—वेदों के प्रति हम उदासीन हैं। आर्य-समाज के मन्त्री और प्रधान तथा अन्य अधिकारी भी साहित्य में रुचि नहीं लेते। इन सभी की रुचि है स्कूल खोलने में, वाचनालय और चिकित्सालय खोलने में। ये सभी कार्य तो दादूपन्थी, कबीरपन्थी, रैदासी, मलूकदासी भी कर लेते हैं, पौराणिक भी कर लेते हैं, ईसाई और मुसलमान भी कर रहे हैं। पाठक कह सकते हैं कि आर्यसमाजों द्वारा खोले हुए स्कूलों में वैदिक धर्म की शिक्षा दी जाएगी। मैं कहता हूँ यह भी ठीक नहीं है। इन स्कूलों में प्रवेश के समय १०-१० सहस्र रुपया माँगा जाता है। महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों की होली जलाई जा रही है। डी० ए० वी० Co-educational, English Medium, Public Schools खोले जा रहे हैं। इनका एक-एक शब्द दयानन्द का मुँह चिढ़ा रहा है। महर्षि दयानन्द ने कहा था कि सह-शिक्षा नहीं होनी चाहिए, परन्तु इन स्कूलों में खुल्लम-खुल्ला सह-शिक्षण है। महर्षि दयानन्द ने कहा था कि सर्वप्रथम देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, परन्तु यहाँ सर्वप्रथम रोमन लिपि का अभ्यास कराया जाता है। ऋषि ने कहा था राजकुमार और दरिद्र के सन्तान

सभी को एक-जैसा भोजन, वस्त्र और आसन दिये जाएँ, परन्तु इन स्कूलों में गरीब विद्यार्थी तो प्रविष्ट हो ही नहीं सकते।

जितनी शक्ति हमने स्कूल खोलने में लगाई है, जितना धन हमने टेण्टों और शामयानों में बर्बाद किया है, उसका कुछ भी हिस्सा वेदप्रकाशन, वेदों का गौरव-पूर्ण अनुवाद एवं भाष्य करने में लगा दिया जाता तो वेद की बहुत बड़ी सेवा हो जाती।

मैं अपनी सीमित शक्ति और अल्प साधनों से लगा हुआ हूँ। काश, आर्य-जनों का सहयोग मिल जाए।

भगवती प्रकाशन—भगवती प्रकाशन के अभी १५० सदस्य और बनाने हैं जो अभी तक नहीं बने हैं। तुरन्त ५०० रुपये भेजकर सदस्य बन जाएँ। **स्मरण रहे १ सितम्बर से यह राशि** ७०० रुपये हो जाएगी। हम पहला ग्रन्थ 'पौराणिक पोलप्रकाश' दे चुके हैं। दूसरा ग्रन्थ ऋग्वेद भाष्यम् छप रहा है; दिसम्बर तक सभी सदस्यों की सेवा में पहुँच जाएगा।

—**जगदीश्वरानन्द**

साँप और भेड़िया न बन

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

माहिर्भूर्मा पृदाकुः ।। —यजु० ६।१२

ऐ मानव ! (मा अहिः भूः) तू सर्प मत बन और (मा पृदाकुः) न भेड़िया ही बन ।

वेद-माता अपने अमृत-पुत्रों को उपदेश दे रही है—"तू साँप और भेड़िया मत बन।" सर्प विष, धोखेबाजी, मक्कारी और कुटिलता का प्रतीक है। अब सूक्ति का अर्थ हुआ "कुटिल मत बनो।" किसी भी व्यक्ति के साथ कुटिलता, धोखेबाजी और मक्कारी का व्यवहार मत करो। सभी के साथ सभ्यता, नम्रता और श्रेष्ठता का व्यवहार करो। अपने आचरण को श्रेष्ठ और पवित्र बनाओ। आपका व्यवहार ऐसा हो कि लोग उसे देखकर मुग्ध हो जाएँ और आपसे प्रेरणा लें।

एक सन्त नदी में नहा रहे थे। उन्होंने एक बिच्छू को पानी में बहते और छटपटाते देखा। सन्त जी उसे हाथ में उठाकर बाहर निकालने लगे। परन्तु बिच्छू ने उनकी हथेली में डंक मार दिया। सन्त जी ने बिच्छू को पुनः उठाया और उसने फिर डंक मारा। जब सन्त जी तीसरी बार बिच्छू को निकालने लगे तो किनारे पर खड़े एक व्यक्ति ने हँसते हुए कहा—"सन्त जी ! यह बिच्छू अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता, भलाई का बदला बुराई से देता है। ऐसे नीच की सहायता से क्या लाभ ? मरने दीजिए न इसे !" सन्त जी बोले, "भाई ! जब यह अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो मैं अपनी सज्जनता क्यों छोड़ूँ ?"

कोई आपके साथ बुराई करता है और आप भी उसका बदला बुराई से देते हैं तो यह जंगलीपन है। कोई आपके साथ उत्तम व्यवहार करता है और बदले में आप भी उत्तम व्यवहार करते हैं तो यह मनुष्यता है। कोई आपके साथ कुटिलता का बर्ताव करता है और आप उनके साथ भद्रता का, श्रेष्ठता का व्यवहार करते हैं—यह देवत्व है। बालको ! आप देव बनने का प्रयत्न करो। जो आपके साथ कुटिलता का व्यवहार करे, उसके साथ भी श्रेष्ठता का व्यवहार करो।

अब दूसरी शिक्षा को लीजिए—'भेड़िया न बन।' भेड़िया हिंसा और क्रोध

का प्रतीक है। क्रोधी और हिंसक मत बनो !

क्रोध एक भयंकर रोग है। जब मनुष्य को क्रोध आता है तो वह सब-कुछ भूल जाता है। क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्य अन्धा और बहरा हो जाता है। क्रोधी मनुष्य अपने माता-पिता और बन्धु-बान्धवों का भी वध कर देता है। बार-बार क्रोध करने से हमारे ज्ञान-तन्तु जल जाते हैं, अतः बुद्धि क्षीण हो जाती है। क्रोध के कारण हमारी वर्षों की साधना एक क्षण में स्वाहा हो जाती है। अतः क्रोध को त्यागकर हमें सहनशील बनना चाहिए।

हिंसा का अर्थ है मन, वचन और कर्म से प्राणियों को कष्ट देना। अहिंसा का अर्थ है प्राणियों को कष्ट न देना। हम दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करें, जैसा हम औरों से अपने लिए चाहते हैं। इसी का नाम धर्म है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

"धर्म के सार को सुनो और सुनकर उसे धारण करो। धर्म का सार है—दूसरों के साथ अपनी आत्मा के प्रतिकूल व्यवहार मत करो।" किसी भी प्रकार का कष्ट देकर दूसरों की हिंसा न करो, दूसरों को मत सताओ क्योंकि—

गरीब को मत सता जालिम, गरीब रो देगा।
सुनेगा उसका मालिक तो दोनों जहाँ से खो देगा॥

□

मोह ही शोक का कारण

—पं० बिहारीलाल शास्त्री

किसी दुकानदार ने एक सफेद चूहा पाल रखा था। खिला-पिलाकर खूब मोटा-ताजा कर रखा था। साथ-साथ अपनी दुकान में उसने चूहों को दण्ड देने के लिए एक बिल्ली भी पाल रखी थी, जो नित्यप्रति एक-दो चूहों को मार खाती थी। यह देखकर दुकानदार बहुत प्रसन्न होता था। बिल्ली को अपने-बिराने का ज्ञान था ही नहीं। एक दिन भूखी बहुत थी। सामने लाला के पालतू सफेद चूहे को देख मुंह में पानी भर आया! झट छलाँग मार उसे पकड़कर एक ही बार में खा गई। लाला अब करते क्या? देखते ही रह गये। बिल्ली को मारने दौड़े, वह भाग गई। अब वह बड़े दुःखी हुए। शोक में निमग्न बैठे सोच रहे थे कि इतने में उधर ही गुरु महाराज आ निकले। लाला को चिन्तित देखकर बोले कि क्या हुआ? कुशल तो है? लाला बोले कि 'महाराज, वैसे तो आपके चरण-कमलों की कृपा से सब कुशल-मंगल है, परन्तु हमने एक सफेद चूहा पाला था सो उसे बिल्ली मारकर खा गई, इसलिए शोक हो रहा है।' महात्मा ने कहा कि 'तुमने चूहा पाला था तो बिल्ली क्यों पाल ली?' लाला ने कहा, 'दूसरे चूहों को मारने के लिए बिल्ली पाली थी।' महात्मा ने कहा कि 'दूसरे चूहों में क्या जान नहीं थी?' लाला ने कहा—'हुआ करे, मुझे क्या? मुझे तो इसी चूहे से प्रेम था। मैंने बड़ी मुहब्बत से इसे पाला था।' महात्मा ने कहा—'भाई, तेरे शोक का कारण चूहा नहीं है, किन्तु ममता (यह मेरा है ऐसा भाव) है।' लाला ने कहा, 'हाँ महाराज!' तब महात्मा ने कहा कि 'भाई, संसार की वस्तुएँ नाशवान् हैं और प्रत्येक प्राणी को मृत्युरूप बिल्ली अवश्य खाएगी। यदि तुम इन सांसारिक पदार्थों में ममता और मोह करोगे तो शोक से सताये जाओगे। इन पदार्थों और स्त्री-पुत्र-धनादि की ममता और मोह छोड़ कर्त्तव्य का धैर्य के साथ पालन करो, और सबमें आत्मवत् वर्तो। न कोई वैरी है न मित्र, सबमें न्याय से वर्तो। तभी शोक से तरोगे।' यही वेद भगवान् का उपदेश है—

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतन्यात्मैवाऽभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥

जिस ज्ञानी मनुष्य की दृष्टि में सब प्राणी अपनी आत्मा के तुल्य हो जाते हैं उसको शोक-मोह नहीं होता। □

मानव-निर्माण

लेखक—सत्यार्थ भास्कर आर्यबन्धु, मुरादाबाद

मानव का दानव बन जाना उसकी पराजय है। मानव का महामानव होना उसका चमत्कार है। मानव का मानव होना उसकी विजय है।

—डॉ० राधाकृष्णन

मानव-निर्माण क्यों ?

मानवीय सद्गुणों से सर्वथा शून्य संसार आज सन्तापों एवं पीड़ाओं की ज्वाला में जला जा रहा है। सर्वत्र अशान्ति, निराशा, भय तथा दुःख का साम्राज्य है। वैज्ञानिक आइनस्टीन से जब संसार में व्याप्त दुःख एवं अशान्ति को दूर करने का उपाय पूछा गया तो वैज्ञानिक ने उत्तर दिया—"श्रेष्ठ मनुष्यों का निर्माण करो।" आइनस्टीन ने जो बात कही थी, आर्यसमाज ने वही बात सौ वर्ष पूर्व वेद के 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के उद्घोष द्वारा घोषित की थी। पर आर्यसमाज की सुनता ही कौन है ? दुःख है आज संसार में सब-कुछ हो रहा है, किन्तु यदि नहीं हो रहा तो बस मानव का निर्माण नहीं हो रहा। पशुओं की नस्ल सुधारने तथा उन्हें सिधाने की योजनाएँ तो प्रायः बनती रहती हैं, परन्तु मनुष्य को सुधारने की कोई योजना आर्यसमाज को छोड़कर किसी के पास नहीं है। खुमार बाराबंकवी ने ठीक ही कहा है—

सभी कुछ हो रहा है, इस तरक्की के जमाने में।
मगर यह क्या गजब है, आदमी इन्साँ नहीं होता ॥

भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने १९५८ में दिल्ली में आयोजित एक प्रेस कांफ्रेंस में इस बात का महत्त्व निम्न शब्दों में व्यक्त किया था—"भारत में तथा अन्यत्र वास्तविक समस्या उत्तम मनुष्यों की उत्पत्ति की है। यदि मनुष्य ठीक न हों तो हमारी आधारशिला सशक्त नहीं हो सकती। कृषि और उद्योग-धन्धों में सम्पत्ति का लगाया जाना महत्त्वपूर्ण है, परन्तु मनुष्य बनाने के लिए योजना का बनाया जाना उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।"

यूनान के एक दार्शनिक के बारे में प्रसिद्ध है कि एक दिन वह चमकते सूर्य के प्रकाश में लालटेन लिये घर से बाहर निकल पड़ा और आँखें फाड़-फाड़कर ऐसे देखने लगा मानो उसकी कोई वस्तु खो गई हो। लोग इतने बड़े विद्वान् को दिन के प्रकाश में इस तरह लालटेन लिये घूमते देखकर आश्चर्य करने लगे। कुछ यह समझने लगे कि दार्शनिक लोग तो आधे पागल होते ही हैं, यह भी कोई वैसा ही अर्ध-पागल है। कुछेक ने आगे बढ़कर उससे पूछ ही तो लिया कि "आप इतने बड़े विद्वान् हैं, फिर सूर्य के प्रकाश में इस तरह लालटेन लिये क्यों घूम रहे हैं और किस खोई वस्तु की तलाश में मग्न हैं?" दार्शनिक प्रथम तो मुस्कराया, फिर गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"मैं मानव को ढूँढ रहा हूँ।" इस पर नागरिकों ने तुनककर पूछा—"तो क्या हम मानव नहीं हैं?" दार्शनिक बोला—"नहीं; तुम में से कोई दुकानदार है, कोई ग्राहक, कोई किसान है, कोई मजदूर, पर शोक! तुम में से मनुष्य कोई नहीं।"

वस्तुतः हम व्यापारी हैं, अफसर हैं, प्रोफेसर हैं, सब-कुछ हैं; बस नहीं तो एक मनुष्य नहीं। सत्य है—

अब कहाँ इन्साँ जिन्हें इन्साँ कहें,
चलती फिरती देख लो परछाइयाँ।

मनुष्य या पशु?

मनुष्य की योनि में जन्म लेने मात्र से ही हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं हो जाते। वेद 'मनुर्भव' का उपदेश देकर हमें मनुष्य बनने की सत्प्रेरणा देता है। वेद का यह उपदेश पशुओं के लिए तो है नहीं, फिर मनुष्य को मनुष्य बनने का उपदेश कैसा? क्या मनुष्य का चोला पाकर भी हम मनुष्य नहीं? बात तो कुछ ऐसी ही है—

भरी मरदुम से गो सरजमीं है 'वले',
देखने को पर यहाँ इन्साँ नहीं है।

अपनी इस विस्तृत वसुन्धरा पर मनुष्य के कोष्ठक में लिखी जानेवाली जन-गणना की पुस्तिका में लगभग चार अरब प्राणी होंगे, पर सारे-के-सारे मानव ही हों, ऐसी बात नहीं। क्यों? इसका उत्तर जिगर मुरादाबादी इस प्रकार देते हैं—

इस जमाने का इन्कलाब न पूछ,
रूह शैतान की, शक्ल आदम की।

'आकृतिग्रहणा जातिः' (व्याकरण-महाभाष्य) के अनुसार जाति आकृति से जानी जाती है। दो हाथ, दो पैर, विकसित मस्तिष्क एवं सीधा खड़े हो सकने

की क्षमता आदि गुणों से युक्त शरीरधारी को भले ही मनुष्य की संज्ञा दे दी गई हो, परन्तु शास्त्र इसे वास्तविक मानव नहीं मानता। शारीरिक दृष्टि से वह तब तक मनुष्य कहलाने का वास्तविक अधिकारी नहीं जब तक कि उसमें मानवता-सम्बन्धी सद्गुणों का विकास नहीं हो जाता। इन्हीं असाधारण गुणों के कारण कि जो मानवेतर प्राणियों में नहीं पाए जाते, हम मनुष्य कहलाने के वास्तविक अधिकारी हो सकते हैं। भर्तृहरि के अनुसार—

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

क्योंकि—

आहारनिद्राभयमैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिः नराणाम्।
धर्मो हि तेषाम् अधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

और—

खादते मोदते नित्यं, शुनकः शूकरः खगः।
तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां च तादृशी॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती का कथन है—जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य-शरीर पाकर वैसा ही कर्म करते हैं तो मनुष्य-स्वभावयुक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है, वही मनुष्य कहलाता है और जो स्वार्थवश होकर पर-हानि मात्र करता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

मनुष्य के लिए उसकी सृजनात्मक शक्ति विधाता की सम्भवतः सर्वोत्तम देन है, परन्तु आज का सभ्य कहा जानेवाला आधुनिक मानव जिसको 'डॉ० यंग' आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रवर्तित क्रान्ति की सन्तान कहते हैं, अपने विध्वंसकारी वैज्ञानिक आविष्कारों से मानवता का मूल ही नष्ट करने पर उतारू है। तभी तो चक्रवर्ती डॉ० राजगोपालाचार्य ने इसे एक मशालधारी बन्दर कहा था जो अपनी मशाल लिये एक झोपड़ी से दूसरी पर कूद रहा है, परिणामस्वरूप झोपड़ियाँ जल उठती हैं और वह बन्दर भी उन्हीं में जलकर भस्म हो जाता है, और आज यह दशा है कि "शैतान पर विश्वास भले ही कर लूँ, आदमी देखकर डर जाता हूँ।"

यह सब देखकर Issac Watts का कोमल हृदय चीत्कार उठता है कि "Your little hands were never made to tear each other's eyes." अर्थात् तुम्हारे ये छोटे-छोटे हाथ इसलिए नहीं बनाए गए थे कि तुम एक-दूसरे की आँखें नोच लो।

और Wordsworth दुःख-भरे शब्दों में कहते हैं—Much it grieved my heart to think what Man has made of Man. अर्थात् यह सोचकर मुझे बहुत दुःख होता है कि मनुष्य ने मनुष्य का क्या बना डाला है !

कवि-सम्राट् टैगोर का कथन है कि मनुष्य जब पशु बन जाता है तो उस समय वह पशु से भी बदतर हो जाता है । इसीलिए शास्त्र चेतावनी देता है कि हम नित्यप्रति देखें कि हम मनुष्य ही तो हैं, कहीं पशु तो नहीं बनते जा रहे—

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति ।।

आज मानव चन्द्रमा पर पहुँच चुका है और मंगल पर पहुँचने की तैयारी में है। यह सब होते हुए भी डॉ० राधाकृष्णन का यथार्थ कथन है कि चिड़ियों की की तरह हवा में उड़ना और मछलियों की तरह पानी में तैरना सीख लेने के पश्चात् अब हमें इन्सानों की तरह जमीन पर चलना सीखना है ।

मनुष्य कौन ?

वैसे तो **मनोरपत्यं मानवः** के अनुसार मनु की सन्तान मानव कहलाती है, पर यह तो 'आकृतिग्रहण जाति' वाली बात हो जायेगी, न कि गुण-कर्मानुसार। अतः मानव की परिभाषा हमें आर्ष ग्रन्थों में ही देखनी होगी । निरुक्तकार 'मानव' की परिभाषा निम्न शब्दों में करते हैं—'**मत्वा कर्माणि सीव्यति इति मनुष्यः**' अर्थात् जो विचारपूर्वक कर्म करता है वही मनुष्य है । 'मननात्मनुष्यः' मनन करनेवाला होने से ही वह मनुष्य है । वस्तुतः नियन्त्रित एवं मर्यादित जीवन व्यतीत करनेवाले किसी विचारशील व्यक्ति को ही मनुष्य अथवा मानव-जीवन कहा जा सकता है। वेद ऐसे मनुष्य को आर्य संज्ञा देता है। 'आर्य' व्रतशील एवं मर्यादित जीवन बितानेवाले को कहते हैं। डॉ० रामचरण महेन्द्र के अनुसार—"सद्गुणों, सद्भावनाओं, सदाचरणों तथा सद्व्यवहारों से युक्त पुरुषत्व का नाम ही मानवता है।" कविवर 'चकबस्त' ने भी ऐसा ही कहा है—

दर्दे-दिल पासे-वफा जज्बए-ईमाँ होना ।
आदमीयत है यही और यही इन्साँ होना ।।

तात्पर्य यह है कि जिसमें संवेदनशील हृदय, कृतज्ञतादि सद्भावनाएँ, सत्पात्रता, विचारशीलता, कर्तव्यपरायणता और ईमानदारी आदि सद्गुण हैं वही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में—"मनुष्य उसीको कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे।"

सच है—

दिल में उल्फत नहीं, तो कुछ भी नहीं।
गुल में नकहत नहीं, तो कुछ भी नहीं॥
आदमी में लाख गोहर हों,
आदमीयत नहीं, तो कुछ भी नहीं॥

मानव-निर्माण में आर्यसमाज का योगदान

आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व मानव का सर्वथा अभाव हो और मानव-निर्माण आर्यसमाज ने ही किया हो, ऐसी बात नहीं। पर यह सत्य है कि महाभारत के पश्चात् आर्यसमाज की स्थापना तक मानव-निर्माण की कोई योजना किसी के पास नहीं थी। साथ ही, आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व जो परिस्थितियाँ उपस्थित थीं, उनमें मानव का निर्माण हो पाना भी सम्भव न था। कारण कि भौतिक विज्ञान के बढ़ते चरणों ने आध्यात्मिकता को उठाकर ताक पर रख धर दिया था। नास्तिकता सर्वत्र उभर रही थी और आस्तिकता अथवा नैतिकता जोकि मानवता का आदर्श है, को सदा के लिए दफना दिये जाने की योजनाएँ बनने लगीं। उस समय की परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए किसी कवि ने ठीक ही लिखा है—

कभी था मानवता का विकास, पर वे विचार अब ध्वस्त हुए।
आध्यात्मिकता को भुला आज, नर भौतिकता में मस्त हुए॥

और डॉ० हरिशंकर शर्मा के शब्दों में—

नैतिकता नाता तोड़ भगी है न जाने कहाँ।
मानवता हाय आज फूट-फूट रोती है॥

सत्य तो यह है कि मानव-निर्माण भी कोई समस्या है, संसार इसे सर्वथा भूले हुआ था। आर्यसमाज ने ही संसार का ध्यान इस समस्या की ओर दिलाया। अन्यथा अपना तो कुछ ऐसा हाल था कि—

अपनी हालत का तो कुछ अहसास नहीं है मुझको।
मैंने औरों से सुना है कि परेशान हूँ मैं॥

आर्यसमाज ने ही सर्वप्रथम मानव-निर्माण की शतवर्षीय योजना प्रस्तुत की। मानव-जीवन की कोई भी अवस्था संस्कारशून्य नहीं है। गर्भ से ही मनुष्य संस्कारों में पलता है, शैशव से यौवन तक संस्कारों में ही पनपता है ओर प्रौढ़ावस्था से अन्तिमावस्था तक इन्हीं में अन्तर्हित होता है। महर्षि का कथन है—जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है, वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है। वस्तुतः मानवता-सम्बन्धी सर्वोच्च गुणों को धारण करने के लिए हृदय में

जिन प्रेरणाओं, सद्भावनाओं तथा सत्संकल्पों की आवश्यकता पड़ती है, उन्हींको मानव-हृदय में वपन करने का नाम ही संस्कार है। 'संस्कार' शब्द स्वत: ही किसी कृत्य को परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित रूप से सम्पादित होने का द्योतक है। सोलह संस्कारों को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है—

प्राग्जन्म, बाल्यावस्था, शैक्षणिक संस्कार, आश्रम-प्रवेश संस्कार तथा अवसान संस्कार। संस्कारों का यह क्रमविभाजन दर्शाता है कि ये संस्कार जन्म के पूर्व से मृत्यु-पर्यन्त किये जाते हैं, साथ ही इस बात का भी बोध होता है कि अधिकांश संस्कार मानव-जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से सम्बद्ध हैं और प्रारम्भिक अवस्था ही मानव-निर्माण की वास्तविक अवस्था है। पाश्चात्य मनीषी टी० कोगन का कथन है—

मानव-मस्तिष्क की शिक्षा शैशव के पालन से ही प्रारम्भ हो जाती है। शैशव-काल की प्रत्येक घटना एवं शिशु से कहा गया प्रत्येक शब्द उसके चरित्र का निर्माण करता है।

घड़ा कच्ची मिट्टी से ही बनता है, पक्की से नहीं; इसी प्रकार शैशव काल में ही संस्कार डाले जा सकते हैं, यौवन में नहीं। संस्कारों के द्वारा मानव-जीवन के विकास की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवस्था और जीवन का प्रत्येक मोड़ बालक के लिए दिशासूचक बन जाता है।

यह श्रेय आर्यसमाज को ही है कि उसने लुप्तप्राय संस्कारों को पुन: प्रचलित कर मानव-निर्माण की एक अनुपम योजना प्रस्तुत की।

विश्व-निर्माण की योजनाएँ बनानेवालो, ध्यान रखो! मानव-निर्माण के बिना विश्व के निर्माण की योजनाएँ सफलीभूत नहीं होंगी। काश! विश्व-निर्माण की योजनाएँ बनाने की अपेक्षा ये मानव-निर्माण की योजना बना पाते। सत्य मानें, जिस दिन मानव 'मानव' बन जाएगा, संसार को बनाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी। अत: आर्यसमाज के मानव-निर्माण-आन्दोलन को सफल बनाने के लिए तन, मन, धन से जुट जावें, नहीं तो

डूबेगी किश्ती तो डूबोगे सारे।
न तुम ही रहोगे न साथी तुम्हारे॥

□

जी आया

—ब्र० विनोद

ओ३म्—एह्यू षु ब्रवाणि ते ऽग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ।।ऋ ६।१६।१६।।

ऋषिः—भरद्वाजः=यज्ञशील, मधुरवाणीवाला।

(अग्ने) हे मुझे आगे ले जानेवाली यज्ञाग्नि ! मैं (ते) तेरे (सु) स्वागत में—"(एहि) आइये" (ऊ) और (इत्था) इसी प्रकार के (इतराः) अन्य (गिरः) वचन (ब्रवाणि) कहूँ। (एभिः) इन (इन्दुभिः) सोमरस की बूँदों से (वर्धासः) तू अधिक प्रदीप्त हो—बढ़।

मेरा जी चाहता है—मुझे उस फेरीवाले के दर्शन फिर-फिर होते रहें। मैं अपने रमते राम को फिर-फिर बुलाऊँ, फिर-फिर बुलाऊँ। उसका जी भरकर स्वागत करूँ। उसे 'जी आया' कहूँ। उसे हृदय के आसन पर बैठाकर पाद्य दूँ, अर्घ्य दूँ, मधुपर्क दूँ। अपनी सारी वाणी की विभूति से उसे 'जी आया' कहूँ, 'जी आया' कहूँ। एक जीभ से नहीं, हजारों जीभों से। अंग-अंग की बोली में, इन्द्रिय-इन्द्रिय की भाषा में उस अलौकिक अतिथि का स्वागत करूँ। रोम-रोम का किवाड़ उसके प्रवेश के लिए खोल दूँ। मेरी नस-नस, नाड़ी-नाड़ी उस रमते राम का मूर्त्त स्वागत हो जाए। मेरे जीवन-यज्ञ की आग ज्वालामुखी बनकर उस विश्वयाग की आग का हजार जीभ से आमन्त्रण करे, अभिनन्दन करे।

मेरी वाणी में ओज हो, तेज हो, ज्वाला हो—आर्द्र ओज, आर्द्र तेज, आर्द्र ज्वाला। मेरा मन भावना का घर हो। भावुक हृदय ही से मैं अग्निदेव का स्वागत करूँ। मैं अपनी आँखों की चाँदनी इस अग्निदेव के मार्ग में बिछा दूँ। चाँद आर्द्र ज्योति है। इसमें भावना की तरी-सी प्रतीत होती है। यज्ञाग्नि की प्रतीक्षा में मेरी आँखें 'इन्दु' बन जाएँ। मेरे अंग-अंग में सोम—यज्ञ-भावना का रस हो। यही रस मैं अपने पूज्य अतिथिदेव के चरणों में पाद्य के, अर्घ्य के, मधुपर्क के रूप में पेश करूँ। मेरा अग्निदेव मेरे इसी सोम का प्यासा है। यज्ञ की आग, यज्ञ का रस पाकर और प्रज्वलित हो, और प्रज्वलित हो। क्षण-क्षण में उसकी शोभा बढ़ती

जाए। यज्ञ-याग की आग दिन दूनी, रात चौगुनी दीप्ति से देदीप्यमान होती जाए।

आओ! यज्ञ की आग, आओ! मेरा आतिथ्य स्वीकार करो। मैं एक जीभ से नहीं, हजार जीभ से तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ। एक मुख ही की जीभ से नहीं, अंग-अंग की, नस-नस की, नाड़ी-नाड़ी की जीभ से तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ। आज तुम्हारे स्वागत के लिए—तुम्हें पाद्य देने, अर्घ्य देने, मधुपर्क देने के लिए—मेरा सम्पूर्ण शरीर सोम-सरोवर-सा हो रहा है। इसके दिये पाद्य को, मधुपर्क को स्वीकार करो, स्वीकार करो! तुम्हारी शोभा स्वीकार करने में है। तुम्हारी श्री हमारी पूजा की सफलता से और बढ़ेगी, और बढ़ेगी।

□

आजकल के धनाढ्यों के खुशामदी

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आजकल इन राजा और धनाढ्य लोगों के पास बहुत-से धूर्त खुशामदी लोग रहते हैं। वे सदा उन (धनाढ्यों) को प्रसन्न करने के लिए मिथ्या ही कहते रहते हैं—आपके तुल्य कोई राजा वा अमीर न हुआ, न है और न होगा, और जो राजा मध्य दिवस के समय में कहे कि इस समय में आधी रात है, तब वे शुश्रुषु लोग कहते हैं कि 'हाँ महाराजाधिराज हाँ, देखिए चाँद निकला और चाँदनी भी अच्छी खिल रही है।' फिर वे कहते हैं कि महाराज के तुल्य कोई बुद्धिमान् न हुआ, न है और न होगा। तब तो वे मूर्ख राजा और धनाढ्य प्रसन्नता से फूल के ढोल हो जाते हैं। फिर वे (खुशामदी) ऐसी बात कहते हैं कि महाराज! आपके प्रताप के सामने किसी का प्रताप नहीं चलता है। आपका प्रताप कैसा है, जैसा कि सूर्य और चाँद। ऐसा कह-कहकर बहुत धन हरण कर लेते हैं। वे राजा और धनाढ्य लोग उन्हीं (खुशामदियों) से प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि आप जैसा मूर्ख वा पण्डित होता है, उसको वैसे ही पुरुषों से प्रसन्नता होती है। कभी उनको सत्पुरुषों का संग नहीं होता और कभी सत्पुरुषों का संग हो जाए तो भी वे खुशामदी धूर्त, राजा और धनाढ्य लोगों की मूर्खता के कारण बात के सुनने में उन्हें प्रवृत्त नहीं होने देते। क्योंकि जैसा जो पुरुष होता है, उसको वैसा ही संग मिलता है। ऐसे व्यवहार के होने से आर्यावर्त्त देश के राज्य और धन बहुत नष्ट हो गए और जो कुछ बच रहा है, उसकी रक्षा भी ऐसी अवस्था में होनी दुष्कर है। जबतक कि सत्य व्यवहार, सत्य शास्त्र और सत्संगों को न करेंगे, तबतक उनका नाश ही होता जाएगा, बढ़ती न होगी।

खुशामदी लोगों के विषय में यह दृष्टांत है—कोई राजा था। उसके पास पण्डित, वैरागी और नौकर, खुशामदी लोग बहुत-से रहते थे। किसी दिन राजा की रसोई में बैंगन का शाक मसाले डालने से बहुत अच्छा बना। फिर जब राजा भोजन करने बैठा तो स्वादु होने के कारण उस शाक को अधिक खाया। राजा भोजन करके सभा में आया, जहाँ कि वे खुशामदी लोग बैठे थे। उनसे राजा ने कहा कि बैंगन का शाक बहुत अच्छा होता है। तब वे खुशामदी लोग सुनकर

बोले कि 'वाह-वाह ! महाराज की नाईं कोई बुद्धिमान् नहीं है। महाराज ! आप देखिए कि जब बैंगन उत्तम है, तब तो परमेश्वर ने उसके ऊपर मुकुट रख दिया तथा मुकुट के चारों ओर कलगियाँ रख दी हैं, और बैंगन का वर्ण श्रीकृष्ण के शरीर जैसा घनश्याम है, वैसा ही बनाया है और उनका गूदा मक्खन की नाईं परमेश्वर ने बनाया है। बैंगन का शाक उत्तम क्यों न बने !' फिर जब उस शाक ने बादी की, रातभर नींद न आई और आठ-दस बार शौच भी गया, जिससे राजा बड़ा क्लेशित हुआ। प्रातःकाल जब हुआ, तब भीतर से राजा बाहर आया। वे खुशामदी लोग भी आए। जब राजा का मुख बिगड़ा देखा, तब उन खुशामदी लोगों ने उससे भी अधिक मुख बिगाड़ लिया और सब राजा के पास जाके बैठे। राजा बोले कि बैंगन का शाक तो अच्छा होता है, परन्तु बादी करता है। तब वे खुशादमी बोले कि 'वाह-वाह ! महाराज के तुल्य कोई बुद्धिमान् नहीं है। एक ही दिन में बैंगन की परीक्षा कर ली। देखिए महाराज ! जब बैंगन भ्रष्ट है, तब तो उसके ऊपर परमेश्वर ने खूँटी गाड़ दी है। उस खूँटी के चारों ओर काँटे लगा दिये हैं। उस दुष्ट का वर्ण भी कोयले के तुल्य रखा है तथा परमेश्वर ने उसका गूदा भी श्वेत कुष्ठ की नाईं बना दिया है।' तब उन खुशामदियों से राजा ने पूछा कि 'शाम को तुम लोगों ने मुकुट, कलगी, घनश्याम और मक्खन के तुल्य बैंगन के अवयव वर्णन किये। उसी बैंगन के अवयवों को खूँटी, काँटे, कोयला और कुष्ठ के नाईं बताया। हम किसको सत्य मानें, कलवाली को वा आजवाली को ?' खुशामदी बोले, 'वाह-वाह ! महाराज किस प्रकार के विवेकी हैं कि विरोध को शीघ्र ही जान लिया। सुनिए महाराज ! जिस बात से आप प्रसन्न होंगे, उसी बात को हम लोग कहेंगे। क्योंकि हम लोग तो आपके नौकर हैं। सो आप जो झूठी वा सच्ची बात कहेंगे, हम लोग उसी बात को पुष्ट करेंगे। हम लोग उस···बैंगन के नौकर नहीं हैं कि बैंगन की स्तुति करें। हमको बैंगन से क्या लेना है ? हमको तो आपकी प्रसन्नता से प्रसन्नता है। आप असत्य कहो तो भी हमको सत्य है।'

वे खुशामदी लोग ऐसा प्रयत्न करते हैं कि राजा सारा दिन नशे में चूर रहे और मूर्ख ही बना रहे। फिर जब वे लोग किसी अन्य राजा वा धनाढ्य के पास जाते हैं, तब उसी की खुशामद करते हैं और जिसके पास पहले रहते थे, उसकी निन्दा करते हैं। इस प्रकार के खुशामदी मनुष्यों ने राजाओं और धनाढ्यों की मति भ्रष्ट कर दी है। जो बुद्धिमान् राजा और धनाढ्य लोग हैं, वे इस प्रकार के मनुष्यों को पास भी नहीं बैठने देते। न आप उनके पास बैठते तथा न उनकी बात सुनते हैं और जो कोई मिथ्या बात उनके पास कहता है, उसको उसी समय उठा देते हैं और सदा बुद्धिमान्, सत्यवादी, विद्वान् पुरुष का संग करते हैं कि जो मुख के ऊपर सत्य-सत्य कहे, मिथ्या कभी न कहे। उन राजाओं और धनाढ्यों की

सदा बढ़ती होती और उन्हें ऐश्वर्य और सुख प्राप्त होता है। इससे सज्जनों को श्रेष्ठ ही पुरुषों का संग करना चाहिए, दुष्टों का कभी नहीं।

निन्दा-स्तुति

यथावत् सत्य भाषण करना स्तुति है और अन्यथा अर्थात् मिथ्या भाषण करना निन्दा है। इसलिए सज्जन लोगों को सदा स्तुति ही करनी चाहिए, निन्दा कभी नहीं। मूर्ख लोग सत्य बात कहने और सत्याचरण करने में यदि निन्दा करें तो भी बुद्धिमान् लोगों को दुःख वा भय न मानना चाहिए, किन्तु प्रसन्नता ही रखनी चाहिए; क्योंकि उन मूर्खों की बुद्धि भ्रष्ट है, इसलिए भ्रष्ट बात को सदा कहते हैं। जैसे वे भ्रष्ट लोग भ्रष्टता को नहीं छोड़ते हैं तो श्रेष्ठ लोग श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें ? किन्तु भ्रष्टता भ्रष्ट लोगों को भी अवश्य छोड़नी चाहिए। यदि सब भ्रष्ट लोग अत्यन्त विरोध भी करें, यहाँ तक कि मरण की भी अवस्था आ जाय, तो भी सत्य वचन और सत्याचरण सज्जनों को न छोड़ना चाहिए, क्योंकि यही मनुष्यों में मनुष्यत्व है। इसको छोड़ने से मनुष्यत्व तो नष्ट हो ही जाता है, किन्तु पशुत्व भी आ जाता है। आजीविका भी सत्य से करनी चाहिए, असत्य से कभी नहीं।

कुपात्र को दान न दो

कितने गृहस्थ लोग सदावर्त और क्षेत्र करते हैं, वे अनुचित ही करते हैं। क्योंकि बड़े धूर्त, गाँजा और भाँग पीनेवाले तथा चोर, डाकू और लुच्चे सदावर्तों से अन्न लेते और क्षेत्रों से भोजन कर लेते हैं। फिर कुकर्म ही करते रहते और हरामी हो जाते हैं। बहुत-से लोग अपना काम-काज छोड़ सदावर्तों और क्षेत्रों के ऊपर निर्भर करके, घर के सब काम और नौकरी-चाकरी छोड़के साधु वा भिखारी बन जाते हैं। फिर सेंत का अन्न खाते और सोये पड़े रहते हैं अथवा कुकर्म करते रहते हैं। इससे संसार की बड़ी हानि होती है। सो जो कोई सदावर्त, क्षेत्र करता है उसमें सज्जन वा सत्पुरुष कोई नहीं जाता। इससे उन गृहस्थों का पुण्य कुछ नहीं होता, किन्तु पाप ही होता है। इससे गृहस्थ लोग अन्नादिक दान करना चाहें तो पाठशाला रच लेवें, उसी में सब दान करें; अथवा जो श्रेष्ठ धर्मात्मा गृहस्थ और विरक्त होवें, उनको अन्नादिक देवें और यज्ञ करें, तब उनको बड़ा पुण्य होय, पाप कभी न होवे।

—आदिम सत्यार्थप्रकाश से साभार

□

बुढ़ापा बनाम तनाव और थकान

चिन्ताओं और उद्वेगों से पिंड छुड़ाने का सबसे कारगर तरीका—व्यस्तता

—जे० एस० वर्मा

सिर दर्द, चक्कर आना, जी घबराना, अनिद्रा, बेचैनी, उत्तेजना जैसी शिकायतें तनाव के लक्षण हैं। निद्रा, शान्ति और विश्राम के लिए मानसिक शिथिलता आवश्यक है, जबकि तनाव विश्राम की स्थिति उत्पन्न नहीं होने देता और यह एड्रिनल ग्रन्थि के दवाव-ग्रस्त होने से होता है।

अल्सर, आंतों की सूजन, वढ़ा हुआ रक्तचाप, धड़कन वढ़ना, मधुमेह जैसी बीमारियों के मूल में नाड़ियों का तनाव ही विशेष कारण होता है। इससे लकवा मार जाने और हृदय का दौरा पड़ने जैसे संकट खड़े हो सकते हैं। उत्तेजनाएँ एवं उद्विग्नताएँ ही सबसे अधिक मानसिक शक्तियाँ नष्ट करती हैं। ईर्ष्या, भय, द्वेष, कुढ़न, क्रोध, दुश्चिन्ता, आशंका, निराशा, बुरी कल्पना आदि ऐसे उद्वेग हैं जो एक घण्टे में उतनी मानसिक शक्ति खा जाते हैं जितनी आठ घण्टे पढ़ने-लिखने एवं सोचने-विचारने में खर्च होती है। जिस तरह पेट विकारग्रस्त हो जाता है, उसी तरह मस्तिष्क भी लिप्साग्रस्त हो जाता है।

हँसी-खुशी का सहज सामान्य जीवन-क्रम छोड़कर जटिलताएँ उत्पन्न करने-वाली मनःस्थिति में शरीर में धीमे जहर की उत्पत्ति शुरू हो जाती है। मांस-पेशियों और नाड़ियों को सिकोड़नेवाला एक विषाक्त पदार्थ एसिटिल कोलिन उन लोगों के शरीर में वनता है, जो मानसिक उत्तेजनाओं से ग्रसित रहते हैं। यह विष शरीर के अन्य रासायनिक पदार्थों में सम्मिलित होकर लैक्टिक अम्ल वनाने लगता है। इससे शरीर में अकड़न, शिथिलता, रूक्षता जैसी शिकायतें बढ़ती हैं और सामान्य जीवन-यात्रा में कई तरह की कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगती हैं। कैल्शियम की कमी होना भी पेशियों में तनाव, अनिद्रा, उत्तेजना, दिल व दिमाग की कमजोरी का एक कारण है।

हमारे सोचने की आदत सिनेमा देखने की तरह होनी चाहिए। जव हम साँस को फेफड़े में नहीं रोके रह सकते तो किसी विक्षोभ को भी मन में दवाकर क्यों बैठे रहें? नयी साँस लेने के लिए पुरानी साँस बाहर निकालना आवश्यक

है। कष्टप्रद स्थितियों,-स्मृतियों के प्रति सदैव सचेत रहना उनके विस्मरण का उपाय है। चिन्ताओं और उद्वेगों से पिण्ड छुड़ाने का सबसे कारगर तरीका है—व्यस्तता। अनेक काम ऐसे हैं जो मस्तिष्क में गड़बड़ रहते हुए भी किये जा सकते हैं। यह आदमी की अपनी रुचि व स्थिति पर निर्भर करता है कि वह क्या-कुछ कर सकता है। मुस्कराते रहना भी तनाव दूर करने का एक उपाय है। जीवन में गम्भीर नहीं, तरल रहें। यही आनन्दपूर्ण है। दूसरों पर विश्वास करें। अपनी मर्जी से किसी को अकारण अविश्वसनीय मान लेना और उसके बारे में अनुपयुक्त कल्पनाएँ करना न्यायसंगत नहीं है।

कम बोलना और उपयोगी वार्तालाप ही करना तो उचित है, पर मुँह पर ताला लगाकर कायर या संकोची की तरह बैठे रहना भी ठीक नहीं। झिझकते रहने से प्रतिभा दबती है और मुँह के रास्ते घुटन को बाहर निकालने पर अवसर हाथ से चला जाता है। अपनी बात कहना, दूसरों की बात सुनना एक सामाजिक गुण है।

तनाव की उत्तेजना स्नायु-संस्थान को दुर्बल कर देती है। तब मनुष्य अपने-आपको थका हुआ एवं अशक्त अनुभव करता है। इससे शक्ति क्षीण होती है। मन-मस्तिष्क में आलस, निराशा और बेचैनी पैदा होती है, जीवन बोझिल होने लगता है। डॉ० ब्रूहा के अनुसार थकान का ही दूसरा नाम जराजीर्ण स्थिति अथवा वृद्धावस्था है। शरीर-संचालन, आजीविका-उत्पादन एवं उत्तरदायित्वों के निर्वाह जैसे कार्यों में जितनी शक्ति खर्च होती है, यदि उतनी ही उपलब्ध होती रहे तो स्फूर्ति बनी रहेगी और शक्ति-भण्डार क्षतिग्रस्त न होने से मृत्यु का दिन दूर रखा जा सकेगा।

□ —जीवनदान से साभार

तीन पाश और उनसे मुक्ति

—शिवकुमार शास्त्री, काव्य-व्याकरणतीर्थ

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ।।

—ऋक्० १।२४।१५

आजीगर्तिः शुनःशेप आदि ऋषि, वरुण देवता, गायत्री छन्द।

अन्वय—हे आदित्य वरुण ! उत्तमं पाशम् उत्-श्रथाय, अधमं पाशम् अव-श्रथाय, मध्यमं पाशं वि-श्रथाय। अथ वयं तव व्रते अनागसः अदितये स्याम ।।

शब्दार्थ—'हे आदित्य' प्रकाशस्वरूप मर्यादापालक प्रभो 'वरुण' स्वीकार करने योग्य, चुनाव करने योग्य, हम सांसारिक जन तीन स्थानों पर पाशों से जकड़े पड़े हैं। अतः तुझसे विनय है कि 'उत्तमं पाशं' उत्तम पाश को 'उत् श्रथाय' ऊपर से ढीला करके खोल दे, 'अधमं पाशं' बीच के पाश को 'अव श्रथाय' नीचे से खोल दे, 'अधमं पाशं' बीच के पाश को 'वि श्रथाय' विशेष रूप से ढीला करके खोल दे, 'अथ' इसके अनन्तर अर्थात् पाशों से छूटकर 'तव व्रते' तेरे व्रत में बँधकर, आरूढ़ होकर, 'अनागसः' दोषरहित होकर, शुद्ध होकर 'अदितये' विनाशरहित सुख के अर्थात् मोक्ष के अधिकारी 'स्याम' होवें।

व्याख्या—वेद के वरुण शब्द की कथाएँ ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर महाभारत-पर्यन्त साहित्य में उलझी हुई और बिखरी पड़ी हैं। उन सब गुत्थियों को सुलझाकर वेद के आशय तक पहुँचना अत्यन्त दुरूह कार्य था। पाश्चात्य विद्वानों ने तो यह नारा ही लगा दिया है कि वैदिक काल के लोग नर-बलि दिया करते थे। इस सूक्त तक इतना सुधार हो गया था कि अजीगर्त के शुनःशेप को तीन स्थानों से बाँधकर, फिर प्रार्थना करने पर पाश-मुक्त करके एक नाटक का रूप दे दिया।

किन्तु मेरे पास उस सब का सविस्तार विवेचन करने के लिए न समय है और न स्थान। मैं तो ऋषि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित मार्ग का सहारा लेकर अपने पाठकों को सार तक पहुँचाना उचित समझता हूँ। ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में वरुण शब्द की व्युत्पत्ति 'वृणोति भक्तान् व्रियते वा भक्तैः' करके सब झंझट काट दिये, अर्थात् उस प्रभु को वरुण इसलिए कहा जाता है कि

भक्त उसके स्वरूप को समझकर संसार के समस्त प्रलोभनों को तृणवत् त्यागकर उसे वरण करता है, उसे चुनता है। उदाहरण के लिए नचिकेता का यमाचार्य को यह उत्तर कि 'तवैव वाहा नृत्यगीते' कि संसार के ठाठ-बाट, घोड़े और नाच-गीत तुझे मुबारक रहें, मुझे तो उसे बताएँ जिसे जानकर मृत्यु से निर्भय हो जाऊँ। यहाँ यह स्पष्ट है कि एक भक्त प्रभु का वरण करता है। इसी प्रकार भगवान् भी भक्त के शुद्ध आचार-विचार को देखकर भक्त को चुनता है। 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' अर्थात् प्रभु जिसका स्वयं वरण करते हैं वही उसे प्राप्त कर सकता है। हे प्रभो, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं उत्तम, मध्यम और अधम पाशों से बँधा पड़ा हूँ, कृपा कर मुझे इनसे छुड़ा। प्रश्न होता है—पाश तो पाश ही है, उसमें उत्तम, मध्यम और अधम का विभाग करने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि यहाँ शरीर की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अशुभ मार्ग में प्रवृत्त होने के परिणामस्वरूप जो बाधना उत्पन्न होती है, उसे ही शरीर से उपमित करके उत्तम, मध्यम और अधम नाम दे दिये गए हैं। हमारे शरीर का शिरोभाग उत्तमांग कहलाता है। इसका उत्तमांग नाम इसलिए है क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रियों का केन्द्र है। पाँच में से चार ज्ञानेन्द्रियाँ—कान, आँख, नाक और रसना, ये स्थायी रूप से यहाँ रहती हैं। पाँचवीं ज्ञानेन्द्रिय त्वचा सारे शरीर पर है और यहाँ भी है। अतः ज्ञानेन्द्रियों की अशुभ प्रेरणा के परिणामस्वरूप आचरित निषिद्ध कर्म उत्तम पाश से छूटने की प्रार्थना का आशय हुआ—'भद्रं कर्णेभि शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः' अर्थात् मेरे कान, नाक, जीभ और त्वचा इन्द्रियाँ ऐसे मार्ग पर चलें, जिसपर चलकर मैं अपना और दूसरों का कल्याण कर सकूँ। मैं पशुता का मार्ग छोड़कर विवेक से काम लूँ, क्योंकि पशुता के रहते हुए तो पाश से कोई छुड़ा ही नहीं सकता। अतः पहली प्रार्थना हुई कि मैं उत्तम पाश अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों की दुष्प्रवृत्तियों से छूटूँ।

अब आया मध्यम पाश। मानव-शरीर के मध्य भाग में पेट और जननेन्द्रियाँ हैं। पेट प्रतिनिधित्व करता है अर्थ का, जननेन्द्रिय प्रतिनिधित्व करती है काम का। इस आधार पर दूसरी प्रार्थना का आशय हुआ कि मैं धर्मानुसार ही अर्थ-संचय करूँ और मर्यादा में रहकर ही संसार के भोगों को भोगूँ। ये दोनों ही बन्धन बहुत जटिल और भयंकर हैं। संसार के सौ में से ७५ मनुष्य इन्हीं बंधनों में जकड़े पड़े हैं। इसलिए बन्धन से छूटने की प्रार्थना 'विश्रथाय' में 'वि' उपसर्ग का विशेष महत्त्व है, अर्थात् कमर में बँधी हुई रस्सी जब तक पर्याप्त ढीली नहीं होगी, तबतक न वह ऊपर की ओर आ सकेगी और न नीचे की ओर खिसक सकेगी। मनु ने भी कहा है कि 'अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।' धर्मज्ञान के अधिकारी ही वे हैं जो अर्थ और काम के अर्थात् मध्यम पाश से मुक्त हैं।

इनके बाद तीसरा नम्बर अधम पाश का है। हमारे शरीर में अधम भाग

पैर कहलाते हैं। ये अधम इसलिए हैं कि इनमें ज्ञान की आभा बहुत न्यून है। यहाँ ज्ञान का साधन केवल त्वचा है। जितने भाग पर केवल चमड़ा लिपटा हुआ है उतनी शैत्य या उष्णता की जानकारी दे देता है। इस प्रकार अधम पाश का आशय यह हुआ कि बिना जाने भी जो पाप कर्म किये जाते हैं, फल तो उनका भी दुःख ही होता है। एक बालक बिना जाने अंगारे को हाथ पर रख ले तो क्या अग्नि यह समझकर कि यह बालक है, बिना जाने मुझे उठा रहा है, उसे क्षमा कर देगा ? नहीं। ठीक उसी प्रकार अधम पाश से छूटना भी आवश्यक है। विद्या प्राप्त करना मानव-जीवन का लक्ष्य है। 'विद्ययाऽमृतमश्नुते'—अमृत-प्राप्ति तो विद्या से ही होगी। हाँ, एक बात अवश्य है कि पहले के दो पाशों की अपेक्षा इस अधम पाश से छूटना सरल है, क्योंकि ये उलटे काम तभी तक हो रहे हैं जबतक जानकारी नहीं मिली। ज्ञान होते ही उनके [छोड़ने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि यहाँ आसक्ति नहीं है। दूसरे पाशों में बुराई की आसक्ति कठिनाई पैदा करती है। यह आधा मन्त्र हो गया।

अब मन्त्र के उत्तरार्ध में 'पाश से छूटकर क्या करना है' इसका निर्देश है। तो भक्त कहता है पाशों से छूटकर मैं व्रत में बँधूँ, ताकि अनागसः—पाप का एक-एक धब्बा धुल जाए और जब मैं निष्पाप हो जाऊँगा तभी तेरे आनन्द का अधिकारी बनूँगा।

यहाँ भी एक छोटी-सी विचारणीय गुत्थी है। पाश भी बन्धन है और व्रत भी बन्धन है, फिर यहाँ पाश से छूटने की प्रार्थना की गई है—यह क्यों ? इसका रहस्य यह है कि पशुता और अज्ञान में आकर जो काम किये गए हैं उनका दुःख-स्वरूप फल अवश्य भोक्तव्य है। कष्टनिवृत्ति के लिए उन्हें छोड़ना अनिवार्य है। किन्तु व्रत वे उत्तम कर्त्तव्य-बन्धन हैं, जो विचारपूर्वक मैंने अपनी और समाज की उन्नति के लिए स्वयं अपने ऊपर लिये हैं। पाश में सर्वथा पराधीनता है और व्रत में पराधीनता में भी स्वाधीनता सुरक्षित है। मैं जबतक उचित समझता हूँ तबतक व्रत को रखता हूँ, और जब आवश्यकता नहीं समझता छोड़ देता हूँ। इसलिए दुःसंस्कारों से छुट्टी पाने के लिए व्रत-धारण आवश्यक है। इस प्रकार सार यह निकला कि प्रत्येक इन्द्रिय का वासना से प्रेरित प्रयोग पाश है और उसका परिणाम दुःख है। इसी प्रकार दूसरी दिशा में, प्रत्येक इन्द्रिय का विवेक-पूर्वक प्रयोग व्रत है जो जीवन को उच्चतम धरातल पर स्थापित करके मोक्षपद का अधिकारी बनाता है।

□

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	१००.००
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

श्रीकृष्ण चरित २५.००
श्याम जी कृष्ण वर्मा २४.००
आर्यसमाज विषयक
साहित्य परिचय २५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली
(सम्पादित) ग्यारह खण्ड ६६०.००

By Swami Satya Prakash Sarasvati

Founders of Sciences in
Ancient India
Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India
Two Volumes 600.00
Critical Study of
Brahmagupta and
His works 350.00
Geomatry in Ancient
India 350.00
God and His Divine Love 5.00

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली
चार खण्ड २४०.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश ३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००
सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा ५०.००
मैं ब्रह्म हूं ४.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा ६.००
ईशोपनिषद् ४.५०

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय ६.००

प्रो० विष्णदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की
साधना व संघर्ष ६.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

महकते फूल १०.००
ईश्वर का स्वरूप १५.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य २.५०
प्राणायाम विधि २.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप ५.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ३५.००
संध्या विनय ८.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा ३५.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	१.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका	४.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००

घर का वैद्य
लेखक : सुनील शर्मा

प्याज	३.५०
लहसुन	३.५०
गन्ना	३.५०
नीम	३.५०
सिरस	३.५०
तुलसी	३.५०
आँवला	३.५०
नींबू	३.५०
पीपल	३.५०
आक	३.५०
गाजर	३.५०
मूली	३.५०
अदरक	३.५०
हल्दी	३.५०
बरगद	३.५०
दूध-घी	३.५०
दही-मट्ठा	३.५०
हींग	३.५०
नमक	३.५०
बेल	३.५०
अनाज	३.५०
साग सब्जी	३.५०
फिटकरी	३.५०
शहद	३.५०

बाल साहित्य

बाल शिक्षा दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	२.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	२.५०
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	०.७५
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	२.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	२.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	२.५०
नैतिक शिक्षा	सप्तम	२.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम	२.५०
नैतिक शिक्षा	नवम	३.०
नैतिक शिक्षा	दशम	३.

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत)	६.०
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

डॉ० मनोहरलाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००

सन्तराम वत्स्य

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महाबली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	५.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	५.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह (पुरस्कृत)	६.००
ज्ञान की कहानियाँ (पुरस्कृत)	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेट मार्डन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
शरणागत की रक्षा (वेदों ,,)	६.००
शान्ति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणों की कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइवल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रंथों ,,)	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेडों वाली	८.००
राजा-रानी की कहानी	८.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

हास्य-व्यंग्य

हँसो हँसाओ	५.००
हास परिहास	५.००

विविध लेखक

भक्त बालक	६.००
पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हम सब राम-रहीम के बेटे	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	६.००
ऋतुगीत	६.००
सफलता की राह	५.००
उन्नति की राह	५.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें	६.००
अवसर को पहचानो	६.००
अपने आपको पहचानिये	६.००
आप सफल कैसे हों	६.००
उन्नति कैसे करें	६.००
धन कुबेर कैसे बनें	६.००

स्वास्थ्य और योग

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	६.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशु पालन	१२.००
हृदय-रोग कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

डॉ० जायसवाल

कैंसर : कारण निवारण १०.००

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग १०.००
सौ वर्ष कैसे जियें १०.००
आहार चिकित्सा १०.००

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डाक्टर (होम्योपैथी) १२.००
मानसिक रोग कारण निवारण १०.००

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग एक वरदान १०.००

श्यामजी गोकुल वर्मा

योग-साधना और प्राणायाम १०.००

महिला-उपयोगी

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक कला ६.००
आधुनिक मिष्ठान्न कला ६.००
शर्वत आइसक्रीम स्क्वैश ६.००
अचार मुरब्वे चटनी ६.००

जीवनियाँ

इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द १०.००

सन्तराय वत्स्य

स्वामी विवेकानन्द १०.००
स्वामी रामतीर्थ १०.००
रामकृष्ण परमहंस १०.००

तकनीकी

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक १२.००
ट्रांजिस्टर गाइड १२.००
ट्रांजिस्टर सर्विसिंग १०.००
टेलिविजन गाइड १०.००

विविध

अमृत वाणी १०.००
महाभारत ६.००
रामायण ६.००
पंचतन्त्र ६.००
हितोपदेश ६.००
चाणक्य नीति संस्कृत-हिन्दी १०.००
भर्तृहरिशतकम् " १५.००
विक्रम बेताल हिन्दी ६.००
सिंहासन बत्तीसी ६.००
एशियाई खेल १२.००
जूडो आत्मरक्षा के लिए १०.००
जूडो कुंग्फू कराटे ६.००
सफल व्यापारी कैसे बनें १०.००

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्य

अपने पराये ४.०
अकेली ४.००
चन्द्रनाथ ४.००
अनुराधा ४.००
परिणीता ४.००
बिन्दु का बेटा ४.००
बैकुण्ठ का दानपत्र ४.००
बड़ी दीदी ४.००
बिराज बहू ४.००
ब्राह्मण की बेटी ४.००
पंडित मोशाय ४.००
मँझली दीदी ४.००
देवदास ६.००
नया विधान ६.००
देहाती समाज ६.००
शुभदा ४.००
श्रीकान्त (दो भाग) ३०.००
विप्रदास १०.००
देना पावना १५.००
गृहदाह १५.००

नया संस्करण छपकर तैयार

महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यासजी प्रणीत

महाभारतम्

महाभारत धर्म का विश्वकोश है। व्यासजी महाराज की घोषणा है कि जो कुछ यहाँ है, वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है। इसकी महत्ता और गुरुता के कारण इसे पञ्चम वेद कहा जाता है।

वेद को छोड़कर सभी वैदिक ग्रन्थों में प्रक्षेप हुए हैं। महाभारत भी इस प्रक्षप से बच नहीं सका। महाभारत की श्लोक संख्या बढ़कर एक लाख पहुँच गई। इसमें असम्भव गप्पों, अश्लील कथाओं, विचित्र उत्पत्तियों, अप्रासाङ्गिक कथाओं को ठूंसा गया। इतने बड़े ग्रन्थ को पढ़ना कठिन हो गया।

आर्यजगत् के ही नहीं भारत के प्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ने महाभारत का एक विशिष्ट संस्करण तैयार किया है।

इस ग्रन्थ में असम्भव, अश्लील और अप्रासांगिक कथाओं को निकाल दिया गया है। लगभग १६,००० श्लोकों में सम्पूर्ण महाभारत पूर्ण हुआ है। श्लोकों का तार-तम्य इस प्रकार मिलाया गया है कि कथा का सम्बन्ध निरन्तर बना रहता है।

☐ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की, संस्कृति और सभ्यता की, ज्ञान-विज्ञान की, आचार-व्यवहार की गौरवमयी झाँकी देखना चाहते हैं,

☐ यदि योगिराज कृष्ण की नीतिमत्ता देखना चाहते हैं,

☐ यदि प्राचीन समय की राज्य-व्यवस्था की झलक देखना चाहते हैं,

☐ यदि आप जानना चाहते हैं कि क्या कौरवों का जन्म घड़ों में से हुआ था? क्या द्रौपदी का चीर खींचा गया था, क्या एकलव्य का अँगूठा काटा गया था, क्या युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था सोलह वर्ष की थी, क्या कर्ण सूत्रपुत्र था, क्या जयद्रथ को धोखे से मारा गया आदि

☐ यदि आप भ्रातृप्रेम, नारी का आदर्श, सदाचार, धर्म का स्वरूप, गृहस्थ का आदर्श, मोक्ष का स्वरूप, वर्ण और आश्रमों के धर्म, प्राचीन राज्य का स्वरूप आदि के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, तो एक बार इस ग्रन्थ को पढ़ जाइए।

विस्तृत भूमिका, विषय-सूची, श्लोक-सूची आदि से युक्त इस महान् ग्रन्थ का मूल्य है केवल ६०० रुपये।

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।